हिन्दी राम काव्य में भरत का स्वरूप

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की
पी० एच० डी० उपाधि
के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

बुन्देलखण्ड विश्व विद्या
पुस्तकालय
झाँसी
X1172

निर्देशक
डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी
एम० ए०, पी०, एच० डी०, डी० लिट्
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अतर्रा कालेज, अतर्रा (बांदा)

लेखिका
श्रीमती उर्मिला किशोर

भूमिका

राम कथा चिरमूल तथा चिर पुरातन है। यह कथा भी है और इतिहास भी। आदि से लेकर आज तक कितनी ही रही रामकथा भारतीय संस्कृति के विकास की प्रतिनिधिक कथा है। राम और रावण का युद्ध सत्य और असत्य एवं सत्पुरुष और दुष्टपुरुष का युद्ध है। राम की विजय प्रतीक रूप से सत्य की असत्य पर विजय है। भारत के सांस्कृतिक और साहित्यिक विकास में रामकथा का महत्व चिरस्थायी है। भारतीय संस्कृति का संरक्षण करते हुए रामकाव्य परम्परा ने समाज के लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय का पथ प्रशस्त किया है।

वाल्मीकि से लेकर आधुनिक युग तक रामकथा निरन्तर प्रवाहित होती रही है। राम विषयक अनेक रचनाएँ हुई हैं जिनके स्वरूप एवं व्यापकत्व का पूरा अनुमान न लगा सकने के कारण कवियों ने "रामायण शत कोटि अपारा" कह कर रामकथा की व्यापकता तथा अपनी सीमाबद्धता को स्वीकार करना पड़ा है। राम साहित्य की ये अनन्त रचनाएँ मुख्य रूप से राम तथा सीता के स्वरूप एवं प्रभाव का ही वर्णन करती हैं। सामान्य, विचारक तथा अनुसन्धानकर्ता भी राम तथा सीता के पारिवारिक गुणों को ही स्पष्ट करते रहे हैं। पं.महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से कवि तथा आलोचक उर्मिला के चरित्रांकन की ओर भी आकर्षित हुए परन्तु भरत तथा शत्रुघ्न के चरित्र चित्रण की ओर उनका ध्यान कम ही रहा है। भरत,शत्रुघ्न तथा राम कथा के अन्य पात्रों के विषय में कवि प्रायः उदासीन ही रहे हैं।

भरत राम कथा के अति उदात्त गुणों से समन्वित पात्र हैं। राम भक्तों तथा रामकाव्य प्रेमियों के लिए उनका विशेष महत्व है। भक्तों के वे आराध्य हैं और कवियों की कोमल भावनाओं को जगाने के लिए रसिकवर्य। भरत के बिना राम का अस्तित्व अधूरा है क्योंकि भरत के बिना कवि राम के अलौकिक चरित्र को प्रकाशित करते हैं। भरत रामकाव्य-आकाश के निष्कलंक चन्द्र हैं। दोषदर्शी दृष्टि राम के चरित्र के किसी अंश पर भी ही उठ जाए परन्तु भरत के पावन-चरित्र में दोषदर्शन सम्भव नहीं है। भरत की भावना-भक्ति, त्याग, तपस्या, निर्लिप्तता कर्तव्य एवं सत्यता आदि ऐसे गुण हैं जो संसार में व्यक्ति तथा समाज के लिए आदर्श हैं। परन्तु समीक्षकों ने भरत को औचित्य महत्व नहीं प्रदान किया। भरत के पावन चरित्र के इसी महत्व को उद्घाटित करने के उद्देश्य से यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है। इस शोध प्रबन्ध का लक्ष्य यह भी स्पष्ट करना है कि प्रत्येक काल में रामकाव्य की प्रगति तथा उसके गुणानुरूप आदर्श के परिप्रेक्ष्य

में भरत के स्वरूप का चित्रण किस प्रकार किया गया है तथा वह मानवता के लिए किस प्रकार कल्याण एवं मंगल का प्रतीक बना है । इसीलिए इस प्रबन्ध के रूप में हिन्दी रामकाव्य में भरत के स्वरूप का प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

हिन्दी रामकाव्य में राम को मुख्य रूप से विष्णु अथवा ब्रह्म का पूर्णावतार अथवा व्यूहावतार माना गया है । इस व्यूह के एक अंग भरत भी हैं जो वासुदेव व्यूह के प्रद्युम्न के समकक्ष हैं । अवतारवाद की अवधारणा का प्रभाव हिन्दी रामकाव्य पर इतना अधिक है कि राम के अवतारी स्वरूप को भूलकर कोई भी कवि रचना नहीं कर सका है । रामकाव्य के अधिकांश प्रणेता भगवान राम के भक्त हैं जिन्होंने रामचरित को प्रभु का लीला चित्रण तथा मानवीय आचरण के आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है । आधुनिक युग में राम द्वारा सीता के निर्वासन के विरोध में जो तीव्र स्वर सुन पड़ते हैं उनके मूल में भी राम का अवतारी स्वरूप ही है । मानव के निर्णय की भूल अपेक्षणीय है परन्तु अवतारी प्रभु की नहीं । हिन्दी रामकाव्य में अवतारवाद के इसी महत्व को दृष्टि में रखकर ही प्रबन्ध का प्रारम्भ अवतारवाद की परम्परा से किया गया है ।

संस्कृत काव्य हिन्दी काव्य का मूलाधार रहा है, विशेष रूप से राम कथा के सम्बन्ध में । आदि कवि की रामायण ने ही परिवर्ती समग्र राम साहित्य को आधार प्रदान किया है । राम भक्ति काव्य का सृजन भी पहले संस्कृत में हुआ है । वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण के गहन अध्ययन के बिना रामकथा के किसी भी पात्र के चरित्र-विकास को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है, अतः द्वितीय अध्याय संस्कृत साहित्य में भरत को समर्पित करना आवश्यक प्रतीत हुआ ।

प्रबन्ध के द्वितीय भाग में भक्ति काल तथा रीतिकाल के रामकाव्य में भरत के स्वरूप के विकास को दर्शाया गया है । हिन्दी रामकाव्य की रचना के मूल में स्वामी रामानन्द की भक्ति का सृजनात्मक भाव है जिसने अनेक कवियों को रामकाव्य प्रणयन की प्रेरणा दी है । तुलसी से पूर्व भी हिन्दी रामकाव्य की रचना हुई थी । इस दिशा में कविवर विष्णुदास, ईश्वरदास तथा महात्मा सूरदास के नाम उल्लेखनीय हैं । यहाँ विष्णुदास तथा ईश्वरदास के काव्य प्रबन्धात्मक

हैं यहाँ सूरदास की रचना मुक्तक पदों में है, परन्तु उनमें सम्पूर्ण रामकथा प्रस्तुत की गई है। माधुरोपासना के क्षेत्र में स्वामी अग्रदास का नाम स्मरणीय है। तुलसी पूर्व के रामकाव्य प्रणेताओं का उल्लेख इस प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में किया गया है।

हिन्दी रामकाव्य में रामचरित मानस का स्थान सर्वोपरि है। तुलसी का "मानस" न केवल रामकथा की दृष्टि से अपितु भक्ति और दर्शन, भाव प्रवणता तथा चरित्र-चित्रण, आदर्श प्रतिपादन एवं मार्मिकता सभी क्षेत्रों में अद्वितीय है। भरत चरित्र की दृष्टि से भी तुलसी का काव्य अति महत्वपूर्ण है क्योंकि कवि की भक्ति-भावना का साकार स्वरूप उसके "मानस" के भरत में ही दर्शनीय है। उसके भरत का यही पूर्ण लक्ष्य उज्ज्वल है। चतुर्थ अध्याय में तुलसी के "मानस" तथा गीतावली आदि काव्यों में अंकित भरत के स्वरूप का विवेचन किया गया है।

भावपक्ष से भी कलापक्ष को अधिक महत्व देने वाले रीतिकाल में केशवदास के अतिरिक्त अन्य कवियों ने रामकाव्य का सृजन रीतिमुक्त रूप में ही किया है। उन्होंने भक्ति-भावना से प्रेरित हो कर अपने प्रभु का कीर्तिगान किया है। इस काल में रामकथा से सम्बन्धित अनेक काव्यों की रचना की गई है, जिनमें मर्यादावादी तथा मधुर दोनों ही प्रकार के राम-भक्ति काव्य सम्मिलित हैं। इस सीमित प्रबन्ध में रीति काल में रचित सभी राम भक्त कवियों के काव्यों तथा उनमें प्रतिपादित भरत के स्वरूप का विवेचन करना सम्भव न था अतः कुछ प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों में चित्रित भरत के चरित्र का ही यहाँ वर्णन किया जा सकता है। सन्तोषजनक पुस्तकों की दुर्लभता भी इसका एक कारण रही है। वस्तुतः इस काल का रामकाव्य इतना विस्तृत है कि उसके अन्तर्गत भरत के स्वरूप की विवेचना करने के लिए एक स्वतंत्र प्रबन्ध की आवश्यकता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में केशव की रामचन्द्रिका, नागरदास के अवध-विलास, चारुदत्त गरुडरिदास के अवतार चरित, बेनीदास के रामविनोद, मोहनदास के रामाश्वमेध मधुसूदन के रामाश्वमेध, महाराज विश्वनाथ सिंह के आनन्द-रघुनन्दन, पद्माकर के रामरसायन तथा बलदेवदास के अवध विलास में अंकित भरत के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

इस प्रबन्ध का तृतीय भाग आधुनिक रामकाव्य में भरत के स्वरूप का प्रतिपादन

जाता है। इसमें छायावाद से पूर्व के रामकाव्य, छायावादयुगीन रामकाव्य तथा छायावादोत्तर रामकाव्य में उपलब्ध भरत के चरित्र का विवेचन किया गया है। आधुनिक युग में कवि चेतना जागी है तथा उसमें राष्ट्रीयता की भावना, सत्ता की प्रधानता, चरित्र-चित्रण की प्रभावपूर्णता आदि का विकास सम्भव हो सका है। परिवर्तित वातावरण तथा मनोविज्ञान के प्रभाव ने भी चरित्रांकन को नवीन दिशा की ओर मोड़ा है। इस युग के भरत-चरित्र के अंकन में भी उपर्युक्त बातों का प्रभाव पड़ा है जो छायावाद पूर्व के काव्य में रामचरित उपाध्याय की रामचरित चन्द्रिका के भरत के चरित्र के रूप में संकेतित सामने आया। इस युग के अन्य काव्य विश्वनाथ तापस तथा रामस्वरूप परम्परागत रामभक्ति के काव्य हैं।

इस प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में छायावाद-युग में रचित रामकाव्यों में भरत के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। छायावाद की अनेक प्रवृत्तियों का प्रभाव इस युग के "साकेत", उर्मिला आदि काव्यों पर दृष्टिगत होता है, परन्तु पूर्ण रूप से छायावाद के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त किसी भी रामकाव्य की रचना छायावाद युग में नहीं हो पायी। भरत के स्वरूपांकन की दृष्टि से "साकेत" इस युग का प्रतिनिधि काव्य है। इसमें भरत तथा कैकेयी के चरित्रों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि महत्वपूर्ण है। भरत का राम-प्रेम, भ्रातृ-विह्वलता, त्याग स्वभाव, तथा त्याग वृत्ति आदि गुण इस काव्य में प्रशंसनीय है। इस युग में ही रचा गया विश्वनाथ शुक्ल का "भरत-भक्ति" काव्य रामकथा-विषयक पारम्परिक रचना है जिसमें भरत का भक्त स्वरूप अति सुन्दर बन पड़ा है।

छायावादोत्तर युग में रचे गए रामकाव्य "राम की शक्ति पूजा" तथा पं. केदारनाथ मिश्र का "कैकेयी" छायावाद के अति निकट हैं। भरत के चरित्र की दृष्टि से "साकेत-सौ" अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इस काव्य के नायक भरत हैं। साकेत सौ तथा रामराज्य के भरत पर गांधीवाद की छाया अवलोकनीय है। राष्ट्रप्रेम, भ्रातृ भक्ति, त्याग एवं सेवा इन काव्यों में भी उनके विशिष्ट चारित्रिक गुण हैं। इस युग के काव्य में गृहस्थ-जीवन का भी चित्रण कर भरत के स्वरूप को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। इस दृष्टिकोण से "साकेत-सौ", डॉ.हरिवंश सिन्हा

की "माण्डवी" तथा चाँदमल अग्रवाल की कैकेयी काव्य महत्वपूर्ण हैं। भरत की पत्नी माण्डवी को उनके समान ही त्याग एवं तपस्वीरत दिखाया गया है। राज्य का शासन संचालन भरत के हाथ में है और घर की व्यवस्था माण्डवी के हाथ में। "अल्प-रामायण" के भरत आध्यात्मिक दृष्टि से अति विकसित हैं। वे राम-प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप हैं। "राम" महाकाव्य, "भगवान राम" तथा "जानकी जीवन" रामकाव्य की पारम्परिक रचनाएँ हैं। "विदेह", "भूमिजा", "उत्तरायण" तथा "सीता की एक रात" प्रस्तुतीकरण की नवीनता के कारण महत्वपूर्ण है, यद्यपि इनमें भरत-चरित्र अति न्यून है अथवा नहीं है।

हिन्दी रामकाव्य में भरत के स्वरूप का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु है उनकी भक्ति-भावना। वे राम के प्रमुख भक्त हैं। तुलसी के भरत भक्त-शिरोमणि हैं। रीतिकालीन काव्यों में भी भरत के भक्त स्वरूप का ही विस्तार किया गया है। आधुनिक युग के रामकाव्यों में भी भरत की भक्ति-धारा अक्षुण्ण है भले ही वे कहीं साधुक-भक्त हों और कहीं आध्यात्मिक साधना में रत योगी। साधन भक्ति के माध्यम से उन्होंने साध्या-भक्ति को प्राप्त किया है। कहीं-कहीं उन्हें यह साध्या अथवा पराभक्ति प्रभु के अनुग्रह स्वरूप स्वतः ही प्राप्त है। इस प्रबंध के नवम अध्याय में भरत की भक्ति तथा उनके शील स्वभाव आदि की चर्चा की गई है।

भरत का लोक मंगल मय स्वरूप काव्य के जन्म से लेकर आज तक संसार का मार्ग दर्शन कर रहा है। संसार के भाइयों को भ्रातृ-धर्म की, सेवकों को सेवक-धर्म की तथा प्रेमी-भक्तों को इष्ट-आराधन की शिक्षा दे रहा है। काव्य के आदिकाल से लेकर आज तक प्रत्येक युग ने भरत रूपी सूर्य से अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रकाश प्राप्त किया है। नैतिक क्षेत्र में भरत भारत की अनुपम उपलब्धि है तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में भक्ति-प्रवण भरत विश्व के मार्गदर्शक गुरु हैं। विश्व की सभ्यता को ये भारत की सबसे बड़ी देन है।

व्यक्तिगत रूप से इस शोध-प्रबन्ध-लेखन ने दुःख के अनगिनत क्षणों में मुझे अपरिमित शान्ति प्रदान की है। भरत का दिव्य स्वरूप प्रेरणा के अतिरिक्त सान्त्वना और शान्ति भी देता रहा है। इस प्रबन्ध को पूर्ण करते समय अपने स्वर्गीय पति श्री गिरिराज किशोर जी की पावन स्मृति मुझे उनके चरणों में नत कर रही है। उनकी ही सत्प्रेरणा से मैंने यह शोध-कार्य प्रारम्भ करने का साहस किया था। अपने अति व्यस्त कार्यकारी

जीवन में मुझे इस प्रबन्ध के पूर्ण होने की आशा नहीं थी परन्तु मेरे शोध निदेशक डा० शिवस्वरूप दयाल अवस्थी जी ने मेरे मनोरथ को गिरने नहीं दिया। उनकी मार्गदर्शन, प्रेरणा, सत्परामर्श, सौम्य एवं उदार व्यवहार की कृपा से यह शोध-प्रबन्ध पूर्ण कर सका है। आभार के शब्द उनके उपकार की तुलना में अपर्याप्त हैं। आदर्श कालेज के प्राचार्य डा० भट्टोरिया के प्रति मैं हार्दिक रूप से आभारी हूँ जिनकी सौजन्यता से मुझे शोध-कार्य हेतु अनेक पुस्तकें उपलब्ध हो सकीं। इस दिशा में डा० डी.एस. श्रीवास्तव के सहयोग के लिए भी मैं आभारी हूँ।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने हेतु पुस्तकों की उपलब्धता अति आवश्यक थी। बरेली कालेज, बरेली के प्रोफेसर डा० मदन गोस्वामी ने अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय से मुझे "आनन्द रामायण" आदि अनेक दुर्लभ ग्रन्थ देकर इस कठिनाई का कुछ अंशों तक निवारण किया। इसी बीच प्रभु कृपा से मेरा स्थानान्तरण इलाहाबाद को हो गया जहाँ सुप्रसिद्ध "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" स्थित है। मैं इस संस्था के समस्त प्रबन्धकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति आभारी हूँ जिनके सहयोग से दुर्लभ ग्रंथ भी सुलभ हो सके तथा मैं यदा-कदा पुस्तकालय का प्रयोग कर सकी। अवध-विलास अनन्य दास, अवतार-चरित्र आदि नन्द हरिदास, राम-रहस्य अनन्य दास तथा कुछ अन्य ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन हिन्दी साहित्य सम्मेलन में मैं ही सम्भव हो सका है। इस सुविधा को उपलब्ध कराने के लिए मैं श्री श्याम कृष्ण पाण्डेय, संयुक्त सचिव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रति कृतज्ञ हूँ। राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद की प्राचार्या तथा उपप्राचार्या श्रीमती रमा नारायण तथा स्व० डा० शर्मा के सौजन्य से मैं उनके सुसमृद्ध पुस्तकालय का प्रयोग कर सकी हूँ अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मेरा कर्तव्य है।

श्रीमती सरला चौहान, तत्कालीन उप शिक्षा निदेशक महिला, श्री रघुनन्दन सिंह तत्कालीन उप शिक्षा निदेशक माध्यमिक तथा श्री० आर० चौहान, तत्कालीन शिक्षा निदेशक उ०प्र० के प्रति मैं अति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे विभागीय स्तर पर शोध कार्य करने की अनुमति प्रदान की। डा० आशा भारती का अनुवादित शोध प्रबन्ध "रामकाव्य परम्परा में भरत का व्यक्तित्व एवं चरित्र" जो आगरा विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. की उपाधि के लिए उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया था डा० ज्योतिस्वरूप के सौजन्य से मुझे को देखने को मिल सका था। मैं उनकी

तथा डा० आशा भारती की इस उदारता के प्रति आभारी हूँ। मैं उन सभी व्यक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करती हूँ जिन्होंने इस कार्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग प्रदान किया है।

मेरी पूज्या माता श्रीमती अनसूया देवी राम की भक्त हैं। पति के दिवंगत होने पर ये ही मुझ को यह शोध कार्य पूर्ण करने की प्रेरणा देती रही हैं। भगवान राम के अनुग्रह से आज यह प्रबन्ध पूर्ण हो सका है। राम और भरत एक ही तत्व हैं। उनके चरणों में यह प्रबन्ध समर्पित है।

- - - - - - - - - - - - -
- - - - - - - -

हिन्दी रामकाव्य परम्परा में भरत का स्थान

प्रथम भाग -

प्रथम अध्याय- §1§ अवतारवाद परम्परा

§2§ रामभक्ति

द्वितीय अध्याय- संस्कृत काव्य में भरत

§1§ धार्मिक काव्य

§2§ ललित काव्य

द्वितीय भाग - मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य में भरत

तृतीय अध्याय- तुलसी पूर्व रामकाव्य में भरत

चतुर्थ अध्याय - तुलसी रामकाव्य में भरत

पंचम अध्याय - रीतिकालीन रामकाव्य में भरत

तृतीय भाग- आधुनिक रामकाव्य में भरत

षष्ठ अध्याय - छायावादपूर्वकालीन रामकाव्य में भरत

सप्तम अध्याय - छायावादयुगीन रामकाव्य में भरत

अष्टम अध्याय - छायावादोत्तर रामकाव्य में भरत

नवम अध्याय - भरत की भक्ति-भावना

दशम अध्याय - आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में भरत-चरित की उपादेयता

उपसंहार

परिशिष्ट

प्रथम-भाग

प्रथम अध्याय- अवतारवाद की परम्परा

(1) अवतारवाद का प्रारम्भ एवं प्रयोजन

(2) अवतारवाद के विविध रूप

(3) अवतारवाद की दो परम्परायें

(क) दशावतार परम्परा

(ख) चौबीस अवतार परम्परा

(4) रामावतार

(5) राम परिवार- सीता, लक्ष्मण, हनुमान तथा भरत

द्वितीय अध्याय- संस्कृत काव्य में भरत

(1) धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक रामकाव्य में भरत-

(क) वाल्मीकि रामायण में भरत

(ख) महाभारत में राम कथा तथा भरत

(ग) अध्यात्म रामायण तथा आनन्द रामायण में भरत

(2) पुराण साहित्य में भरत-

श्रीमद्भागवत पुराण, विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण तथा अन्य पुराणों में भरत का स्वरूप ।

(3) संस्कृत ललित साहित्य में भरत-

काव्य- रघुवंश में भरत

नाटक- प्रतिमा नाटक, हनुमन्नाटक तथा प्रसन्नराघव नाटक आदि में भरत ।

पुष्प-अलंकार

अलंकारवाद की पहचान

विश्वनाथ कवि ने रस का सीधा संबंधकारी मान मानकर ही अलंकार का खंडन किया जा रहा है। उन्होंने काव्य के सौन्दर्यकारी विधान में रस के सुख के प्रकाश से ही चित्त को आलोकित किया था। रस के गुण गुण एवं प्रकाश आदि कवि के अन्तर्भावों के समूह प्रस्फुटित हुए और प्रभावकारी अभिव्यक्ति रूपों की प्रकाशित हो गयी। रस का नाम रस है ही " आत्मा निर्मल सुन्दरी" का प्रतीक बन गया है तथा उसका वाचक चरित्र अभिव्यक्तिमात्र है। यह परम प्रेरणा प्रदीप है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाज के विभिन्न कार्यों को अलग विशेषज्ञ प्रेरणा मिली है। जिसने भी अपने उन्हें आलोकित होकर धारण अपने और कार्यों में धारण किया और विकास-सूत्र की परम्परा में लीन हो गया। किसी अपने जीवन के प्रकाश-पथ के भी दीप हो गये यह महान् अभिव्यक्ति का विधान हो आलोकित कर दिया। किसी अपने सुख की सीमा समाज ने रखी पर किया यह भी अर्थों की सुख पर अभिव्यक्ति के रस-भावना में मग्न हो गया। किसी अपने गहन भावना स्वरूप के सीमा सुख मन कवि बन गया। अभिनव भारतीय जीवन एवं कोई भी और उस प्रभाव से अछूता न रहा। आदि कवि के अन्तर से भेद आज तक रामचरित कवियों के लिए प्रेरणा प्रदीप रहा है। विभिन्न युगों में कवियों ने अपने सुख में राम की प्रतिमा पर काव्य रचना की है। भारत के हर कोने ने राम काव्य का सृजन किया है। हर युग ने उस आदर्श को अपने रूप में आत्मसात पाया है। परिवर्तन रहे हैं – युग बीता है, युग बीता है। सीता-वियोग, रावण-संघर्ष, लव-कुश आदि कथाएँ कालान्तर में बीती गयी हैं। जीवन तथा समाज के दर्शन के प्रति नए मान कालान्तर में बीत चुके हैं। इसी प्रकार रामायण की मूल कथा में नीरव कवि तथा नीरव की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन-परिवर्द्धन होते ही रहे हैं। हर युग में राम-कथा एक विशिष्ट आदर्श भेद, एक विशिष्ट सीमा भेद आगे बढ़ी है। इस प्रकार राम-कथा का स्वरूप एक सार्वभौम भावना में विकसित हुआ है तथा देश-काल की सीमाओं के बन्धन से मुक्त रहा है। यह प्रत्येक काल में कवियों एवं प्रकाशमान रहा है तथा विश्वास हुआ कि अपनी अपनी भावनाओं में प्रकाशित होगा। यह गान, यह चरित्र, यह कथा

स्वयं ही अमर है तथा छन्दोबद्ध करने वाले कवि को भी अमरता प्रदान करती है। तुलसी के काव्य के ये शब्द यथार्थता के ही द्योतक हैं कि-

" राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज ही सम्भाव्य है।"

श्री राम ऐसे महापुरुष हैं जो योग और वैराग्य की उस स्थिति पर पहुँचे हुए हैं जहाँ अयोध्या का परम वैभवशाली साम्राज्य भी उनके लिये तिनके के समान तुच्छ है। वन जाते समय उनके मुख पर न तो राग के और न तो रोष के ही चिन्ह दिखाई पड़ें। सर्वदा प्रसन्न रहने वाले श्री राम सब को समझाते, बुझाते, धीरज बँधाते वन को चले गए। वे वन में घर के समान प्रसन्न रहे। श्री राम ही नहीं उनके चारों ओर जितने भी चरित्र हैं, वे अकल्पनीय भाव से उदात्त हैं। ऐसी उदात्तता एवं ऐश्वर्य सम्पन्नता उनके सब ओर विद्यमान है कि मनुष्य की बुद्धि उस अलौकिक ऐश्वर्य में चकित हो जाती है और उसका मन उसकी उदात्तता अथवा महत्ता में डूब जाता है। फलतः यह यह सोचने के लिए विवश हो जाता है कि श्री राम मानव नहीं साक्षात् ईश्वर हैं।

हिन्दी राम काव्य में मुख्यतः श्री राम का विष्णु के अथवा साक्षात् ब्रह्म के अवतार के रूप में वर्णन किया गया है। भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न उनके अंश हैं। "मानस" के अनुसार परब्रह्म ने स्वयं ही अवतरित होकर देव कार्य करने का आश्वासन दिया है," अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता।" इस प्रसंग में यह जिज्ञासा स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है कि यह अवतारवाद क्या है? अवतारवाद शब्द का अर्थ क्या है? यह कहाँ से उत्पन्न हुआ और साहित्य में इसका प्रयोग कितना पुराना है? यह भी जानने की इच्छा उत्पन्न होती है कि साहित्य में अवतारवाद की पुरातनतम परिकल्पना कब हुई। इस अध्याय में अवतारवाद पर अति संक्षेप में चर्चा की जायेगी।

अवतार शब्द का विवेचन -

सामान्यतः अवतार शब्द की सिद्धि अव उपसर्गपूर्वक तृ धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से होती है। इस सम्बन्ध में पाणिनि का सूत्र है, अवे तृस्त्रोर्घञ् । 3.3.120। इस व्युत्पत्ति के आधार पर अवतार शब्द का अर्थ किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की

किया है । इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त अवतार शब्द का विशिष्ट अर्थ है किसी महनीय शक्ति-सम्पन्न भगवान या देवता का ऊपर के लोक से नीचे के लोक में उतरना तथा मानव या मानवेतर रूप धारण करना । अवतार शब्द का सम्यक् विवेचन करने के लिए आवश्यक है कि यह भी देखा जाय कि वैदिक-साहित्य में यह शब्द किस प्रकार प्रयुक्त हुआ है ।

यह धारणा भ्रान्तिमूलक है कि वैदिक-साहित्य में अवतार या अवतारवाद का अस्तित्व नहीं है । वैदिक साहित्य में वे उपादान विद्यमान हैं जिनके आधार पर पुराणों में अवतारवाद का विकास हुआ है । यह अवश्य है कि वैदिक-साहित्य में अवतार शब्द उसी रूप में प्रयुक्त नहीं है जिस रूप में पुराणों में है, परन्तु अवतारी[1] और "अवतार"[2] शब्द उपलब्ध हैं । ये शब्द सम्भवतः "अवतु" धातु से बने हैं । आचार्य सायण के अनुसार "अवतार" शब्द का अर्थ इस प्रकार है - " अवतारः अतिशयेन अवतु रक्षकस्यैः सारभूतांशैः विद्यते ।" अर्थात् अत्यन्त रक्षण में समर्थ जिसमें सारभूत अंश हो, वही अवतार कहा जाता है । " अवतार" शब्द के निर्माण पर विचार करते हुए सायण कहते हैं,- " अवतार इति । अव रक्षण इत्यस्माद् लट आदेशः । ततः प्रकर्षार्थी तरप्[3]" अर्थात् "अव" धातु में लट के स्थान पर अतु आदेश करके उससे प्रकर्ष के अर्थ में "तरप्" प्रत्यय से यह शब्द बना है । सायण की इस व्युत्पत्ति के अनुसार "अवतार" शब्द में रक्षा का भाव है । परवर्ती साहित्य में विष्णु तथा अन्य देवों का अवतार धर्म तथा मानवता की रक्षा के हेतु बतलाया गया है । शुक्ल यजुर्वेद के भी एक मंत्र[4] में "अवतार" शब्द का प्रयोग हुआ है जिसमें उसका प्रयोग उतरने के अर्थ में हुआ है । परवर्ती अवतारवादी साहित्य में अवतार शब्द का अर्थ उतरना भी समझा गया । इस प्रकार वैदिक-साहित्य में प्रयुक्त " अवतारी", "अवतार" एवं "अवतार" शब्दों के अर्थ बाद में भाष्यकारों द्वारा अवतारपरक लिए जाने लगे ।

- -

1- अभिपित्वा अभिभुवो विभूतीरायाय विश्वोऽवतारीदसीः । ऋग्वेद 6/25/2

2- अवतारो नदीनाम् । अथर्ववेद 10/3/5

3- अथर्ववेद 10/3/5 का सायण भाष्य ।

4- " उप ज्यन्तुप वेतोऽवतार नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरा गहि सेमं नो यज्ञं पावक वर्धय चित्तं वृधि ।" यजु0 17/6 ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अवतार शब्द का प्रयोग विरल ही है। इन ग्रन्थों में कहीं कहीं अवतारी शब्द का प्रयोग हुआ है, जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण 2,8,3,3 में। यहाँ भी अर्थ उत्पत्ति वाला ही है। शतपथ ब्राह्मण[1] एवं मैत्रायणी संहिता[2] में अवतार शब्द का प्रयोग यज्ञपेट के पूर्वोक्त अंगों के साथ हुआ है, अतः उसी अर्थ में है।

प्रारम्भ में कहा गया है कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में "अवेस्तृस्त्रोर्घञ्" सूत्र के द्वारा अवतार शब्द की व्युत्पत्ति बतायी गई है। पाणिनि ने संहिताओं के अवतु, अवतारी, अवतार, अवतर आदि शब्दों का उल्लेख न कर केवल "अवतार" तथा "अवतार" का ही उल्लेख किया है[3]। सूत्र को स्पष्ट करते हुए उदाहरण दिया गया है, "अवतारः कूपादेः" अर्थात् कुएँ में उतरना। स्पष्ट है कि पाणिनि ने अवतार का अर्थ "उतरने" से लिया है। पाणिनि के समय में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा होगा[4]। मध्यवर्ती वैयाकरणों में वामन जयादित्य ने काशिका में तथा अन्न भट्ट ने सिद्धान्त में पाणिनि के उक्त सूत्र की विस्तार से व्याख्या की है परन्तु कोई नवीन अर्थ नहीं बताया है।

महाकाव्यों में से रामायण में मनुष्य रूप धारण[7], महाभारत में जन्मकर्म, निःसृत, जाता समास्थित एवं प्रादुर्भाव[8] आदि शब्दों का प्रयोग अवतारवाद के अर्थ में किया गया है। इन में अवतार शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। गीता में भी अवतारवाद के सैद्धान्तिक स्वरूप

1- शतपथ ब्राह्मण 9/1/2/27 ।

2- मैत्रायणी संहिता 2/10/1 ।

3- "अवेस्तृस्त्रोर्घञ्" अवतारः कूपादेः। अवतारो जवनिका। अष्टाध्यायी 3/3/120 ।

4- इतिहासकारों ने पाणिनि का समय ईसा से 700 से 1000 वर्ष पूर्व तक के मध्य निर्धारित किया है।

5- काशिका। तीसरा खण्ड 1928। कलकत्ता पृ0 241 ।

6- सिद्धान्त (अन्नभट्ट) पा0 सू0 3/3/120 ।

7- बालकाण्ड 1/16/3 ।

8- महाभारत 335/2; 335/19/20 एवं 30; 339/51 ; 339/14 ; 348/12 ; 339/64

की चर्चा के समय "अवतार" शब्द का प्रयोग न कर "तैंभव", "आत्मतनु" तथा "दिव्य जन्म" का प्रयोग किया गया है[1]। महानारायणोपनिषद में 12/1 में ब्रह्म का जन्म सूचित करने के लिए "विजायमान" शब्द का भी प्रयोग हुआ है। शुक्ल यजुर्वेद में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है[2]।

हरिवंश पुराण एवं विष्णु पुराण में अवतार या अवतीर्ण शब्द विष्णु के जन्म ग्रहण करने के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं[3]। श्रीमद्भागवत पुराण में अवतार शब्द के साथ साथ "जायमान" एवं "तनु" आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसके पश्चात् रचे गए पुराणों में तथा अन्य साहित्य में विष्णु तथा ब्रह्म के जन्म-ग्रहण करने के अर्थ में "अवतार" शब्द का स्पष्ट प्रयोग किया गया तथा इसके साथ ही "विजायमान" एवं प्रादुर्भाव आदि शब्दों का प्रयोग भी होता रहा। बौध्द, जैन, नाथ, सिद्ध तथा सूफी सम्प्रदायों के अवतारवादी न होते हुए भी इनके साहित्य में अवतार और उसके पर्यायवाची शब्द मिलते हैं तथा अवतारवादी तत्व भी यहाँ-वहाँ दिखाई पड़ जाते हैं।

मध्यकालीन सगुण भक्ति के साहित्य में अवतारवाद मुख्य रूप से उभरकर आता है। परन्तु इस युग के साहित्य में भी अवतार की अपेक्षा "प्राकट्य" शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास ने ब्रह्म के जन्म लेने के अर्थ में अवतार, नर-तनु-धारण तथा प्राकट्य आदि शब्दों का प्रयोग किया। सूरदास तथा अन्य भक्त कवियों ने "प्राकट्य" का अधिक प्रयोग किया।

हिन्दी विश्वकोष के रचयिता श्री नगेन्द्र नाथ वसु ने "अवतार" शब्द के अनेक अर्थ बताए हैं, यथा- नीचे आना, उतरना, पार होना, शरीर धारण करना, जन्म ग्रहण करना, प्रतिकृति, नकल, प्रादुर्भाव, अवतरण तथा अवोद्भव[4]। इस शब्द का समय समय पर अर्थ संकोच तथा अर्थ विस्तार भी होता रहा है। अर्थ का उदात्तीकरण भी हुआ है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य में अवतारवाद अपना विशेष स्थान रखता है तथा विभिन्न युग के विचारकों ने इसका अपने अनुसार ही प्रयोग किया है। फिर भी यह बात निर्विवाद है कि विष्णु या अजन्मा ईश्वर के जन्म या उत्पत्ति के सिद्धांत को ही अवतारवाद कहा गया है। ईश्वर का अवतार सदुपोजन होता है तथा रक्षा, परित्राण, संहार, जनकल्याण, ज्ञान, योग और भक्ति का प्रसार तथा लीला एवं रस आदि की इसके द्वारा अभिव्यक्ति होती है।

1- गीता 4/6-9 । 2- शुक्ल यजु० 39/19-"अजायमानो बहुधा विजायते।"
3- विष्णु पुराण 5/1/60 । 4- हिन्दी विश्वकोष, जी02, पृ० 179 ।

वैदिक साहित्य में अवतारवाद-

अधिकांश लोगों की धारणा है कि वैदिक साहित्य में अवतारवाद का कोई स्थान नहीं है, परन्तु सत्य यह है कि अवतार तथा अवतारवाद की परिकल्पना का मूल वैदिक साहित्य में ही निहित है। ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर विभिन्न देवों का बड़ा सजीव वर्णन किया गया है, जैसे अग्नि, इन्द्र तथा विष्णु का। यह वर्णन इतना सजीव है कि ये देवता विशिष्ट देहधारी प्रतीत होने लगते हैं। प्राचीनऋषियों ने इन्हीं वर्णनों के आधार पर देवताओं की विशिष्ट मानव रूप में कल्पना की होगी। डॉ० शिवम्भर दयाल अवस्थी ने अपनी पुस्तक " वैदिक संस्कृति और दर्शन" में लिखा है कि " पौराणिक साहित्य के अति प्रसिद्ध "अवतार" शब्द के अर्थ का मूल वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है "[1]।

अवतारवाद का प्रारम्भिक रूप मुख्यतः विष्णु से सम्बद्ध है। ऋग्वेद में विष्णु का वर्णन अत्यन्त पराक्रमशाली देवता के रूप में किया गया है। विष्णु ने अपने तीन पग से इस जगत् की परिक्रमा की जिससे सारा जगत् उनके पैरों की धूलि से छिप गया[2]। वेदों में विष्णु को जगत् का रक्षक कहा गया है। ये इतने पराक्रमशाली हैं कि उनको आघात करने वाला कोई नहीं है। इन ऋचाओं में उनको समस्त धर्मों को धारण करने वाला भी बताया गया है[3]। विष्णु के बल पर ही यजमान अपने व्रतों का अनुष्ठान करते हैं[4]। विष्णु इन्द्र के उपयुक्त सखा बताए गए हैं[5]। विष्णु युद्ध-क्षेत्र में इन्द्र के सहायक हैं। विष्णु के परम-पद की चर्चा भी ऋग्वेद में उपलब्ध है[6]। ऋग्वेद में आगे चलकर विष्णु सुन्दर गौ वाली पृथ्वी के धारक भी बताए गए हैं[7]। ऋग्वेद में ही यह वर्णन है कि विष्णु ने काल के 94 अंशों को

1- वैदिक संस्कृति और दर्शन -अवतारवाद पृ० 114 ।

2- ऋग्वेद 1/22/16 ।

3- ऋग्वेद 1/22/18 ।

4- रामायण में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा वाले वृत्तान्त में इस मंत्र का प्रभाव देखा जा सकता है।

5- ऋग्वेद 1/28/19 ।

6- ऋग्वेद 1/22/20-21 ।

7- ऋग्वेद 7/99/1 ।

यज्ञ के समान परिचालित कर रहा है[1]। ये नित्य तरुण तथा कुमार हैं। आह्वान किये जाने पर ये युद्ध में भी जाते हैं। ये युवा शरीर हैं तथा उनका पराक्रम सिंह के समान बताया गया है[2]। ऋग्वेद में देवताओं को विष्णु का अंश भी बताया गया है[3]। ये मनुष्यों के हितैषी एवं सेव्य हैं तथा मनोरथदाता और हितकारी हैं[4]। पृथ्वी को मनुष्य निवास के लिये देने की इच्छा से सुरम्या विष्णु ने पृथ्वी का पदक्रमण किया और वितृप्त निवास स्थान बनाया[5]। तैत्तरीय संहिता में वर्णन है कि विष्णु ने तीन पद से वामन रूप धारण कर तीनों लोकों को जीत लिया[6]। इस प्रकार ऋग्वेद के विष्णु उत्तरोत्तर गुण सम्पन्न होते गए हैं। कालान्तर में विष्णु के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर कवियों ने एवं पुराणकारों ने विष्णु के विभिन्न रूपों में अवतार लेने का वर्णन किया है। इस प्रकार अवतारवाद की कल्पना का मूल निश्चित रूप से ऋग्वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है। वामन एवं मूर्तिहावतार के आख्यानों का मूल रूप तो ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसी प्रकार अथर्ववेद के ये मंत्र वराह अवतार की परिकल्पना के मूल में कहे जा सकते हैं, जिनमें कहा गया है कि ," शत्रु को भी धारण करने वाली, पाप-पुण्य से युक्त जल को सहने वाली और वराह जिसको खोज रहे थे वह पृथ्वी वराह को प्राप्त हुई[7]।

अवतारवाद के प्रयोजन प्रायः निम्नवत् बताये गये हैं:-

(1) भूभार हरण- वैदिक साहित्य में विष्णु से जुड़ा हुआ रक्षा का भाव, पृथ्वी को मनुष्य के निवास योग्य बनाने का भाव तथा अद्भुत पराक्रमशीलता का भाव पुराणों के

1- ऋग्वेद 1/155/6 ।

2- ऋग्वेद 5/1/154 ।

3- ऋग्वेद 7/40/5 ।

4- ऋग्वेद 7/100/1 व 2 ।

5- ऋग्वेद 7/100/4 ।

6- तैत्तरीय संहिता - 11/1/3/ 1 ।

7- अथर्व0 - 12/1/48 ।

विष्णु के अवतार के मूल में देखा जा सकता है । पुराणों में विष्णु के अवतार लेने के प्रयोजनों में भूभार हरण तथा पृथ्वी का रक्षण मूल प्रयोजन कहा गया है । पुराण साहित्य एवं ललित साहित्य में विष्णु तथा अन्य देवों और कालान्तर में ब्रह्म के भी अवतार ग्रहण करने का मुख्य कारण भूभार हरण ही माना गया है । नृसिंह, परशुराम, राम तथा कृष्ण के अवतार इसी प्रयोजन की पूर्ति करते हैं ।

(2) धर्म-संस्थापन- विश्व को एक सूत्र में धारण करने वाला तथा नियमन करने वाला तत्व धर्म है । इस धर्म का नियमन सर्व शक्तिमान परमात्मा की एक विशिष्ट शक्ति का विलास है । श्रीमद्भागवद् गीता में भगवान के अवतार का प्रमुख प्रयोजन धर्म-संस्थापन ही बताया गया है[1] ।

(3) मनुष्य के परम कल्याणकारी मोक्ष हेतु- अव्यय, अप्रमेय, गुणहीन तथा गुणात्मक भगवान की अभिव्यक्ति अथवा अवतार मनुष्यों के परम कल्याणकारी मोक्ष के साधन के लिए है । यदि ईश्वर का प्राकट्य इस क्षितितल पर नहीं होता तो उनके ओज गुण सम्पन्न का ज्ञान ही अल्पज्ञ जीव को किस प्रकार होता । भगवान के भौतिक सौन्दर्य, पारिमिक माधुर्य तथा उनके अप्रमेय आकर्षण का परिचय जीव को तभी मिलता है जब उनकी अभिव्यक्ति अवतार के रूप में इस धरा-धाम पर होती है । भगवान के प्राकट्य का उच्चतर तात्पर्य अलौकिक रागात्मिका भक्ति का वितरण एवं अपूर्व ज्ञान का उदय है । इस प्रकार जीव को मोक्ष प्रदान कराना ही भगवान के अवतरण का मुख्य प्रयोजन है । कठिन व्याधि के घर पर कपिल रूप में भगवान का अवतरण उक्त प्रयोजन को सिद्ध करता है क्योंकि क्रुद्ध, क्षुब्ध, मुक्त भगवान ही बद्ध जीव के बन्धन को काटने का मार्ग बता कर उसे मुक्त कर सकते हैं ।

उपर्युक्त तीनों प्रयोजनों में से प्रथम के बीज तो वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं परन्तु अन्तिम दोनों का विकास पुराण साहित्य में हुआ है । उपनिषदों में अवतारवाद का रूप अस्पष्ट सा विकसित है । केनोपनिषद् के एक स्थान पर सर्वशक्तिमान् के यक्ष रूप में प्रकट होने का प्रसंग आया है[2] । जिस प्रकार प्रारम्भिक अवतारवाद में विष्णु देवताओं के पक्षधर हैं उसी प्रकार केनोपनिषद् का ब्रह्म भी देवकीय ब्रह्म है । इससे पूर्व बृहदारण्यक में भी यह

1- यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।
श्रीमद्भगवद्गीता 4/6 से 9 ।

2- केनोपनिषद 3/2 ।

का उल्लेख हुआ है।[1] यह देवताओं का अभिमान नष्ट करने के लिए प्रादुर्भूत होता है। इस प्रकार यक्ष-कथा में अवतारवादी प्रयोजन का अस्तित्व भी विद्यमान है।

पुराण काल के प्रारम्भ में श्रीराम तथा कृष्ण विष्णु के प्रारम्भिक अवतारों में माने गए हैं। मनु ने राजाओं के शरीर में विभिन्न देवों का अंशावतार माना है। किन्तु अवतारवाद में श्रीराम एवं कृष्ण तत्कालीन ब्राह्मण भक्तों के उपास्य रूप में प्रतिष्ठित हुए। बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म अकेले होने के कारण विभूतियुक्त कर्म करने में समर्थ नहीं था। इस कार्य के लिये उसने इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, मेघ, यम, मृत्यु और ईशानादि को उत्पन्न किया।[2] इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामूहिक अवतार, अंशावतार, विभूति अवतार आदि का कोई प्राचीन रूप भी था। उपनिषदों से एक ऐसे भावात्मक ब्रह्म की रूपरेखा का विकास हुआ है जिसने अवतारी उपास्य भगवान को साहित्य और कला में भी व्याप्त होने में सहायता की है। अतीनिक साहित्य में ईश्वर एवं ब्रह्म विविध रूपों में अवतरित हुआ दिखाई देता है।

अवतारवाद के विविध रूप -

अवतारवाद का विकास विविध रूपों में हुआ है। डा० कपिलदेव पाण्डेय ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद" में अवतारों के नौ मुख्य रूपों का उल्लेख किया है तथा उनका विस्तार से वर्णन भी किया है। अवतारवाद के ये रूप हैं - अंश, कला, विभूति, आवेश, पूर्ण, व्यूह, लीला, युगल तथा रस। इनमें अंशावतार अन्य रूपों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक तथा युक्तिसंगत है क्योंकि परब्रह्म का असीम रूप सीमित रूप में ग्रहण होने पर पूर्ण की अपेक्षा अंश ही प्रतीत होता है। ईश्वर व्यक्तिमात्र के रूप में सीमित अर्थात् अंश हो सकता है असीम नहीं क्योंकि ब्रह्म की कल्पना अनन्त, असीम, निर्गुण तथा अविनाशी के रूप में की गई है।

कलावतार- को भी अंशावतार ही समझना चाहिये क्योंकि कला शब्द अंश के ही विशिष्ट भावात्मक बोध का सूचक है।

विभूति- साकार रूप ईश्वर की विशिष्टाभिव्यक्ति है। गीता के दसवें अध्याय में विभूतिवाद का वर्णन किया गया है।[3] शंकराचार्य ने विभूति को योगैश्वर्यजनित सर्वज्ञतादि

1- बृहदारण्यक- 5/4/1 । 2- बृहदारण्यक- 3/1/4-11 ।

3- हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ।। गीता 10/19 ।

सामर्थ्य[1] तथा रामानुज ने ऐश्वर्य का पर्याय[2] माना है। वैष्णव अवतारवाद के विकास में विभूतिवाद का विशिष्ट स्थान है।

आवेशावतार - पाँचरात्र साहित्य में अवतार के मुख्य और गौण अथवा सात्वत और आवेश स्वरूप ग्रहण हुए हैं। इसके अनुसार व्यक्ति विशेष के शरीर में उपयुक्त समय पर ईश्वर का सहावेश होता है जैसे परशुराम में हुआ था। श्री सम्प्रदाय के अनुसार मुख्य विभव सात्वत अवतार हैं और गौण विभव आवेशावतार हैं।

पूर्णावतार- ईश्वर के पूर्णावतार की कल्पना सर्व प्रथम पुराण साहित्य में की गई है। प्रारम्भ में राम और कृष्ण को भी अंशावतार ही माना गया था परन्तु बाद में वैष्णव सम्प्रदाय ने इन्हें पूर्ण परब्रह्म का अवतार माना। भागवत पुराण में कृष्ण को तथा अध्यात्म रामायण और आनन्द रामायण में राम को ब्रह्म के पूर्णावतार रूप में स्वीकार किया गया है। पूर्णावतार की कल्पना पर पाँचरात्र साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है, जहाँ पूर्णावतार का वर्णन दीप से पुरुषाख्य दीप के समान कह कर किया गया है[3]। मध्वाचार्य के मतानुसार परमात्मा का मूल रूप पूर्ण है और उसके अन्य सभी रूप भी पूर्ण हैं[4]। निम्बार्क सम्प्रदाय तो इन्हें स्वयं रूप या स्वरूपावतार कहता है। इसके आधार पर तथा बाहुल्य, व्यूहवादी एवं लीलापुरुषोत्तम तथा मर्यादा पुरुषोत्तम आदि उपादानों के आधार पर श्रीराम एवं श्रीकृष्ण को ही पूर्णावतार की मान्यता प्राप्त हुई है। राम भक्ति तथा कृष्ण भक्ति शाखाओं के सूर, तुलसी आदि सभी कवियों ने राम तथा कृष्ण को अपने उपास्य इष्ट के रूप में परब्रह्म का पूर्णावतार माना है।

व्यूह रूप अवतार- वेदों से महाभारत तक व्यूहवाद का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी उपलब्ध नहीं है। डा० कपिलदेव पाण्डेय के अनुसार वैदिक साहित्य में ब्रह्म के चार पादों की एक अविच्छिन्न परम्परा चली आ रही है। सम्भवतः इसी के आधार पर कालान्तर में विष्णु के अवतारों के चतुर्व्यूह की कल्पना की गई जिसका विशद रूप वासुदेव व्यूह तथा राम व्यूह में

1- गीता 10/7/शां०भा० । 2- गीता 10/7/रा०भा० ।

3- " तत्र प्राकृताकृता अवतारभावपिण्डा दीपादुत्पन्नदीपवत्स्थिता ।"

जयाख्यसंहिता कृत्य की 4/पटल 3 तथा तत्त्वत्रय पृ० 109 ।

4- तथाप्यपि स्थानि पूर्णानि । श्रीमध्वाचार्य सिद्धान्तसार संग्रह , पृ० 36 ।

दृष्टिगत होता है । सूरदास ने राम व्यूह का सम्बन्ध वासुदेव व्यूह से स्थापित किया है, जिसमें वासुदेव श्रीराम, संकर्षण लक्ष्मण, प्रद्युम्न भरत तथा अनिरुद्ध शत्रुघ्न हैं[1] ।

लीलात्म अवतार- लीलात्म अवतार की कल्पना अवतारवाद पर वेदान्त के प्रभाव की संसूचक है । उपनिषद् ब्रह्म को एक ओर तो निर्गुण, निष्क्रिय एवं निराकार बताते हैं[2] और दूसरी ओर उसे सगुण, साकार, सक्रिय एवं कर्ता भी बताते हैं[3] । ब्रह्म की इस विलक्षण महिमा को देखते हुए देव-शत्रुओं अथवा दुष्टों के विनाश एवं वैदिक धर्म तथा साधु पुरुषों की रक्षा के प्रयोजन ब्रह्म अथवा विष्णु के अवतार लेने के लिए अपर्याप्त प्रतीत हुए । ब्रह्म के व्यक्त स्वरूप से सम्बद्ध किसी प्रकार का प्रयोजन उसकी निरपेक्षता में दोष स्वरूप समझा गया । फिर तो ब्रह्म अथवा विष्णु के अवतार लेने का प्रयोजन उनकी क्रीड़ा अथवा लीला ही हो सकती है । विष्णु पुराण में कहा गया है कि काल-पुरुष विष्णु अपने व्यक्त और अव्यक्त रूप में बालक के समान क्रीड़ा करते हैं[4] । जैसे कोई नट अथवा नर्तक आनन्द के लिए अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करता है अथवा बालक अपनी इच्छानुसार विविध क्रीड़ाएँ करता है वैसे ही ब्रह्म भी नटवत् या बालवत् लीलाएँ करता है । शंकराचार्य का यही मत है । शारीरिक भाष्य में " लोक लीलावत्तु कैवल्यम् ।" की व्याख्या में उन्होंने यही कहा है[5] । भागवत पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण लीला से अवतार धारण करते हैं । लीला रूप का व्यापक प्रचार पुराण साहित्य से मध्यकालीन भक्ति साहित्य तक निरन्तर चलता रहा ।

- -

1- तीनों व्यूह लौं ते प्रगटे पुरुषोत्तम श्री राम ।
संकरषन प्रद्युम्न लछमन भरत महासुखधाम ।।
अनुरुद्ध अनुरुद्ध कहियतु है चतुर्व्यूह निज रूप ।
रामचन्द्र जब प्रगटे गृह में हरषे कोसल भूप ।। सूरसारावली पृ0 14/158-59 ।

2- बृ0उ0 3/8/8 ।निर्गुण। ।

3- छा0 उ0 3/14/1-4 । सगुण। ।

4- व्यक्ता विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टा तस्य निशामय ।। विष्णु पुराण 1/2/18 ।

5- शारीरिक भाष्य: ब्र0सू0 2/1/33 ।

युगल रूप अवतार- भक्त कवियों के पश्चात् लीला रूप क्रमः क्रमः संकुचित होता गया तथा रीतिकाल के रसिक कवियों ने इसे युगल रूप तक ही सीमित कर दिया । विष्णु तथा लक्ष्मी के युगल का अवतार राम-सीता तथा कृष्ण-रुक्मिणी के रूप में माना गया । । विष्णु पुराण के अनुसार सृष्टि में जितने भी युगल हैं उनमें पुरुष विष्णु तथा नारी लक्ष्मी हैं । देवाधिदेव विष्णु जब जब अवतार लेते हैं लक्ष्मी उनके साथ रहती हैं । विष्णु और लक्ष्मी ही द्रष्टा और सृष्टि तथा पुरुष और प्रकृति के रूप में व्याप्त हैं । विष्णु और लक्ष्मी का ही युग-युग में युगल रूप में अवतार होता है, जैसे त्रेता में श्रीराम जानकी तथा द्वापर में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के रूप में । ब्रह्म कीयुगल रूप में पूजा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है । द्रष्टा ने युग्मों के माध्यम से सृष्टि विस्तार किया है । जीवों के युग्म परमात्मा की सृजनात्मिका-शक्ति के प्रतीक हैं । अवतारवाद का युगल रूप आनन्दमय है ।

रसरूप अवतार- रस रूप लीला रूप से ही विकसित हुआ है । रसिक सम्प्रदायों का विकास भी मूलतः वैष्णव सम्प्रदाय से हुआ है । इस सम्प्रदाय में सीता-राम तथा राधा-कृष्ण के रसात्मक रूप को ही ग्रहण किया गया है । " रसो वै सः" कह कर ब्रह्म को रस रूप स्वीकार किया गया है ।

कालान्तर में रस का स्वरूप बदलता गया । उपनिषदों में एवं पुराणों में जो ब्रह्मानन्द एवं रसानन्द था मध्यकाल के रसिक सम्प्रदायों में वह स्त्री पुरुष के विषयानन्द तक पहुँच गया । मध्यकाल के रसिक सम्प्रदायों ने आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्त्री-पुरुषवत् माना है । इस धारणा का सर्वाधिक प्रसार मध्यकालीन साहित्य में हुआ । गीत-गोविन्द तथा कृष्णकर्णामृत में इसी रसात्मक रूप का ही रस पूर्ण वर्णन है ।

अवतारवाद की दो परम्परायें

पुराण साहित्य में अवतारवाद की दो परम्परायें प्रचलित हैं- दशावतार तथा चौबीस अवतार । दशावतार परम्परा का प्रारम्भ महाभारत में देखा जा सकता है और चौबीस अवतार परम्परा का भागवत पुराण में । महाभारत के नारायणीयोपाख्यान में वराह, नृसिंह,

---

1- देवतिर्यङ्मनुष्यादौ तुल्यमाहुर्भगवान्हरिः ।
स्त्री नाम्नी शीरच विषेया नैवान्यो विद्यते परः ।।

विष्णु पुराण 1/8/35 ।

2- विष्णु पुराण 1/9/41 ।

वामन, परशुराम, राम तथा कृष्ण इन छः अवतारों की सूची प्राप्त है[1]। महाभारत में ही दूसरी सूची हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि को सम्मिलित कर अवतारों की संख्या दस हो जाती है[2]। महाभारत की इस दशावतार परम्परा का अनुसरण ही सम्भवतः परवर्ती अग्नि-पुराण एवं वराह पुराण आदि में किया गया है। भागवत में भी कुछ स्थलों पर नौ अथवा दस अवतारों का उल्लेख किया गया है,[3] परन्तु कुछ स्थलों पर चौबीस अथवा पच्चीस अवतारों का वर्णन उपलब्ध होता है[4]।

पुराणों में तथा परवर्ती साहित्य में दशावतारों का एक ही क्रम नहीं है। इसमें न्यूनाधिक अन्तर हुआ है। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रची गई "धर्मपरीक्षा" नामक पुस्तक में दशावतारों की गणना में मीन, कूर्म, पृथु, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि को सम्मिलित किया गया है[5]। क्षेमेन्द्र ने अपने दशावतार चरित काव्य में मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि (कल्कि) की गणना दशावतार के अन्तर्गत की है[6]।

विद्यापति ने भी दशावतारों का वर्णन किया है। तुलसी ने रामचरितमानस में राम से पूर्व के छः अवतारों का वर्णन करते हुये कहा है, " हे नाथ! जब जब देवताओं को कष्ट मिला है तब तब अनेक शरीर धारण कर तुमने ही उसे दूर किया है।" इस प्रकार दशावतार की परम्परा अति प्राचीन है तथा पुराण एवं पुराणेतर साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय रही है। नीचे दशावतारों का वर्णन पृथक पृथक किया जा रहा है।

1- <u>मत्स्यावतार</u>- यह विष्णु का प्रथम अवतार माना जाता है। इसका प्राचीनतम रूप जलप्लावन के प्रसंग में ब्राह्मण साहित्य में मिलता है। जलप्लावन की कथा अवेस्ता, अक्कादियन शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत में उपलब्ध है। शतपथ ब्राह्मण के आधार पर कथा-सार निम्नवत् है -

---

1- महाभारत 12/339/76-98 । 2- महाभारत 12/229/103-104 ।

3- भागवत पुराण 10/2/40 तथा 10/40/16-22 ।

4- भागवत पुराण 10/2/40 ।

5- मीनः कूर्मो पृथुः प्रोक्तो नारसिंहो अथ वामनः ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किः दशस्मृताः ।। धर्म परीक्षा ।

6- मत्स्यः कूर्मो वराहः पुरुष हरिरुपाग्रिनो वामनन्नः ।
जामदग्न्यः कौशलेश स च कृष्णमुनिः कल्किनामा च विष्णुः ।। दशावतार चरित ।

एक बार आचमन करते समय मनु के हाथ में एक मछली आ गई । उसने मनु से कहा कि " तुम मेरी रक्षा करो, पालन करो तब मैं जल प्रलय के समय तुम्हारी रक्षा करूँगी ।" मनु ने उसे एक घड़े में रखा । धीरे धीरे वह बढ़ गई तब मनु ने उसे तालाब में डाल दिया । फिर बढ़ने पर नदी में और तत्पश्चात् समुद्र में डाल दिया । जल-प्रलय के समय मनु ने सृष्टि के विविध बीजों को एक नाव में रखा तथा जल प्लावन की भीषण चोटों से बचने के लिये नाव को मत्स्य के एक सींग से बाँध दिया । जल-प्रलय के समाप्त होने पर मनु ने पुनः सृष्टि-विस्तार किया । शतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत में[1] मत्स्य को प्रजापति का अवतार बताया गया है । परन्तु मत्स्य पुराण, अग्नि पुराण, स्कन्ध पुराण तथा पद्म पुराण में मत्स्य को विष्णु का अवतार माना गया है । हिन्दी काव्यों में भी मत्स्य को विष्णु का अवतार माना गया है ।

<u>कूर्मावतार-</u> मत्स्यावतार के समान ही वैदिक साहित्य में कूर्म का सम्बन्ध प्रजापति से है । विष्णु पुराण में भी मत्स्य, कूर्म तथा वराह को प्रजापति का रूप माना है[2] । महाभारत के अनुसार समुद्र मंथन के समय देवताओं ने कूर्म से मंदराचल धारण करने की प्रार्थना की तथा कूर्म ने यह प्रार्थना स्वीकार की[3] । महाभारत में यह स्पष्ट नहीं है कि कूर्म प्रजापति के अवतार थे अथवा विष्णु के । भागवत पुराण ने कूर्म को विष्णु का अवतार माना[4] । अग्नि पुराण तथा पद्म-पुराण में भी कूर्म विष्णु का अवतार हैं ।

पुराणों के आधार पर ही परवर्ती हिन्दी साहित्य में कूर्म को विष्णु का अवतार माना गया । सूरदास के अनुसार कूर्मावतार का सम्बन्ध समुद्र-मन्थन से है तथा उसका प्रयोजन देवहित है[5] । रामभक्ति शाखा के कवियों में तुलसीदास[6], कान्हर दास तथा केशवदास आदि ने राम के मन्दराचल धारण करने वाले कूर्म रूप का वर्णन किया है । इस प्रकार भक्त कवियों ने अपने आराध्य के पूर्वावतार रूप में इसे स्वीकार किया है ।

1- महाभारत 3/187/52 तथा मत्स्य पुराण 2/3-16 । 2- विष्णु पुराण 1/4/7/8 ।

3- महाभारत 1/18/11-12 ।

4- भागवत पुराण 8/5/7-10 ।

5- सूरसागर पृ0 173/पद 435 ।

6- कमठ अति विकट तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर मंदु सुर मुरारी ।

विनय-पत्रिका/पद 52 ।

<u>वराहावतार</u>- पुराणों में पृथ्वी को जल से निकालना ही वराहावतार का प्रमुख प्रयोजन है। इस कथा का मूल पृथ्वी-सूक्त के उस मंत्र से देखा जा सकता है जिसमें कहा गया है कि जल को भी धारण करने वाली, पुष्प और पाप करने वाले के जल को सहने वाली, बड़े-बड़े पदार्थों को धारण करने वाली तथा वराह जिसको ढूंढ रहे थे वह पृथ्वी वराह को प्राप्त हुई[1]।

वराहावतार सम्बन्धी कथा सर्व प्रथम तैत्तरीय ब्राह्मण में मिलती है, जो इस प्रकार है - " पूर्व काल में इस विश्व में जल ही जल था। उस जल में प्रजापति सृष्टि-विस्तार के संकल्प सहित तपस्या करते थे। उन्होंने जल में बड़ा एक कमल-पत्र देखा और विचार किया कि इसके नीचे कुछ होगा अवश्य। उन्होंने वराह का रूप धारण कर कमल-पत्र के नीचे जल में प्रवेश किया। इसके नीचे उन्होंने पृथ्वी को पाया और उसके एक खण्ड को ये ऊपर ले आए। उसे उन्होंने ऊपर फैलाया तब उसका नाम पृथ्वी फैली हुई[2] रखा।

महाभारत के वन पर्व में विष्णु के वराह अवतार की कथा उपलब्ध है, परन्तु यह तैत्तरीय संहिता की उपर्युक्त कथा से भिन्न है। वाल्मीकि रामायण में वराह का उल्लेख मात्र ही है कथा नहीं है। विष्णु-पुराण में वराह को प्रजापति का अवतार माना गया है तथा वराह के विग्रहत्व का वर्णन है। भागवत की वराह कथा में हिरण्याक्ष-वध का भी उल्लेख है। अध्यात्म रामायण में वराह को राम का ही पूर्वावतार माना है। मध्यकालीन हिन्दी काव्य में वराह का पौराणिक रूप एवं प्रयोजन ही स्वीकार किया गया है। सूरसागर में कहा गया है कि ब्रह्मा ने हरि का ध्यान किया तब हरि वराह का शरीर धर पृथ्वी को जल से ऊपर ले आए[3]। हिन्दी साहित्य के तुलसी प्रमुख अन्य कवियों ने भी वराह को विष्णु का अवतार माना है।

1- अथर्व सं० 12/1/48 ।

2- तैत्तरीय सं० 7/1/51 ।

3- ब्रह्मा हरिपद ध्यान लगायो, तब हरि बहु वराह धरि आयो।
हुये वराह पृथ्वी ज्यों स्थापी, सूरदास त्यों ही कुछ गायो ।।
। सूरसागर ।

नृसिंहावतार- ऋग्वेद के एक मंत्र में विष्णु के पराक्रम की तुलना सिंह से की गई है[1] परन्तु नृसिंहावतार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। नृसिंह तापनीयोपनिषद् में उक्त मंत्र को उद्धृत किया गया है[2]। नृसिंह का अवतार रूप में वर्णन सर्व प्रथम विष्णु पुराण में उपलब्ध होता है। प्रह्लाद की रक्षा के लिए विष्णु हिरण्यकशिपु का वध करते हैं। यही कथा भागवत पुराण में भी है। अन्य पुराणों में भी यही प्रयोजन तथा कथन यही कथा है। नृसिंह-पूर्वतापनीयोपनिषद् के अनुसार विष्णु का क्षीरसागर में शयन करने वाला विग्रह नृसिंह रूप है[3]।

हिन्दी साहित्य में नृसिंह के पौराणिक अवतार स्वरूप को स्वीकार किया गया है। चन्दबरदायी ने पृथ्वीराज रासो में, सूर ने सूरसागर में[4] तथा बारहट नरहरिदास ने अवतार-चरित्र लीला में[5] नृसिंहावतार का वर्णन किया है। तुलसीदास ने भी विनय-पत्रिका में इस ओर संकेत किया है[6]। केशव तथा कान्हड़ के अनुसार भी राम ने नृसिंह रूप धारण कर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की तथा उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण की। मध्यकाल में नृसिंह भक्तों की रक्षा करने वाले उपास्य इष्टदेव हैं।

वामनावतार- विष्णु का त्रिविक्रम नाम उनके तीन पदाक्रम से सम्बद्ध प्रतीत होता है। ऋग्वेद के अनुसार विष्णु जगत् के रक्षक हैं। वे समस्त धर्मों को धारण करने वाले तथा तीन पग से विश्व की परिक्रमा करने वाले हैं[7]। विष्णु के तीन पादक्रमवाली अनेक ऋचायें ऋग्वेद में उपलब्ध हैं। यजु एवं अथर्व संहिताओं में भी इस सम्बन्ध की ऋचायें उपलब्ध हैं। विष्णु के तीन पादक्रम से सम्बन्धित ऋचाओं का भाव स्पष्ट करते हुए आचार्य सायण ने इन्हें विष्णु के वामनावतार के तीन पग बताया[8]। इस प्रकार वामनावतार का मूल स्रोत उक्त ऋचाओं में स्पष्टतः देखा जा सकता है। तैत्तरीय संहिता,[9] ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में भी यह कथा कुछ अन्तर से मिलती है।

- -

1- प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। ऋग्वेद 1/154/2।

2- नृसिंह पू० ता० उ० 2/4। 3- नृ०पू० ता०उ० 1/5।

4- सूरसागर पृ० 162 पद 421। 5- छ०ले० पृ० 62। अवतार चरित्र लीला।।

6- विनयपत्रिका पद 52। 7- ऋग्वेद 1/22/18।

8- देखिए ओरियेंटल संस्कृत टेक्स्ट। ऐ० म्योर। भी० 4 पृ० 65।

9- तै० सं० 11/1/3/1।

महाभारत में वामन का सम्बन्ध बलि से भी स्थापित किया गया है। वामन देवताओं का कार्य करने तथा बलि को पाताल भेजने के लिए अवतीर्ण होते हैं। विष्णु पुराण में वामन को विष्णु का अवतार माना गया है। पद्म पुराण तथा भागवत पुराण में वामनावतार की कथा उपलब्ध है।

मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने बलि-वामन कथा का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है। सूर-सागर में भी यह कथा उपलब्ध है[2]।

" अमृत मंथन कर हरि ने अमृत देवताओं को पिला दिया तब असुर बहुत दुखी हुए। बलि ने 99 यज्ञ किए जिससे देवता भयभीत हो गए। अदिति की तपस्या तथा देवहित के लिए हरि ने वामन रूप धारण किया। उन्होंने बलि के यज्ञ में जाकर पगछुटी कराने के लिए तीन पग भूमि माँगी। दो पगों में तीनों लोक माप लेने के कारण तीसरे पग में बलि ने विष्णु को अपनी देह मापने के लिए कहा और पाताल का राज्य पाया।"

तुलसी ने वामनावतार का उल्लेख अपनी विभिन्न रचनाओं- रामचरित मानस[3] दोहावली[4] तथा विनयपत्रिका[5] में किया है। सभी कवियों ने भी वामन-चरित का वर्णन किया है।

परशुराम अवतार- परशुराम, राम, कृष्ण तथा बुद्ध पौराणिक रूप के अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्ति भी हैं। डा० कपिल देव पाण्डेय के अनुसार, " ऐतिहासिक रूपों में जिन अवतारपरक तत्वों का समावेश हुआ है उनका जनश्रुतियों या साहित्यगत अभिव्यक्तियों से अधिक सम्बन्ध रहा है[6]।"

परशुराम प्राचीन भार्गव वंश से सम्बन्धित हैं। ऋग्वेद 10.110 में रामजमदग्नि का उल्लेख मिलता है। श्री के०एम० मुंशी के अनुसार अथर्ववेद में परशुराम के अवतार का प्रमुख प्रयोजन भृगु तथा हैहयवंशी लोगों के संघर्ष से सम्बन्धित है[7]। इतिहासकारों ने परशुराम को वैदिक काल के व्यक्तियों में माना है[8]।

1- महाभारत 12/339/81/85 । 2- सूरसागर पृ० 176-77 पद 439-441 ।
3- रामचरित मानस लंकाकाण्ड 110 । 4- दोहावली/दोहा-394-96 ।
5- विनयपत्रिका पद 52 ।
6- "मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद" पृ० 432 ।
7- न्यू०ई० एन्टीक्वेरी वो० 6 पृ० 220 तथा दी अर्ली आर्यन्स इन गुजरात पृ० 59 ।
8- हिन्दूज्म एण्ड बुद्धिज्म वो० 2, पृ० 148 ।

। मि० इलियट ।

पुराणों में परशुराम को पूर्ण अवतार नहीं माना गया है। वाल्मीकि ने रामायण में राम विवाह के प्रसंग में परशुराम का वर्णन किया है। विष्णु अंश के कारण रूष्ट परशुराम बारात के लौटते समय मार्ग में मिलते हैं तथा वाद विवाद के पश्चात् अपना धनुष अपने वैष्णव तेज के सहित श्री राम को अर्पित कर स्वयं तप हेतु वन को जाते हैं[1]। महाभारत के वन पर्व में हैहयराज कार्तवीर्य का तो उल्लेख है परन्तु विष्णु के परशुराम के रूप में अवतार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। नारायणीयोपाख्यान में अवश्य कहा गया है कि विष्णु कहते हैं कि " मैं भृगुकुल में भूभुक्ल का उद्धार करने वाला परशुराम रूप से अवतरित होकर क्षेत्र तथा वाहनों की वृद्धि करने वाले क्षत्रियों का संहार करूँगा[2]। विष्णु पुराण में परशुराम को नारायण का अंशावतार[3] तथा भागवत में विष्णु का अंशावतार माना गया है[4]। भागवत के अनुसार परशुराम ने हैहयवंश का नाश किया तथा क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया।

पृथ्वीराज रासो में परशुरामावतार के उपर्युक्त प्रयोजनों का ही उल्लेख किया गया है[5]। सूरदास ने भागवत के आधार पर उक्त कथा का वर्णन किया है[6]। चारण नरहरिदास ने परशुराम को ब्रह्म का अवतार बताया है[7]। राम भक्त कवियों ने परशुराम को विष्णु का अंशावतार अथवा आवेशावतार ही माना है। तुलसी ने " मानस" में धनुष के प्रसंग में राम-लक्ष्मण के साथ इनका मनोरंजक संवाद प्रस्तुत किया है परन्तु इनके अवतार होने का उल्लेख नहीं किया है। "मानस" में भी विवाद के अन्त में परशुराम राम को विष्णु का अवतार स्वीकार करते हुए अपना वैष्णव धनुष उनको सौंप देते हैं तथा श्री राम की स्तुति कर वह स्वयं तपस्या हेतु वन को चले जाते हैं[8]। राम भक्ति शाखा के अन्य कवियों जैसे केशवदास आदि ने भी परशुराम का वर्णन क्रोध नायक के रूप में ही किया है।

<u>रामावतार</u>- भगवान राम के अवतार के विषय में इसी अध्याय में आगे चर्चा की जायेगी।

<u>कृष्णावतार</u>- वैदिक साहित्य में कृष्ण नाम के तीन व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से एक हैं आंगिरस कृष्ण जिनका उल्लेख ऋग्वेद के आठवें मण्डल[9] तथा कौषीतकी ब्राह्मण में हुआ है[10]

1- रा० वा० 1/76/1-24 । 2- महाभारत 12/339/84 ।

3- विष्णु पुराण 3/11/20 । 4- भागवत पुराण 9/15/15 तथा भा० 1/3/20 ।

5- पृथ्वी राज रासो, पृ० 205, दूसरा समय । 6- सूरसारावली, पृ० 11 ।

7- ब्रह्म गेह पर, ब्रह्म बरषी निज देह की छिन । अवतार चरित्र । छ०नि०। पृ० 83 ।

8- राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मिटै मोर संदेहू ।। रामचरितमानस, बालकाण्ड 284 ।

9- ऋग्वेद 8/85/86 और 87 । 10- कौषीतकी ब्राह्मण 30/9 ।

11- ऋग्वेद 1/130/8 तथा 10 2/20/7 ।

दूसरे कृष्ण कृष्णासुर हैं, जिनका सम्बन्ध किसी अनार्य संस्कृति से प्रतीत होता है। इनका उल्लेख ऋग्वेद के प्रथम एवं द्वितीय मण्डलों में इन्द्र से उनके शत्रु के रूप में किया गया है[1]। तीसरे कृष्ण का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद में मिलता है[2]। इन्हीं का विकास बाद में पुराणों में गीता-कृष्ण तथा गोकुल-कृष्ण के रूप में हुआ था।

महाभारत के नायक वासुदेव कृष्ण हैं, जिन्हें विष्णु का अवतार माना गया है। कृष्ण का यह अवतार महाभारत रचना-काल से लेकर आज तक धार्मिक तथा साहित्यिक जगत में अति लोकप्रिय रहा है। पाणिनि के समय से भी पूर्व ही वासुदेव कृष्ण इष्ट एवं उपास्य रूप में प्रचलित हो चुके थे। पतंजलि के भाष्यों के अनेक सूत्रों के आधार पर यह सिद्ध है कि उस समय श्री कृष्ण का व्यूह रूप अवतार प्रचलित हो चुका था तथा केशव और राम के मन्दिर भी थे[3]। ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज ने ई0 पूर्व चौथी शताब्दी में शौरसेन प्रदेश में कृष्ण की पूजा का उल्लेख किया[4]। विभिन्न शिलालेखों के आधार पर भी ईसा से कई शताब्दी पूर्व से ही श्रीकृष्ण की पूजा प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। उस समय महाभारत के नायक कृष्ण (वासुदेव) की उपासना प्रचलित थी राधाकृष्ण की नहीं।

मध्यकाल में कृष्ण-भक्ति के अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हुए। इनमें निम्बार्क, श्री वल्लभ, चैतन्य, राधा वल्लभी एवं रसी या निकुंज-केलि सम्प्रदाय मुख्य हैं। इन सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण को उपास्य रूप में ग्रहण किया गया है तथा उन्हें ब्रह्म का पूर्ण अवतार माना गया है। मध्यकालीन संस्कृत कवियों में जयदेव ने इनके रसरूप एवं लीलारूप को स्वीकार किया है।

सूरदास ने कृष्ण को परब्रह्म का अवतार माना है। वह अनादि, अनन्त, अनुपम, अजन्मा और अविनाशी ब्रह्म सूर के इष्ट एवं उपास्य हैं[5]। कृष्ण-भक्ति शाखा के अन्य प्रसिद्ध कवि नंददास, हरिव्यास, ध्रुवदास, कुम्भदास, माधोदास, परमानन्द दास आदि ने कृष्ण की लीलाओं का सरस वर्णन किया है। मीरा तथा रसखान ने अपने उपास्य प्रियतम परब्रह्म के रूप में कृष्ण-काव्य की रचना की है। जगन्नाथ दास रत्नाकर प्रभृतिकवियों ने श्रीकृष्ण के मधुर लीला रूप का वर्णन करते हुए साहित्य की श्रीवृद्धि की है। आज भी सम्पूर्ण भारत तथा उसके बाहर भी परब्रह्म का अवतार मानते हुए श्रीकृष्ण की उपासना, आराधना एवं अर्चना की जाती है।

1- ऋग्वेद 1/130/8 तथा 10 2/20/7 । 2- छा0 3/17/6 ।

3- इंडिया ऐज नोन टू पाणिनि, पृ0 360 ।

4- फ्रैगमेन्ट 1 1956 सं0। पृ0 7-8 ।

5- सूरसारावली पृ0 1/ पद । ।

बुद्धावतार- ब्रह्म का बुद्ध रूप में अवतार दशावतार एवं चौबीस अवतार दोनों ही परम्पराओं में माना गया है। इतिहासकारों के अनुसार बौद्ध धर्म के प्रवर्तक गौतमबुद्ध का जन्म ई०पू० पाँचवीं शताब्दी में हुआ था। गौतम बुद्ध के जीवनकाल में ही उनकी पूजा देवता के समान होने लगी थी[1]। वे दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान, प्रज्ञा आदि छः परिभाषाओं रूपी उत्कर्ष के सोपानों को पार कर सिद्ध बन चुके थे। उनके निर्वाण के पश्चात् तो उनके साथ अनेक लोकोत्तर बातें जोड़ दी गईं। कालान्तर में गौतम बुद्ध बोधिसत्व बन गए और उनके सम्बन्ध में जातक कथाएँ प्रचलित हुईं। महायान सम्प्रदाय ने विष्णु के वैकुण्ठ के समान ही उनका नित्य-निवास " तुषित स्वर्ग" में माना है[2]। बौद्ध धर्म पर पौराणिक प्रभाव के फलस्वरूप " ललित-विस्तार" तथा " धर्म-पुण्डरीक" में विष्णु के अनन्त अवतारों के समान बुद्धों की संख्या भी अनन्त हो गई है। बुद्ध वंश में इनके पूर्ववर्ती 24 बुद्धों का वर्णन है। उसमें गौतम बुद्ध पच्चीसवें तथा मैत्रेय-बुद्ध छब्बीसवें बुद्ध माने गए हैं[3]। जो बुद्ध पहिले अहंत मात्र थे, बाद में वैष्णव अवतारवाद का प्रभाव पड़ने के कारण वे ही लोकोत्तर परब्रह्म हो गए। वे स्वयंभू, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, अहंत या बुद्ध हैं। वे ही ब्रह्मा विष्णु, ईश्वर तथा सूर्य-चन्द्र के रूप हैं[4]। बौद्ध जातकों में बुद्ध को राम का पुनरावतार माना है[5]।

हिन्दू पुराणों में भागवत में बुद्ध का उल्लेख दशावतार तथा चौबीस अवतार के प्रसंग में किया गया है। भागवत के अनुसार मगध में देव-द्वेषी दैत्यों को मोहित करने के लिए कलियुग में बौद्धावतार अजन के पुत्र रूप में होगा[6]। अन्य पुराणों में भी इसी प्रकार की चर्चा की गई है।

मध्यकालीन साहित्यकारों ने भी बौद्धावतार का उपर्युक्त प्रयोजन ही स्वीकार किया है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार असुरों को यज्ञ-विहीन करने के लिए इनका अवतार हुआ[7]। सूर के अनुसार हरि ने बुद्ध रूप में कलियुग का प्रकाश करते हुए दया धर्म को मूल बताया तथा भक्तों के प्रति अनुकूल हरि ने पाखंडवाद को दूर किया[8]। तुलसी ने भी विनय-पत्रिका में दम्भ और पाखण्ड से व्याकुल संसार में बुद्ध द्वारा यज्ञादि कर्मकाण्डों का खण्डन कर उन्हें तिरस्कृत

1- दी वैदिक एज, वी० 1, पृ० 450। 2- दी स्पिरिट ऑफ बुद्धिज्म पृ० 104।
3- पालि साहित्य का इतिहास पृ० 585। 4- बुद्धिस्ट बाइबिल। गोडार्ड। पृ० 158।
5- रामकथा-उत्पत्ति और विकास-।कामिल बुल्के। पृ० 104 तथा पालिसाहित्य का इतिहास/ पृ०० 293।दशरथ जातक। ।
6- भागवत 1/2/24 तथा 2/7/37। 7- पृथ्वीराज रासो पृ० 252।दूसरा समय।
8- बुद्ध रूप कलि धर्म प्रकासयो दया तत्त को मूल।
दूर किये पाखण्डवाद हरि भगतन को अनुकूल ।। सूरसारावली पृ० ।। ।

किए जाने का वर्णन किया गया है।[1] इस पद में कुल्ट को ज्ञानवान, सद्गुणसम्पन्न, जन्म रहित और कृपालु बताया है।

<u>कल्कि अवतार-</u> कल्कि अवतार की कल्पना सर्व प्रथम महाभारत में की गई है और महाभारत से लेकर कल्कि पुराण तक इसकी कथा लगभग वही रही है। महाभारत के वन पर्व में कहा गया है कि कलियुग में समाज की अत्यन्त दुरावस्था होगी, पाप अत्यधिक बढ़ेगा। उस समय युगान्त काल में श्री हरि ब्राह्मण के घर में अति शक्तिशाली बालक के रूप में जन्म लेंगे। उनका नाम विष्णु-यशा कल्कि होगा। इस अवतार का प्रयोजन म्लेच्छों का नाश तथा कलियुग का अन्त बताया गया है[2]।

विष्णु पुराण के अनुसार सम्भल निवासी विष्णुयश नामक ब्राह्मण के पुत्र रूप में म्लेच्छों का नाश करने वाले कल्कि वासुदेव के अंशावतार हैं[3]। भागवत पुराण के तीनों प्रसंगों में कल्कि का एक ही रूप मिलता है। इसके अनुसार वे विष्णुयश के पुत्र होकर कलियुग के अन्त में दस्युदल के विनाशक, वैदिक-धर्म के संस्थापक तथा सत्ययुग के प्रवर्तक माने गए हैं[4]।

हिन्दी के कवि चन्दबरदायी, सूरदास आदि ने उपर्युक्त प्रयोजनों से कल्कि अवतार के कलियुग के अन्त में होने की चर्चा की है[5]। तुलसी ने भी विनयपत्रिका में प्रभु के कल्कि अवतार को नमन करते हुए कहा है कि कलियुग में जब सब मनुष्य अज्ञान में मग्न हो अति मलिन पाप कर्म करेंगे, तब हे राम! आप विष्णु-पुत्र कल्कि के रूप में सूर्य के समान उदित होकर विपत्ति भार को दूर करेंगे[6]। बारहट नरहरि दास ने भी उक्त प्रसंग में कल्कि अवतार की चर्चा की है।

उपर्युक्त दस अवतार दशावतार परम्परा में गिने जाते हैं। कहीं कहीं किसी ग्रन्थ में किंचित् भिन्नता भी दृष्टिगत होती है, यथा अमितगति ने वराह के स्थान पर पृथु को तथा कृष्ण के स्थान पर बलराम को अवतार माना है[7]। कहीं कहीं हंसावतार की गणना भी

- -

1- विनयपत्रिका/पद 52 । 2- महाभारत 3/190/93-94 तथा 96-97 ।
3- विष्णु पुराण 4/24/98 । एवं महाभारत 12/349/29-38 ।
4- भाग0 1/3/25 ; 2/7/38 ; 11/4/22 तथा 12/2/18-23 ।
5- सूरसागर- भाग 2, पृ0 1722, पद 4934 ।
6- काल कलि जनित मल मलिन-मन सबै नर-मोहि-निसि निपीड़ित भार ।
विष्णुयश-पुत्र कलकी दिवाकर उदित दासतुलसी हरण विपतिभार । विनयपत्रिका/52 ।
7- मीनः कूर्म पृथुः प्रोक्तो नारसिंहोऽथ वामनः ।
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्कि दशस्मृताः ।।
धर्म-परीक्षा । ले0 अमितगति।

दशावतार में की गई है । धर्म ठाकुर सम्प्रदाय के प्रवर्तक रमाई पंडित ने नवाँ अवतार बुद्ध के स्थान पर जगन्नाथ जी का माना है और कहा है कि नवम अवतार में हरिमूर्ति ने जगन्नाथ नाम धारण कर जाति के तौर पर निवास किया ।[1] इस प्रकार यद्यपि किञ्चित् परिवर्तन के साथ और पश्चात् दशावतार ही पौराणिक एवं परवर्ती साहित्य में दशावतार परम्परा में ग्रहण किए गए हैं ।

<u>चौबीसअवतार परम्परा</u>- इस परम्परा में विष्णु के चौबीस अवतार माने गए हैं । इन चौबीस अवतारों में अवश्य दशावतार तो सम्मिलित हैं ही, चौदह । और कहीं कहीं पन्द्रह। अन्य अवतारों की भी गणना की गई है । ये अवतार हैं- हंस, पृथु, हयग्रीव, मनु, कपिल, सनत्कुमार, दत्तात्रेय, व्यास, यज्ञ, नर-नारायण, धन्वन्तरि, यज्ञ-पुरुष, गजेन्द्र-हरि, ध्रुव-प्रिय, नारद तथा मोहिनी । सामान्यतः हिन्दी साहित्य में चौबीस अवतारों की अपेक्षा दशावतारों को ही प्रमुख माना गया है तथा उन्हीं का उल्लेख पुराण तथा पुराणेतर साहित्य में किया गया है । चौबीस अवतार परम्परा का प्रारम्भ भागवत पुराण से ही हुआ है तथा इसका प्रचार वहीं से अन्य ग्रन्थों में हुआ है । दशावतार का संक्षिप्त विवरण पूर्व ही प्रस्तुत किया जा चुका है । यहाँ पर शेष अवतारों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

<u>हंसावतार</u>- वैदिक साहित्य में "हंस" जीवात्मा तथा आदित्य के प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त हुआ है[2] । छान्दोग्योपनिषद् में हंस सत्यकाम ऋषि को ब्रह्म के तीसरे पाद का उपदेश करते हैं[3] । इसी प्रकार महाभारत में हंस का सम्बन्ध प्रजापति तथा इन्द्र से है[4] । भागवत पुराण में भगवान हरि ने हंस रूप धारण कर नारद को भागवत का उपदेश किया[5] । यहाँ हंस का सम्बन्ध विष्णु से है । उपनिषद् साहित्य में तथा उसके बहुत बाद में रचे गये हिन्दी संत-साहित्य में हंस को पुरुष, परमपद, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, अव्यक्त तथा परमात्मा आदि का अर्थ द्योतक माना गया है । कहीं पर हंस का अभिप्राय आत्मा

- -

1- धर्मपूजा-विधान पृ0 236 ।

2- ऋग्वेद सं0 10/8/17 ।जीवात्मा।/ऋग्वेद 10/8/18 ।आदित्य।

3- छान्दोग्य0 4/7/2-4 ।

4- महाभारत 12/296/3-4 तथा 1/63/21 ।

5- भागवत 2/7/19-20 ।

ने भी है । सूर के अनुसार श्री कृष्ण ने सनकादि ऋषियों के विषय और चित्त सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर हंस रूप धारण करके दिया[1] ।

12. पृथु अवतार- कहीं कहीं दशावतार में, परन्तु अधिकांशतः चौबीस अवतारों में महाराज पृथु की गणना की गई है । पृथु ऋग्वेद काल से ही ख्याति प्राप्त थे । ऋग्वेद संहिता में पृथु वैन्य के नाम से उनका उल्लेख हुआ है[2] । विष्णु पुराण, वायु पुराण, अग्नि पुराण तथा ब्रह्म पुराण में उनको अत्याचारी वेन की भुजा से उत्पन्न बताया है[3] । विष्णु-पुराण के अनुसार उन्होंने पृथ्वी से औषधियों का दोहन किया[4] । भागवत पुराण में उनके कृषि एवं वानिज सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख किया गया है[5] । भागवत में ही एक अन्य स्थल पर उन्हें विष्णु का अंशावतार माना गया है[6] । इस प्रकार वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में पृथु महाराज ने पृथ्वी को समतल एवं कृषि योग्य बनाया । उन्होंने भूमि का उत्खनन कराकर उसमें से अनेक धातुएँ व हव्य प्राप्त कर जन जीवन में कल्याण एवं समृद्धि के नवीन युग का प्रवर्तन किया ।

हिन्दी कवियों में सूर के अनुसार हरि ने पृथु के रूप में पृथ्वी पर राज्य किया तथा विष्णु की भक्ति को संसार में प्रचलित किया[7] । सूर तथा नरहरिदास ने पृथु का वर्णन भागवत के आधार पर ही किया है जहाँ उन्हें विष्णु की भुवनमालिनी कला का अवतार कहा गया है[8] । तुलसीदास ने भी पृथुराज की वन्दना की है[9] ।

13- हयग्रीव अवतार- बृहदारण्य में यज्ञ को अश्व रूप में कल्पना की गई है[9] । तद्भव उद्गम तथा देव-वहन कार्य के उल्लेख के कारण अनेक विद्वान बृहदारण्यक उपनिषद की कथा को ही हयग्रीव अवतार कथा का बीज बिन्दु मानते हैं । महाभारत के अनुसार हयग्रीव अवतार में

1- "ब्रह्मा हरिपद ध्यान लगाए, तब हरि हंस रूप धरि आए ।। सूरसागर, भाग-2, पृ0 1720 पद 493" ।

2- ऋग्वेद 10/148 । 3- (क) विष्णु-पुराण 1/13 (ख) वायु-पुराण 62-63 ।
(ग) अग्नि-पुराण अध्या0 18 (घ) ब्रह्म-पुराण/30 4 ।

4- विष्णु पुराण 1/13/87-88 ।

5- भागवत 1/3/14 ; 2/7/8 तथा 4/14/16 ।

6- भागवत 5/15/1-3 ।

7- सूरसागर भाग 1/144-45/पद 405 तथा सूरसागर भाग 1/पृ0 145 पद वही ।

8- भागवत 4/15/3 ।

9- पृ0उ0 1/1/2 ।

हरि ने मधु कैटभ से वेदों को छीनकर ब्रह्मा को दिया[1]। यहाँ हयग्रीव के विराट रूप का भी वर्णन है। भागवत के अनुसार भी मधुकैटभ को मारकर हयग्रीव ने वेदों का उद्धार किया[2]।

सूरदास के अनुसार जब ब्रह्मा ने यज्ञ में वेदों का उच्चारण किया तब परब्रह्म हयग्रीव के रूप में अवतीर्ण हुए[3]। जब असुर वेदों को लेकर जल में छिप गया तब हयग्रीव ने उसको मारकर वेदों को मुक्त किया[4]। तुलसी ने हयग्रीव अवतार का स्पष्ट वर्णन नहीं किया है परन्तु मधु-कैटभ-संहारक हरि का उल्लेख किया है[5]। विष्णु-पुराण में हयग्रीव को दशावतार के अन्तर्गत तथा शैव पुराण एवं भक्ति-साहित्य में इनकी गणना चौबीस अवतारों में की गई है।

14- मनु-अवतार- चौबीस अवतार परम्परा में मनु को विष्णु का अंशावतार माना गया है। ऋग्वेद में चार मनुओं का उल्लेख है- विवस्वान्, संवरण, आप्नय तथा वसु[6]। ये सूर्य के रथपिता थे। शतपथ ब्राह्मण में मत्स्य-कथा के प्रसंग में इनका उल्लेख है[7]। गीता के योग सम्बन्धी ज्ञान को श्रीकृष्ण से सूर्य ने, सूर्य से मनु ने तथा मनु से इक्ष्वाकु ने प्राप्त किया[8]। एक मनु मनुस्मृतिकार भी हुए हैं जो सम्भवतः इनसे भिन्न हैं।

महाभारत में मनुवंश अथवा मानववंश को चलाने वाले मनु विवस्वान्(सूर्य) के पुत्र थे[9]। भागवत पुराण में मनु को कलावतारों में माना गया है[10]। अन्य पुराणों में भी इन्हें चौबीस अवतारों में माना गया है। भागवत ने तो इन्हें उपास्य भगवान तथा लीलावतार माना है[11]।

हिन्दी कवियों में सूर ने मनु का चौबीस अवतारों में उल्लेख किया है[12]। तुलसी ने मनु का स्मरण श्रद्धापूर्वक किया है परन्तु विष्णु का अवतार नहीं माना है। उनके अनुसार जब स्वयंभु मनु दशरथ के रूप में उत्पन्न हुए तब उनकी तपस्या से प्रसन्न परब्रह्म उनके चारों पुत्रों के

1- महाभारत 12/347/19-71 । 2- भागवत 7/9/36-37 ।

3- सूरसारावली पृ0 3/पद 89 । 4- सूरसारावली पृ0 4/पद 90 ।

5- अति बल मधु कैटभ जेहि मारे । महावीर दिति सुत संहारे ।।

रामचरितमानस-लंकाकाण्ड/6 ।

6- ऋग्वेद 8/27; 2/13 ;9/106 तथा 1/106 । 7- शतपथ ब्रा0 1/8/1/1 ।

8- गीता 4/1 । 9- महाभारत 1/75/10-13 10- भागवत 1/3/27 ।

11- भागवत 2/7/20 ।

12- सूरसागर भाग 1/पृ0 126/पद 378 ।

रूप में पूर्ण अंगों सहित उत्पन्न हुए[1]।

15- कपिल अवतार- ये प्राचीन ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कपिल ऋषि का उल्लेख है[2]। महाभारत के वन पर्व में साठ हजार सगर पुत्रों को भस्म करने वाले कपिल का वर्णन है[3]। वनपर्व में ही उन्हें दीप्तमान महापुरुष, अग्नि को धारण करने वाले, कल्मष अथवा विकार रहित, कला के ज्ञाता, सांख्ययोग के प्रवर्तक तथा क्रोध स्वरूप अग्नि के आश्रय कपिल नामक अग्नि बताया गया है[4]। यह कपिल सांख्यवादी आग्नेय कपिल प्रतीत होते हैं जिन्होंने अनीश्वर-वादी सांख्य का प्रवर्तन किया। वाल्मीकि रामायण में सगर पुत्रों को भस्म करने वाले कपिल की चर्चा है[5]। गीता में विभूतियों का वर्णन करते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं कि "सिद्धों" में मैं कपिल हूँ[6]। विष्णु पुराण में कपिल पुरुषोत्तम के अंशावतार हैं[7]। भागवत में इन्हें सिद्धों का स्वामी, आसुरी का उपदेशक, सांख्यवेत्ता तथा कर्दम-पुत्र बताते हुए भगवान का अंश एवं कलावतार माना है[8]।

हिन्दी कवियों में सूर ने सांख्य उपदेशक कपिल को अवतार माना है[9]। नरहरिदास ने भी इनका वर्णन किया है। तुलसी ने "मानस" में देवहूति एवं कर्दम के पुत्र, सांख्यकार तथा तत्त्व-विचार में निपुण भगवान के रूप में इनका वर्णन किया है[10]। सिद्धों ने इन्हें कपिलानी शाखा के प्रवर्तक सांख्यवेत्ता के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार सांख्यदर्शन के आदि प्रवर्तक के रूप में भगवान कपिल अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण विष्णु के चौबीस अवतारों में गिने जाते हैं।

16- सनत्कुमार- सनत्कुमारों का उल्लेख वैदिक संहिताओं में उपलब्ध नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् में सनु, सनातन और सनन्दन का उल्लेख है[11]। छान्दोग्य के सातवें अध्याय में सनत्कुमार ने नारद को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया है[12]। महाभारत के शान्ति पर्व में ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों के रूप में सनु कुमारों का वर्णन है। इनके नाम सनु, सनत्सुजात, सनन्द, सनन्दन, सनक, कपिल तथा सनातन हैं। ये स्वयं उद्भूत ज्ञान के प्रतिपादक, निवृत्ति धर्म-पालक, योग सांख्य के आचार्य, मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति वाले तथा यज्ञों में पशुबलि के विरोधी हैं[13]। भागवत के अनुसार सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार ब्राह्मण कुमारों के रूप में भगवान ने अवतार ले कठिन ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया तथा ऋषियों का आत्मज्ञान को उपदेश दिया[14]।

1- रामचरितमानस, बालकाण्ड/141-152 । 2- श्वेता० 5/2 ।

3- महाभारत 3/107/52 । 4- महाभारत 3/221/20-21 ।

5- वाल्मीकि रामायण 1/40/2 तथा 25 । 6- गीता 10/26 ।

7- विष्णु पुराण 4/4/12-16 । 8- भागवत 1/3/10 ; 2/7/3 ; 3/21/32 तथा 3/24/30

9- सूरसागर/पृ० 132 तथा 133 । 10- रामचरितमानस, बालकाण्ड 141-142 ।

11- बृह० उ० 2/6/3 । 12- छा० 7/1/1 । 13- महाभारत 12/340/72-82 ।

14- भागवत 1/3/6 ; 2/5/7 ।

सूरदास ने इनका वर्णन भागवत के आधार पर ही किया है । उनके अनुसार ये बाल-ब्रह्मचारी, मोक्षमार्ग के अनुयायी तथा सदैव पाँच वर्ष के बालक के समान दिखाई देने वाले हैं[1] । अवतार चरित में भी इसी प्रकार का वर्णन है । तुलसी ने भी "देखत बालक बहु कालीना" कह कर[2] उपर्युक्त बात ही कही है । उनके अनुसार ये राम-भक्त, तत्ववेत्ता एवं अध्यात्मज्ञाति वाले हैं, परन्तु उन्होंने इनके अवतारी होने की ओर संकेत नहीं किया है ।

17- दत्तात्रेय- वैदिक साहित्य में दत्तात्रेय का उल्लेख उपलब्ध नहीं है । तथा पुराण भागवत पुराण में विष्णु के अंशावतार रूप में इनको स्वीकार किया गया है[3] । भागवत के अनुसार अत्रि-पत्नि अनुसूया की तपस्या तथा पातिव्रत्य से प्रसन्न हुए त्रिदेवों ने उनसे वर माँगने का आग्रह किया । अनुसूया ने उन्हीं को पुत्र रूप में माँग लिया । तब अत्रि की संतान दत्तात्रेय हुए जो विष्णु के अंशावतार माने गए । इन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद आदि को ब्रह्म ज्ञान का उपदेश दिया । भागवत ने इन्हें आत्मयोगी माना है[4] । पुराणों में इनका उल्लेख तपस्वी के रूप में हुआ है । परमहंसों से सम्बन्ध उपनिषदों में इनकी गणना परमहंसों में की गई है ।

महाराष्ट्र में दत्तात्रेय का विशेष महत्व एवं मान्यता है । वहाँ विविध सम्प्रदायों में इन्हें पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना जाता है । वहाँ ये उपास्य भगवान हैं । महानुभाव पंथ तथा नाथ संतों में इनकी विशेष मान्यता है ।

हिन्दी भक्त-कवियों ने इनके पौराणिक रूप को ही स्वीकार किया है । सूरदास ने इनका वर्णन भागवत के आधार पर किया है[5] । तुलसी ने चौबीस अवतारों का वर्णन किसी स्थल पर नहीं किया है । अतः दत्तात्रेय का भी उल्लेख नहीं किया है ।

18- व्यास- यह भारतीय वाङ्मय के प्रसिद्ध पुरुष हैं । प्राचीन साहित्य में व्यास नाम के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है, यथा कृष्ण द्वैपायन व्यास, बादरायण व्यास, पाराशर्य व्यास आदि । शंकराचार्य प्रभृति विद्वानों ने ब्रह्मसूत्र के रचयिता बादरायण को तथा व्यास को एक ही व्यक्ति माना है[6] । वेदों का विभाजन करने वाले तथा विशाल पुराण साहित्य की रचना करने वाले वेद व्यास ऐतिहासिक पुरुष हैं । महाकाव्यों तथा पुराणों में इन्हें सत्यवती और पराशर का पुत्र बताया गया है । विष्णु पुराण तथा भागवत में इन्हें विष्णु का अंशावतार माना गया है[7] । अतः सम्पूर्ण व्यास परम्परा के व्यास विष्णु के अवतार हैं । गीता में भगवान कृष्ण ने मुनियों में

1- सूरसागर/पृ0 129/पद 387 । 2- रामचरितमानस/उत्तरकाण्ड/31 से 35 तक ।
3- भागवत 1/3/11 ; 7/13/11; 2/7/4 ;9/16/17 ; 11/4/17 ।
4- भागवत पुराण 11/4/17 । 5- सूरसागर पृ0 130/पद 392 ।
6- हिन्दी आफ इण्डियन फिलासफी, भाग 2/पृ0 453 । ले0 डा0 एस0 राधाकृष्णन्।
7- विष्णु पुराण 3/3/5 ; 3/3/7 ।

व्यास को अपनी विभूतियों में माना है[1]। भागवत में इन्हें योगी तथा भगवान का कलावतार कहा गया है। पौराणिकों के 39 विषयों में भी वेदविद् कह कर इनकी गणना की गई है।

भागवत के आधार पर ही सूरदास ने अपने काव्य में इनका वर्णन किया है[2]। नरहरिदास के अनुसार श्री के निरूपणकर्ता एवं महाभारत के रचयिता वेदव्यास अविनाश के अंशावतार हैं[3]। तुलसी ने व्यास का वर्णन अवतार रूप में नहीं किया है, अपितु कविकुलगुरु कहकर उनकी वन्दना की है[4]।

19- ऋषभ अवतार- यह दिगम्बर जैन मुनियों के धर्म-प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका अवतार रूप पहिले जैन-साहित्य में ही प्रचलित हुआ बाद में उसको पुराणों में ग्रहण कर लिया गया। वेदों से लेकर महाभारत तक के साहित्य में इनकी चर्चा नहीं है। विष्णु के अन्य अवतार रूप में ऋषभ देव को सर्व प्रथम भागवत में स्वीकार किया गया है। भागवत के अनुसार इस अवतार में हरि ने परमहंसों का मार्ग प्रशस्त किया[5]। सूरदास ने ऋषभ का वर्णन चौबीस अवतारों की परम्परा में किया है। यह परब्रह्म के अवतार हैं[6]। नरहरिदास ने भी इन्हें परब्रह्म का अवतार, परमपावन, अविनाशी पुरुष कहा है। तुलसी ने इनकी चर्चा अपने ग्रन्थों में नहीं की है।

20- नर-नारायण- ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के रचयिता के रूप में नारायण नामक ऋषि का उल्लेख है[7]। महाभारत काल के आने तक इन्हें "पुरुष नारायण" से अभिहित किया जाने लगा। तत्पश्चात् यह विष्णु के अवतार समझे जाने लगे तथा उपास्य बन गए। महाभारत में अर्जुन को इन्द्र अथवा नर का अवतार भी माना गया है और कृष्ण तो विष्णु अथवा नारायण के अवतार हैं ही। नर-नारायण के विषय में एक धारणा यह भी है कि ये लोक-प्रचलित वैदिक परम्परा से भिन्न धर्म के ऋषि थे। भागवत पुराण में जिन नर-नारायण की गणना विष्णु के चौबीस अवतारों में की गई है वे "नारायणीयोपाख्यान" के नर-नारायण ही प्रतीत होते हैं। भागवत के अनुसार लीलाकार नारायण का जन्म धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से हुआ। ये संयमी एवं जितेन्द्रिय ऋषि थे तथा इन्होंने कठिन तपस्या की[8]।

परवर्ती साहित्य में नर-नारायण को भागवत के आधार पर विष्णु का कलावतार माना गया तथा धर्म एवं मूर्ति के पुत्र के रूप में ही स्वीकार किया। सूरदास ने सूरसागर में नारायण-कथा का विस्तृत वर्णन किया है[9] परन्तु नर का उल्लेख नहीं किया। तुलसी ने रामचरित के मुख्य अवतारों की

1- गीता 10/37 । 2- सूरसागर भाग 1/पद 230 ; सूरसारावली कं0 पंगे0। पृ0 11 ।
3- अवतार-चरित्र/पृ0 83-86 । 4- रामचरितमानस/बालकाण्ड/दो0 13 ।
5- भागवत- 1/3/13 ; 2/7/10 ; 8/13/20 । 6- जय जय जय श्री ऋषभ देव मुनि परब्रह्म अवतार 44 सूरसारावली/पृ0 4 ।
7- ऋग्वेद 10/90 ; यजु0 31 ; अथर्व सं0 10/2 ।
8- भागवत 1/3/9 ; 2/7/6 ; 11/4/16 ।
9- सूरसागर पृ0 1719/पद 1930 ।

नर-नारायण के सुधातुल्य से श्रद्धामय तुलना की है[1]। विष्णु के चौबीस अवतारों में नर-नारायण अपनी कठिन तपस्या के लिए प्रख्यात हैं।

21-धन्वन्तरि - भागवत पुराण के अनुसार समुद्र मंथन के समय अमृत-कलश लेकर धन्वन्तरि समुद्र से प्रकट हुए[2]। भागवत में इन्हें विष्णु के चौबीस अवतारों में माना गया है। पाँचरात्रों में इनकी गणना "अमृत धारक" नाम से 39 विभवों में की गई है।

इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि का एक ऐतिहासिक रूप भी है। आयुर्वेद-ग्रन्थों में आयुर्वेद-प्रवर्तकों के रूप में धन्वन्तरि का उल्लेख हुआ है[3]। सुश्रुत ने आयुर्वेदाचार्यों की परम्परा में ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनीकुमारों, इन्द्र तथा धन्वन्तरि का उल्लेख किया है[4]।

भागवत के परवर्ती पुराणों में भी इन्हें विष्णु का अंशावतार माना गया है। वाल्मीकि-रामायण तथा विष्णु-पुराण में धन्वन्तरि का उल्लेख तो है परन्तु उनके अवतारी होने की चर्चा नहीं है। हिन्दी कवियों में सूरदास आदि ने भागवत के आधार पर इन्हें विष्णु का अवतार मानकर वर्णन किया है।

22- यज्ञ-पुरुष- वैदिक साहित्य में तैत्तरीय संहिता में विष्णु को यज्ञ से स्वरूपित किया गया है[5]। विष्णु-पुराण में विष्णु को यज्ञ-पुरुष एवं यज्ञ-मूर्ति कहा गया है[6]। विष्णु-पुराण के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर में मानस-देव यज्ञ-पुरुष विष्णु-शक्ति के अंश से ही आकूति के गर्भ से उत्पन्न हुये थे[7]। भागवत के अनुसार भी यह स्वायम्भुव मन्वन्तर में रुचि प्रजापति की पत्नी आकूति के गर्भ से उत्पन्न हुये थे[8]। इनकी गणना चौबीस लीलावतारों में की गई है। हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों में सूरदास ने रुचि प्रजापति तथा आकूति के पुत्र के रूप में यज्ञ-पुरुष का वर्णन किया है[9]। तुलसी के काव्य में यज्ञ-पुरुष का उल्लेख नहीं है।

23- गजेन्द्र-हरि- भागवत में गजेन्द्र के उद्धारक हरि का वर्णन चौबीस अवतारों में किया गया है। इससे पूर्व महाभारत में विष्णु के हरि अवतार का उल्लेख हुआ है[10]। महाभारत में ही कहा गया है

1- नर-नारायण सरिस सुभ्राता। जगपालक बिसेष जन त्राता॥ रामचरितमानस/बालकाण्ड/20।

2- भागवत 1/3/17 तथा 2/7/21। 3- अश्वलायन गृह्यसूत्र 1/3/12।धन्वन्तरि यज्ञ।

4- हिन्दुत्व पृ0 95। 5- तैत्तरीय संहिता 1/7/4। 6- विष्णु पुराण 3/9/61-62।

7- विष्णु-पुराण 3/1/36। 8- भागवत 1/3/12 ; 2/7/2।

9- सूरसारावली। व्यं0प्रे0। पृ0 2/पद 20।

10- महाभारत 3/12/21 तथा 12/334/89।

कि नारायण हरे रंग के होने के कारण " हरि" कहलाए[1]। परन्तु इन पुराणों में गजेन्द्र से उनका सम्बन्ध नहीं है। विष्णु-पुराण में हयग्रीव के गले से हरि का अवतार बताया गया है,[2] परन्तु इनका भी सम्बन्ध गजेन्द्र से नहीं है। भागवत के हरि गरुड़ पर चढ़कर, हाथ में चक्र लेकर गज को ग्राह से रक्षा करते हैं[3]।

भागवत के ही आधार पर सूरदास ने इस अवतार का वर्णन "गजमोक्ष" के रूप में किया है[4]। अन्य भक्त-कवियों ने भी करुणामय की असीम करुणा द्वारा भक्तों के उद्धार के उदाहरण स्वरूप गजेन्द्र-मोक्ष की कथा का वर्णन किया है। तुलसी ने भी अपने उपास्य श्री राम के करुणामय भक्तोद्धारक रूप का वर्णन करते हुए अनेक स्थलों पर गजेन्द्र-मोक्ष की उक्त कथा की ओर इंगित किया है[5]।

24- ध्रुव-प्रिय- ध्रुव के कष्टदैन्य की भी गणना भागवत में चौबीस अवतारों में की गई है। इस अनुसार कथा में ध्रुव की प्रार्थना पर विष्णु भगवान प्रकट होकर उन्हें अटल ध्रुव-पद प्रदान करते हैं[6]। इस प्रकार भक्त की मान-रक्षा तथा उस पर अनुग्रह ही इस कथा का प्रयोजन है। सूरदास ने भागवत के आधार पर ही हरि के ध्रुव को पद देने का उल्लेख किया है। तुलसी ने भी "मानस" तथा अन्य ग्रन्थों में इस ओर इंगित किया है[7]।

उपर्युक्त चौबीस अवतार भागवत में लीलावतार रूप में स्वीकार किए गए हैं। इनके अतिरिक्त कहीं कहीं विष्णु के दो अन्य अवतारों का भी उल्लेख किया गया है। ये हैं नारद तथा मोहिनी अवतार।

नारद का नाम अति प्राचीन है। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों के निर्माता "नारद-पक्षी" तथा "नारद-कण्व" नाम के ऋषि हैं। छान्दोग्य के नारद अनेक विद्याओं के ज्ञाता हैं। महाभारत में नारद पक्षी ऋषि के भाषा हैं तथा सामवेद के भी ज्ञाता हैं[8]। सामान्यतः नारद को सर्वज्ञास्त्र

- -

1-महाभारत 12/342/68 । 2- विष्णु पुराण 3/1/39 ।

3- भागवत 2/7 तथा 8/2/29-30 । 4- सूरसागर भाग 1/पृ0 170/पद 429-30 ।

5- "गणिका, अजामिल, गीध, व्याधि, गजादि कए तारे घना ।। रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड/130 ।

6- भागवत/2/7/9 ।

7- ध्रुव सकलानि जग्यो हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ।।

रामचरितमानस/बालकाण्ड/26 ।

8- महाभारत 12/28 ।

का ज्ञाता तथा विष्णु का भक्त माना गया है । गीता में दिव्य-विभूतियों में नारद का भी उल्लेख है[1] । भागवत में इन्हें ऋषियों की तुष्टि में तीसरा अवतार माना है[2] । परन्तु चौबीस लीलावतारों में इनकी गिनती नहीं है । तुलसी ने विशिष्ट विद्वान एवं त्रिकालज्ञ ऋषि के रूप में नारद का वर्णन किया है । यह विष्णु-भक्त एवं लोकोपकारी हैं । सूर ने इन्हें चौबीस अवतारों में माना है ।

पुराणों में विष्णु के मोहिनी अवतार का भी उल्लेख मिलता है । समुद्र-मंथन के परिणामस्वरूप जब अमृत-कलश प्राप्त हुआ तब देव-दानवों में संघर्ष उत्पन्न हो गया । उस समय नारायण ने मोहिनी-माया का आश्रय ले मनोहारिणी नारी का रूप धारण कर दानवों के पास पदार्पण किया[3] । भागवत पुराण में धन्वन्तरि के साथ मोहिनी अवतार का भी उल्लेख है[4] ।

इस प्रकार धर्म-संस्थापन, सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों के विनाश के लिए युग-युग में पुरातन-पुरुष विष्णु अथवा परब्रह्म के अवतार होते रहे हैं । जिन युग-पुरुषों ने अपनी कर्मठता अथवा पौरुष से सज्जनों, भक्तों तथा आश्रितों की अनाचार एवं अत्याचार से रक्षा की, जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, पवित्रता अथवा ज्ञान से युग-परिवर्तन किया तथा जिन्होंने अपनी सूझ-बूझ तथा अन्वेषक-शक्ति से युग को नई दिशा दी उन समस्त व्यक्तियों को पुराणकारों ने भगवद् विभूति के रूप में स्वीकार कर लिया । इसीलिए अवतारों की परम्परा में आदर्श-नृपतियों, महान् अन्वेषकों, तत्ववेत्ताओं, दार्शनिकों एवं महात्माओं को ही स्वीकार किया है । वस्तुतः व्यक्तियों में जो कुछ श्रेष्ठता का अंश है वह उसी परम विभूति, परम पुरुष, परमसत्ता, भगवान अथवा परब्रह्म की आह्लादकारी शक्ति का स्वरूप है, जो साधारण व्यक्तियों द्वारा पूजनीय है । श्री राम सज्जनों, देवों, ब्राह्मणों आदि की रक्षा के लिए अवतरित हुए तथा उन्होंने मानव-जीवन के उच्चतम आदर्श प्रस्तुत कर मनुष्यों को जीना सिखाया । श्री राम जितेन्द्रिय, अक्रोधी तथा करुणामय थे अतः आदि कवि ने उनके आदर्श चरित्र को अपने काव्य का विषय बनाया ।

1- गीता/10/26 ।

2- भागवत /1/3/8 ।

3- महाभारत 1/18/45 ।

4- भागवत/1/3/17 ।

रामावतार

रामाख्यान की प्राचीनता एवं ऐतिहासिकता- यद्यपि रामकथा का प्रारम्भ विद्वानों ने वेदों से माना है परन्तु राम कथा के किसी भी अंश का चित्रण किसी भी वेद में नहीं किया गया है। ऋग्वेद में इक्ष्वाकु, दशरथ तथा राम के नामों का उल्लेख हुआ है, जिससे केवल इतना ही स्पष्ट हो पाता है कि ये तीनों ऋग्वेद की रचना से पूर्व अथवा उसके रचना-काल में ही अति प्रभावशाली राजा हुए थे। इक्ष्वाकु का उल्लेख एक प्राचीन वीर राजा के रूप में अथर्ववेद में भी किया गया है[1]। ऋग्वेद की एक दान-स्तुति में अन्य राजाओं के साथ दशरथ की श्रीपूर्णता की गई है[2]। इस उल्लेख से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि ये दशरथ श्री राम के पिता दशरथ ही थे।

वैदिक साहित्य में राम नाम के अनेक व्यक्तियों का उल्लेख प्राप्त है। इनमें से एक राम राजा हैं, शेष उपदेशक, दार्शनिक अथवा कवि हैं। राम राजा का उल्लेख ऋग्वेद के एक सूक्त में इस प्रकार है, " मैंने दुःशीम, पृथवान, वेन और राम असुर- इन यजमानों के लिए यह सूक्त गाया है। इन्होंने पाँच सौ घोड़े। रथ। लुटाये जिससे उनका सुख पर अनुग्रह चारों ओर फैल गया।[3]" इस सूक्त में वर्णित राम कोई प्रतापी राजा रहे होंगे। इन राम के अतिरिक्त राम मार्गेय[4], राम औपतस्विनि[5] तथा क्राकुचोय राम[6] का वर्णन भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध है, परन्तु इन रामों का कोई सम्बन्ध दशरथ-पुत्र राजा राम से नहीं है। इससे यही सिद्ध होता है कि वैदिक-काल में " राम" नाम अत्यन्त लोकप्रिय था।

जनक का नाम भी वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तरीय ब्राह्मण में जनक वैदेह का उल्लेख ताक्षिणाग्नि यज्ञ का फल देवताओं से प्राप्त करने

1- " त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको र्वं।" अथर्व 19/39/ 9 ।

2- " यत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रसाकं हरिणं नयन्ति।" ऋग्वेद 1/126/4 ।

3- " प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मु पथा विश्वेषाम् ॥ ऋग्वेद 10/93/14 ।

4- ऐतरेय ब्राह्मण 7/27-34 ।

5- शतपथ ब्राह्मण 4/6/1/7 ।

6- वै० उप० ब्रा० 3/7/3/2 ; 4/9/1/1 ।

के प्रसंग में हुआ है[1]। शतपथ ब्राह्मण में चार स्थलों पर जनक तथा याज्ञवल्क्य का वर्णन है[2]। बृहदारण्यक[3] एवं कौषीतकी[4] उपनिषदों, जैमिनी ब्राह्मण[5] तथा आश्वायन आरण्यक[6] में जनक का उल्लेख हुआ है, परन्तु यह जनक सीता के पिता थे इस बात का स्पष्ट उल्लेख वैदिक साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

महाभारत, रामायण तथा पुराणों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि मिथिला के किसी भी राजा को उस समय "जनक" कहा जा सकता था। वाल्मीकि रामायण से इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं[7]। विष्णु पुराण[8], वायु पुराण[9], ब्रह्माण्ड-पुराण[10] तथा पद्म-पुराण[11] आदि में सीता के पिता का नाम सीरध्वज जनक है। जिन जनकों का उल्लेख वेदों में है वे इन सीरध्वज के पूर्वज भी हो सकते हैं।

सीता का उल्लेख वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर हुआ है। यह वर्णन मुख्यतः दो स्थलों में है- प्रथम साधिनी (सूर्य-पुत्री) के रूप में- जहाँ सीता सोमराजा से प्रेम करती हैं तथा त्यागर अंगिरा को प्राप्त कर सोम राजा को अनुरक्त कर उससे विवाह करती हैं; तथा दूसरा कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में। सीता के कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में ऋग्वेद के चौथे मण्डल में एक सूक्त के दो मंत्रों के द्वारा सीता की स्तुति की गई है[12]। इन मंत्रों में

1- कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तरीय ब्राह्मण - 3/10/9 ।

2- शतपथ ब्राह्मण- 11/3/1/2-4 ; 11/4/3/20 ; 11/6/2/1-10 ; 11/6/3/1 ।

3- बृहदारण्यक उ0 - 3/1/1-2 ; 4/1/1-4 । 4- कौ0 उ0- 4/1 ।

5- जैमि0 आर0- 6/1 7- सीतापि सत्कृतो जाता जनानां महात्मनाम् ।।रा0 7/45/51।।
तथा इदं धनुषं श्रेष्ठमभिभूतजितम् ।। रा0 1/67/8 ।

8- विष्णु पुराण- 4/5/30 । 9- वायु पुराण- 89/15 ।

10- ब्रह्माण्ड पुराण- 3/64/15 ।

11- पद्मपुराण,पाताल खण्ड- 57/5 ।

12- अर्वाची सुभगे भव सीते वंदामहे त्वा ।
यथा नः सुभगासति यथा नः सुफलासति ।।
इंद्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ।। ऋग्वेद 4/57/6-7 ।

धन-धान्य एवं फल देने वाली सीता की स्तुति धन-धान्य एवं समृद्धि के लिए की गई है। " सीता सुर्वेति" मंत्र में भी सीता की स्तुति कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में की गई है। यह मंत्र यजुर्वेद तथा अथर्व वेद दोनों में उपलब्ध है[1]। मंत्र का अर्थ है, " हे सीते! तेरी हम वंदना करते हैं। हे सौभाग्यवती! हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तू हमारे लिए शिक्षाशिनी होवे तथा " हमारे लिए सुन्दर फल देने वाली होवे।" मंत्र रामायण में इन मंत्रों में रामपत्नी सीता की व्याख्या सिद्ध की गई है, जो डा० कृष्ण दत्त अवस्थी के अनुसार "विचित्र" है; क्योंकि पूरे सूक्त में कृषि से सम्बन्ध देवताओं से ही प्रार्थना की गई है। इन मंत्रों में सीता को कृषि की अधिष्ठात्री देवी माना गया है, रामपत्नी नहीं[2]।

गृह्य-सूत्रों में भी सीता का उल्लेख उपलब्ध है। वहाँ सीता को इन्द्र-पत्नी कहा गया है[3]। पारस्कर गृह्य-सूत्र तथा आश्व गृह्य -सूत्रों में सीता यज्ञ का भी वर्णन है। अरण्यकों में भी सीता-प्रार्थना उपलब्ध है। वैदिक साहित्य के उत्तर भाग में सीता धन-धान्य एवं फल देने वाली कृषि-देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। वैदिक साहित्य में सीता देवी का उल्लेख राम पत्नी के रूप में किसी भी स्थल पर नहीं किया गया है। लांगल-पोजन व सीता-यज्ञ के अतिरिक्त भी कृषि-कर्म के प्रत्येक मुख्य अवसर पर यज्ञ के समय सीता-प्रार्थना का विधान था।

हल की नोक से खींची गई रेखा को वेद में सीता कहा गया है। कालान्तर में जब रामकथा का विकास हुआ तब राम पत्नी सीता के स्वरूप के विकास में वैदिक साहित्य की कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता के कुछ गुण अवश्य दृष्टिगत होने लगे। जनक-पुत्री सीता की जन्म-कथा पर लांगल पोजनादि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। " कुमुदती पुष्करिणी सीता सर्वांग शोभिनी" की स्पष्ट झलक राम पत्नी के अनुपम सौन्दर्य में दिखाई देती है। कृषि की भी स्वरूपा वैदिक सीता कालान्तर में धन-धान्य देने वाली विष्णु-पत्नी लक्ष्मी की अवतार महारानी सीता के पौराणिक रूप में चित्रित होने लगीं। इस प्रकार सीता के स्वरूप-विकास के बीज कृषि की अधिष्ठात्री वैदिक सीता में देखे जा सकते हैं।

उपर्युक्त से यह सिद्ध है कि वेदों की रचना के समय तक राम-कथा प्रचलित नहीं थी। यह उसके पर्याप्त समयबाद की रचना है। रामायण के राम सहित अनेक पात्रों द्वारा वेद-वेदांगों का अध्ययन इस बात को पुष्ट करता है कि रामायण वेदों से पर्याप्त समय बाद रची

1- अथर्ववेद- 3/17/8-9 ।

2- " भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप ", अध्याय 1/पृ० 7 ।

3- पारस्कर गृ० सू०- 2/17-4 ।

गई थी, परन्तु महाभारत में वर्णित रामोपाख्यान तथा अन्य राम विषयक उल्लेखों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि रामायण की रचना महाभारत से पूर्व हो चुकी थी। महाभारतकार ने श्री कृष्ण को अपना समकालीन तथा राम को अति प्राचीन माना है। रामायण का आदि काव्य कहा जाना भी इस बात का प्रमाण है कि रामायण की रचना महाभारत तथा पुराणों से पूर्व हुई है। भारत में प्रचलित जनश्रुति एवं परम्परायें रामायण को अन्य सभी काव्य ग्रन्थों से प्राचीन सिद्ध करती है।

पाश्चात्य विद्वानों की कल्पना किसी भी भारतीय काव्य ग्रन्थ को ईसा से बहुत प्राचीन मानने को तैयार नहीं है। डा० वेबर रामकथा का मूल स्रोत दशरथ जातक में निहित मानते हैं। रामायण के उत्तर भाग को वे ग्रीक कवि होमर के "इलियड" पर आधारित मानते हैं।[1] अधिकांश विद्वान डा० वेबर के इस मत से सहमत नहीं हैं। डा० जेकोबी रामायण के प्रथम भाग की घटनाओं को ऐतिहासिक तथा द्वितीय भाग की घटनाओं को वैदिक साहित्य से प्रभावित मानते हैं।[2] दिनेशचन्द्र सेन डा० जेकोबी के मत से सहमत है। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या राम को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं मानते हैं। ये सभी मत भारत में प्रचलित अत्यन्त प्राचीन लोक-परम्पराओं के सर्वथा विपरीत होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकते हैं। वस्तुतः रामोपाख्यान ईसा से 1000 वर्ष पूर्व भी लोक प्रिय हो चुका था। इसका एक रूप यूनान में होमर की इलियड के रूप में तथा दूसरा भारत में रामायण के रूप में विकसित एवं पल्लवित हुआ। यह सुनिश्चित है कि आदि कवि ने होमर के इलियड को तथा होमर ने वाल्मीकि रामायण को नहीं देखा था; फिर भी यह कथा दोनों देशों में अलग-अलग किसी एक मूलस्रोत से विकसित हुई है।

<u>राम की ऐतिहासिकता-</u> उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राम वैदिक काल के पश्चात् ही आविर्भूत हुए होंगे। लोक प्रचलित जनश्रुतियों तथा रामकथा की प्राचीनता के आधार पर राम को ऐतिहासिक पुरुष माना जा सकता है। वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से भी यही विश्वास होता है कि राम ऐतिहासिक पुरुष थे। पुराणों में राम

1- अर्ली टि रामायण- पृ० 11 आदि। ले० डॉ० ए० वेबर।

2- " हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर" पृ० 13

। श्री कृष्णमाचारी ने इस पुस्तक में डा० जेकोबी का मत उद्धृत किया है ।।

के पूर्वजों तथा राम के वंशजों की वंशावली दी गई है । इन वंशावलियों को एकदम काल्पनिक कह देना पूर्णतया निराधार है । प्राचीन साहित्य में पुराण वस्तुतः इतिहास ग्रन्थ ही थे । इनमें प्रयुक्त साहित्यिक प्रतीकों तथा बाद में जोड़े गए प्रक्षिप्तांशों ने पुराणों की प्राचीनता तथा ऐतिहासिकता को संदिग्ध बना दिया है ; फिर भी महाभारत, रामायण तथा विभिन्न पुराणों के आधार पर राम को हम अत्यन्त प्राचीन काल का लोक-विश्रुत राजा मान सकते हैं । राम का काल-निर्धारण प्रमाणों की अनुपलब्धता के कारण संभव नहीं है ।

राम विष्णु अथवा ब्रह्म के अवतार

महाभारत तथा वाल्मीकि रामायण में राम को विष्णु का अवतार माना गया है । वाल्मीकि ने रामायण के अयोध्याकाण्ड में राम के इतने गुणों का वर्णन किया है कि वे असाधारण एवं अलौकिक प्रतीत होने लगते हैं । प्रजागण राम के विषय में कहते हैं कि " श्री राम संसार में सत्यवादी, सत्यपराक्रम और सत्पुरुष हैं । साधु राम ने ही श्री के साथ धर्म को प्रतिष्ठित किया है । श्री राम प्रजा को सुख देने में चन्द्रमा की तथा क्षमाशील गुण में पृथ्वी की समानता करते हैं । बुद्धि में बृहस्पति तथा बल पराक्रम में शचीपति इन्द्र के समान हैं[1] । इसके बाद भी अनेक श्लोकों में राम के गुणों का वर्णन किया गया है । सत्यवादी प्रजागण कहते हैं कि " उत्तरोत्तर उत्तम युक्ति देते हुये वार्तालाप करने में वे साक्षात् बृहस्पति के समान हैं । उनकी भौंहें सुन्दर हैं, आँखें विशाल और मुख लम्बा लिए हुए हैं । वे साक्षात् विष्णु की भाँति शोभा पाते हैं[2] । कवि ने भी राम

1- रामः सत्पुरुषो लोके सत्यः सत्यपराक्रमः ।
साधुः साधुः विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि क्रियां सह ॥29॥
प्रजासुखत्वे चन्द्रस्य पृथ्व्याः क्षान्तौ च ।
बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये साक्षाच्छचीपतेः ॥30॥

वाल्मीकीय रामायण पृ0 187 । गीता प्रेस।

2- उत्तरोत्तरयुक्तौ च वक्ता वाचस्पतिर्यथा ।
सुभ्रूरायतताम्राक्षः साक्षाद् विष्णुरिव स्वयम् ॥ 43॥

वाल्मीकीय रामायण : 2/2/43 । पृ0 187।

के गुणों का वर्णन अयोध्याकाण्ड में प्रथम सर्ग के 8 से 34 तक 27 श्लोकों में किया गया है । तत्पश्चात् महाराज दशरथ ने चार श्लोकों में तथा प्रजागण ने इसी काण्ड के द्वितीय सर्ग में 26 से 54 तक 29 श्लोकों में राम के गुणों का वर्णन किया है[1] । किसी एक व्यक्ति में इन समस्त गुणों का एक साथ उदित होना कल्पनातीत एवं आश्चर्य है । इतने गुण तो केवल ईश्वर अथवा उसके अवतार में ही सम्भव हो सकते हैं । कवि स्वयं तथा रामायण के विभिन्न पात्र बार बार राम को विष्णु के समान बताते हैं जिससे राम के विष्णु का अवतार होने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ने लगती है । नर लीला करते हुए राम के विषय में रामायण के पात्र तो उन्हें विष्णु का अवतार कह नहीं सकते थे क्योंकि ऐसा कहने के बाद मानुषोचित आचरण एवं व्यवहार करना स्वाभाविक नहीं रह जाता था अतः रामायण के पात्र राम को साक्षात विष्णु के समान ही कह सकते थे जो वे बहुधा कहते हैं । कवि ने राम के विष्णु का अवतार होने की घोषणा अपने काव्य में अयोध्याकाण्ड । जो वाल्मीकि की मूल रचना समझा जाता है। के प्रारम्भ में ही कर दी है तथा साथ में रामावतार का प्रयोजन भी बताया है । वाल्मीकि कहते हैं कि " ये साक्षात् सनातन विष्णु थे और परम प्रचण्ड रावण के वध की अभिलाषा रखने वाले देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए थे । उन आश्रित तेजस्वी पुत्र श्री रामचन्द्र से महारानी कौसल्या वैसी ही शोभा पाती थीं जैसे वज्रधारी देवराज इन्द्र से देवमाता अदिति सुशोभित होती हैं[2]।" इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण में श्री राम को विष्णु का अवतार माना गया है । सम्भवतः इससे पूर्व भी राम को विष्णु का अवतार मानकर उनकी पूजा होती रही होगी, परन्तु रामायण से पूर्व अवतार रूप में राम के पूजन का कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है । फादर कामिल बुल्के ने रामायण का रचना-काल 300 वर्ष ई० पू० माना है[3] । कुछ विद्वान् रामायण की रचना पाणिनि से भी पूर्व की मानते हैं । उनके अनुसार रामायण की रचना आठ सौ या नौ सौ वर्ष ई० पू० हुई

1- वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड 2/26 से 54 तक ।

2- स हि देवैस्तदीयैश्च रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ।।7।।
कौसल्या सुषुवे तेन पुत्रेणामितौजसा ।
यथा वज्रेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ।।8।। वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड/ प्रथम सर्ग । गीता प्रेस।

3- फादर कामिल बुल्के- रामकथा का विकास-परिशिष्ट पृ० 744-745 ।

होगी । अतः कम से कम 300 वर्ष ई० पू० से तो राम को विष्णु का अवतार माना ही जाने लगा था ।

रामायण के पश्चात् भास के नाटकों में भी राम के अवतारत्व का बोध होता है । उनके अनुसार राम तथा सीता केवल अवतार ही नहीं हैं अपितु उनमें भक्तितत्व भी दिखाई देता है । वे कहते हैं कि " यहाँ महायशस्वी राम, सीता और लक्ष्मण । रहे थे। जिनमें तत्व, शील और भक्ति तथा साधु मूर्तिमान हो उठे थे ।[1] " संस्कृत साहित्य के विद्वान् महाकवि भास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी अथवा प्रथम शताब्दी ईस्वी मानते हैं । परन्तु डा० केथ तथा डा० याकोबी आदि विद्वानों के अध्ययन के पश्चात् फादर कामिल बुल्के[2] इनका समय ईसा की तीसरी तथा चौथी शताब्दी के मध्य मानते हैं । जो भी हो भास के समय में श्री राम को अवतार के रूप में माना जाता था । कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में भी राम का वर्णन अत्यन्त उदारतापूर्वक किया है जिससे उनका अवतारत्व भी भासित होता है । आधुनिक भारतीय इतिहासकार भी गुप्तकाल की मूर्तियाँ आदि के आधार पर गुप्तकाल में राम की पूजा का अस्तित्व स्वीकार करते हैं । ऐसा भी कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त की पुत्री राम की उपासिका थी । चौथी शताब्दी की वराहमिहिर की एक रचना में इक्ष्वाकुवंशीय राम की मूर्ति निर्माण के नियम बताए गए हैं । उसके बाद तो राम कथा विषयक विशाल साहित्य की रचना होती ही रही । विष्णु पुराण से लेकर पद्मपुराण के पातालखण्ड तक रचित सभी पुराणों में राम को विष्णु का तथा कुछ पुराणों में ब्रह्म का अवतार माना गया है । भागवत पुराण में राम को विष्णु के दस अवतारों में भी गिना गया है और चौबीस अवतारों में भी । रामतापनीय उपनिषदों की रचना के बाद से तो रामोपासक सम्प्रदाय ही चल पड़ा तथा श्री राम ब्रह्म के अवतार इष्ट एवं उपास्य के रूप में पूजे जाने लगे ।

बहुत से विद्वान राम की विधिवत् पूजा का प्रचलन रामानुज से ही मानते हैं ; परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है रामतापनीयोपनिषद् की रचना के पश्चात् से ही राम की इष्ट एवं उपास्य के रूप में पूजा होने लगी थी । फादर कामिल बुल्के ने रामतापनीयोपनिषदों का रचना काल 1200 से 1300 ईस्वी के मध्य माना है । इस समय निर्विकल्प रूप से राम की विग्रह मूर्तियों की पूजा लोक-प्रचलित थी । दक्षिण भारत में विष्णु के अवतार के रूप में राम

1- अन रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशः । तत्वं शीलं च भक्तिश्च विग्रहवन्तु स्थिता ।।
प्रतिमा नाटकम्/सीताराम
2- फादर कामिल बुल्के- रामकथा का विकास-परिशिष्ट पृ० 744-45 ।
3- फादर कामिल बुल्के- राम कथा का विकास-परिशिष्ट पृष्ठ 746-47 ।

की पूजा तामिल आल्वारों में बहुत प्रचलित थी[1]। नवीं शताब्दी में कुलशेखर आल्वार ने राम सम्बन्धी अनेक घटनाओं का वर्णन किया है। तिरुमंगई आल्वार तथा कम्बन राम कथा पर अत्यन्त मुग्ध थे। कम्बन द्वारा रचित " तमिल रामायण" लोक-विश्रुत है। कम्बन की इस रामायण का रचनाकाल 885 ई0 है। इस रामायण को आल्वारों के साम्प्रदायिक ग्रन्थ के रूप में माना जाता है[2]। आल्वारों की रचनाओं में राम को पूर्णावतार माना गया है तथा इनमें स्थान स्थान पर रामायण के अनेक प्रसंग दृष्टिगत होते हैं[3]।

मध्यकालीन साहित्य में राम ब्रह्म के अवतार, इष्ट एवं उपास्य के रूप में माने गए हैं। सगुण राम भक्ति धारा का प्रवर्तन रामानंद ने माना जाता है। रामानंद की शिष्य परम्परा में एक ओर तो कबीर आदि निर्गुण भक्त कवि हुए हैं जिन्होंने राम के नाम को निर्गुण ब्रह्म का पर्याय मानकर उपासना की है तथा दूसरी ओर बीलहदास तथा आरिलादास आदि राम के सगुणोपासक हुए हैं। वस्तुतः अवतारवादी राम साहित्य का सुन्दरतम रूप महाकवि तुलसीदास ने ही प्रस्तुत किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम को सर्वत्र ब्रह्म का अवतार तथा सीता को महामाया का अवतार माना है। सती जी यही शंका करती हैं कि " जो ब्रह्म सर्व व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदरहित है, जिसे वेद भी नहीं जानते हैं, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है[4]" यद्यपि सती ने अपनी शंका को स्पष्ट रूप से नहीं कहा फिर भी अन्तर्यामी शंकर ने उन्हें उत्तर दिया कि " ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मल चित्त से जिसका ध्यान करते हैं तथा वेद पुराण और शास्त्र " नेति-नेति" कह कर जिसकी कीर्ति गाते हैं उन्हीं सर्व व्यापक, समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतंत्र, ब्रह्मरूप भगवान श्री राम जी ने अपने भक्तों के हित के लिये। अपनी इच्छा से रघुकुल-मणि रूप में अवतार लिया है[5]।" पार्वती द्वारा राम कथा

1- हिस्ट्री आफ सिस्वाति जी0/1 पृ0 169। 2- साउथ इंडियन हिस्ट्री जी0 2/पृ0 733।

3- हिस्ट्री आफ सिस्वाति जी0 1/पृ0 158।

4- ब्रह्म जो व्यापक विरज, अज, अकल अनीह अभेद।
तोकि देह धरि होइ नर जाति न जानत वेद ॥50॥
रामचरितमानस/बालकाण्ड/दोहा 50।

5- मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत विमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥
रामचरित मानस/बालकाण्ड। दोहा 51। ~~के पूर्व ॥~~

के किया में विद्याता प्रकट किये जाने पर भगवान शंकर उनको कहते हैं कि " श्री राम तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं। इस बात को सारा संसार जानता है। जो पुराण-पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भण्डार हैं, सब रूपों में प्रकट हैं, जीव, माया और जगत सब के स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्री रामचन्द्र मेरे स्वामी हैं, ऐसा समझ कर शिव जी ने उनको मस्तक नवाया। तुलसी के राम तो साक्षात ब्रह्म हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के द्वारा सदैव ही वन्दनीय हैं। उन्होंने देवताओं की प्रार्थना पर पृथ्वी का भार हरण करने हेतु तथा रावण आदि दुष्टों का संहार करने के लिए अवतार धारण किया। सीता जी तो सदा ब्रह्म का पूर्णावतार था। संसार को उत्पन्न करने वाली आदि शक्ति ने सीता के रूप में अवतार ग्रहण किया। इस प्रकार राम तथा सीता ब्रह्म एवं आदि शक्ति का अवतार हैं। गोस्वामी जी ने भक्तिमय पग पग पर इस बात का स्मरण कराया है कि श्रीराम ब्रह्म का अवतार हैं तथा भवानी सीता ब्रह्म की आदि शक्ति हैं। डा० कपिल देव पाण्डेय ने अपनी पुस्तक " मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद के पृ०० 541 पर तुलसी के उपास्य एवं परब्रह्म के अवतार श्री राम के अवतारी स्वरूप का सैद्धान्तिक में वर्णन किया है:-

" राम " माया मानुष रूप हैं। इस शक्ति भुवन पति ने शिव जी तारने के लिये तथा धर्म के निमित्त मानव-शरीर ग्रहण किया है। सुर, मुनि, गौ और द्विज के लिए

1- राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेश पुराना॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥ रा० च० मा० बालकाण्ड दोहा 106।

2- सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। चराचर जीव जीवन धन रामू॥
रा०च०मा० बालकाण्ड 145 दोहा के बाद।

3- रा० च० मा० बालकाण्ड दोहा 186 से 187 तक।

4- सुद्धसत्व नरवेष तुम्हारे। हरषहिं प्रगट निकेत तुम्हारे।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
मैं पुनि पितु बचन अनुरागी। भवन दीन्ह माता बन त्यागी।
आदि सक्ति जेहिं जग-उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥
रा०च०मा०-बालकाण्ड। 151 दोहा के आगे।

5- माया मानुष रूपिणी रघुवरो सत्यं कथं चेतरी।
रा०च०मा० किष्किन्धाकाण्ड। श्लोक॥

6- जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
रा०च०मा० किष्किन्धाकाण्ड दोहा। ।

7- " धर्म हेतु अवतरेहु गुसाईं।" रा०च०मा० किष्किन्धाकाण्ड। दोहा 8 के पश्चात्।

अपनी इच्छा से ये आविर्भूत हुए हैं। " ये एक मात्र भगवान सदा स्वतंत्र होते हुए भी नर के समान नाना प्रकार के चरित्र करते हैं।[1] पूर्वकाल में मीन, कमठ, सूकर, नृसिंह, वामन, परशुराम एवं इन्होंने धारण किए हैं।[2] ये भक्तवत्सल और कृपालु हैं।[3] इन्होंने आविर्भूत होकर अखिल लोक के दारुण दुःख को जला दिया।[4] आत्म श्री सच्चिदानन्दघन राम ने[5] राजाराम का रूप भक्तों के निमित्त धारण किया। "

महाकवि तुलसीदास ने मंदोदरि के मुख राम के विश्वरूप का वर्णन भी कराया है।[6] एक बार कौसल्या भी राम के मुख में समस्त ब्रह्माण्ड का दर्शन करती हैं तथा काकभुशुण्डि भी राम के उदर में अनेक ब्रह्माण्डों को देखे हैं।[7] इस प्रकार तुलसी के राम ब्रह्म के पूर्णावतार हैं। सूर ने राम को विष्णु का अवतार माना है।

तुलसी के पश्चात् केशव आदि कवियों ने राम को अवतार मानते हुए राम विषयक काव्य की रचना की है। अग्रदास, नाभादास आदि ने भी उपास्य के रूप में राम को ग्रहण किया है तथा राम सम्बन्धी रचनाएँ की हैं। इन कवियों ने राम का अर्धविशिष्ट रूप स्वीकार किया है। मध्ययुगीन कवियों ने राधा कृष्ण के समान ही राम जानकी के युगलरूप की अर्चना की है।

1- नर इव चरित करत नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥
रा० च० मा० लंकाकाण्ड। दोहा 72 के बाद।

2- मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपुधरी॥
रा० च० मा० लंकाकाण्ड। दोहा 109 के बाद।

3- भगत बछल कृपालु रघुराई॥ रा० च० मा० उत्तरकाण्ड। दोहा 10 के आगे।

4- अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुःख दहे।
जय प्रनत पाल दयालु प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥ उत्तरार्द्ध।

5- सोइ सच्चिदानन्दघन रामा। अज बिज्ञानरूप बलधामा।

6- बिश्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिश्वास।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥14॥ रामचरित मानस/लंकाकाण्ड/दो० 14।

7- रामचरित मानस उत्तरकाण्ड दोहा 77(क) से दोहा 82 (क) तक।

रामावतार से सम्बन्धित विशाल साहित्य संस्कृत में विद्यमान है । भगवान राम से सम्बन्धित अनेक संहिताओं की भी रचना की गई है । इन संहिताओं का काल-निर्धारण अत्यन्त कठिन है । इन रामावतार संहिताओं में श्री हनुमत्संहिता, शिवसंहिता, अहिलोमसंहिता, पुण्डरीक संहिता, अगस्त्यसंहिता, वाल्मीकि संहिता, शुक संहिता, वसिष्ठ संहिता, सदाशिव संहिता, महाशम्भु संहिता, हिरण्यगर्भ संहिता, महासदाशिव संहिता तथा ब्रह्मसंहिता आदि प्रसिद्ध हैं । इन संहिताओं में रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासकों के मत हैं । इन में राम को ब्रह्म का अवतार माना गया है । ब्रह्म संहिता का एक श्लोक इस प्रकार है:-

" पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः ।
अंशा नृसिंहकृष्णाद्या राधयो भगवान स्वयम् ।।

रामावतार की श्रेष्ठता

दशावतार अथवा चौबीस अवतार परम्परा में विष्णु के अवतारों में रामावतार समस्त युगों एवं समस्त कालों में सर्वश्रेष्ठ है । रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक तो केवल श्री राम को ही पूर्ण ब्रह्म का अवतार मानते हैं । उनके अनुसार अन्य सभी अवतार अंशावतार हैं । रामावतार की श्रेष्ठता का कारण उनका पूर्णावतार होना मात्र नहीं है ; अपितु उनकी श्रेष्ठता उनके द्वारा प्रस्तुत आचरण की श्रेष्ठता में निहित है । उन्होंने न तो कोई उपदेश ही दिया और न किसी प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही किया । श्री राम ने तो अत्यन्त उच्च आदर्शों से मण्डित जीवन जी कर लोगों को कीर्त्य के पथ का मार्गदर्शन किया है ।

दशावतार के मत्स्य, कूर्म, वराहादि अवतार सृष्टि के विकास में किसी विशेष प्रयोजनार्थ होते हैं तथा अपनी महत्ता एवं शक्ति से उस प्रयोजन विशेष का निर्वहन करते हैं । मत्स्यावतार में जलप्लावन में मनु की रक्षा, कूर्मावतार में समुद्र-मंथन के समय पृथ्वी को धारण करना तथा वराहावतार में जलमग्ना पृथ्वी को जल से बाहर निकालना ही अवतार -प्रयोजन था । इसी प्रकार नृसिंह अवतार में भक्तों को रसातल से लाना ही अवतार-प्रयोजन था । कुछ अवतारों का प्रयोजन भक्तों की रक्षा मात्र ही था, जैसे नृसिंहावतार, ध्रुवप्रिय तथा गजेन्द्रहरि । हंस, कपिल, नारद, सनत्कुमार, दत्तात्रेय, व्यास, नर-नारायण, अजा देव तथा गौतम बुद्ध के अवतार केवल ज्ञान-प्रदान हेतु हुए थे । इसी प्रकार वामनावतार बलि को बाँधने से मुक्त कराने हेतु , परशुरामावतार क्षत्रियों के मर्दनार्थ हेतु , मनु का अवतार सृष्टि -विस्तारण हेतु, पृथु का पृथ्वी को कृषि योग्य बनाने आदि के लिए तथा मोहिनी अवतार

अद्भुत-विस्तार हेतु हुए थे । सम्बन्धित प्रयोजन की पूर्ति के साथ ही अवतार की उपादेयता भी समय विशेष में ही पूर्ण हो जाती है । केवल राम तथा कृष्ण ये दो ही अवतार ऐसे हुए हैं जो अपने चरित्र के अलौकिक आदर्श से चिरन्तन काल तक मानवमात्र का पथ आलोकित करते रहेंगे । इसीलिए विष्णु का पूर्णावतार केवल राम तथा कृष्ण को ही माना गया है । श्री राम सामान्य मानव के समान गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हैं । मानव जीवन के धर्मों तथा कर्त्तव्यों का पालन करना ही इस अवतार की श्रेष्ठता है ।

लोक-कल्याण- यदि लोक-कल्याण की दृष्टि से देखें तो रामावतार अनुपम एवं सर्वोच्च है । विष्णु के सभी अवतार संसार के कल्याण हेतु किसी न किसी प्रयोजन से हुए हैं । इन प्रयोजनों में भूभारहरण, दुष्ट-दमन, धर्म संस्थापन,भक्तों एवं सज्जनों की रक्षा तथा विशिष्ट ज्ञान अथवा दर्शन का तत्व निर्णय आदि रहे हैं । रामावतार में इन सभी प्रयोजनों की पूर्ति हुई है । परन्तु इन सबसे बढ़कर श्रेष्ठता का आधार तो राम का लोक कल्याणकारी मंगलमय स्वरूप है । भगवान राम मंगलभवन तथा अमंगलहारी हैं[1] । उनके चरित्र का आदर्श संसार के सभी अमंगलों को दूर करने की क्षमता रखता है तथा उनके पावन चरित्र का अनुसरण संसार में मंगल की वर्षा कर सकता है । वे स्वयं दुष्ट प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत, दिव्य मंगलविग्रह, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं परन्तु रामावतार धारण कर ऐसे चरित्र करते हैं जो संसारसी सागर को पार करने के लिए पुल के समान हैं । श्री राम ने अपने आचरण को पूर्णरूपेण धर्मानुकूल बनाया था । उन्होंने विश्व के समक्ष कर्मयोग का सिद्धांत क्रियान्वित करके दिखाया । उनका सम्पूर्ण जीवन धर्म का आदर्श था ।

राम के आचरण के विभिन्न स्वरूप (पुत्र के रूप में)- पुत्र के रूप में राम एक आदर्श पुत्र थे जो मातृ एवं पितृ भक्त थे । उन्होंने मानस में स्वयं कहा है कि " पृथ्वीतल पर उस पुत्र का जन्म धन्य है जिसके चरित्र को सुनकर उसके पिता को प्रसन्नता होती है । जो माता तथा पिता को प्राणों के समान प्रिय समझता है उसे चारों पदार्थ । धर्म, अर्थ, काम,मोक्ष सरलता से प्राप्त हो जाते हैं ।[3]" वाल्मीकीय रामायण में दशरथ श्री राम के विषय में कैकेयी से कहते हैं कि " वीर श्री रामचन्द्र अपने सात्विक स्वभाव से समस्त लोकों को, दान के द्वारा द्विजों को, सेवा से गुरुजनों को और धनुषबाण द्वारा युद्धस्थल में शत्रुओं को

1- मंगलभवन अमंगलहारी । द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी ।।
रा०च०मा० बालकाण्ड

2- दुष्ट सच्चिदानंदघन कंद भानुकुल केतु । चरित करत नर अनुसरत संसृति सागर सेतु ।।
रा० च० मा०/2/दोहा 97 ।

3- धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू ।।
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके ।।
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड

जीत कर अपने वश में कर लेते हैं। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुशुश्रूषा- ये सभी सद्गुण श्री राम में स्थिर रूप से रहते हैं।[4] पिता की आज्ञा स्पष्ट रूप से प्राप्त न होने पर भी वे केवल पिमाता के मुख से ही उसे सुनकर राज्याभिषेक को त्यागकर चौदह वर्ष के दीर्घकाल के लिये वन को चल दिए। राज्य छोड़ते समय तथा वन जाते समय न तो उनकी मुख कान्ति ही मलीन हुई और न उनके मुख पर किसी प्रकार का कोई भी विकार ही किसी ने देखा। " वे वन जाने को उत्सुक थे और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे, फिर भी उनके चित्त में सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भाँति कोई विकार नहीं देखा गया।"[2] पुत्र का ऐसा श्रेष्ठतम आदर्श अन्यत्र कहीं दृष्टिगत होना कठिन है।

<u>भ्रातृ-प्रेम-</u> भ्रातृ-प्रेम में भी राम का आदर्श प्रत्येक युग में अनुकरणीय रहेगा। वे अपने बाल्यकाल में भी अपने भाइयों पर विशेष प्रेम करते थे। चारों भाई एक साथ ही जाते, खेलते, पढ़ते तथा विचरण करते थे। उनकी प्रीति परस्पर पावन थी। जब उनके राज्याभिषेक की बात आई तब उन्हें यही बात अनुचित लगी कि भाइयों को छोड़कर बड़े का ही अभिषेक क्यों हो रहा है।[3] श्री राम के मन का यह प्रेम भी पछताया ही तो भक्तों के मन की कुटिलता को दूर कर देता है। वाल्मीकीय रामायण में वे राज्याभिषेक का समाचार पाकर लक्ष्मण से कहते हैं, " लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वी के राज्य का शासन करो। तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। यह राजलक्ष्मी तुम्हीं को प्राप्त हो रही है। सुमित्रानन्दन! तुम अभीष्ट भोगों और राज्य के श्रेष्ठ फलों का उपभोग करो। तुम्हारे लिए ही मैं इस जीवन तथा राज्य की अभिलाषा करता हूँ।[4] यह लक्ष्मण के प्रति उनके हार्दिक स्नेह को सूचित करता है।

1- सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः। गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥29॥
सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शीलमार्जवम्। विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥30॥
वाल्मीकीय रामायण 2/12/29-30।

2- न कर्म बन्धुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम्। सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥ 33॥
वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड 19/33।

अति प्रसन्नमन राम न रोषू। तब कर तब विधि करि परितोषू॥
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड

3- पिताकहि यह अनुचित रहा। बंधु बिहाय बड़ेहि अभिषेकू।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरहु भगत मन की कुटिलाई॥
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड

4- लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्। द्वितीयं मे अन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥43॥
सीमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च। जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥44॥
वा०रा० अयोध्याकाण्ड 4/43-44॥

कैकेयी के द्वारा यह सूचना प्राप्त करने पर कि महाराज दशरथ ने उनके राज्याभिषेक के स्थान पर अब भरत को राज्य तथा उनको वनवास दे दिया है वे कैकेयी से कहते हैं कि " मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भरत के लिए इस राज्य को, सीता को, प्यारे प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को भी प्रसन्नतापूर्वक दे सकता हूँ।[1] " प्राण प्रिय भरत राज्य पावै यह सौ मुझ पर विधाता की सब प्रकार से अनुकूलता है।[2] भाई का इससे बढ़कर और क्या आदर्श हो सकता है।[3] वन में उन्हें निरन्तर भरत के स्नेह का ध्यान रहा। जब वनवास की अवधि के चौदह वर्ष बीतने को हुए तब उन्हें बार बार तपस्या में लीन भरत का ही ध्यान आता था और वे अवधि बीतने के तुरन्त बाद ही अयोध्या पहुँच जाना चाहते थे। अयोध्या में भरत से मिलते समय उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की वर्षा होने लगी। भरत की जटाओं को उन्होंने अपने हाथों से खोलकर स्नान कराया फिर लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न को भी अपने करकमलों से स्नान कराया, तब स्वयं राज्याभिषेक के लिए तैयार हुए। यह श्री राम की भ्रातृ-वत्सलता ही थी जिसमें बड़े से बड़े त्याग से लेकर प्रेम के लघु व्यापार तक सम्मिलित थे।

<u>पति के रूप में-</u> पति के रूप में राम ने उस युग में एक पत्नी-व्रत का आदर्श प्रस्तुत किया। जबकि कि अन्य राजा अनेक विवाह रचाया करते थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी रावण ने तो सहस्रों सुन्दरी कन्याओं से बलात् विवाह किया था। स्वयं उनके पिता ने भी तीन विवाह किए थे। परन्तु उस बहु-विवाह के युग में भी राम ने एक मात्र सीता से ही विवाह किया। सीता के प्रति उनका प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि सीताराम के नाम ही अभिन्न हो गए। उन्होंने सीता को सदैव ही बहुत आदर दिया। आज भी सीता का नाम राम के नाम से पूर्व लिया जाता है। सीता राम वाणी तथा उसके अर्थ एवं जल तथा उसकी लहर के समान अभिन्न थे। श्री राम के अनुरूप ही सीता ने भी पत्नियों के आचरण का आदर्श प्रस्तुत किया।

1- अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं तद्वै भरताय प्रचोदितः ॥ 7 ॥ वा० रा० 2/19/7 ।

2- भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू। विधि सब विधि मोहिं सन्मुख आजू ॥
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड

3- गिरा अर्थ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदहुँ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥
रा० च० मा० बालकाण्ड

व्यक्ति के रूप में- व्यक्ति के रूप में श्रीराम सत्यनिष्ठा एवं सत्य पराक्रम थे । उनके सभी गुण लोगों को प्रिय लगने वाले एवं आनन्ददायक थे । वे देवराज इन्द्र के समान दिव्य गुणों से सम्पन्न थे एवं इक्ष्वाकुकुल में सर्व श्रेष्ठ थे । उन्होंने धर्म के साथ अर्थ की साधारण प्रतिष्ठा की थी । वे क्षमाशील एवं लोकरंजक थे । बुद्धि में बृहस्पति तथा बल में साक्षात् इन्द्र के समान थे । वे धर्मज्ञ, सत्य-प्रतिज्ञ, शीलवान्, अदीनदर्शी, ज्ञानी, दीन-दुखियों को सान्त्वना प्रदान करनेवाले, मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाले, स्थिर बुद्धि, सदा कल्याणकारी, अपूयारहित एवं प्रियवादी थे । वे बहुश्रुत विद्वानों, बड़े-बूढ़ों तथा ब्राह्मणों का आदर करते थे । देवता, असुर एवं मानवों के सम्पूर्ण अस्त्रों का उन्हें विशेष ज्ञान था । वे वेद एवं वेदांग के विधिपूर्वक ज्ञाता थे तथा सम्पूर्ण विद्याओं में अतीवांति निष्णात थे । वे श्री राम कल्याण की जन्म भूमि थे तथा उदार हृदय एवं साधु स्वभाव वाले थे । वे युद्ध भूमि में सदैव अपराजेय थे । वे अयोध्या नगर के निवासियों से प्रत्येक दिन स्वजनों की भाँति उनके पुत्रों, स्त्रियों, अग्निहोत्र की अग्नियों, सेवकों और शिष्यों का कुशल समाचार पूछते थे । नगर के मनुष्यों परकष्ट आने पर वे बहुत दुखी हो जाते थे और प्रजाजन के घरों में सब प्रकार के उत्सव होने पर उन्हें पिता के समान प्रसन्नता होती थी । वे धनुर्धरों में सर्व श्रेष्ठ थे । श्री राम पहले मुस्कराकर बात करते थे । वे सम्पूर्ण हृदय से धर्म का आश्रय लिए हुए थे तथा कल्याण का सम्यक् आयोजन करने वाले थे । उत्तरोत्तर उत्तम युक्ति देते हुए वार्तालाप करने में वे साक्षात् बृहस्पति के समान थे । उनकी भौंहें सुन्दर, नेत्र विशाल एवं मुख लालिमा से युक्त थे । वे अतुलित सौन्दर्य के कारण साक्षात् विष्णु की भाँति शोभा पाते थे ।वे सदैव ही प्रजापालन में तत्पर रहते थे तथा उनकी इन्द्रियाँ राग आदि दोषों से दूषित नहीं होती थीं । इस पृथ्वी की तो बात ही क्या है वे सम्पूर्ण त्रिलोकी की रक्षा करने में भी समर्थ थे । उनका क्रोध तथा प्रसाद अमोघ था । समस्त प्रजाओं के लिए कमनीय तथा मनुष्यों का आनन्द-बढ़ाने वाले श्री राम मन और इन्द्रियों के संयम आदि सद्गुणों द्वारा वैसी ही शोभा पाते थे जैसे तेजस्वी सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होते हैं[1] । राम के शील स्वभाव को देखते हुए बरबस यह कहना ही पड़ता है:-

" अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ । केहि अंकेत रघुपति सम लेखउँ ।।

अपने अनुपम चरित्र एवं शील स्वभाव के कारण राम की तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती । उनके अवतार की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है । उनके अलौकिक गुणों से सारा भारतीय वाङ्मय सुशोभित है ।

1- देखिए वाल्मीकीय रामायण-अयोध्याकाण्ड/सर्ग 2 में श्लोक 26 से 54 तक ।

प्रजापालक राजा के रूप में- सर्वोत्तम प्रजापालक एवं कुशल प्रशासक के रूप में उनका आदर्श आज तक अनुकरणीय है । वे अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझते थे । उनके शासनकाल में अयोध्या अत्यन्त सम्पन्न राज्य था । वहाँ के निवासी परस्पर प्रेम करते थे ।उनके राज्य में न कोई दीन था न दरिद्री । उनकी समस्त प्रजा सदाचारयुक्त थी । सब व्यक्ति अपने अपने धर्म।कर्तव्य। का पालन करते हुए वेद द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते थे । उन्हें । राम की प्रजा को। न किसी प्रकार का भय था, न शोक और न रोग ही । श्री राम के राज्य में इतनी अधिक सुव्यवस्था थी कि दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप किसी भी व्यक्ति को पीड़ित नहीं कर सकते थे । उनके शासन काल में पाप एवं अधर्म तो मानो पृथ्वीतल से निर्वासित ही हो गए थे ।उनके शासित सभी मनुष्य दम्भरहित, धर्मपरायण और पुण्यात्मा थे । अयोध्या की समृद्धि, सुव्यवस्था एवं शान्ति श्री राम की जितेन्द्रियता, नीतिनिपुणता एवं प्रजावत्सलता का ही परिणाम थी ।

रामावतार की श्रेष्ठता मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक कारणों से भी मानी गई है । श्री राम तथा श्री कृष्ण के रूप में मनुष्य सच्चिदानन्द परमात्मा को मानव रूप में अपने अत्यन्त निकट अवतरित देखता है । पुरुषोत्तम के रूप में उसमें उसकी दृढ़ आस्था उत्पन्न हो जाती है । उसे यह विश्वास हो जाता है कि पुरुषोत्तम भगवान मुझ मानव की अन्तर्व्यथा को अवश्य समझ सकेगा । मानव-हृदय की पीड़ा को, उसके दुःख-दर्द को उसके समान ही मनुष्य रूप में आचरण करने वाला कोई विभु ही संवेदना के साथ समझ कर उस पर करुणा कर सकता है । इस प्रकार श्री राम तथा श्री कृष्ण के रूप में भगवान और मनुष्य की दूरी बहुत अंशों में दूर हो गई । दूसरे शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं कि अपने अत्यन्त उच्च, अजेय एवं अगोचर पद को छोड़ कर श्रीराम रूप में परमात्मा साधारण मनुष्य की कुटिया तक स्वयं ही आ गया जहाँ वह कभी तो निषाद को गले लगाता है, कभी शबरी के बेरों का आतिथ्य ग्रहण करता है । वानरों, रीछों तथा गिद्धों तक कोवह मित्रता के प्रेम की पवित्रता प्रदान करता है । अत्याचारियों, अन्यायियों एवं हिंसकों से वह उसकी रक्षा धनुष बाण लेकर करता है । मानव की ही सुख शान्ति की कामना से वह धर्म की संस्थापना करता हुआ राधा बनकर पुत्रवत् उसका पालन करता है । फिर इससे बढ़कर कौन सा स्वरूप हो सकता है जो मानव पर मानव के रूप में कृपा करे तथा अपनी करुणा एवं कृपा से मनुष्यों को अत्याचार के विरुद्ध

1- देखिए- रामचरितमानस/उत्तरकाण्ड- दोहा 20 से 22 तक ।

सदैव संरक्षण देता रहे ; जब वह निराश हो तो आशा बँधाये और जब दुःखी हो, तब उसके आँसू पोंछे । रामावतार की श्रेष्ठता इस संवेदनशीलता, करुणा एवं कृपा में भी है । श्री राम कारुण्य रूप हैं एवं करुणाकर हैं,[1] जो सभी पर पिता के तुल्य कृपा करते हैं ।

आज के अनास्थावादी युग में जब नैतिक मान्यताएँ निरन्तर समाप्त होती जा रही हैं तथा जब मनुष्य के स्वार्थ का उदय समस्त मर्यादाओं को तोड़ कर हो रहा है, जब समाज के विध्वंसकारी तत्वों में बाढ़ आ गई है और वे नियमों के कगारों को तोड़ कर इस देश एवं समाज के जनजीवन को अस्तव्यस्त कर रहे हैं, राम का जीवन-चरित्र स्वार्थ रहित निर्लोभ जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर उन्हें दिशा एवं आलोक दे सकता है । मनुष्य समाज उनके सुन्दर चरित्र से अपनी वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करने के लिए उचित प्रेरणा ले सकता है ।

रामावतार की श्रेष्ठता राम-परिवार के उज्ज्वल चरित्रों के कारण भी है । श्री राम के परिकरों में से प्रत्येक का चरित्र अपने अपने स्थान पर अत्यन्त उदात्त है तथा अपनी परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मानव जीवन का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करने के कारण अनुकरणीय है । जिस प्रकार राम का आचार-विचार एवं व्यवहार दोषरहित कल्याण परम्पराओं का सृजन करने वाला एवं श्रेष्ठतम है उसी प्रकार सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान आदि का व्यवहार भी अपने अपने स्थान पर श्रेष्ठतम है । रामावतार की श्रेष्ठता के प्रसंग में राम परिकरों के विषय में कुछ कहना समीचीन प्रतीत होता है ।

धर्म के विनाश तथा धर्म की स्थापना के लिए जब परब्रह्म माया मनुष्य के रूप में अवतरित होकर सज्जनों को सुख देने वाली लीलाएँ करता है, अथवा अपने भक्तों के कल्याण एवं रंजन के लिए लीलाएँ करता है, अथवा पुरुषोत्तम रूप धारण कर इस जगत् में धर्माचरण का आदर्श प्रस्तुत करता है तब उसके चारों ओर उसे परिवृत किए हुए जो अन्य पात्र रहते हैं जिनके निमित्त पुरुषोत्तम के कार्य रहते हैं अथवा जो उन कार्यों के उद्भासित करने में सहायक होते हैं वे ही धाम अथवा चरित्र भगवान के लीलापरिकर कहे जाते हैं। लीला परिकरों में मानवों के अतिरिक्त देवता, राजा तथा पशु-पक्षी तक देखे जाते हैं । परब्रह्म की मूर्तिमती शक्ति सीता तथा परब्रह्म के अंशरूप भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न । राम के तीनों भाई। उनके लीला परिकरों में प्रमुख हैं । इनके अतिरिक्त मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के स्वरूप को उद्भासित करने के लिए माता-पिता, सखा- सेवक, बन्धु-बान्धव, मित्र तथा शत्रु और उनके सहायकों के चरित्रों को

1- श्री रामरक्षा स्तोत्र - श्लोक 32 ।

सजाया-सँवारा गया है । रामायण के लीला परिवारों का श्रेणी विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है:-

लीला- परिवार के प्रमुख पुरुष पात्र- लक्ष्मण, भरत, दशरथ, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण तथा रावण एवं मेघनाद ।

प्रमुख स्त्री पात्र- सीता, कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा तथा मन्थरा एवं शूर्पणखा ।

गौण पुरुष पात्र- (क) राम के स्वजन सम्बन्धी- शत्रुघ्न, सुमन्त्र, जनक, वसिष्ठ, विश्वामित्र ।

(ख) राम के सखा, सेवक, सहायक आदि- निषाद, अंगद, जाम्बवन्त, जटायु, सम्पाति, नल, नील आदि ।

(ग) ऋषिगण- परशुराम, भारद्वाज, अत्रि, अगस्त्य और वाल्मीकि । (मान्य में वाल्मीकि) ।

(घ) रावण के स्वजन और सहायक- कुम्भकर्ण, मारीच, खर, दूषण, मारयवान, प्रहस्त और अक्षयकुमार ।

गौण स्त्री पात्र- मन्दोदरी, त्रिजटा, तारा, अनुसूया, सुलसा तथा सीता की तीनों बहिनें ।-

उपर्युक्त पात्रों में से सब के चरित्र का वर्णन तो इस प्रबन्ध में सम्भव नहीं है परन्तु प्रमुख राम परिवारों में श्रीसीता, लक्ष्मण, भरत तथा हनुमान् के ही विषय में कुछ लिखने की चेष्टा की जायगी ।

1- श्री सीता जी

" इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिर्यद्भावलक्षणम् ।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥"

(सीतोपनिषद्)

सीतोपनिषद् के अनुसार सीता ब्रह्म विद्या स्वरूपिणी, सर्व वेदमयी, सर्व देवमयी, सर्व लोकमयी, सर्व कीर्तिमयी, सर्व धर्ममयी, सर्वाधार कार्यकारणमयी, इच्छा ज्ञान क्रिया शक्तिमयी चिच्छक्ति, महालक्ष्मी हैं जो जगत् के कल्याण के लिए जनकनन्दिनी का स्थूल रूप धारण कर पृथ्वी पर अवतरित हुई हैं । वे मनुष्यों को विशुद्ध ज्ञान तथा भक्ति की शिक्षा देने के लिए तथा निखिल कोशल आर्यों का विमल रूप दर्शाने के लिए पृथ्वी पर प्रकट हुई । किसी भी

अवस्था में उनका चित्त सर्वाभिराम श्री रामलला को छोड़कर अन्य किसी रूप में रमण नहीं करता। वे अपने लौकिक चरित्रों से स्त्रियों को पातिव्रत्य की शिक्षा देती हैं। उनका मातृभाव भी अनुपमेय है। वे अपनाओं पर अनन्त अनुग्रह करती हैं। अपने मानवीय रूप में धरती की पुत्री होने के कारण वे धरती के समान ही धैर्यशालिनी हैं। ब्रह्मानन्द में लीन रहने वाले जनक विदेह की दुहिता होने के कारण वे अखण्ड ज्ञानवती एवं आनन्दस्वरूपा हैं। परम प्रतापमय ब्रह्मवेत्ताओं अवतार श्री राम की सहधर्मिणी होने के नाते वे भी परमप्रतापवती तथा सूर्य के समान तेजस्वरूपा हैं तथा स्वयं मूलप्रकृति एवं महामाया होने के कारण वे परमशक्ति एवं जगज्जननी हैं। वे माँ हैं और तदनुसार अनन्त ममता, अनन्त प्रेम, अनन्त सुखदायी आशीर्वादों की देने वाली वरदात्री देवी हैं। श्री सीता ब्रह्मस्वरूपा हैं। वे राम से उसी प्रकार अभिन्न हैं जैसे वाणी से उसका अर्थ तथा जल से उसकी लहर[2]। ताण्डिय ने जिन्हें प्रकृति पुरुष कहा है वस्तुतः वे ही सीताराम हैं। इसीलिए वे सृष्टि की उत्पत्ति करने वाली, उसकी स्थिति रखने वाली अथवा पोषण करने वाली तथा उसका संहार करने वाली अनादि शक्ति हैं[3]। जब जब श्री राम माया मानव रूप में अवतरित होते हैं तब तब वे भी उनकी लीलाओं को उद्भासित करने हेतु स्वयं महामाया तथा परमशक्ति[4] होते हुए भी साधारण स्त्री के रूप में पृथ्वीतल पर प्रकट होती हैं तथा राम के लीला विलासों में सहायता करती हैं। इसीलिए सीतोपनिषद् उन्हें भिन्न भिन्न रूपा कहता है।

रामचरित मानस में तुलसी ने उन्हें संसार की उद्भव, स्थिति, संहारकारिणी,

---

1- उत्पत्ति-स्थितिसंहारकारिणी सर्वेश्वरी। सीता जननी प्रिया मूलप्रकृतिरीश्वरी॥
(सीतोपनिषद्)

2- गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदहुँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥
रामच० मा० बालकाण्ड

3- उद्भव स्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीं।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
रा० च० मा० बालकाण्ड

4- नारद वचन सत्य सब करिहौं। परमशक्ति समेत अवतरिहौं॥
रा०च० मा० बालकाण्ड

कौमारिणी तथा तपोविचारिणी कहा है[1]। वे परब्रह्म की परमशक्ति हैं[2]। वे उमा, रमा तथा ब्रह्मा आदि से सेवित वन्दिता जगदम्बा हैं तथा अव्यय पतिव्रतारूपिणी हैं[3]। उनके कृपाकटाक्ष के लिए देवता निरन्तर अभिलाषा करते रहते हैं परन्तु वे उनकी ओर देखती तक नहीं हैं[4]। उनकी अनुपम छवि देखकर सभी स्त्री पुरुष मुग्ध हो जाते हैं क्योंकि जनकतनया अनुपम सौन्दर्यमयी हैं। वे रूप, शील तथा गुणों में अनुपम हैं। सीता श्री राम से उसी प्रकार अभिन्न हैं जैसे शरीर से उसकी छाया, सूर्य से उसकी प्रभा तथा चन्द्रमा से उसकी चाँदनी[5]। उनका श्री राम से प्रगाढ़ प्रेम है इसीलिए सर्वोत्तम वैभव सम्पन्न राज्य की समस्त सुख सम्पदाओं को त्याग कर वे कुछ कंटक एवं वन्य पशुओं से आकीर्ण वन को श्री राम के साथ चली गईं। वहाँ पर श्री राम के साथ सीता नगर, कुटुम्ब के लोगों तथा घर की याद भुलाकर अत्यन्त सुखी रहा करती हैं। प्रत्येक क्षण पति के चन्द्रमा के समान मुख को देखकर वे परम प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोरी चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न रहती है। सीता का मन श्री राम के चरणों में सुरक्षित है जिससे उनको वन हजारों अवध के समान प्रिय लगता है[6]। प्रियतम के साथ उन्हें पर्णकुटी भी प्रिय लगती है तथा वन के वन मृग परिवार के सदस्यों के समान प्रिय लगने लगते हैं[7]। जब उनके पिता जनक ने पिनाकधारी सीता को तपस्विनी वेष में देखा तो उन्हें विशेष प्रेम एवं सन्तोष हुआ तथा वे कह उठे " बेटी, तू ने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरी कीर्ति रूपी नदी देवनदी गंगा को भी जीतकर। जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है। करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली है। गंगा जी ने

1- उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ।। रा० च० मा० बालकाण्ड श्लोक 5 ।

2- छति तेहु पावक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ।।
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड 126 ।

3- उमारमा ब्रह्मादि वन्दिता । जगदम्बा सेवतमनिन्दिता ।।
रा० च० मा० उत्तरकाण्ड

4- जासु कृपाकटाछ सुर चाहत चितव न सोई । राजु पदारबिन्द रति करत स्वभावहिं खोइ ।।
रा० च० मा० उत्तरकाण्ड

5- प्रभु कलाधाम परम रुचिरी । तनुतव रहति छाँह किमि छोरी ।
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई । कहँ चन्द्रिका चंदु तजि जाई ।।
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड 97/3 ।

6- राम संग सिय रहति सुखारी । पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ।
छिनु छिनु पिय बिधु बदन निहारी । प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ।।
नाथ साथ साथ प्रिय स्वामी । सरिता सरल सिखर बन भूमी ।
सिय मनु राम चरन अनुरागा । अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ।।
रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड 140/1-2 ।

7- पर्णकुटी प्रिय प्रियतम संगा । प्रिय परिवार कुरंग बिहंगा ।। रा०च० मा० अयो० 140/3 ।

तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों को बड़ा । तीर्थ बनाया है, परन्तु तेरी कथा कीर्तिनी नदी ने तो अनेक समाजों को पवित्र बना दिया है।[1] उनके पातिव्रत्य की प्रशंसा करते हुए अनसूया । जो स्वयं पतिव्रताओं में श्रेष्ठ थीं। सीता से कहती हैं कि " हे सीता, तुम्हारा नाम स्मरण कर स्त्रियाँ पतिव्रता धर्म को धारण करेंगी । तुम्हें श्री राम प्राणों के समान प्रिय हैं ।"[2] गृहस्थ जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए वन में तथा अयोध्या लौटने पर अयोध्या में भी सीता ने कैकेयी सहित समस्त सासों की अपनी सेवा सेवा में कर लिया।[3] सेवक, सेविकाओं के होते हुए भी वे गृह-परिचर्या स्वयं करती थीं तथा श्री रामचन्द्र की आज्ञाओं का पालन सदैव करती थीं । कवि ने अशोक वाटिका में सीता का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह सर्वथा वन्दनीय एवं अनुकरणीय है[4] । जिस प्रकार भी कृपासिंधु श्री राम को सुख प्राप्त हो सकता था सीता उसी प्रकार सेवा करती थीं[5] । सीता ने अपने चरित्र के आदर्श से भारतीय- नारी को विश्व श्रेष्ठ बना दिया । सीता के पावन चरित्र ने आज तक नारी-धर्म एवं नारी-आचरण की रक्षा की है । भारतीय गृहस्थ जीवन में जो कुछ सुख शान्ति है वह परम पवित्र

- -

1- तापसवेष जनक सिय देखी । भयउ पेमु परितोषु बिसेखी ।।
पुनि पतिव्रत किए कुल दोऊ । सुजस धवल जगु कह सब कोऊ ।।
बिसि तुरतहि कीरति सरि तोरी । गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ।।
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे । एहिं किए साधु समाज घनेरे ।।

रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड 287/1-2 ।

2- सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं । तोहि प्रानप्रियराम कहेउ कथा संसारहिं ।।

रा० च० मा० अरण्यकाण्ड

3- (क) सीय सासु सेवासुख कीन्हीं । सिन्ह सहि सुख सिख आसिष दीन्हीं ।

रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड

(ख) कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवहिं सिलहिं मान मद नाहीं ।।

रा० च० मा० उत्तरकाण्ड

4- " कृस तनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ।।
मिलि पट मलिन दिए मन राम पदकमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ।।" रा० च० मा० सुन्दरकाण्ड

5- निज कर गृह परिचरजा करई । रामचन्द्र आयसु अनुसरई ।।
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानहि । सोइ कर श्री सेवा बिधि जानहि ।।

रा० च० मा० उत्तरकाण्ड

सीता के तप और त्यागमय जीवन की देन है । आज के बदलते हुए समाज में राम के जीवन-चरित्र का प्रभाव भी ही पुरुष वर्ग पर दिखायी न पड़ता हो परन्तु सीता के निष्कलंक आचरण की ज्योति आज भी भारतीय नारी के जीवन-पथ को आलोकमय बना रही है । सीता-चरित ने हमारे जीवन में जो सरसता, सुख एवं शान्ति अनायास ही प्रदान की है वह जाने-अनजाने हम सब को ही सुखी बनाए है । राम का दर्शन आज भी ही किसी को न होता हो परन्तु देवी सीता तो घर-घर में बैठी हैं तथा सब को सरस, मधुर एवं शान्तिमय जीवन जीना सिखा रही हैं । इसीलिए पतिव्रता-शिरोमणि अनसूया ने रामायण में उनकी परम प्रशंसा की है - " हे सीते ! बन्धु जनों का परित्याग करके एवं सब प्रकार के आदर-मान तथा धन-वैभव को भी त्यागकर पिता के आदेश का पालन करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध राम का तुम वन में अनुगमन कर रही हो- यह देखकर मुझे हर्ष हो रहा है[1] ।" सीता की माता ने विवाह के समय उन्हें शिक्षा दी थी " पतिदेव की सेवा शुश्रूषा के अतिरिक्त नारी के लिए अन्य किसी तपश्चर्या का विधान शास्त्र में नहीं है[2] " । सीता ने अपने सम्पूर्ण जीवन में इस शिक्षा के अनुसार ही व्यवहार किया । वे शिक्षा शिक्षुकी थीं तथा सम्पूर्ण विद्याओं की जानने वाली थीं । वे श्री राम को धर्माचरण के लिए प्रेरित करती थीं । यद्यपि श्री राम स्वयं धर्मवेत्ता थे तथा धर्माचरण पर दृढ़ थे परन्तु सीता देवी की प्रेरणा भी उन्हें निरन्तर प्राप्त होती रहती थी । सीता उनकी सहधर्मचारिणी थीं और उन्हें प्राणों से भी प्रिय थीं[3] । पातिव्रत्य का जो उत्तम आदर्श सीता ने स्थापित किया वह सदैव ही अनुकरणीय रहेगा । राम को यश के शिखर तक पहुँचाने में सीता के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है । राम का चरित्र-विकास ही साहित्यिक रचनाओं में सीता के चरित्र के योग से हुआ है । वस्तुतः सीताराम अभिन्न हैं ।

1- त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानबुद्धिं च मानिनि ।
अवलम्ब्य वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ।। वा०रा० अयोध्याकाण्ड 117/22

2- पतिशुश्रूषान्नान्यास्तपो नान्यद् विधीयते ।।

वा०रा० 2/118/9 ।

3- सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ।
सहधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।।

वा० रा० 3/10/20-21 ।

श्री लक्ष्मण

श्री राम के साथ छाया के समान चलने वाले लक्ष्मण श्री राम के परिकरों में राम के सर्वाधिक निकट हैं। व्यूह रूप अवतार में विष्णु अपने परिकरों सहित मानव रूप में अवतार लेकर संसार के कल्याण के लिए लीलाएँ करते हैं। इसीलिए अवतार ग्रहण के पूर्व ही परमात्मा ने देवताओं के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि वे औरों सहित पृथ्वी पर अवतार लेकर उसके पाप एवं अत्याचार के भार को दूर करेंगे।[1] वाल्मीकीय रामायण के लंकाकाण्ड में लक्ष्मण जी स्वयं भी स्मरण करते हैं कि " वे भी विष्णु के अंशावतार हैं।"[2] वे राम के उस सामीप्य को प्राप्त कर चुके हैं कि जिसके बिना वे एक क्षण भी नहीं रह सकते हैं। गोस्वामी जी ने इसीलिए लिखा है बाल्यकाल से ही अपना सितीपी स्वामी समझ कर लक्ष्मण ने श्री राम के चरणों में प्रेम किया[3]। वे राम के साथ ही उठते, बैठते, खाते-पिरते, खेलते और सोते थे। उनका सम्पूर्ण क्रिया-कलाप तथा सम्पूर्ण जीवन राम के लिए ही था। हम संक्षेप में कह सकते हैं कि " वे पूर्णतः राममय थे।"

लक्ष्मण ने भ्रातृ-कर्तव्य का श्रेष्ठतम आदर्श प्रस्तुत किया है। मानव को सुन्दर एवं श्रेष्ठ जीवन जीने की जो शिक्षा भगवान् राम ने मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में दी है वह लक्ष्मण जैसे भाई के बिना पूर्ण नहीं हो सकती थी। महाराज दशरथ ने जब राम को राज्याभिषेक की घोषणा के बाद चौदह वर्षों के लिए वनवास दिया तो लक्ष्मण ने तुरन्त यह निश्चय कर लिया कि वे भी चौदह वर्षों तक राम के साथ वन में रहेंगे। वे अपने प्राणों से भी प्रिय भाई को निर्जन वन में अकेले किस प्रकार भेज देते? यह उनका अत्यन्त मानवतापूर्ण एवं सौजन्यमय दृष्टिकोण था। जिस भाई के साथ जन्म से ही वे प्रत्येक अवसर पर प्रत्येक कार्य में साथ रहे थे उसको वन में अकेले कैसे जाने देते। उसके

1- रामचरित मानस/बालकाण्ड/दो0

2- आत्मनश्च पितुश्चैव लक्ष्मणः शत्रुसूदनः।
विष्णोर्भागमसीमात्मानं पुरुषमुत्तमम्॥

वा0 रा0 59/122 ।

3- बारिहिं तें निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥

रा0 च0 मा0 बालकाण्ड

साथ वन जाने का निश्चय कितना सुदृढ़ था । राम के साथ वन जाने के लिए उन्हें कितने त्याग करने पड़े, कितने दुःखों से सम्पन्न होना पड़ा यह बात स्वयं स्पष्ट है । रोती हुई सासुओं को भी त्यागना ही पड़ा । परन्तु अपनी पतिव्रता, सुशीला एवं आज्ञाकारिणी पत्नी को भी चौदह वर्षों के दीर्घ समय के लिए त्यागना पड़ा । स्नेह के छाने महान् उत्तरदायित्व के सामने फिर सुख एवं वैभव का त्याग तो उनके लिए नगण्य ही था । उन्होंने राम के राज्याभिषेक के स्थान पर उन्हें वन फिर जाने की सूचना प्राप्त होने के पश्चात् भी राम के समक्ष ही कौसल्या से कहा था " देवि, मैं सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञ की आप आगर तुम से सच्ची बात कहता हूँ कि मेरा अपने भ्राता श्री राम में हार्दिक अनुराग है । देवि : आप विश्वास रखें, यदि श्री राम अग्नि हुई आग में या घोर वन में प्रवेश करने वाले होंगे तो मैं उनसे भी पहले उसमें प्रविष्ट हो जाऊँगा[1] ।" फिर वे श्री राम से भी कहते हैं कि " मैं आपके बिना स्वर्ग में जाने, अमर होने तथा सम्पूर्ण लोकों का वैभव प्राप्त करने की भी इच्छा नहीं रखता[2] ।" भाई के प्रति इतने सुन्दर प्रेम की पराकाष्ठा और क्या होगी तथा भाई के लिए आत्मोत्सर्ग का इतने सुन्दर और कौन सा आदर्श होगा ।

पुरुषार्थी लक्ष्मण जी केवल अपने एवं अपना पुरुषार्थ में ही विश्वास रखते हैं दैव अथवा भाग्य का भरोसा नहीं करते । वे जानते हैं कि वे सम्पूर्ण विश्व का राज्य केवल अपनी भुजाओं के बल पर प्राप्त कर सकते हैं । वे किसी प्रकार का अन्याय भी सहन करने को तैयार नहीं हैं । इसीलिए वे कौसल्या से कहते हैं कि " मैं रघुनन्दन श्री राम का कोई अपराध अथवा दोष नहीं देखता हूँ जिससे उन्हें राज्य से निकाला जाय और वन में रहने के लिए विवश किया जाय[3] ।"

- -

1- अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः ।
तत्रेन धनुषा चैव इत्येतेनैव मे शपे ।। 16 ।।
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ।।17 ।। वा० रा० अयोध्याकाण्ड 21/16-17 ।

2- न देवलोकाकाङ्क्षी नामरत्वमहं पुनः ।
वैधर्म्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना ।। वा० रा० अयोध्याकाण्ड 31/5 ।

3- नास्यापराधं पश्यामि नापि दोषं तथाविधम् ।
येन विप्रकृतो राज्याद् वनवासाय राघवः ।।

वा० रा० अयोध्याकाण्ड 21/4 ।

इसीलिए उन्होंने श्री राम को परामर्श देते हुए कहा " रघुनन्दन ! जब तक कोई भी मनुष्य आपके वनवास की बात को नहीं जानता है, तब तक ही आप मेरी सहायता से इस राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लीजिए ।"[1] " शत्रुदमन श्री राम ! आपके और मेरे साथ भारी वैर बाँध कर इनकी क्या शंका है कि यह राज्यलक्ष्मी ये भरत को दे दें ।"[2]

लक्ष्मण के चरित्र की श्रेष्ठता अथवा उनके चरित्र का आदर्श बड़े भाई श्री राम के प्रति अनिर्वचनीय अनुराग में ही है । प्रेम, श्रद्धा एवं भक्ति से वे राम की सेवा में सन्नद्ध रहते हैं तथा उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं । आज्ञापालन से बढ़कर अच्छे स्वामी की और कोई सेवा नहीं है[3] ।

लक्ष्मण जितेन्द्रिय थे । वन में चौदह वर्षों तक उन्होंने कन्द मूल फल खाकर जीवन-यापन किया तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया । जैसे कोई साधक ब्रह्म अथवा इष्ट की प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से साधना करता है उसी प्रकार लक्ष्मण मनसा वाचा-कर्मणा से श्री राम की सेवा में तत्पर रहकर अपनी इष्ट साधना में लगे रहते थे । वे वैरागी थे । अयोध्या का सम्पूर्ण वैभव तो श्री राम के सान्निध्य की तुलना में उनके लिए तुच्छ था ही उन्हें किसी कीर्ति, सुयश अथवा सुगति की भी कामना नहीं थी । उन्होंने श्री राम के साथ वन जाने का आग्रह करते हुए कहा कि " धर्म और नीति का उपदेश तो उसके प्रति करना चाहिए जिसे कीर्ति, भौतिक वैभव अथवा । पारलौकिक सद्गति प्रिय हो । जो मन, वचन, कर्म से चरणों में अनुरक्त हो, हे कृपासिंधु ! क्या वह त्याग के योग्य है ?"[4] उन्होंने सच्चे भक्त के समान स्पष्ट शब्दों में श्री राम से कहा कि " प्रभो आप विश्वास करें कि मैं आपके अतिरिक्त किसी माता पिता अथवा गुरु को नहीं जानता हूँ । जगत् में जहाँ तक स्नेह का सम्बन्ध है, प्रेम एवं विश्वास है, जिसको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी ! दीनबन्धु ! अन्तर्यामी ! मेरे तो वह सब कुछ आप ही हैं । लक्ष्मण सम्पूर्ण संसार से विरक्त हैं केवल श्री राम के चरणों में ही अनुरक्त हैं । प्रेम की

1- यावदेव न जानाति कश्चिदर्थमिमं नरः ।
तावदेव मया साधोरात्मस्थं कुरु शासनम् ।। वा० रा० अयोध्याकाण्ड 21/8 ।

2- रक्षया चैव मया चैव कृत्वा वैरमनुत्तमम् ।
कस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिसूदन ।। वा० रा० अयोध्याकाण्ड 21/15 ।

3- " आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा ।"
रा०च० मा० अयोध्याकाण्ड

4- धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ।
मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई ।। रा०च०मा०अयो० 71/4 ।।

5- गुरु पितु मातु न जानऊँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू ।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ।।
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ।।
रा० च० मा० अयो० 71/2-3 ।।

यह पराकाष्ठा है । एक निष्ठ साधना का यही आदर्श है । वस्तुतः साधना का मूर्तिमान् रूप लक्ष्मण ने ही प्रस्तुत किया है । उन्होंने श्री राम के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था । साधक की साधना की यही पूर्णता है कि वह अपना सब कुछ इष्ट देव के चरणों में समर्पित कर स्वयं तद्रूप हो जाता है । लक्ष्मण ने यही किया । इसीलिए संसार के सभी साधकों में वे सर्वश्रेष्ठ थे ।

अपनी एकनिष्ठ साधना, त्याग और अनुराग से लक्ष्मण ने जो आदर्श प्रस्तुत किया वह अनन्त युगों तक अनुकरणीय रहेगा । भाई को भाई के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, यह लक्ष्मण से सीखा जा सकता है । सेवक को स्वामी के प्रति किस प्रकार का आचरण करना चाहिए यह भी लक्ष्मण से ही सीखा जा सकता है । आत्मोत्सर्ग करने वाले श्रेष्ठ परमार्थियों में लक्ष्मण अग्रणी हैं । लक्ष्मण के चरित्र का बारबार अध्ययन आज के युग को दिशा दे सकता है ।

श्री हनुमान्

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहम्
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुण निधानं वानराणामधीशम्
रघुपतिप्रिय भक्तं वातजातं नमामि ।।

राम परिकरों में श्री हनुमान् राम के विशेष कृपा पात्र हैं । तुलसीदास के अनुसार " हनुमान् के समान भाग्यशाली एवं राम के चरणों में अनुराग रखने वाला अन्य कोई नहीं है क्योंकि प्रभु श्री राम ने स्वयं अपने मुख से हनुमान् के प्रेम तथा उनकी सेवाओं का वर्णन बार बार किया है । भारत के उत्तरी एवं मध्य भाग में इष्ट देव के रूप में हनुमान् जी की पूजा अधिक बहुत प्रचलित है । पंजाब से लेकर बंगाल तक तथा काश्मीर से कन्या कुमारी तक सभी स्थानों पर श्री हनुमान् जी के मन्दिर दृष्टिगत होते हैं । भारत के सभी प्रान्तों में न केवल नगरों में

- -

1- हनुमान समान बड़भागी । नहिंकोउ राम चरन अनुरागी ।
गिरजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ।।

ही अपितु गाँव-गाँव में हनुमान मन्दिर देखे जा सकते हैं । हनुमान जी विद्वानों से लेकर नितान्त अनपढ़ों तक के देवता हैं । जहाँ जहाँ भगवान श्री राम के मन्दिर हैं वहाँ वहाँ उनके अनन्यतम भक्त हनुमान की भी स्थापना की गई है । इसके अतिरिक्त महावीर हनुमान की प्रतिष्ठा स्वतंत्र देवता के रूप में भी की गई है । रक्षक के रूप में हनुमान की मढ़िया भारत के प्रत्येक ग्राम में दिखाई देती है जहाँ वे भूत-प्रेत, पिशाच आदि से ग्राम निवासियों की रक्षा करते हैं तथा अपनी वीरता एवं राम भक्ति से लोगों में उत्साह का संचार करते हैं । वे जन देवता के रूप में पूजित हैं ।

भारत के बाहर भी महावीर हनुमान राम के अनन्यभक्त एवं सेवक के रूप में चित्रित किए गए हैं । थाइलैंड, कम्बोडिया, लाओस तथा इंडोनेशिया में राम-मन्दिरों एवं भित्तियों आदि पर उत्कीर्ण चित्रमय राम कथा में हनुमान जी भी सर्वत्र दिखाई देते हैं । उपर्युक्त देशों के शाही बौध्द-मंदिरों कीदीवारों पर हनुमान् श्री राम के वीर सैनिक एवं दूतरूप में उत्कीर्ण हैं । नेपाल तथा श्री लंका में तो भारत के समान ही हनुमान् जी की स्थापना है । बर्मा, तिब्बत, जावा तथा सुमात्रा आदि में भी हनुमत्-चरित उपलब्ध है । इस प्रकार भारत के बाहर भी हनुमान् सुपूजित एवं सुसम्मानित हैं ।

इष्टदेव के रूप में श्री हनुमान् की प्रतिष्ठा गुप्तकाल से ही हो गई थी[1]। वर्तमान समय में हनुमान् जी की पाँचवीं-छठीं शताब्दी में निर्मित प्राचीनतम मूर्तियाँ प्राप्त हैं । मध्यकाल में राजमुद्राओं पर भी हनुमान् की मूर्ति उत्कीर्ण की जाने लगी थी । चन्देल राजमुद्राएँ इसका प्रमाण हैं[2] ।

श्री हनुमान काचरित्र अनेक पुराणों में रामकथा के साथ अनुस्यूत है । स्कन्द पुराण के अवन्तीखण्ड के 79 वें अध्याय में श्री हनुमान के जन्म एवं पराक्रम की कथा वर्णित है । इस इस खण्ड के 31 वें अध्याय में श्री हनुमत्केश्वर शिवलिंग कीस्थापना का प्रसंग दिया गया है । इसी पुराण के ब्रह्मखण्ड में रामेश्वर एवं हनुमदीश्वर की स्थापना की कथा वर्णित है[3] ।

- -

1- स्थापत्य एवं मूर्तिकला में श्री हनुमान - डा0 देवेन्द्रनाथ शर्मा ।
। कल्याण - श्री हनुमानांक- पृ0 423 ।

2- कल्याण- श्री हनुमानांक- पृ0 422 ।

3- उत्तरे रामनाथस्य लिङ्गं स्थेनाहृतं पुरा ।
आज्ञया रामचन्द्रस्य स्थापयामास वायुजः ।।

स्कन्द पुराण / ब्रह्मखण्ड 46/77

शिवपुराण में भी हनुमान जी का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अनुसार श्री राम कार्य की सिद्धि के लिए शिवजी ने स्वयं हनुमान का रूप धारण किया था । पुष्टपुराण के अनुसार भी स्वयं भगवान शिव ने सीता के अपमान से क्षुब्ध होकर तथा राम-कार्य की सिद्धि के लिए हनुमान बनना स्वीकार किया । ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी हनुमान जी के पराक्रम का उल्लेख है[1] । इसके अतिरिक्त पद्मपुराण, भागवत पुराण एवं महाभारत में भी रामकथा के साथ ही तथा अन्यत्र भी हनुमान जी का उल्लेख किया गया है ।

श्री हनुमान जी संसार में शंकर-सुवन केसरीनन्दन, मारुति एवं अंजनेय के नाम से विख्यात हैं । उक्त सभी नामों का समाधान आनन्द रामायण में हनुमान जन्म-कथा में हो जाता है । इसके अनुसार कपिराज केसरी की अत्यन्त रूपवती पत्नी अञ्जना ने पुत्र की प्राप्ति के लिए सात सहस्र वर्षों तक भगवान शंकर की उपासना की । कठोर तपश्चरण से आशुतोष भगवान शंकर प्रसन्न हो गए । अञ्जना ने उनसे वर माँगा कि उन्हें समस्त सद्गुणों से सम्पन्न योग्यतम पुत्र की प्राप्ति हो । भगवान शंकर ने अञ्जना को आश्वस्त किया कि " एकादश रुद्रों में मेरा अंश ग्यारहवाँ रुद्ररूप ही तुम्हारे पुत्र के रूप में प्रकट होगा । तुम मन्त्र ग्रहण करो । पवन देवता तुम्हें प्रसाद देंगे । पवन के उस प्रसाद से ही तुम्हें सर्वगुणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होगी ।" ऐसा कह कर भगवान शंकर अन्तर्धान हो गए । अञ्जना देवी मंत्र का जप करने लगीं । उसी समय एक गृद्धी कैकेयी के भाग का पुत्रदायक पायस लिए आकाश में उड़ रही थी । सहसा झंझावात आया । पायस गृद्धी की चोंच से गिर गया और पवन देव ने उसे अञ्जना की अञ्जलि में डाल दिया । अञ्जना ने तुरन्त पवन प्रदत्त पायस आदरपूर्वक ग्रहण कर लिया तथा गर्भ को धारण किया जिसके परिणामस्वरूप अत्यन्त बलशाली पुत्र को जन्म दिया । इस प्रकार श्री हनुमान् शंकर के रुद्रांश से अवतरित हुए जिसमें पवन देव की सहायता रही । अतः वे शंकर-सुवन तथा पवन पुत्र कहलाये । वानरराज केसरी उनके पिता तथा अञ्जना देवी उनकी माता थी हैं ।

श्रीहनुमान बाल्यकाल से ही अत्यन्त पराक्रमी थे । वे बाल्यकाल में ही सूर्य को आच्छादित कर चुके थे तथा इन्द्र तेभी मुठभेड़ कर चुके थे । इन्द्र के वज्रप्रहार से ही बालक हनुमान की हनु (ठुड्डी) का एकभाग क्षत हो गया । अपने पुत्र की पीड़ा से पवन देव कुपित

- -

1- ब्रह्मवैवर्त पुराण में हनुमान स्वयं कहते हैं कि :-

मर्कटी डिम्भरूपाणां च लंकां पश्यामि सुप्रते ।
पिपीलिकातथामिव सौन्दर्यं राक्षसं तथा ।।

ब्रह्मवैवर्त 62/75-76

हो गए । तब उनकी प्रसन्नता के लिए हनुमान को स्मरण करते हुए उन्हें बल, पराक्रम सम्बन्धी अनेक वरदान दिए । हनुमान को इन्द्रादि देवताओं ने वीर, बलवान, कृतज्ञ, पराक्रमी, तेजपूर्ण एवं विद्याबुद्धि सम्पन्न होने के अनेक वरदान दिए । हनुभङ्ग के कारण इन्द्र ने उनको हनुमान नाम दिया[1] । अतुलित बल तथा उनकी बालसुलभ चपलता से पीड़ित ऋषियों ने उनको शाप दिया था कि वे अपने बल को दीर्घ समय तक भूले रहेंगे । जब कोई उन्हें उनकी कीर्ति का स्मरण करायेगा तभी उन्हें अपना बल याद आयेगा और बल बढ़ेगा[2] । तब से महावीर हनुमान अपने बल को भूलकर निरन्तर श्री राम के ध्यान में मग्न रहते हैं । जब कभी कोई उन्हें उनके बल का स्मरण कराता है तब वे उस स्तुति से संविलित हो उसकी रक्षा करते हैं ।

सम्पूर्ण राम साहित्य श्रीहनुमान की वीरता एवं पराक्रम की कथाओं से परिपूर्ण है । वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड में उनके चरित्र का प्रारम्भ होता है और सुन्दरकाण्ड एवं युद्ध काण्ड में उनका उत्तरोत्तर विकास होता है । किष्किन्धाकाण्ड में बाली से भयभीत सुग्रीव श्री राम और लक्ष्मण को देखकर भय से चञ्चल हो उठता है तब आञ्जनेय ही उसे धैर्य बँधाते हैं और स्वयं राम से मिलने जाते हैं । सीता की खोज में गए हुए वानर जलसमुद्र पार करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं तब हनुमान ही समुद्र को पारकर लंका जाकर सीता की खोज करने को तैयार होते हैं । इसीलिए समुद्रोल्लंघन के लिए प्रेरित करते हुए वृद्ध जाम्बवान् उनसे कहते हैं कि "हनुमन् ! तुम तो वानर राज सुग्रीव के समान पराक्रमी हो तथा तेज और बल में श्री राम और लक्ष्मण के तुल्य हो । पक्षिराज गरुड़ के दोनों पंखों में जो बल है वही पराक्रम तुम्हारी इन दोनों भुजाओं में भी है । तुम्हारा तेज और विक्रम भी उनसे कम नहीं है । वानर शिरोमणे ! तुम्हारा बल, बुद्धि, तेज और धैर्य भी समस्त प्राणियों से सबसे बढ़कर है फिर तुम । समुद्रोल्लंघन । हेतु । अपने आप को क्यों तैयार नहीं करते ।"[3] संस्कृत साहित्य में वर्णित हनुमान का पराक्रम एवं बल-पौरुष अपरिमित

1- मारुतेरसृष्टकल्पेन हनुरस्य यथा हतः । नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति ।।
वा० रा० 7/36/11

2- बाधते यद् तमाश्रित्य बलमस्मान् प्लवंगम ।। तद् दीर्घकालं वेत्सीति नास्मार्ते शापमोहितः ।
यदा ते स्मारयेत् कीर्तिस्तदा वै वर्धी बलम् ।। वा० रा० 7/36/35-35

3- हनुमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि । रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ।।
पक्षयोर्यद्बलं तस्य भुजवीर्यं बलं तव । विक्रमश्चापि वेगश्च न ते तेनापहीयते ।।
बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुङ्गव । विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ।।

वा० रा० 4/66/ 3 तथा 6-7 ।

एवं अतुलनीय है । बाल्यकाल में ही सूर्य को निगल जाना, इन्द्र के वज्र प्रहार को सह लेना, समुद्र को छलाँग लगा कर पार कर लेना, अशोकवाटिका का उजाड़ना, राक्षसों को मारना, लंकादहन, राम रावण युद्ध में पराक्रम सहित युद्ध करना, संजीवनी लाकर लक्ष्मण के प्राण बचाना तथा अहिरावण का वध करने से सम्बन्धित समस्त घटनाएँ उनके बल पौरुष अथवा पराक्रम का प्रमाण हैं ।

श्री हनुमान् केवल बल पराक्रम में ही सबसे आगे नहीं थे अपितु विद्वता में भी अद्वितीय थे । वे वेद शास्त्रों के ज्ञाता थे तथा उन्होंने व्याकरण का अध्ययन भली प्रकार किया था । वे मधुरवाणी बोलने वाले, वाक् चतुर तथा वाक्यकोविद् थे । श्री राम से शुद्ध व्याकरण सम्मत संस्कृत भाषा में वार्तालाप किया था । उनकी सुसंस्कृत एवं मधुर वाणी से श्री राम अत्यधिक प्रभावित हुए थे तथा उन्होंने लक्ष्मण से उनकी वाणी की प्रशंसा करते हुए यह तक कह दिया था कि- " वध करने के लिए तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इनकी अद्भुत वाणी से बदल सकता है[2] । निष्पाप लक्ष्मण ! जिस राजा के पास इनके समान दूत न हो, उसके कार्यों की सिद्धि कैसे होसकती है[3] । यह प्रकरण हनुमान की अद्भुत विद्वता का परिचायक है ।

श्री हनुमान ज्ञानियों में भी अग्रणी हैं । योगाभ्यास के द्वारा उन्हें अणिमा इत्यादि समस्त सिद्धियाँ प्राप्त थीं । वे अध्यात्म तत्त्व के वेत्ता थे । इसीलिए विनयपत्रिका में गोस्वामी तुलसीदास उनकी शक्ति तथा बुद्धि की प्रशंसा करते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं - " हे पवन पुत्र ! आप वेदान्त के जानने वाले, नाना प्रकार की विद्याओं के विशारद, चारों वेद, छः वेदांग । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष के ज्ञाता, ब्रह्मचर्यव्रत के निभाने, ज्ञान-विज्ञान और वैराग्य के पात्र हैं । शुकदेव जी एवं नारदादि मुनि सदा आपकी विमल गुणावली का गान करते रहते हैं[4] । रामायण में रावण से वार्तालाप में तथा

1- नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः । नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ।।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् । बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ।। वा.रा. 4/3/28-29

2- अनया चित्रया वाचा चित्रयानव्यञ्जनस्वया । कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेरपि ।।
वा० रा० 4/3/33

3- एवं विधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्य तु । सिद्ध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयो मम ।।
वा० रा० 4/3/34

4- जयति वेदान्तविद्, विविध-विद्याविशद, वेद-वेदांगविद् ब्रह्मचारी ।
ज्ञान-विज्ञान - वैराग्य- भाजन विभो, विमल गुण गनति शुक नारदादी ।।

। विनयपत्रिका 26/8 ।

तारा को बालि-निधन के अवसर पर समझाते समय हनुमान के औचित्य ज्ञान का दर्शन प्रत्यक्ष ही हो जाता है ।

श्री हनुमान जितेन्द्रिय एवं बाल ब्रह्मचारी हैं । उनकी जितेन्द्रियता की प्रशंसा रामायण में बार-बार की गई है । उनमें ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग, तितिक्षा, प्रज्ञा तथा विशाल बुद्धि कौशल है । रामायण में उन्हें बार बार बुद्धिमानों श्रेष्ठ बताया गया है । वे वीतराग एवं वैरागी हैं । अपने बल, बुद्धि, पराक्रम, विद्या एवं अलौकिक वाक्-चातुर्य के कारण वे दूत कार्य सर्वोत्तम कर लेते थे । इसीलिए श्री राम ने सीता तथा भरत के पास हनुमान जी को ही दूत बनाकर भेजा । सुग्रीव के दूतके रूप में श्री राम ने हनुमान की दक्षता देख ली थी तथा वे जानते थे कि " जिसके कार्यसाधक दूत ऐसे उत्तम गुणों से युक्त हों, उस राजा के सभी मनोरथ दूतों की बातचीत से ही सिद्ध हो जाते हैं ।[1] " अतः सीता की खोज के लिए वानरों को भेजते समय उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सीता की खोज पवन पुत्र ही कर पायेंगे और उन्होंने अपनी मुद्रिका तथा संदेश हनुमान जी को ही दिया ।

परन्तु हनुमान की लोक प्रतिष्ठा एवं पूजनीयता का कारण उनका बल, पराक्रम अथवा बुद्धिमत्ता नहीं है । हनुमान के वन्दनीय बन जाने का मुख्य कारण तो उनकी कर्तव्य-निष्ठा एवं निस्स्वार्थ सेवा भावना है । श्री हनुमान के जीवन में केवल परमार्थ अथवा परोपकार ही था । अपने लिए तो उन्होंने कभी कुछ चाहा ही नहीं । जो कुछ किया वह परोपकार के लिए । कहते हैं कि श्री राम के साकेत धाम को पधारने के समय भी लोक कल्याण की भावना से श्री हनुमान इसी मर्त्यलोक में रह गए । यह उनका बहुत बड़ा त्याग था ।

आंजनेय श्री राम के अनन्य भक्त हैं । वे सदैव श्री राम की अमित सेवक-सेव्य भाव से करते हैं । उनसे बढ़कर न तो कोई सेवक ही है और न भक्त ही[2] । उनकी सेवा एवं कर्तव्य-परायणता अनिर्वचनीय है । उनकी सेवा से कृतार्थ श्री राम ने बार बार उनके प्रति कृतज्ञताज्ञ-ज्ञापन किया है । सीता की खोज उन्होंने ही की तथा सीता का संदेश श्री राम को सुनाया । यह कार्य श्री हनुमान के अतिरिक्त अन्य किसी से सम्भव न था । सीता का समाचार प्राप्त होने पर हर्ष से गद्गद श्री राम ने मारुति से कहा " हे वानरश्रेष्ठ ! कोई भी देवता, मनुष्य

1- एवं गुणगणैर्युक्ता यस्य स्युः कार्यसाधकाः ।
तस्य सिध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ।। वा० रा० 4/3/35

2- हनुमान सम नाहिं बड़भागी । नाहिं कोऊ राम चरन अनुरागी ।।
रा० च० मा० उत्तरकाण्ड

मुनि अथवा कोई भी शरीरधारी तुम से बढ़कर मेरा उपकारी नहीं है । मैं तुम्हारा प्रत्युपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता है । हे वत्स ! मैं तुम से उऋण नहीं हो सकता हूँ[1] । सेतु बन्ध में उन्होंने सहायता की । वन में तथा युद्ध में दोनों भाइयों के वाहन बने । भीषण अनुष्ठान कर युद्ध में राम की सहायता की । लक्ष्मण को शक्ति लगने पर संजीवनी ये ही लाये । ये श्री राम की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे । उनके जैसा शिवांश सेवक ही यह प्रभु विलास महान् है । श्री राम हनुमान के अनुराग एवं सेवा की प्रशंसा बार बार करते थे[2] । ऐसी निष्काम सेवा आपका अनन्य भक्त में ही सम्भव है । जब जब श्री राम ने उनसे प्रसन्न होकर वर माँगने का अनुरोध किया तब तब उन्होंने उनसे केवल भक्ति की ही याचना की[3] । कितने निर्लिप्त, कितने निर्विकार, कितने निःस्वार्थ, कितने भक्त हैं श्री हनुमान । भगवान श्री कृष्ण ने हनुमान की सेवा का मूर्तिमान विग्रह अथवा अपना ही स्वरूप माना है । श्री हनुमान सर्व समर्थ होते हुए भी सेवा का यह आदर्श प्रस्तुत करते हैं जो सब युगों में सब के लिए अनुकरणीय रहेगा । अपने स्वामी श्री राम के प्रति उनका असीम अनुराग, निश्छल भक्ति तथा अडिग विश्वास उन्हें परम पूजनीय बना देते हैं । श्री हनुमान जैसा अद्भुत व्यक्तित्व इस संसार में दूसरा नहीं हो सकता । वे राम के समय से लेकर आज तक जन-जीवन की श्रद्धा, भक्ति, पराक्रम, विश्वास एवं निष्ठा के कोष रहे हैं । श्री राम के अनन्य सेवक हनुमान अपने गुणों तथा राम भक्ति के कारण श्री राम के समान ही आराध्य एवं इष्ट देव बन गए और आज उनकी पूजा राम-पूजा से भी अधिक जन-प्रिय है । श्री हनुमान का चरित्र अनेक युगों से उद्भ्रान्तों को दिशा, टूटे मन को सहारा, भयभीत को सम्बल तथा दुःखी एवं निराश्रय को आश्रय देता रहा है । अन्धकार में भटकते हुए पथिक को श्री हनुमान् राम की ज्योति प्रदान करते हैं । उनके द्वारा प्रस्तुत आदर्श सूर्य के समान जन-आचरण को प्रकाश देता रहेगा । आज के युग में तो उनके चरित्र का अध्ययन एवं अनुगमन अत्यन्त उपकारी सिद्ध होगा ।

1- सुनि कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ।
प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ।।
रा० च० मा० सुन्दरकाण्ड 31/3-4 ।

2- गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई । बार बार प्रभु निज मुख गाई ।।
रा० च० मा० उत्तरकाण्ड 49/5 ।

3- नाथ भगति अति सुखदायिनी । देहु कृपा करि अनपायनी ।
रा० च० मा० सुन्दरकाण्ड 33/1 ।

4- सुखसागर- 11/16/1099 ।।

श्री भरत

श्री राम के लीला परिकरों में सर्वाधिक महिमा-मण्डित चरित्र तो श्री भरत का ही है । उनका नाम लेने मात्र से ही मनुष्य को श्री राम की भक्ति सुलभ हो जाती है । गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार " जो व्यक्ति नियमपूर्वक आदर सहित श्री भरत का चरित्र सुनते हैं श्री सीताराम के पावन चरणों में उनकी भक्ति अवश्य ही हो जाती है तथा सांसारिक रसों अथवा आकर्षणों से उन्हें वैराग्य अथवा विरक्ति हो जाती है ।"[1] भरत श्री राम के केवल भाई ही नहीं थे अपितु उनके अनन्य भक्त थे ।

जब परमात्मा ने स्वयंभू मनु और शतरूपा को उनकी अलौकिक तपस्या से प्रसन्न होकर वर दिया कि " मैं तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होऊँगा" तब उन्होंने यह भी कहा था कि " मैं अपने अंशों सहित शरीर धारण कर भक्तों को सुख देने वाले चरित्र करूँगा ; जिनको सुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता एवं मद का परित्याग करके संसार रूपी सागर को पार करेंगे"[2] । रावण के अत्याचार से व्याकुल ब्रह्मा इत्यादि देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर विष्णु ने उन्हें आश्वस्त किया कि मानव शरीर धारण कर रावणादि दुराधर्ष दुष्टों का वध करेंगे और इस हेतु उन्होंने अपने को चार रूपों में प्रकट करके राजा दशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया ।[3] इसी प्रकार विष्णु पुराण के अनुसार श्री कमलनाभ भगवान् विष्णु ने जगत् की स्थिति के लिए अपने अंशों से राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न इन चार रूपों से दशरथ के पुत्रों के रूप में अवतार ग्रहण किया ।[4] इस प्रकार श्री भरत स्वयं विष्णु के अंशावतार हैं ।

श्री भरत का चरित्र सतोगुण प्रधान है । उनमें स्वार्थ तो है ही नहीं । " परमार्थ और स्वार्थ के समस्त सुखों की ओर तो उन्होंने स्वप्न में भी नहीं देखा है । उनके लिए तो साधन और सिद्धि दोनों ही राम के चरण-कमलों का अनुराग है ।"[5] राम उनके लिए न केवल भाई हैं अपितु स्वामी एवं आराध्य हैं । वे नन्दिग्राम में रहकर चौदह वर्षों तक राम की ही

1- भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं । सीय राम पद प्रेम अवसि होहि भवरस बिरति
रा० च० मा० अयोध्या० दोहा

2- अतन्ह सहित देइहउँ तातो । धरिहउँ चरित भगत सुखदाता ।
जे सुनि सादर नर बड़भागी । भव तरिहहिं ममतामद त्यागी ।। रा०च०मा० बाल०

3- ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वा ऽऽत्मानं चतुर्विधम् । पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ।
वा०रा० 1/15/31

4- तस्यापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मभागैः ।
राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नरूपेण चतुर्धा पुत्रत्वमायातीत् ।। विष्णु पुराण- 4/4/87 ।

5- परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।।
साधन सिद्धि राम पद नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।। रा०च०मा० अयो०

आराधना करते हैं तथा उनकी ही कृपा की आकांक्षा करते हैं। मानव के द्वारा अपने समकालीन मानव की आराधना का इससे बढ़कर कोई दूसरा उदाहरण प्राप्त नहीं हो सकता है। उनकी इसी त्यागमयी ने उनको मानव से उठाकर ईश्वर के अंशावतार की श्रेणी में रख दिया तथा जगत् वन्दनीय बना दिया।

भरत ने भ्रातृ-प्रेम का जो उज्ज्वल स्वरूप प्रस्तुत किया है, केवल मात्र यह ही उनकी धवल कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने में पर्याप्त था। उनके जैसा भाई न तो हुआ है और न होने की सम्भावना है। भाई के रूप में उनका आचरण मंगल का मूल है एवं अमंगल का नाश करने वाला है[1]। अयोध्या की विशाल साम्राज्य को जो उन्हें अनायास ही प्राप्त हो गया था उन्होंने तुरन्त त्याग दिया। राम को वन में भगाने पर। बड़े प्रयत्न किए। राम उनके अनुरोध पर लौटे नहीं, तब भी उन्होंने राज्य करना स्वीकार नहीं किया। राम की पादुकाओं को सिंहासनासीन कर वे राजकाज अत्यन्त निर्लिप्त भाव से चलाते रहे। नन्दिग्राम में जटाजूट धारण कर, वल्कलवस्त्र पहिन, कन्द-मूल-फल का आहार कर, पर्णकुटी में निवास कर उन्होंने मानों कैकेयी के राम निर्वासन रूपी पाप का प्रायश्चित्त कर डाला। भरत का त्याग, वैराग्य एवं भ्रातृ- भक्ति सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

अगले अध्यायों में भरत के स्वरूप का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायेगा, अतः यहाँ पर उनका उल्लेख राम-परिकर के रूप में अत्यन्त संक्षेप में किया गया है। वस्तुतः उनके चरित्र की महिमा अनिर्वचनीय है। उनकी महिमा इतनी महत्तम है कि केवल राम ही उसे भली प्रकार जानते हैं परन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं[2]।

राम के चरित्र विकास में भरत चरित्र की उपयोगिता

राम कथा के विकास में भरत की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बाल्यकाल से ही चारों भाइयों का पारस्परिक प्रेम भ्रातृ-प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करता है। एक सरल स्वाभाविक आदर्श जीवन में विकृति का स्थान नहीं हुआ करता, वहाँ तो निश्छल प्रेम ही जीवन की पूर्णता प्रदान करता है। राम तथा उनके भाइयों का पारस्परिक प्रेम ऐसा ही सहज, निष्कपट तथा दिव्य था। वह एक अलौकिक आनन्दमय वातावरण की सृष्टि करता है जिसका सुन्दर रूप अधिकतर सहज प्रतीत्य है। यही स्वाभाविक एवं निश्छल प्रेम एक दूसरे के प्रति अगाध

1- भायप भलि भरत आचरनू। मंगलमूल अमंगलहरनू।

रा० च० मा० अयो०

2- भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

रा० च० मा० अयो०

विश्वास को आधार बिना है । पारिवारिक जीवन की सुख-सम्पन्नता के लिए पारस्परिक विश्वास जितना आवश्यक है यह प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही अनुभव करता है । राम तथा उनके भाइयों में यही निश्छल प्रेम तथा अगाध विश्वास था जो राजभवन तथा सम्पूर्ण अयोध्या में आनन्दाश्रु की वर्षा करता था । जब यज्ञ की रक्षा के लिए राम तथा लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ चले गए तब भरत को उनका वियोग प्रथम बार हुआ था । धनुष भंग के पश्चात् जब श्री राम के विवाह की पत्रिका महाराज दशरथ को प्राप्त हुई तो भरत के पूछने पर उन्होंने भरत को भी वह पत्र पढ़कर सुनाया । पत्र सुनकर भरत तथा शत्रुघ्न दोनों भाई पुलकित हो गए । प्रेम इतना अधिक उमड़ा कि वह शरीर में समाता न था । जब सम्पूर्ण सभा ने राम के प्रति भरत के पवित्र प्रेम को देखा तो उन्हें विशेष सुख प्राप्त हुआ ।

विवाह के कुछ समय बाद भरत तथा शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के यहाँ केकयदेश चले गए । इसी बीच महाराज दशरथ को राम को राज्य पट पर अभिषिक्त करने की प्रेरणा हुई । उन्होंने अपने मंत्रि मण्डल तथा गुरु वसिष्ठ की अनुमति प्राप्त कर राज्याभिषेक की सम्पूर्ण तैयारियाँ सम्पन्न करा लीं । इधर तो अभिषेक की तैयारी धूम-धाम से हो रही थी और उधर मंथरा अपनी कुमंत्रणा महारानी कैकेयी को दे रही थी । मंथरा के कुत्सित परामर्श से प्रेरित कैकेयी ने महाराज दशरथ से पूर्वधारित दो वरदानों के रूप में भरत के लिए राज्याभिषेक तथा राम के लिए वनवास की याचना की । सत्य प्रतिज्ञ महाराज दशरथ को दोनों वर देना स्वीकार करना पड़ा जिसके परिणाम में श्री राम वन को चले गए तथा राजा दशरथ पुत्र-विरह के दुःख, पश्चात्ताप एवं ग्लानि को सहन नहीं कर सके अतः स्वर्गारोही हुए। अयोध्या में यह भीषण घटनाएँ भी भरत की अनुपस्थिति के कारण ही घटित हुईं । यदि भरत अपनी सुदूर शिक्षा ननिहाल न गए होते तो कैकेयी के दोनों वर व्यर्थ हो जाते और रामायण का सम्पूर्ण घटनाचक्र ही बदल जाता । तब राम के उस अद्वितीय गौरवमण्डित निर्णय की सम्भावना ही मिट जाती जिसके द्वारा वे वन गए । रामायण की घटनाओं के विकास की भूमिका ही नहीं बन पाती और न चरित्र ही निखर पाते ।

राम ने राज्याभिषेक त्याग कर वन जाने का जो निश्चय किया उसने उनके चरित्र को अद्वितीय रूप से उज्ज्वल सिद्ध कर दिया । विमाता के मुख से पिता द्वारा दिए गए घोटक

1- सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ।
प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभा सुख लहेउ बिसेषी ।।

बालकाण्ड 290/1 ।

वर्षों के निर्वासन की बात सुनकर राम एक क्षण के लिए भी विचलित नहीं हुए तथा पिता की आज्ञा एवं सत्य की रक्षा के लिए वे राज्याभिषेक को त्याग कर वन को चले गए। "उनके मुखारविन्द की शोभा न तो राज्याभिषेक की बात सुनकर प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न ही वनवास के दुःख से मलिन हुई।"[1] वे सर्वथा निर्विकार एवं निर्लिप्त थे। भरत के विषय में उन्हें विश्वास था कि भरत प्रजा का पालन भली प्रकार कर सकेंगे क्योंकि वे धार्मिक एवं सदाचारी हैं। वे अपने प्रति भी भरत के असीम अनुराग को जानते थे। भरत के अनुपम गुणों में उन्हें विश्वास था। माता कौसल्या भी राम के प्रति भरत के प्रेम को जानती थीं। इसीलिए राम के वन जाते समय उन्होंने कहा- "राज्य देने को कहकर तुम्हें वन दे दिया, इसका मुझे दुःख नहीं है। दुःख तो इस बात का है कि तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को भीषण कष्ट होगा।"[2]

महाराज दशरथ की मृत्यु के पश्चात् वशिष्ठ जी ने भरत को केकय देश से वापिस बुला लिया। अयोध्या आने पर भरत ने जब पिता की मृत्यु तथा राम-वनवास के विषय में सुना तो उन्हें अत्यधिक दुःख एवं शोक हुआ। इन समस्त दुष्ट घटनाओं के मूल में अपनी राज्यप्राप्ति को देख कर तो उन्हें इतना आघात पहुँचा कि वे कुछ बोल ही नहीं सके। उस समय अपनी माता के कुप्रयत्नों से प्राप्त उस राज्य को त्यागने का उनका निश्चय भी उतना ही प्रबल था जितना श्री राम का वन जाने का। परम्परागत रूप से ही ज्येष्ठ भ्राता को प्राप्त होने वाले राज्य की कर्तव्यबुद्धि से युक्त भरत कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होंने अयोध्या का राज्य तो राम को ही लौटाने का निश्चय किया तथा उन्हें मनाने के लिए वे चित्रकूट गए। चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने राम से अयोध्या लौट चलने तथा राज्य स्वीकार करने के लिए बहुत अनुनय विनय की परन्तु राम ने पिता की आज्ञा एवं सत्य के प्रति अपनी अडिग आस्था व्यक्त करते हुए अयोध्या आना स्वीकार नहीं किया। इससे राम की चरित्र की दृढ़ता सत्य के प्रति उनकी आस्था तथा उदात्त त्याग फिर एक बार पाठकों को आलोकमय मार्ग दिखा जाता है। उधर तो असीम प्रेम से भरत को वापिस लौट चलने के लिए अनुनय विनय और इधर दिवंगत पिता की आज्ञा- राम के लिए एक परीक्षा काल उत्पन्न हो गया। विनय त्याग की हुई और त्यागी राम ने पुनः

1- प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मन्ये वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुमञ्जुलप्रभा। रा० च० मा० अयो० श्लोक 2।

2- राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरत हिं भूपतिहिं प्रजहिं प्रचंड कलेसु॥
रा० च० मा० अयो० दोहा 55।

एक बार अद्वितीय आदर्श की स्थापना की ।

वाल्मीकि तथा तुलसीदास दोनों ने ही भरत का चरित्र इस प्रकार चित्रित किया है जिससे भरत के चरित्र की महानता राम के चरित्र की महानता को प्रकाशित अथवा उजागर करती है । जैसे स्वच्छ निर्मल किसी निर्मल पयस्विनी में आत्मविलय करके पयस्विनी की रसधारा को पुष्टि प्रदान करते हैं उसी प्रकार भरत तथा रामायण के अन्य प्रमुख सत्पात्र राम के चित्र-चरित्र में योगदान करते हुए उनकी महानता को विश्व में अद्वितीय रूप से कल्याणकारी एवं मंगलमय बना देते हैं । जब हम भरत के क्रियाकलापों, उनकी भावनाओं तथा उनके सम्भाषणों को पढ़ते हैं तो हमारे मन में उनके प्रति तो श्रद्धा उत्पन्न होती ही है, राम के प्रति भी अपार श्रद्धा उमड़ पड़ती है । उदाहरणार्थ अयोध्या आने पर पिता के निधन तथा राम के निर्वासन के विषय में सुनकर जब वे कैकेयी से कहते हैं कि " तूने मुझे मार डाला । मैं पिता से सदा के लिए बिछुड़ गया और पितृतुल्य बड़े भाई से भी विलग हो गया । x x x । तूने राजा को परलोकवासी तथा श्री राम को तपस्वी बनाकर मुझे दुःख पर दुःख दिया है, घाव पर नमक- सा छिड़क दिया है[1] । उपर्युक्त कथन में यद्यपि राम की प्रत्यक्ष प्रशंसा में कोई शब्द नहीं कहा गया है परन्तु इसे पढ़कर पाठक के हृदय में राम के प्रति सानुराग श्रद्धा अपने आप उत्पन्न हो जाती है । राजसभा में श्री राम के शील, स्वभाव, कृपा तथा प्रेम में अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं कि " यद्यपि मैं बुरा और अपराधी हूँ और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है तथापि श्री राम मुझे अपने में आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर कृपा करेंगे । श्री राम शील-संकोच, सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के आगार हैं । श्री राम ने तो कभी शत्रु का भी बुरा नहीं किया । मैं ही मैं कुटिल हूँ परन्तु हूँ तो उनका

1- किं नु कार्यं सतस्येह मम राज्येन शोचतः ।
विहीनस्याथ पित्रा च भ्रात्रा पितृसमेन च ।।
दुःखे मे दुःखसम्पन्नो भारभिभाहतः ।
राजानं प्रेतभावस्थं कृत्वा रामं च तापसम् ।।

वाल्मीकि रामायण 2/73/2-3 ।

शिशु सेवक ही ।[1] उनका कथन न केवल उनकी सौम्यता और सरलता को व्यक्त करता है अपितु राम के भी शील-स्वभाव, कृपा एवं उदारता को प्रकट करता है ।

उपर्युक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत के चरित्र ने रामायण के कथाक्रम को मोड़ दिया है । उनके चरित्र की सात्त्विकता ने राम के चरित्र की सात्त्विकता को उभारा है तथा प्रकाशित किया है । उनके आचरण एवं उनके द्वारा किए गए कथोपकथन द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में भी राम के चरित्र की साधुता, निर्मलता, उदारता आदि गुण प्रकट हुए हैं । वस्तुतः बहुत कुछ अंशों में राम और भरत का चरित्र अन्योन्याश्रित होकर ही विकसित हुआ है । राम का भरत के प्रति वात्सल्य तथा भरत की राम के प्रति श्रद्धा अनुपम थी । राम के स्नेह से जहाँ भरत में विश्वास जागा है वहाँ भरत की श्रद्धा से राम की महिमा बढ़ी है ।

1- यद्यपि मैं अनभल अपराधी । भै मोहि कारन सकल उपाधी ।।
तदपि तरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।।
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ।।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक यद्यपि बामा ।।

रा० च० मा० 2/182/2-3

द्वितीय अध्याय

संस्कृत साहित्य में भरत

संस्कृत में रामकथा- संस्कृत में राम विषयक काव्य अति विस्तृत एवं समृद्ध है। राम काव्य का आदि स्रोत वाल्मीकि रामायण है जिसे यह कथा महाभारत तथा विभिन्न पुराणों में विविध धाराओं में प्रवाहित हुई है। वाल्मीकि रामायण के आधार पर अनेक रामायणों की रचना भी हुई है जिसमें अध्यात्म-रामायण प्रसिद्ध है। संस्कृत के अलावा भी भारत की विभिन्न भाषाओं में भी रामायणों की रचना वाल्मीकि रामायण के आधार पर हुई। हिन्दी में भी रामकथा को छन्दोबद्ध करने का प्रयास निरन्तर चलता रहा है। रामायणों के अतिरिक्त संस्कृत लक्षित साहित्य में भी रामकथा को वर्ण्य-विषय बनाया गया है। लक्षित-साहित्य के अन्तर्गत काव्य, नाटक तथा चम्पू हैं। इसके अतिरिक्त बौद्ध जातकों तथा जैन साहित्य में भी राम कथा सम्बन्धी काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। बौद्ध तथा जैन साहित्य में सम्भवतः विदेशी प्रभाव के कारण राम कथा यद्यपि वह वाल्मीकीय कथा से भिन्न है। इस भिन्नता ने कथानक को यहाँ तक प्रभावित किया है कि दशरथ जातक में सीता को राम की बहिन बताकर बाद में वनवास की अवधि की समाप्ति पर सीता और राम का विवाह दिखाया गया है। यह भारतीय मर्यादा का अतिक्रमण तथा राम के अति उज्ज्वल आदर्श का प्रदूषण है। यहाँ बौद्ध एवं जैन साहित्य में लक्षित रामकथा का विशेषण अभिप्रेत भी नहीं है।

राम कथा पर धार्मिक अलंकारवाद के प्रभाव से संस्कृत साहित्य में राम काव्य की दो धारायें प्रवाहित हुई-एक तो सम्प्रदायिक रामकाव्य तथा दूसरा लक्षित साहित्यगत राम काव्य। सम्प्रदायिक राम काव्य धार्मिक साहित्य का अंग है। इसमें राम को विष्णु अथवा परब्रह्म का अवतार माना गया है। संस्कृत साहित्य में तुलसी अध्यात्म, आनन्द तथा भुशुण्डि आदि रामायणों तथा विभिन्न पुराणों में उपलब्ध राम-कथा-साहित्य इसी श्रेणी में आता है। भागवत, विष्णु, ब्रह्म वैवर्त, ब्रह्माण्ड, स्कन्द तथा पद्म आदि पुराणों में राम के चरित्र को अपने अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। इसाकार तथा चौबीस अवतार परम्परा के अन्तर्गत इसकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। रामकाव्य की यह धार्मिक परम्परा भी भक्तों की मनोभूमि तथा विचारधारा की भिन्नता के कारण दो वर्गों में विभक्त हुई। जिस वर्ग ने राम का मर्यादावादी स्वरूप स्वीकार कर भक्त प्रवण चित्त से काव्य रचना की है उसमें अध्यात्म रामायणकार एवं प्रमुख हैं। दूसरे वर्ग में प्रभु का लीलावतार

लोकप्रिय हुआ, जिसका मूल सिद्धान्त में परमात्मा के नरवत् लीला अथवा क्रीड़ा करने के सिद्धान्त से सम्बन्धित है । लीलावतार कालान्तर में पुरुष रूप अवतार तथा रस रूप अवतार की दिशा में अग्रसर हुआ । परिणामतः राम भक्ति में भी रसिक सम्प्रदाय का उदय हुआ जिसका उदाहरण आनन्दरामायण तथा भुशुण्डि रामायण को माना जा सकता है । साम्प्रदायिक राम साहित्य के अनेक ग्रंथों पर यह प्रभाव देखा जा सकता है ।

संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत रामकथा पर आधारित महाकाव्यों तथा नाटकों में जहाँ एक ओर भक्त प्रवण मन से श्रद्धापूर्वक राम का मर्यादावादी स्वरूप चित्रित किया गया है, वहाँ दूसरी ओर रस राज का प्रभाव भी दृष्टव्य है । प्रतिमा नाटक, अभिषेक, महावीर चरित, उत्तररामचरित आदि में राम का मर्यादावादी स्वरूप चित्रित किया गया है । प्रसन्न राघव नाटक तथा हनुमन्नाटक पर रसिक अथवा श्रृंगारी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । कालिदास के रघुवंश में रामकथा से सम्बन्धित अंश में मर्यादा का निर्वाह किया गया है यद्यपि कवि ने अपनी रसराजप्रियता को त्यागा नहीं है ।

इस सीमित निबंध में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध विशाल राम काव्य के प्रत्येक ग्रंथ पर विचार करना सम्भव नहीं है । वाल्मीकि रामायण, रामकथा का मूल काव्य अथवा आदि काव्य होने के कारण विवेचनीय है । अध्यात्म रामायण तथा आनन्द-रामायण रामभक्ति के दो विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करने के कारण विशेष रूप से वर्णनीय है । पुराण-साहित्य तथा ललित साहित्य के भी प्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि ग्रन्थों पर ही यहाँ संक्षेप में चर्चा की जायेगी ।

" हिन्दुत्व" ने अनेक रामायणों का उल्लेख किया है तथा उनकी विशेषताओं एवं विस्तार का भी संक्षिप्त विवरण दिया है । इन रामायणों के नाम महारामायण, संवृत रामायण, लोमश रामायण, अगस्त्य रामायण, मंजुल रामायण, सौ पद्म रामायण, रामायण महामाला, सौहार्द रामायण, रामायण-मणिरत्न, सौपर्ण रामायण, पान्डु रामायण, मैन्द रामायण, स्वायंभुव रामायण, सुक्रम रामायण, सुवर्चस रामायण, देव रामायण, प्रवण रामायण दुर्रत रामायण, रामायण, अद्भुत-रामायण, आनन्द रामायण, सत्संग्रह रामायण तथा भुशुण्डि रामायण आदि तो प्रसिद्ध हैं ही । इनमें से अधिकांश रामायणें अनुपलब्ध हैं । राम तापनीयोपनिषद् तथा सीता तापनीयोपनिषद् के अतिरिक्त भी विशाल धार्मिक रामकाव्य पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों के रूप में उपलब्ध हैं ।

संस्कृत ललित साहित्य के अन्तर्गत कालिदासकृत रघुवंश, कुमारदासकृत जानकी हरण, भास का प्रतिमा नाटक तथा अभिषेक नाटक, भवभूति का महावीर चरित तथा उत्तररामचरित,

भट्टिकाव्य अथवा रावण-वध, राघव-पाण्डवीय, मुरारिकृत अनर्घ राघव, राजशेखर की बालरामायण, शक्तिभद्रकृत आश्चर्य चूड़ामणि, जयदेवकृत प्रसन्न राघव नाटक, हनुमन्नाटक आदि राम काव्य सम्बन्धी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। यहाँ वाल्मीकि रामायण में अंकित भरत के स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाल्मीकि रामायण में भरत

रामकथा का मुख्य ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण है। सर्व प्रथम क्रमबद्ध, सुविस्तृत तथा सुन्दर ढंग से रामकथा का प्रस्तुतीकरण रामायण में ही उपलब्ध होता है। यद्यपि वाल्मीकीय रामायण की रचना से पूर्व भी रामोपाख्यान प्रचलित अवश्य था परन्तु उसका प्राचीनतम क्रमबद्ध रूप रामायण में ही प्राप्त है। वाल्मीकीय रामायण का रचनाकाल जनश्रुति, परम्परा एवं ज्योतिष के आधार पर अत्यन्त प्राचीन है। रामायण के रचनाकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद भी है। पाश्चात्य विद्वान् रामायण को 12 वीं शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर दूसरी शताब्दी ईसवी के बीच की रचना मानते हैं। यह बात लगभग निर्विवाद है कि मूल वाल्मीकीय रामायण की रचना लगभग 500 ई0 पू0 हो चुकी थी। एक दो स्थलों पर बौद्धों का उल्लेख होने के कारण लोग उसे बुद्ध के बाद की रचना मानते हैं। वस्तुतः इन अंशों के प्रक्षिप्त होने के कारण रामायण गौतमबुद्ध से पूर्व की रचना है। वाल्मीकि भारतीय साहित्य में आदि कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह देवयुग के व्यक्ति हैं तथा प्रचेता (कुबेर) के छोटे भाई हैं। आदि कवि होने के कारण भी इनका काव्य अत्यन्त प्राचीन होना चाहिए। रामायण के बाद का राम साहित्य तो मुख्य रूप से रामायण से ही प्रभावित है।

रामायण का प्रतिपाद्य विषय राम कथा है तथा उसके नायक राम हैं। वाल्मीकि ने अपने इस आदि काव्य में रामानुज के रूप में भरत का चित्रण अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। वे रामायण के प्रमुख पात्रों में हैं। यहाँ भरत के स्वरूप की चर्चा वाल्मीकीय रामायण के आधार पर की जायेगी।

अवतारवाद और भरत- राम परिकरों के प्रसंग में भरत को विष्णु का अंशावतार कहा गया है। बालकाण्ड में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि भरत विष्णु के अंशावतार हैं। "कैकेयी से सत्य पराक्रमी भरत का जन्म हुआ, जो साक्षात् विष्णु के चतुर्थांश से उत्पन्न हुए थे। वे समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे।"[1] देवताओं से रावण वध की प्रतिज्ञा किए हुए विष्णु ने निश्चय

1- भरतो नाम कैकेय्या जज्ञे सत्यपराक्रमः। साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः॥

वा0 रा0 1/18/13

किया था कि वे अपने को चार रूपों में करके राजा दशरथ के पुत्रों के रूप में प्रकट होंगे।[1] उसी प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के रूप में अवतरित होकर किया। इस प्रकार भरत विष्णु के अंशावतार हैं।

उपर्युक्त विषय में अनेक विद्वानों का मत है कि वाल्मीकीय रामायण में बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड दोनों ही प्रक्षिप्त हैं।[2] फादर कामिल बुल्के का भी मत है कि यह दोनों काण्ड तथा अवतारवाद सम्बन्धी श्लोक प्रक्षेप हैं। उन्होंने अपनी " रामकथा- उत्पत्ति और विकास" के आठवें अध्याय में इस विषय की चर्चा विस्तारपूर्वक की है। रामायण की मूल कथावस्तु तो रामवनगमन से ही प्रारम्भ होती है तथा राम के द्वारा लंका विजय कर अयोध्या को वापिस आने तक ही है।[3] विद्वानों के उक्त मत के अनुसार वाल्मीकीय रामायण के मूल पाठ में राम को विष्णु का अथवा ब्रह्म का अवतार नहीं माना गया है। अवतारवाद सम्बन्धी समस्त सामग्री प्रक्षिप्त है। यह हो सकता है कि यह सामग्री प्रक्षिप्त हो परन्तु इन प्रक्षेपों की रचना भी 200 ई0 के पूर्व ही हो चुकी थी क्योंकि भास, कालिदास आदि कवियों ने भी राम को विष्णु के अवतार के रूप में माना है। परिणामतः अवतारवादी साहित्य में भरत को भी विष्णु का अंशावतार माना गया। जो भी हो, यह स्पष्ट है कि रामायणकार ने अयोध्या-काण्ड से युद्ध काण्ड तक राम तथा भरत को आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है। अवतारवाद सम्बन्धी श्लोकों का प्रभाव पात्रों के आचरण पर कहीं दृष्टिगत नहीं होता है।

1- एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ।।
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ।
ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम् ।।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् । वा0 रा0 1/15/30-31 ।

2- (क) डॉ0 हर्मन याकोबी- इस रामायण पृष्ठ 28/50/64 आदि ।

(ख) हृदय नारायण सिंह:- क्या उत्तरकाण्ड वाल्मीकि रचित है ?

3- आदौ राम तपोवनादिगमनं हत्वा मृगं कांचनम् ।
वैदेहीहरणं, जटायुमरणं सुग्रीव सम्भाषणम् ।।
बाली निर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरीदाहनम् ।
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननम् एतद्धि रामायणम् ।।

बालकाण्ड में भरत- भारत में प्राचीन काल से ही ज्योतिष शास्त्र का विशेष महत्व रहा है। महर्षि वाल्मीकि ने विशिष्ट भाग्यसम्पदा द्योतक ग्रहों का चारों भाइयों के जन्म के प्रसंग में उल्लेख किया है। श्री राम के जन्म के समय पाँच ग्रह उच्चस्थ थे[1]। भरत का जन्म मीन लग्न में हुआ था तथा उस समय पुष्य नक्षत्र था[2]। मीन लग्न उदात्त बुद्धि, विद्या तथा स्निग्ध एवं गम्भीर स्वभाव का द्योतक है। भरत में ये सभी गुण थे।

चारों भाई जब कुछ बड़े हुए तब सम्पन्न गुणों से सम्पन्न हो गए। वे सभी लज्जाशील, यशस्वी, सच्चे और दूरदर्शी थे। वे सब बड़े प्रभावशाली और अत्यन्त तेजस्वी थे। चारों पुत्र सिंह राजकुमार प्रतिदिन वेदों के स्वाध्याय पिता की सेवा तथा धनुर्वेद के अभ्यास में दत्तचित्त रहते थे। बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण श्री रामचन्द्र के प्रति अनुरक्त थे तथा शत्रुघ्न भरत के प्रति[3] चारों भाई परस्पर अत्यन्त प्रेम करते थे तथा पिता दशरथ को उनके आचरण एवं क्रिया-कलापों को देखकर बहुत अधिक प्रसन्नता होती थी।

इसके पश्चात् राम तथा लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा हेतु जाने का कथन है। यज्ञ रक्षा तथा अहिल्या उद्धार के पश्चात् जनकपुर जाकर राम शिव के धनुष को तोड़कर सीता को विवाह के लिए प्राप्त करते हैं। राजा दशरथ के मिथिला आने पर राम का विवाह सीता से तथा लक्ष्मण का विवाह उर्मिला से निश्चित हो जाता है। इसके बाद ही वशिष्ठ एवं विश्वामित्र मुनि महाराज दशरथ के शेष दोनों पुत्रों भरत तथा शत्रुघ्न के विवाह के लिए महाराज जनक से उनके भाई कुशध्वज की दोनों कन्याओं माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति को माँगते हैं[4]। भरत तथा शत्रुघ्न की प्रशंसा करते हुए विश्वामित्र कहते हैं " राजा दशरथ के ये सभी पुत्र रूप और यौवन सेतुगोभित लोकपालों के समान तेजस्वी तथा देवताओं के तुल्य पराक्रमी हैं[5]।

- -

1- देखें वाल्मीकि रामायण/बालकाण्ड 18/8 से 11 तक।

2- पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः। वाल्मीकीय रामायण बाल0 18/15।

3- बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धौ लक्ष्मणौ लक्ष्मणाग्रजौ।
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः॥ 29॥
× × × ×
भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणानन्तरो हि सः॥ 32॥
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य वासीत्तथा प्रियः। वा0 रा0/1/18/28-29 तथा 32-33

4- देखिए वा0 रा0 बालकाण्ड/अध्याय 72/श्लोक 4 से 6 तक।

5- पुत्रा दशरथस्यैते त्रयोदशसमा इमे। लोकपालाभाः सर्वे देवतुल्यपराक्रमाः॥
वा0 रा0 1/72/7

तत्पश्चात् वहीं धूमधाम से चारों भाइयों का विवाह सम्पन्न हुआ ।

विवाह के अवसर पर भरत के मामा युधाजित् भी उपस्थित थे क्योंकि वे अपने प्रिय भानजे भरत को केकय देश ले जाने के लिए अयोध्या आए थे । विवाह के कुछ दिन पश्चात् युधाजित् भरत तथा शत्रुघ्न को उनके नाना के पास केकय देश लिवा ले गए । सम्पूर्ण बालकाण्ड में राम के सहयोगी भ्राता के रूप में तथा राजा दशरथ के सुयोग्य चार पुत्रों में से एक के रूप में ही भरत का वर्णन किया गया है । बालकाण्ड की समाप्ति तक उनके चरित्र का कोई विशेष पक्ष सामने नहीं आ पाता है ।

अयोध्याकाण्ड में भरत- वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड का प्रारम्भ ही भरत के मातुलगृहगमन की सूचना से होता है । फिर कवि राम के गुण-गान में मग्न हो जाता है तथा राम के राज्याभिषेक हेतु दशरथ की तीव्र लालसा का वर्णन करता है । शीघ्रता के कारण राजा जनक तथा केकयराज को नहीं बुलाया जा सका, शेष सभी राजा बुलाये गये । राज्याभिषेक के परामर्श हेतु की गई सभा में सभासदों ने राम का गुण-गान करते हुए उनके अभिषेक के प्रस्ताव का सहर्ष अनुमोदन किया । उत्सव की धूमधाम से तैयारी होने लगी । महाराज ने राम को बुलाकर राजनीति का उपदेश दिया । कुछ देर बाद महाराज ने राम को पुनः अपने निकट बुलाकर उन दिनों हो रहे भयंकर अपशकुनों की चर्चा करते हुए अपनी आसन्न मृत्यु की सम्भावना व्यक्त की और कहा कि कल ही पुष्य नक्षत्र में उनका राम का अभिषेक हो । दशरथ ने यह भी कहा कि, " जब तक भरत इस नगर से बाहर हैं, तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत हो रहा है । " इस शंकापूर्ण कथन के साथ उन्होंने भरत के गुणों का वर्णन भी किया ," इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे भाई भरत सत्पुरुषों के आचरण में स्थित, बड़े भाई का अनुसरण करने वाले धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय हैं ; फिर भी मेरा मत है कि मनुष्यों का चित्त प्रायः स्थिर नहीं रहता है । धर्मात्मा सत्पुरुषों का मन भी विभिन्न कारणों से रागद्वेषादि से संयुक्त हो जाता है ।[3] " पिता के निर्देशानुसार राम ने सीता सहित उस रात उपवास किया

उधर कैकेयी की दासी मंथरा ने नगर की सजावट को देखा । पास खड़ी राम की धाय से यह जानकर कि कल राम का राज्याभिषेक होगा उसका मन ईर्ष्या एवं क्रोध से जल उठा । उसने कैकेयी के मन को भी ईर्ष्या-विष से कलुषित कर दिया । कुब्जा के कुचक्र में पड़कर कैकेयी

1- देखिए वा० रा० बालकाण्ड/अध्याय 73/श्लोक 1 से 7 तक ।

2- देखिए- वा० रा० 1/77/15 से 20 तक ।

3- वा० रा०/2/4/25-27 ।

ने कोप भवन में प्रवेश किया तथा राजा दशरथ से वे दो वरदान पूर्व पर प्राप्त कर लिये जिनके परिणाम में राम को वन जाना पड़ा और दशरथ को त्यागी । उक्त दोनों वरों में से एक के द्वारा कैकेयी ने भरत का राज्याभिषेक तथा दूसरे के द्वारा राम का चौदह वर्षपर्यन्त दण्डकारण्य वास माँगा था । वह किसी के भी समझाने बुझाने पर अपने हठ से नहीं हटी । तब दशरथ ने " मम्मा रघ्या नेव कौस्या तस्मिन्क्रिया" आदि तीव्र वचन कहते हुए कैकेयी के प्रति रोष व्यक्त किया । इससे पूर्व वे कैकेयी को यह भी कहा चुके थे कि , " यदि भरत को राम का वनगमन प्रिय लगे तो मेरी मृत्यु के बाद वह भी मेरा दाह संस्कार न करे ।"

कैकेयी के मुख से वनगमन का आदेश सुनकर राम विचलित नहीं हुए । उन्हें शोक एवं व्यथा नहीं हुई । उन्होंने कहा," मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भाई भरत के लिये इस राज्य को, सीता को, प्रिय प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को प्रसन्नतापूर्वक त्याग ही दे सकता हूँ ।" यह कथन उनकी मातृ-पितृ भक्ति एवं भरत के प्रति प्रेम को प्रकट करता है । कौसल्या से विदा लेकर सीता तथा लक्ष्मण के सहित प्रसन्नवदन राम ने अपने महल की सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर वन के लिए प्रस्थान किया । यह घटनाक्रम पुत्र मर्यादा एवं कौटुम्बिकता का सर्वोत्तम आदर्श है । कवि ने 10 से 43 तक के 26 सर्गों में इस प्रसंग का वर्णन किया है जिसमें कौसल्या का शोक, सीता का आग्रह, लक्ष्मण का रोष आदि भी वर्णित है । राम ने अपना अनुगमन करती हुई प्रजा को भरत का गुण बता कर समझाया जिससे वे भरत के आज्ञाकारी रहकर शान्ति से रहें । शृंगवेरपुर में गुह ने राम का अतिथि सत्कार करना चाहा । यहीं से सुमंत्र को लौटा कर, गंगा पार कर, राम प्रयाग में भारद्वाज मुनि से मिले । उनके आदेशानुसार चित्रकूट पर अपना आवास बनाया ।

उधर सुमंत्र के राम रहित अयोध्या पहुँचने पर शोकसन्तप्त दशरथ ने प्राण त्याग दिए । गुरु के आदेश से भरत को बुलाने दूत केकय देश पहुँचे । भयंकर दुःस्वप्नों के कारण भरत उस समय अति चिंतातुर थे । उन्होंने शीघ्र ही अयोध्या के लिए प्रस्थान किया । अयोध्या के निकट पहुँचकर श्रीहीन एवं विषादपूर्ण नगरी को देखकर वे और भी चिंतित हुए । राजमहल सूना पड़ा था भरत कैकेयी के भवन में गए जहाँ उन्हें पिता-निधन तथा रामवनगमन के समाचार ने वज्राघात के समान व्यथित कर दिया । राम का दण्डकारण्य प्रवेश अवश्य ही किसी घोर अपराध का दण्ड रहा होगा, यह विचार कर राम के आचरण पर शंका करते हुए भरत ने मातृ कैकेयी से उस अपराध को जानना चाहा जिसके परिणामस्वरूप राम को वनवास दिया गया । कुछ आलोचक

- -

1- वा० रा० 2/12/92 । 2- वा० रा० 2/19/27 ।

3- वा० रा० 2/72/43-47 ।

भरत की इन राम विषयक शंकापूर्ण पृच्छाओं को उनका दोष मानते हैं परन्तु भरत की तात्कालिक मानसिक परिस्थितियों में इस प्रकार का प्रश्न पूछ लेना स्वाभाविक ही था।

भरत के प्रश्नों के उत्तर में कैकेयी ने अपना कुछ की सभी कह सुनाया जिसे सुनकर भरत ने अति व्यथित होकर कैकेयी की कटु भर्त्सना की। भरत ने मंत्रियों के सामने अपनी निर्दोषिता सिद्ध करनी चाही। कौसल्या के कठोर उपालम्भ सुनकर उन्होंने शपथपूर्वक अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। आप के इस प्रकथन को भी आलोचक भरत के चरित्र के अनुरूप नहीं मानते हैं।

दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् बारहवें दिन श्राद्ध कर्म पूर्ण हो गया। शोकविह्वल शत्रुघ्न के साथ शत्रुघ्नों ने सभी कुटिल मंथरा को इस काण्ड की मूल बताकर शत्रुघ्न ने उसे घसीट कर मारा। वे उसे मार ही डालते, यदि दयालु भरत यह कह कर उन्हें शान्त न कर देते कि, " यदि मुझे यह भय न होता कि मातृघाती समझकर मर्यादा राम मुझे घृणा करने लगेंगे तो मैं भी इस दुष्ट आचरण करने वाली कैकेयी को मार डालता। मर्यादा राम इस कुब्जा के भी मारे जाने का समाचार यदि जान ले तो वे निश्चय ही मुझे और मुझे बोलना/दोष देंगे।"[1] भरत के वचनों का शत्रुघ्न पर अनुकूल प्रभाव पड़ा और वे मन्थरा वध से विरत हुए। डा० भ० स० राजूरकर ने इस क्रम को भी भरत चरित्र का दोष माना है[2]।

चौदहवें दिन राज्य अधिकारियों आदि ने मिलकर भरत से राज्याभिषिक्त होने का अनुरोध किया जिसे भरत ने अस्वीकार करते हुए वन को जाकर राम को राज्य लौटाने के अपने निश्चय को प्रकट किया। तत्पश्चात् गुरु वशिष्ठ ने राजसभा में भरत से राज्य ग्रहण करने हेतु अनुरोध किया। " महाराज दशरथ का कोई भी पुत्र बड़े भाई के राज्य का अपहरण कैसे कर सकता है? यह राज्य और मैं दोनों ही श्री राम के हैं।" कहकर भरत ने गुरु का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया[3]। भरत ने राम को लाने के लिये सेना सहित वन को प्रस्थान किया प्रथम विश्राम शृंगवेरपुर के गंगातट पर किया। निषादराज गुह के मन में भरत के प्रति शंका हुई। उसने भरत से मिलकर पूछ ही लिया, " श्री राम के प्रति आप कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं जा रहे हैं। आपकी यह विशाल सेना मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रही है।"[4] भरत को

1- इत्यामहामितिः पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्। यदि मां धार्मिको रामो नावृणेन्मातृघातकम्।
वा० रा० 2/78/22 तथा वा० रा० 2/78/23।

2- "राम कथा के पात्र" पृ० 244। डा० भ० स० राजूरकर।

3- कथं दशरथाज्जातो भवेद् राज्यापहारकः। राज्यं चार्हं च रामस्य कथं वक्तुमिहार्हसि॥
वा० रा० 2/82/12।

4- वा० रा० 2/85/7।

गुह की बात सुन कर बड़ा कष्ट हुआ । उन्होंने उसे बताया कि वे राम को वन से लौटा लाने के लिए जा रहे हैं । गुह द्वारा बताई गई राम की कुश-शय्या देखकर भरत को बहुत दुःख हुआ तथा उन्होंने स्वयं भी जटा धारण कर वन में रहने का निश्चय किया[1] ।

गंगा पार कर वे भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे । मुनि के यह कहने पर कि," राज्य करते हुए तुम्हें यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ गई ? मुझे बताओ क्योंकि मेरा मन तुम्हारी ओर से शुद्ध नहीं हो रहा है[2] । भरत को घोर कष्ट हुआ । गँवार गुह की शंका तो फिर भी क्षम्य थी परन्तु त्रिकालज्ञ मुनि द्वारा की गई यह शंका तो निश्चय ही मर्मान्तक थी । भरत ने अपना राम को लौटा लाने का मन्तव्य प्रकट किया जिसको सुनकर भरद्वाज मुनि ने उनकी प्रशंसा की । उस रात्रि मुनि का आतिथ्य ग्रहण कर भरत यहीं रुके[3] । भरद्वाज मुनि के बताए गए मार्ग से वे चित्रकूट पहुँचे ।

उधर अन्य पक्षों के आने का कारण जानने के लिए राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने वृक्ष पर चढ़कर भरत की विशाल सेना को देखकर भरत के प्रति अपने क्रोध पूर्ण उद्गार व्यक्त किए । शंकित लक्ष्मण भरत के वध हेतु उद्यत थे । " भरत के आने का उद्देश्य मुझको राज्य लौटाना ही हो सकता है " राम ने लक्ष्मण को समझाया[4] । लक्ष्मण शान्त हुए । राम की पर्णकुटी को खोजते हुए भरत का कथन था कि " जब तक राम के चरणों में प्रणाम कर उन्हें राज्याभिषिक्त नहीं देखूँगा तब तक मुझ को शान्ति नहीं मिलेगी[5] ।" राम की पर्णकुटी को देखकर भरत को बड़ा कष्ट एवं ग्लानि हुई । वे कहने लगे, " मेरे कारण ही पुरुषसिंह महाराज रामचन्द्र इस निर्जन वन में कुशों पृथ्वी के आर वीरासन से बैठते हैं, अतः मेरे जन्म एवं जीवन को धिक्कार है[6] ।" कुटी के निकट पहुँच कर राम को मुनिवत् कुशासन पर बैठे देखकर भरत को और भी अधिक दुःख हुआ । दौड़कर वे राम के चरणों में गिर पड़े[7] । राम ने उन्हें हृदय से लगाकर पास बैठाया फिर अनेक कुशल प्रश्न किए । इन प्रश्नों के माध्यम से राजनीति का महनीय उपदेश किया गया है[8] । भरत ने राम से राज्य स्वीकार कर अयोध्या लौट चलने हेतु अनुरोध किया, जिसे राम ने अस्वीकार कर दिया । पिता की मृत्यु के समाचार से राम बहुत दुःखी हुए । सुहृदों से घिरकर बैठे हुए उनसे भरत ने पुनः राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया तथा राम ने पुनः मान्य की

1- वा० रा०/2/98/26 । 2- वा० रा०/2/90/10 ।
3- वा० रा० /2/91/समस्त । 4- वा० रा०/2/97/1-28 ।
5- वा० रा० /2/98/7-14 । 6- वा० रा०/2/99/15-18 ।
7- वा० रा०/2/99/29-40 । 8- वा० रा०/2/100/3-76 ।

अनित्यता का तर्क प्रस्तुत करते हुए उसे अस्वीकार कर दिया । भरत ने धर्म का सहारा लेते हुए तर्कपूर्ण परन्तु विनम्र होकर पुनः राम से राज्य ग्रहण हेतु अनुरोध किया और राम ने भी धर्म का आश्रय लेते हुए उसे अस्वीकार कर दिया । जब गुरु वशिष्ठ के समझाने पर भी राम राज्य ग्रहण करने तथा अयोध्या को लौट चलने हेतु तैयार नहीं हुए तब भरत धरना देने का निश्चय कर कुशासन पर बैठ गए[1] । राम के समझाने पर वे किसी प्रकार उठे । भरत के अधिक आग्रह पर राम ने स्वीकार किया कि वे चौदह वर्षों की अवधि की समाप्ति पर भरत के साथ अयोध्या का राज्य भोगेंगे । वशिष्ठ मुनियों के समझाने पर भरत ने राम की पादुकाओं को लेकर अयोध्या को लौटना इस शर्त पर स्वीकार किया कि यदि चौदह वर्षों के समाप्त होने पर राम नहीं लौटे तो वे । भरत। अग्नि में प्रवेश करेंगे । भरत भरद्वाज मुनि से मिलते हुए अयोध्या को प्रस्थानवर्ती हुए । राम की पादुकाओं को सिंहासनासीन कर भरत स्वयं नन्दिग्राम में जटा-वल्कल धारण कर फलाहार करते हुए मुनिवृत्ति रहने लगे ।

अरण्यकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड के 120 वें अध्याय तक भरत विषयक कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई है । 121 वें अध्याय में विभीषण के लंका में कुछ दिन ठहरने के अनुरोध के उत्तर में राम अयोध्या शीघ्र ही पहुँचने की उत्कंठा प्रकट करते हुए कहते हैं, " मित्र ! मेरे लिए इस समय महाबाहु, सत्यव्रत, धर्मात्मा, सुकुमार एवं सुख भोगने योग्य भरत बहुत कष्ट उठा रहे हैं । उन धर्म परायण भरत को मिले बिना न तो मुझे स्नान अच्छा लगता है और न वस्त्राभूषण धारण करना ही[2] ।" लक्ष्मण, सीता तथा वानर एवं राक्षस मित्रों सहित पुष्पकारूढ़ राम प्रयाग पहुँचे । वहाँ भरद्वाज मुनि से भेंट की तथा हनुमान को भरत का भाव एवं चेष्टा जानने के लिए अयोध्या भेजा । हनुमान ने नन्दिग्राम पहुँचकर जटावल्कलधारी भरत को राम की पादुकाओं को आगे रखकर शासन करते देखा । राम के आने का समाचार सुनकर भरत के हर्ष की सीमा न रही । प्रेमाश्रुओं की वर्षा करते हुए उन्होंने हनुमान से कहा, " सौम्य, तुमने जो यह प्रिय सम्वाद सुना है, उसके बदले में तुम्हें कौनसी प्रिय वस्तु प्रदान करूँ ?[3]" भरत के पूछने पर हनुमान ने उन्हें श्री राम के सम्पूर्ण चरित्र सुनाए । भरत ने शत्रुघ्न तथा सचिवों को राम के स्वागत की तैयारी करने के आदेश दिए । युद्धकाण्ड का 127 वाँ सर्ग स्वागत की तैयारी के वर्णनों से पूर्ण है ।

नन्दिग्राम में राम और भरत का परम प्रेममय मिलन हुआ । उस समय भरत ने राम की

1- वा० रा०/2 /111/12-15 ।

2- वा० रा० 6/121/5-6 ।

3- वा० रा०/ 6/125/43-44 ।

अयोध्या का राज्य रखी हुई धरोहर के समान लौटा दिया[1]। राम ने राज्य स्वीकार किया। तत्पश्चात् कवि ने राम के राज्याभिषेक तथा राम राज्य का वर्णन किया है। अन्त में रामायण श्रवण के महात्म्य का वर्णन है।

युद्ध काण्ड के उक्त वर्णनों से अयोध्याकाण्ड में प्रस्तुत भरत के गुणों की पुष्टि होती है। उत्तरकाण्ड के 2 से 34 सर्गों तक राक्षसों तथा रावण की उत्पत्ति, पराक्रम तथा संहारादि का वर्णन किया गया है। 35 वें तथा 36 वें सर्ग में हनुमान जी की कथा का वर्णन है। 38 वें सर्ग में राजाओं की विदाई के प्रसंग में संकेत मिलता है कि भरत ने कहीं से राम-रावण-युद्ध का समाचार प्राप्त कर राजाओं को सेना सहित राम की सहायता के लिए बुलाया था। उत्तरकाण्ड के 41 वें सर्ग में भरत के मुख से राम राज्य की प्रशंसा कराई गई है जिसमें लोगों की यह कामना भी प्रकट है कि उनके लिए चिरकाल तक ऐसे ही प्रभावशाली राजा रहें।

तदनन्तर उत्तरकाण्ड में सीता-निर्वासन का शोकपूर्ण प्रसंग है। इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं की अनेक कथायें भी दी गई हैं। अन्त में श्री राम ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया परन्तु भरत ने पुलस्त्यी वीरों के संहार के भय से श्री राम से राजसूय यज्ञ न करने का अनुरोध किया[2]। तदनुसार भरत के परामर्श का सत्कार करते हुए राम उनसे सहमत हुए।

भरत के मामा युधाजित् ने गर्ग ऋषि को भेजकर श्री राम से गन्धर्व प्रदेश को जीतकर वहाँ दो श्रेष्ठ नगर बसाने का अनुरोध किया। राम ने गन्धर्व (गान्धार) प्रदेश को जीतने के लिए भरत तथा उनके दोनों पुत्रों (तक्ष और पुष्कर) को सुविशाल वाहिनी के साथ भेजा। भरत ने गन्धर्वों को अपने पराक्रम से ध्वस्त कर दिया। उन्होंने उस प्रदेश में तक्षशिला तथा पुष्कलावती नामक दो नगरों को बसाकर, पाँच वर्षों में उनको राजधानियों के रूप में विकसित कर, वहाँ तक्ष तथा पुष्कल को स्थापित कर दिया। वे स्वयं श्री राम की सेवा में अयोध्या लौट आए। भरत के ही परामर्श पर लक्ष्मण के पुत्रों- अंगद तथा चन्द्रकेतु के लिये कारूपथ देश में अंगदीया तथा चन्द्रकान्ता नाम की राजधानियाँ बसायी गयीं। तत्पश्चात् लवणासुर का भी राज्याभिषेक कर दिया गया। इन समस्त प्रसंगों में भरत की अनुपम वीरता, सफल सचिवत्व तथा प्रबन्ध-कुशलता सिद्ध होती है। उत्तरकाण्ड के अन्त में राम के परमधाम जाने का प्रसंग है। अयोध्या के ऋषि, ब्राह्मण, अन्तःपुर की स्त्रियाँ, भरत, शत्रुघ्न, मंत्रीगण तथा भृत्य वर्ग

1- अनुशीर्य तदा रामं भरतः सः कृताञ्जलिः। प्रत्यर्पितं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः। यद् त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्॥
वा० रा० / 6/127/55-56 तथा देखिए वा० रा० /128/1-11 तक।

2- वा० रा०/7/93/15 ।

श्री राम के साथ ही परम धाम को चले । श्री राम अपने भाइयों सहित विष्णु स्वरूप में प्रविष्ट हो गए तथा अयोध्या के सब लोगों को सानन्द नामक लोक की प्राप्ति हुई ।

अधिकांश विद्वानों का मत है कि सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है । वाल्मीकि ने केवल अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक के पाँच काण्डों की ही रचना की थी । बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड कालान्तर में जोड़े गए हैं । ऐसा मानने के अनेक कारण हैं, यथा- रामायण के विभिन्न पाठों में भिन्नता,[1] युद्धकाण्ड के अन्त में फलश्रुति, वाल्मीकि का आदरपूर्वक उल्लेख, नारद द्वारा कथित अनुक्रमणिका में अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की सामग्री का होना, इन दोनों काण्डों की शैली का अन्य पाँच प्रामाणिक काण्डों से भिन्न होना तथा उत्तरकाण्ड में पूर्व वर्णित कुछ प्रसंगों की पुनः आवृत्ति होना आदि । उपर्युक्त कारणों से फादर कामिल बुल्के भी उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं।[2] विभिन्न भाषाओं में रचित अन्य रामायण की पद्य रूप से इस बात को सिद्ध करते हैं । परम्परागत रूप से खेली जाने वाली रामलीला भी राज्याभिषेक पर समाप्त कर दी जाती है । उत्तरकाण्ड का अर्थ भी " बाद में रचितकाण्ड" है । इस काण्ड में प्रमुख पात्रों का विकास भी उत्तम शैली में नहीं हुआ है ।

वाल्मीकीय रामायण में भरत का स्वरूप

चारित्रिक गुण

धर्म-परायणता- भरत के चरित्र में दो मुख्य गुण सर्वत्र दिखाए गए हैं- धर्म-परायणता तथा राम-प्रेम । वाल्मीकि ने धर्म-परायणता पर अधिक बल दिया है जबकि अन्य कवियों ने भरत के राम-प्रेम को ही प्रमुखता दी है । वाल्मीकीय रामायण में भरत के अन्य सभी गुण तथा उनका समस्त कर्तव्य इसी धर्म-प्रवणता के अधीन है । समस्त क्रियायें एक ही दिशा की ओर उन्मुख हैं और वह है धर्म के स्वरूप को पहचान कर उसके अनुसार आचरण करना । वाल्मीकि ने धर्माचरण

1- इस रामायण/पृ0 28/64 ले0 रघु0 वाजपेयी ।

2- रामकथा उत्पत्ति और विकास पृ0 30 एवं पृ0 140 से 145 तक ।

पुस्तकालय

में भी व्यक्तिगत परिस्थितियाँ घर कर लिया है ; यथा- पिता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है , परन्तु राम और भरत के विषय में यह धर्म भी आचरण का समान विषय नहीं बन सका । राम ने पिता के बिना कहे केवल कैकेयी के कहने मात्र से ही, पिता की धर्म-संकट से बचाने हेतु चौदह वर्ष के कठोर वनवास का सहर्ष वरण कर लिया । उन परिस्थितियों में यही उनका धर्म था जिसके आचरण से न केवल गृह-कलह शान्त हुई अपितु एक परमोज्ज्वल आदर्श का सूत्रपात हुआ जिसका परमोत्कर्ष भरत द्वारा राज-त्याग में दिखाई देता है । परन्तु भरत ने पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया क्योंकि उनकी परिस्थितियों में पिता की आज्ञा का पालन कैकेयी के राम-निर्वासन सी कुकृत्य एवं घोर दुराचरण का अनुमोदन होता । धर्मज्ञ भरत ऐसा कुत्सित कार्य कैसे कर सकते थे ? अतः गुरु वसिष्ठ द्वारा भी आदेश दिए जाने पर वे " (धर्मज्ञ) महाराज दशरथ का कोई भी पुत्र बड़े भाई के राज्य का अपहरण कैसे कर सकता है ? कहकर राज्य ग्रहण करना अस्वीकार कर देते हैं[1] । इस विषय में उन्होंने अपने से वरिष्ठ किसी भी व्यक्ति की सम्मति अथवा आदेश नहीं माना । कैकेयी की कटु भर्त्सना के साथ[2], पिता दशरथ की स्पष्ट अस्वीकृति के साथ[3], गुरु वसिष्ठ की धर्मीय उपालम्भ के साथ[4] तथा राम की स्नेहपूर्ण सत्याग्रह के साथ[5] आज्ञा का इस विषय में उन्होंने उल्लंघन किया है । भरत की धर्म-बुद्धि में उपर्युक्त आदेशों के अनुपालन में राज्य स्वीकार कर लेना घोर अधर्म एवं अन्याय था क्योंकि - (1) इक्ष्वाकुवंशीय परम्परा के अनुसार राज्य का अधिकारी बड़ा भाई ही होता था[6] , (2) राम विद्या-बुद्धि-सम्पन्न, सुयोग्य, धार्मिक

1- कथं दशरथाज्जातो भवेद् राज्यापहारकः । राज्यं वाहं च रामस्य धर्मं वक्तुमिहार्हसि ।।
ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मात्मा दिलीपनहुषोपमः । लब्धुमर्हति काकुत्स्थो राज्यं दशरथो यथा ।।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं कुर्यां पापमहं यदि । इक्ष्वाकूणामहं लोके भवेयं कुलपांसनः ।।

वा० रा० /2/82/12-14 ।

2- वा० रा० /2/73/1-27 तथा वा० रा०/2/74/1-35 ।

3- वा० रा०/2/106/11-17 । 4- वा० रा०/2/82/10-19 ।

5- वा० रा०/2/102/1-4 ; 2/105/4-12 ; 2/106/2-32 ; तथा 2/111/12-15 ।

6- वा० रा०/2/101/10 ; तथा आरक्षो यं सदा धर्मः स्थितो स्मासु नरर्षभ ।
ज्येष्ठे पुत्रे स्थितो राजा न कनीयान् भवेन्नृपः ।।

वा० रा०/2/102/2 ।

तथा जनप्रिय थे[1], (3) प्रिय राम के निर्वासन रूप घोर अन्याय के द्वारा प्राप्त राज्य को स्वीकार हो[2]? (4) जिसके मूल में लोभ, स्वार्थपरता एवं निष्ठुरता आदि मानव-धर्म विरोधी बातें हों, वह राज्य प्राप्ति क्योंकर अभीष्ट हो सकती थी[3]? (5) राम के निर्वासन के कारण पिता की मृत्यु रूपी भारी अनर्थ हो चुका था[4]। (6) इससे कौसल्या, सुमित्रा, सीता, लक्ष्मण तथा सम्बन्धियों, परिजनों तथा प्रजावर्ग को घोर कष्ट हुआ था[5] तथा (7) इससे स्वयं भरत को भीषण कलंक तथा दुःख मिला था[6]। इस प्रकार उस समय गुरुजनों की आज्ञा न मानते हुए राज्य अस्वीकार करना ही भरत के लिए श्रेष्ठतम धर्म था, जिसका उन्होंने धर्मज्ञ एवं धर्म-प्राण के रूप में पालन किया।

भरत की धर्म-परायणता की प्रशंसा रामायण के अनेक पात्र करते हैं। राम-निर्वासन की वर याचना से कैकेयी को विरत करने हेतु उसे समझाते हुए दशरथ कहते हैं- " श्री राम के बिना भरत किसी प्रकार राज्य लेना स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि मेरी समझ में धर्मपालन की दृष्टि से भरत राम से भी बढ़कर हैं[7]।" श्री राम को तो भरत के धर्माचरण पर सदैव ही विश्वास था। वन जाते समय राम ने कौसल्या को समझाया था, " भरत बड़े धर्मात्मा हैं। वे सब प्राणियों के प्रति प्रिय वचन बोलने वाले और सदा ही धर्म में तत्पर रहने वाले हैं। अतः वे तुम्हारी सेवा अवश्य करेंगे[8]।" चित्रकूट में जब सेना सहित भरत को आता देखकर शंकित लक्ष्मण क्रोध से उद्वेलित हो उठे, तब राम ने उनसे भरत की प्रशंसा करते हुए कहा था- " मुझे वन में आया हुआ सुनकर भरत कुल-धर्म का विचार कर स्नेहयुक्त हृदय से हम लोगों से मिलने आए हैं। x x x । माता कैकेयी के प्रति कुपित हो, उन्हें कठोर वचन सुनाकर भरत मुझे राज्य देने के लिए आए हैं। भरत का हमसे मिलने आना सर्वथा समयोचित है[9]।" श्री राम भरत

1- वा० रा०/2/82/13 ।

2- वा० रा०/2/73/13-14 ।

3- वा० रा०/2/74/7 ।

4- वा० रा०/2/73/2-7 ।

5-वा० रा०/2/73/8 तथा 10-11 ; 2/88/3-21 ।

6- वा० रा02/73/2-3 ; तथा 2/74/5-6 ।

7- न कथंचिदसौ रामाद् भरतो राज्यमाप्नुयात् ।।
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम् । वा० रा०/2/12/61-62 ।

8- भरतश्चापि धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः ।। भवतीमनुवर्तेत स हि धर्मरतः सदा ।
वा० रा०/2/24/22-23 ।

9- वा० रा०/2/97/9-13 ।

के चरित्र एवं धर्माचरण को भलीभाँति जानते थे । उन्हें भरत की धर्मनिष्ठा में पिता से कहीं बढ़कर विश्वास था । अयोध्या के सम्पूर्ण समाज में केवल राम ही ऐसे थे जिन्हें भरत के आचरण के विषय में किसी भी समय शंका नहीं हुई ।

जिस समय भरत मातुल-गृह से लौटकर आए थे, उस समय अयोध्या का वातावरण भरत के प्रति शंका से दूषित था । शंका का उदय सर्व प्रथम महाराज दशरथ के मन से ही हुआ था । राजा दशरथ के मन में भरत के प्रति शंका थी इसीलिए वे भरत की अनुपस्थिति में ही राम का राज्याभिषेक कर देना चाहते थे[1] । राम निर्वासन का वर माँगने पर कुपित दशरथ कैकेयी से भरत के विषय में यहाँ तक कह डालते हैं, " यदि भरत को भी राम का यह निर्वासन प्रिय लगे तो मेरी मृत्यु के पश्चात् वह मेरे शरीर का दाह संस्कार न करे[2] ।" महाराज की मृत्यु ने इस वातावरण को और विषाक्त बना दिया । कौसल्या का सरल हृदय भी भरत की ओर से शंकाहीन न था, इसी कारण वन जाते समय उन्होंने राम से कहा था कि, " जो कोई मेरी सेवा में रहेगा अथवा मेरा अनुसरण करेगा, वह भी कैकेयी के बेटे को देखकर दुःखी हो जायेगा, मुझ से बात नहीं करेगा[3] ।" ननिहाल से लौटकर आए हुए भरत से पति तथा पुत्र वियोग से पीड़ित कौसल्या ने कठोर बातें कही थीं और शपथित भरत ने शपथ करते हुए उन्हें अपने निर्दोष होने का विश्वास दिलाया था[4] । राम वन-वास के कारण लक्ष्मण भी भरत से अत्यन्त क्षुब्ध थे[5] । श्रृंगवेरपुर में केवट ने[6] तथा प्रयाग में भरद्वाज मुनि[7] ने उन पर शंका की । अयोध्या की प्रजा के मन में भी शंका थी कि कदाचित् राम निर्वासन में भरत का भी हाथ हो ।

भरत के धर्माचरण ने अयोध्या के इस दूषित वातावरण को अपनी पवित्रता से सर्वथा क्षुब्ध कर दिया । लोक प्रिय भाई के निर्वासन तथा पिता की मृत्यु से उत्पन्न उस शोकपूर्ण विषम परिस्थिति में भी भरत को यह निश्चित करते देर नहीं लगी कि उन्हें क्या करणीय है । धर्म में सुनिश्चित उनकी बुद्धि ने उनका कर्तव्य-पथ तुरंत ही निश्चित कर दिया और उन्होंने राम को राज्य देने का श्रेष्ठ निर्णय ले लिया । यह निर्णय उनके लिए अक्षय सुयश का कारण बन गया तथा इसने ऐसी कल्याण परम्परा का सृजन किया जो केवल रामायण अथवा रामचरित में ही उपलब्ध है।

1- वा० रा० / 2/4/25-27 ।

2- प्रियं चेद् भरतस्यैतद् राज्यप्राप्तिर्मम भवेत् । मा स्म मे भरतः कार्षीद् प्रेतकृत्यं गतायुषः ।।
वा० रा० / 2/12/92 ।

3- वा० रा० /2/20/43 । 4- वा० रा० / 2/57/17-59 ।

5- वा० रा० /2/60/17-30 । 6- वा० रा० /2/85/7 ।

7- वा० रा० /2/90/10-18 ।

हाथ में आए हुए इतने विशाल साम्राज्य को त्याग कर कुश घास का निर्वहन करना स्वयं में एक महान् आदर्श है । भरत ने अपने त्याग तथा धर्माचरण द्वारा कवि का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह सभी युगों में अनुकरणीय है ।

जितेन्द्रियता- श्री राम के समान भरत भी जितेन्द्रिय थे । उन्हें क्रोध आदि अशोभनीयों पर सहज नियंत्रण प्राप्त था । लोभ उन्हें छू भी नहीं गया था । अयोध्या का विशाल साम्राज्य उनके लिए तृणवत् उपेक्षणीय था । अर्थ से प्राप्त हुआ स्वर्ण भी उनके लिए स्पृहणीय न था । राम-वनवास से उन्हें जो ग्लानि एवं मानसिक ताप हुआ उसी से चौदह वर्षों तक जलते रहे । जब बार बार उनके अनुरोध करने पर भी राम अयोध्या को नहीं लौटे तब भरत ने उनकी पादुकाओं की प्रदक्षिणा करके वहीं उनके सामने यह प्रतिज्ञा की कि, वे भी चौदह वर्षों तक जटा-चीर धारण कर फलमूल का आहार कर राम की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहेंगे[1] । भरत ने अपनी इस प्रतिज्ञा को अपनी जितेन्द्रियता के सहारे नन्दिग्राम में रह कर पूर्ण भी किया[2] ।

सहृदयता- वाल्मीकि के भरत में दूसरे के दुःख एवं पीड़ा को समझने तथा उसे अनुभव करने की जो महती क्षमता है, उसने उन्हें मानव से उठाकर महामानव बना दिया है । भरत सब की पीड़ा दूर करना चाहते हैं । पुत्र वियोग जन्य कौसल्या के दुःख का सहज अनुमान कर वे कैकेयी की बहु भर्त्सना करते हैं, " एक पुत्रवाली माता कौसल्या का तू ने उनके पुत्र से वियोग करा दिया है, इसलिए तू सदा ही इस लोक और परलोक में दुःख पायेगी[3] ।" आदि । माता कौसल्या को समझा कर, प्रेम तथा आदर प्रकट कर वे उनके शोक को दूर करने की चेष्टा करते हैं । राम के वनवास के कष्टों की कल्पना करके भरत अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं । उनके दुःख का मूल कारण ही यह है कि उनके कारण राम को घोर कष्ट उठाना पड़ रहा है । कैकेयीपुत्र में गुह द्वारा दिखाई गई कुश शय्या को देखकर भरत को बड़ा दुःख हुआ था । उनका हृदय करुण-चीत्कार कर उठा ," हाय ! मेरा जीवन व्यर्थ है । मैं बड़ा क्रूर हूँ जिसके कारण सीता सहित श्री राम को अनाथ की भाँति ऐसी शय्या पर सोना पड़ता है[4] ।" इसी प्रकार चित्रकूट पर्वत पर

1- स पादुके सम्प्रणम्य रामं वचनमब्रवीत् । पादुके हि मयाऽऽर्याणि जटाचीर धरोऽहम् ।।
फलमूलाशनो वीर भवेयं रघुनन्दन । तवागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद् बहिः ।
तव पादुकयोर्न्यस्य राज्यतन्त्रं चरामि । वा० रा० /2/112/23-25 ।

2- वा० रा० /2/115/23 । 3- वा० रा० /2/74/28-29 ।

4- हा धिगस्मि दुर्बुद्धी रिय मद् सभार्यः कृतो मम ।
ईदृशीं राघवः कृच्छ्रामधिशेते सुखोचितः ।।
वा० रा०/ 2/98/17 ।

राम की पर्णकुटी एवं भूमि पर बैठे राम को देखकर उनके कष्टों के अनुमान से सिहर उठे[1]।

भरत ने प्रजाओं के दुःख एवं शोक का अनुभव करते हुए ही कैकेयी को फटकारा था, " पाप पूर्ण संकल्पवाली पापिनी ! पुरवासी जन आँसू बहाते हुए, अवरुद्ध कण्ठ हो मुझे देखें और मैं तेरे लिए इस पाप का बोझा ढोऊँ - यह मुझ से नहीं हो सकता[2]।" भरत पुरजनों के संतापनिवारणार्थ भी राम को लौटा लेना चाहते थे।

भरत सब के सुख-दुःख की खबर रखते थे। अपने अनुचरों तथा सेना का उन्हें ध्यान रहता था। चित्रकूट यात्रा के समय उनकी यह वत्सलता देखी जा सकती है[3]।

वाल्मीकि ने भरत का चित्रण दया तथा संवेदना से युक्त सच्चे मानव के रूप में किया है। समस्त पापों की जड़ मंथरा को जब शत्रुघ्न पीटने लगे तब उसकी आर्त दशा पर दया करके " स्त्रियाँ सभी के लिए अवध्य होती हैं, कहकर उन्होंने उसे प्राण संकट से छुड़ा दिया[4]।

भ्रातृ-वत्सलता- धर्मज्ञता के बाद भरत का दूसरा प्रमुख गुण है भ्रातृ-वत्सलता। बालकाण्ड में हम चारों भाइयों के पारस्परिक प्रेम को देख चुके हैं। शत्रुघ्न तो उनके जीवन का ही अंश हैं और लक्ष्मण के प्रति उनका प्रेम अनेक स्थलों पर प्रकट हुआ है। भरत को राम के गुणों के प्रति श्रद्धा है तथा बड़े भाई के रूप में राम से उन्हें प्रेम है। वे बड़े भाई को पिता तुल्य मानते हैं। जितना शोक उन्हें पिता के निधन का हुआ उतना ही राम के निर्वासन का भी हुआ[5]। वे कैकेयी को फटकारते हुए कहते हैं कि, " मैं समझता हूँ कि तू लोभिनी है, इसीलिए तू यह भी नहीं समझी कि मेरा राम के प्रति कैसा भाव है। इसीलिए तू ने राज्य के लिए यह महाघोर अनर्थ कर डाला[6]।" कैकेयी दशरथ द्वारा स्पष्ट रूप से बताये जाने पर भी राम-भरत के प्रेम की इस गहनता को समझ नहीं सकी थी, जिसका भयंकर परिणाम घोर ग्लानि के रूप में उसे आजीवन भोगना पड़ा। राम को वन से लौटा लाने के प्रयत्न में भरत की भ्रातृ-वत्सलता भी प्रमुख कारण थी। कैकेयी, कौसल्या, गुरु, सचिव आदि सभी से हुए वार्तालाप में भरत का भ्रातृ-प्रेम स्पष्टतया से देखा जा सकता है। शृंगवेरपुर में राम की कुश साथरी देखकर भरत शोक

1- वा० रा० /2/99/15-18 । 2- वा० रा० /2/74/32 ।

3- वा० रा० /2/83/22-23 । 4- वा० रा० /2/78/21-22 ।

5- वा० रा० /2/73/2 ।

6- तुच्छाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवो यथा ।
तथा ह्यनर्थं राज्यार्थं रक्षसाऽऽनीतो महानयम् ।।

वा० रा० /2/73/13 ।

से कातर हो गए । राजसी बिछौनों पर सोने वाले राम कुश शय्या पर शयन करें, यह बात भरत को बहुत दुःख दे रही थी । अयोध्याकाण्ड का 99वाँ सर्ग भरत के दुखी उद्गारों एवं करुण विलापों से परिपूर्ण है । यहाँ भरत प्रतिज्ञा करते हैं कि, " आज से मैं भी पृथ्वी पर अथवा तिनकों पर शयन करूँगा, फलमूल ही भोजन करूँगा और जटा-वल्कल धारण करूँगा ।[1] इसके बाद के अनेक श्लोकों में वे राम के स्थान पर स्वयं वन में रहने की कामना करते हैं तथा राम के अयोध्या में राज्याभिषेक की कामना करते हैं[2] ।

श्री राम की चित्रकूट पर खोज करते हुए भरत, शत्रुघ्न से कहते हैं कि, " जब तक अपने पूज्यपाद भ्राता श्री राम के कमल सदृश विशालनेत्रों वाले सुन्दर मुखचन्द्र का दर्शन न कर लूँगा तब तक मेरे मन को शान्ति प्राप्त नहीं होगी[3] ।" प्रत्येक शब्द प्रेम-रस में सिक्त है जिससे प्रेम तथा शोक परिप्लावित भरत के हृदय की दशा का अनुभव किया जा सकता है । निरन्तर राम का दर्शन करने के कारण सीता और लक्ष्मण तो धन्य हैं ही, भरत अनुभव करते हैं कि वह वन तथा पर्वत भी धन्य है जहाँ श्री राम निवास करते हैं । चित्रकूट में राम को जटा-वल्कल धारण किए भूमि पर बैठे देखकर तो भरत को बहुत अधिक शोक-संताप हुआ[4] । वे स्वयं को धिक्कारते हुए कहने लगे कि, " जो सर्वथा सुख भोग के योग्य हैं, वे श्री राम मेरे ही कारण ऐसे दुःख में पड़ गए हैं । ओह ! मैं कितना क्रूर हूँ ! मेरे इस लोक निन्दित जीवन को धिक्कार है ।[5]" राम भरत के विमल प्रेम का वर्णन करना तो असम्भव ही है । भरत ने बड़े आदर, अनुनय-विनय एवं प्रेम से राम से राज्याभिषेक हेतु अनुरोध किया परन्तु राम ने पिता की आज्ञा के समक्ष उसे अस्वीकार कर दिया । भरत ने बार बार राम से अयोध्या को लौट चलने हेतु तथा राज्य ग्रहण करने हेतु आग्रह किया परन्तु राम ने उसे प्रत्येक बार अस्वीकार कर दिया । रामायण का यह सम्पूर्ण प्रसंग भरत के भ्रातृ-प्रेम, धर्म परायणता एवं विनयशीलता से ओत-प्रोत है ।

<u>विनयशीलता-</u> भरत में अनुपम विनयशीलता है । माता कौसल्या, गुरु वसिष्ठ तथा श्री राम के प्रति तो उनका विनयशील होना स्वाभाविक ही है, परन्तु अपने प्रति अकारण द्वेष तथा अश्रद्धा रखने वाले मुनि के प्रति भी वे अति विनीत हैं । उनका राम से यह कहना सर्वथा उनकी विनयशीलता के

1- अद्य प्रभृतिं भूमौ तु शयिष्ये हंसतूलेषु वा । फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ।।
वा० रा० /2/88/26 ।

2- वा० रा० /2/88/27-30 ।

3- यावन्न चन्द्रसंकाशं तद् द्रक्ष्यामि शुभाननम् । आशुः पद्मविशालाक्षं न मे शान्तिर्भविष्यति ।।
वा० रा०/2/98/7-8 ।

4- वा० रा० /2/99/31-33 ।

5- मन्निमित्तमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखोचितः ।
धिग्जीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ।। वा० रा० /2/99/36 ।

अनुज था कि," मैं आयु ज्ञान और जन्मजात अवस्था दोनों ही दृष्टियों से आपकी अपेक्षा बालक हूँ, फिर आपके रहते हुए मैं पृथ्वी का पालन किस प्रकार करूँगा ? मैं बुद्धि और गुण दोनों में आप से हीन हूँ तथा मेरा स्थान आपसे बहुत छोटा है ।" आदि[1] ।

भरत की विनयशीलता से राम बहुत प्रभावित थे । जब भरत ने राम से कहा कि," आप इस राज्य को स्वीकार कर किसी अन्य को इसके पालन का भार सौंप दीजिये,[2] तब राम ने स्नेहपूर्वक उनसे कहा था, " तात ! तुम्हें जो यह स्वाभाविक विनयशीलता बुद्धि प्राप्त हुई है, इसके द्वारा तुम समस्त भूमण्डल की रक्षा करने में भी पूर्ण रूप से समर्थ हो ।" श्री राम द्वारा की गई भरत की इस प्रशंसा का ही अनुमोदन मानों महर्षि मुनि ने किया -" भरत तुम मनुष्यों में सिंह के समान वीर तथा शील और सदाचार के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ हो । जैसे नीची भूमि वाले जलाशय में सब ओर से बहकर जल आता है, उसी प्रकार तुम में समस्त श्रेष्ठ गुण स्थित हैं- यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । तुम्हारे पिता दशरथ सब प्रकार से धन्य हो गए, जिनके, तुम जैसा धर्मानुरागी एवं धर्मात्मा पुत्र है ।"[4]

डा० ओ० ए० राजूरकर ने अपनी पुस्तक " रामकथा पात्र" में वाल्मीकि के भरत दो ऐसे कार्य बताए हैं जो उनकी धर्मज्ञता को देखते हुए दोष कहे जा सकते हैं । इनमें प्रथम है कैकेयी से राम-निर्वासन का समाचार सुनकर भरत का यह कहना कि कहीं राम से " कोई पारिवारिक अनुचित का अधःपतित कृत्य तो नहीं हुआ, जिससे दशरथ ने उन्हें पटरानी करके वन में भेज दिया ।" उनके अनुसार यह मानवीय प्रकृति की पारिवारिक दुर्बलता है जो वाल्मीकि के मानव राम और भरत में भी होना स्वाभाविक है । " ऐसे इस प्रकार की शंका राम के प्रति भरत के मन में आना भरत के चरित्र की दुर्बलता का परिचायक है "[5] । अपनी इस दुर्बलता का ज्ञान होते ही भरत अत्यन्त खिन्न हो जाते हैं । मेरे विचार में निर्दोष राम के निर्वासन के अनौचित्य को प्रखरतर रूप में प्रकट करने के लिए भरत के मन में इस प्रकार की शंका का उदय कराकर कवि मनोवैज्ञानिक ढंग से उनके मन में ग्लानि एवं न्यायिक भावना उत्पन्न करायी है । कवि की कला की दृष्टि से भरत के मन में उठी ये शंकाएँ तथा प्रश्न महत्वपूर्ण हैं ।

1- वा० रा० /2/106/23-24 । 2- वा० रा० /2/112/6-13 ।

3- आत्मा त्वामिमां बुद्धिः स्वजा वैनयिकी च या ।
अभ्युत्तरते तात रक्षितुं पृथिवीमपि ॥
वा० रा० /2/112/16 ।

4- वा० रा० /2/113/16-17 ।

5- रामकथा के पात्र /पृ० 234 ।

दूसरा दोष है कैकेयी की कटु भर्त्सना का । उपर्युक्त प्रसंग में यह जानने पर कि राम का निर्वासन उनके अथवा राम के किसी दोष के कारण नहीं अपितु भरत की राज्य प्राप्ति हेतु कैकेयी के अपकृत्य का परिणाम है तब भरत इस आघात से विक्षुब्ध हो उठते हैं । कैकेयी के कुकृत्य ने भरत के माथे पर कलंक का टीका लगा दिया है, अतः वे कैकेयी की तीव्र भर्त्सना करते हैं । डा० भ० ह० राजूरकर के अनुसार " वाल्मीकि के इस मानव सुलभ दुर्बलता के प्रसंग का वर्णन यथार्थ, उत्कट तथा उग्र बन गया है, जिसके दो दारुण कारण हैं, परम प्रिय भाई राम का " वनगमन तथा पिता का देहान्त ।"[1] इस भ्रातृ-भर्त्सना में उनके अनुसार कुलाभिमान तथा चारित्र्यनिष्ठा ये दोनों बातें पुनः स्पष्ट हुई हैं । डा० राजूरकर ने निम्नलिखित दो श्लोकों को विशेष रूप से बहुत बताया है-

तारकामग्निं प्रविश्य वा स्वयं वा विष दण्डकान् ।
रज्जुं बद्ध्वाथवा कण्ठे नहि तोऽन्यत् परायणम् ।।

तथा- हन्याममिमां पापां कैकेयीं दुष्ट चारिणीम् ।
यदि मां धार्मिको रामो नानुयेन्मातृघातकम् ।।

सभा के मध्य राम के सामने यह कहना कि " वह कैकेयी का वध ही कर डालता यदि उसे पाप का भय न होता ।" भी उक्त लेखक के अनुसार अधिक उग्र है । परन्तु उनके अनुसार " भरत का यह अस्थायी दोष, यह अस्थायी दुर्बलता उनके आदर्श चरित्र से ही सम्बन्धित है । वैसे इस प्रकार की अशिष्टता, अधैर्य और उग्रता उनके स्थायी शील स्वभाव का अंग नहीं है ।"[2]

मेरे विचार से रामायण काल से पूर्व सम्भवतः यह बात लोक प्रचलित थी कि अपराध करने पर स्त्रियों का भी वध किया जा सकता था । उस काल में अपराधी नारी भी दण्डनीय थी । राम से पूर्व जन्मे परशुराम ने अपनी अपराधिनी माता का पिता की आज्ञा से वध किया था । इन्द्र ने विरोचन पुत्री मंथरा को तथा विष्णु ने भृगु पत्नी को मार डाला । राम ने विश्वामित्र की आज्ञा से ताड़का का वध किया[3] । तथा लक्ष्मण ने राम की आज्ञा से शूर्पणखा का विरूपीकरण किया[4] । ऐसा प्रतीत होता है कि पिता, अग्रज, गुरु आदि बड़े लोगों की आज्ञा से अपराधी स्त्रियों को दण्डित किया जाना या मार डालना उस काल में अनुमन्य था परन्तु शूर-वीर समाज में यह धारणा भी बनने लगी थी कि अबला स्त्रियाँ वध करने योग्य नहीं हैं, परंतु दण्डनीय अवश्य हैं । सम्भव है कि न्याय के इसी दृष्टिकोण के प्रभाव से भरत ने भी अपनी माँ की कटु भर्त्सना की हो तथा उक्त दोनों श्लोकों का मन्तव्य प्रकट किया हो

1- 1- रामकथा के पात्र/पृ० 242 । 2- रामकथा के पात्र /पृ० 243-244 ।

3- वा० रा० /1/25/15-22 । 4- वा० रा० /3/18/19-21 ।

और धर्म का आश्रय लेने के कारण ही उन्होंने कैकेयी को मारा न हो । उस समय के नैतिक मूल्य भले ही इस प्रकार के आचरण की अनुमति देते रहे हों परंतु कालान्तर में माता के वध या दण्ड की कल्पना भी पाप समझी जाने लगी और परवर्ती कवियों ने माता को मार डालने की बात भरत के मुख से नहीं कहलायी है ।

बाद में भक्त कवियों के प्रथम दोष को तो अपने काव्य से एकदम निकाल दिया है तथा दूसरे दोष- मातृ भर्त्सना को अपेक्षाकृत अल्पकटु बनाया है । क्रमपूर्वक निर्दोषता सिद्ध करने तथा धरना देने के प्रकरण भी भरत की शालीनता एवं गम्भीरता के अनुकूल प्रतीत नहीं होते । अतः बाद के अनेक कवियों ने क्रम प्रकरण को संक्षिप्त कर दिया है तथा धरना देने की बात को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है ।

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी आदि कवि ने भरत की अनुपम मानवता का वर्णन अत्यन्त सुन्दर किया है । उन्होंने सम्पूर्ण अयोध्या काण्ड में भरत की धर्मपरायणता, सत्यनिष्ठा, निर्लोभता, जितेन्द्रियता, भ्रातृ-प्रेम, सहिष्णुता, दया, करुणा आदि से पूर्ण मानवता के उस निर्मल स्वरूप के दर्शन कराये हैं, जो सम्पूर्ण विश्व के कालुष्य धोने में समर्थ है । भरत का चरित्र सूर्य के समान प्रकाश विकीर्ण कर शोक, संताप आदि के अन्धकार को पूर्णतया नष्ट कर देता है । उनका प्रेम सब को दुलराता है तथा उनका सुयश सबके अपयश को दूर करने हेतु आदर्श प्रस्तुत करता है । शान्तिमूर्ति भरत की सौम्यता किसे अपने वश में नहीं कर लेती । जो व्यक्ति उनके विषय में अनुचित कल्पनायें करके शंकालु थे वे ही उनके व्यवहार से उनके प्रशंसक बन गए । रामायण के भरत की महिमा वस्तुतः वर्णनातीत है ।

महाभारत में भरत

महाभारत का रचनाकाल- महाभारत का रचनाकाल वाल्मीकीय रामायण के बाद का प्रतीत होता है क्योंकि रामायण की सम्पूर्ण कथा में महाभारत अथवा महाभारतकार तथा कौरवों एवं पाण्डवों की कोई चर्चा नहीं की गई है परन्तु महाभारत में अनेक स्थलों पर रामकथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । वन पर्व में रामोपाख्यान सहित चार स्थलों पर रामकथा का संक्षिप्त वर्णन उपलब्ध है । द्रोणपर्व एवं शान्ति पर्व में रामराज्य का संक्षिप्त वर्णन है । इस प्रकार रामायण में महाभारत के किसी प्रकार के भी उल्लेख का अभाव तथा महाभारत में रामकथा की समयानुसार चर्चा रामायण को महाभारत के पूर्व की रचना सिद्ध करने हेतु अन्तर साक्ष्य के रूप में पर्याप्त है ।

वनपर्व के 147 वें अध्याय में भीमसेन तथा हनुमान की वार्ता में रामायण की कथा[1] का उल्लेख हुआ है। स्वर्गारोहण पर्व के प्रसंग में भी रामायण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[2] द्रोण पर्व के एक श्लोक में वाल्मीकि को रामकाव्य का रचयिता कवि भी माना गया है।[3] इसके अतिरिक्त शान्ति पर्व के 200 वें अध्याय के चौथे श्लोक में भी वाल्मीकि के नाम का उल्लेख किया गया है। शान्ति पर्व में गोविन्द की महिमा गाने वालों का जो उल्लेख मिलता है उनमें असित, देवल, मार्कण्डेय तथा वाल्मीकि के नाम दिए गए हैं। रामोपाख्यान की कथा का स्पष्ट रूप से वाल्मीकीय रामायण के आधार पर लिखी गई प्रतीत होती है। डा० याकोबी का भी मत है कि रामोपाख्यान रामायण पर ही आधारित है।[4] अनेक विद्वान डा० याकोबी के मत से सहमत हैं। उपर्युक्त कथन के आधार पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाभारत की रचना ईसा के जन्म के पूर्व हो चुकी थी।

<u>महाभारत में रामकथा-</u> सम्पूर्ण महाभारत में केवल तीन पर्वों में ही रामकथा का थोड़ा-बहुत वर्णन उपलब्ध है- (1) वन-पर्व में (2) द्रोण पर्व में (3) शान्ति पर्व में। इनमें भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण वन पर्व हैं क्योंकि महाभारत का प्रसिद्ध रामोपाख्यान इसी के अन्तर्गत आता है। वन पर्व में रामोपाख्यान के अतिरिक्त तीन अन्य स्थलों पर भी रामकथा का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त रामकथा के पात्रों का उल्लेख उपमाओं आदि के रूप में लगभग पचास स्थलों पर हुआ है।[5] आदि पर्व में अस्त्रधारियों में श्रेष्ठतम के रूप में प्रसंगवश राम का उल्लेख दो-तीन बार मिलता है।

वन पर्व के पच्चीसवें अध्याय के चार श्लोकों में राम का वर्णन किया गया है। दुर्योधन से द्यूत क्रीड़ा में हारकर घोर जंगल प्रदेश में वनवास करते हुए युधिष्ठिर को मिलने हेतु अनेक ब्राह्मण ऋषि आदि आए जिनमें मार्कण्डेय मुनि भी थे। मार्कण्डेय को युधिष्ठिर की खिन्नावस्था देखकर दाशरथि राम का स्मरण हो आया और वे बोले, " तुम्हारी इस विपत्ति को देखकर मुझे सत्यप्रतिज्ञ दशरथ पुत्र राम का स्मरण हो आया है। पिता की आज्ञा से लक्ष्मण के साथ वन में निवास करते हुए उन धनुधारी रघुराम को मैंने पूर्वकाल में अत्यधिक थकान पर देखा था।" (महा० वन-पर्व, 25,8-11) वन-पर्व के 99 वें अध्याय में तीर्थ यात्री युधिष्ठिर को लोमश ऋषि ने परशुराम

1- महाभारत/वनपर्व/147/11-12।
2- वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ। आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥
महाभारत/स्वर्गारोहण पर्व/6/95।
3- अपि चार्षं पुरागीतः श्लोको वाल्मीकिना मुनि।
पौलस्त्यवधमिन्नार्थं यत्स्यात्तत्कीर्त्यमेव तत्॥ महाभारत/शान्ति पर्व/200/4।
4- डब्लू रामायण/पृ०-72।
5- कलेक्शन ओरिएण्टल लोसाइटी, भाग50(1930) पृ० 85-103(डब्लू हार्ड्विक) तथा " रामकथा उत्पत्ति और विकास" पृ० 48।

की कथा इस प्रकार सुनाई- " महात्मा दशरथ के पुत्र का नाम राम था । उनको भी दशरथ के घर में उत्पन्न हुआ देखा था । रावण का वध करने हेतु राम के रूप में साक्षात् विष्णु ने अवतार लिया था । अयोध्यानन्दन, रेणुका पुत्र, भार्गव परशुराम ने दशरथ पुत्र राम के अनेक विलक्षण कर्मों के विषय में सुना जिससे आश्चर्ययुक्त होकर वे अयोध्या को गए तथा अपने साथ उस धनुष को भी ले गए जिससे उन्होंने क्षत्रियों का नाश किया था । वे दाशरथि राम के कार्यों को जानने के लिये उत्सुक थे । परशुराम के ललकारने पर राम ने परशुराम द्वारा लाए गए वैष्णव धनुष के प्रत्यंचा को चढ़ाकर उस पर बाण संधान किया तथा परशुराम को दिव्य दृष्टि देकर अपने विराट् स्वरूप का दर्शन कराया । वैष्णव धनुष से बाण को छोड़ने से सम्पूर्ण जगत उल्कापात, धूलि एवं वर्षा से भर गया । पृथ्वी काँपने लगी । उसी समय राम ने परशुराम का तेज छीनकर उन्हें विकल कर दिया और परशुराम मूर्छित हो गए । चेतना आने पर राम की आज्ञा से वे महेन्द्र पर्वत पर चले गए[1] ।

वन-पर्व में रामकथा का उल्लेख पाण्डवों के तीर्थ भ्रमण के प्रसंग में भी हुआ है । द्रौपदी के अनुरोध पर भीमसेन एक दिव्य कमल लाने के लिए गंधमादन पर्वत पर दिव्य कमलों का सरोवर खोजते हुए एक विशाल केले के वन में पहुँचे । वहाँ उन्हें हनुमान के दर्शन हुए और हनुमान उन्हें राम के दंडकारण्य वास से लेकर राज्याभिषेक तक की रामकथा सुनाई[2] । परन्तु इस कथा में भरत का उल्लेख किसी स्थल पर नहीं है ।

वन-पर्व में चौथी बार रामकथा का उल्लेख रामोपाख्यान के रूप में हुआ है । इसमें विपन्न एवं दुःखी युधिष्ठिर को मार्कण्डेय मुनि महाराज रामचन्द्र की विपत्तियों का वर्णन कर धैर्य बँधाते हैं । रामोपाख्यान वन पर्व के 274 वें अध्याय से 291 वें अध्याय तक है । इसमें रामवनवास से प्रारम्भ कर सम्पूर्ण रामचरित संक्षेप में सुनाया गया है । यह महाभारत का सर्वाधिक विस्तृत रामकथा वर्णन है परंतु संक्षिप्तता के कारण राम तथा रावण के अतिरिक्त अन्य पात्रों का चरित्रांकन इसमें नहीं हो पाया है ।

उपर्युक्त संक्षिप्त रामकथा में भरत का उल्लेख राम-वनवास के अवसर पर ही मुख्य रूप से किया गया है । संक्षिप्तता के कारण इसमें चरित्र-विकास अथवा स्वरूप वर्णन सम्भव नहीं था । इस स्थल पर भरत के स्वरूप को स्पष्ट न करने का एक कारण भी है । यहाँ मार्कण्डेय मुनि राम के उत्साह, पराक्रम एवं धैर्य का वर्णन कर युधिष्ठिर को धैर्य देना चाहते हैं तथा उन्हें कौरवों से युद्ध करने के लिए प्रेरित करना चाहते हैं । उनके हृदय से निराशा

1- महाभारत वन-पर्व/ 99/42-73 ।

2- महाभारत वन-पर्व/147/26-33 तथा 148/1-19 ।

को दूरकर आशा एवं उत्साह का स्फुरण करना चाहते हैं । भरत का त्याग एवं वैराग्य भय त्वस्य इस उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ नहीं था । प्राप्त किए हुए राज्य को धर्म में स्थित अपने अग्रज के लिए त्यागना एक ऐसा उज्ज्वल आदर्शमय उदाहरण था जिसको देखकर धर्मराज युधिष्ठिर राज्य की कामना का सर्वथा परित्याग कर देते तथा 13 वर्षों के कष्टपूर्ण वनवास के पश्चात् भी राज्य के लिए युध्द करने को तैयार नहीं होते, इसलिए मार्कण्डेय मुनि ने राम कथा सुनाते समय युधिष्ठिर के सम्मुख भरत की कोई विशेष प्रशंसा नहीं की ।

रामोपाख्यान की रामकथा में भरत का उल्लेख- इक्ष्वाकु वंश में अजनन्दन महाराज दशरथ वेदपाठी तथा परम पवित्र थे । उनके चार पुत्र हुए- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न । चारों ही भाई धर्म तथा अर्थ के ज्ञाता एवं महापराक्रमी थे । जब राजा दशरथ ज्येष्ठ पुत्र श्री राम को युवर-राज पद पर अभिषिक्त करने का निश्चय कर अभिषेक की तैयारियाँ कर रहे थे तभी मंथरा के दुष्ट परामर्श से कैकेयी ने महाराज से भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास माँगा । राम वन को चले गए तथा इस शोक की ज्वाला में दशरथ दिवंगत हुए । तब कैकेयी ने अपने पुत्र भरत को बुलवाकर निष्कंटक राज्य को ग्रहण करने का आदेश दिया । कैकेयी की बात को सुनकर धर्मात्मा भरत दुःख से पीड़ित होकर उसको फटकारते हुए बोले, " हे कुलकलंकिनी ! तूने अत्यंत नृशंस कार्य किया है । लोभिनी ! तू ने अपने पति को मार डाला, इस कुल को नष्ट कर दिया तथा मेरे सिर पर अपयश का भारी बोझा रख दिया ।"[1] इत्यादि । तत्पश्चात् रोते हुए भरत ने सभासदों के समक्ष अपनी निर्दोषता स्पष्ट की । माताओं के आगे भरत राम को लौटाने की आकांक्षा से चित्रकूट गए । उन्होंने वहाँ मुनिवेशधारी राम को देखा । पिता के आज्ञाकारी राम ने भरत को समझा-बुझाकर अयोध्या को वापिस भेज दिया तथा भरत राम की पादुकाओं को आगे रखकर नन्दिग्राम में निवास करते हुए राज्य की देखभाल करते रहे[2] ।

रावण पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पुष्पक विमान द्वारा राम ने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया । अयोध्या के निकट पहुँचकर उन्होंने हनुमान को भरत के पास दूत बना कर भेजा। भरत की गतिविधि को जानकर तथा उनको राम के आगमन का समाचार देकर पवन पुत्र के लौट आने पर राम नन्दिग्राम पहुँचे । वहाँ उन्होंने मलिन अंग, चीर धारण किए तथा पादुकाओं को आगे रख आसन पर बैठे भरत को देखा[3] । भरत-शत्रुघ्न से मिलकर वे अति प्रसन्न हुए । भरत-शत्रुघ्न भी राम, लक्ष्मण तथा सीता से मिलकर आनन्दित हुए । भरत ने सत्कारपूर्वक राम को राज्य सौंप दिया[4] । राम के राज्याभिषेक के उपरान्त रामोपाख्यान समाप्त हो जाता है ।

1- महा0/वनपर्व/277/33-34 । 2- महाभारत वनपर्व/277/35-39 ।
3- महा0/वनपर्व/291/60-63 । 4- महा0 भी0/291/65 ।

द्रोणपर्व में रामकथा- पुत्र शोक से व्याकुल सृंजय को देवर्षि नारद ने सोलह राजाओं की कथाएँ सुनाकर सान्त्वना देने का प्रयास किया था । ये कथाएँ षोडशराजोपाख्यान कहलाती हैं । इनमें से एक कथा राम की भी है । इस कथा में रावण-वध तथा राम राज्य की उत्कृष्टता का वर्णन उपलब्ध है । पुनः यही कथा अभिमन्यु वध से शोकाकुल युधिष्ठिर को धैर्य देने हेतु महर्षि व्यास ने सुनाई है । इसमें राम राज्य एवं राम की महिमा का वर्णन ही प्रमुख है । रामायण के अन्य पात्रों के तो प्रसंगवश नामोल्लेख मात्र ही हुए हैं । भरत की चर्चा नहीं की गई है ।

शान्तिपर्व में राम कथा- यहाँ भी रामकथा का प्रसंग वही द्रोणपर्व में वर्णित षोडशराजोपाख्यान है । यहाँ श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को यह उपाख्यान सुनाते हैं । राम के वनवास का उल्लेख तो किया गया है, परंतु प्रमुख रूप से वर्णन राम द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञों तथा रामराज्य का ही है । इस प्रसंग में भी भरत का चरित्र-वर्णन नहीं है ।

महाभारत में भरत का चरित्र- एक लाख श्लोकों वाले इस विशालकाय ग्रन्थ में राम कथा का वर्णन विभिन्न पर्वों के अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रसंगों में कुल मिलाकर साठ अध्यायों में किया गया है । इसमें भरत का उल्लेख केवल उन्नीस श्लोकों में ही हुआ है ।

भरत अयोध्या के यशस्वी प्रतापी, पवित्र एवं वैराग्यी महाराज दशरथ के पुत्र तथा अमित तेजस्वी राम के अनुज थे । राम भरतादि चारों भाई धर्म तथा अर्थ के ज्ञाता एवं महापराक्रमी थे । भरत की माता कैकेयी थी ।

भरत अत्यन्त धर्मात्मा थे, इसी कारण उन्होंने कैकेयी के द्वारा अधर्मपूर्वक प्राप्त किया गया अयोध्या का विशाल एवं निष्कण्टक राज्य भी स्वीकार नहीं किया । जिस पाप पूर्ण मूर्खता के कैकेयी ने भरत के लिए राज्य प्राप्त किया था उसकी धर्मात्मा भरत ने बड़ी भर्त्सना की[1] । कैकेयी के कुटिल कृत्य का प्रायश्चित करने के लिए तथा अयोध्या की प्रजा के समक्ष अपनी चारित्रिक विशुद्धता प्रमाणित करने के लिए भरत राम को मनाकर अयोध्या को लौटा लाने हेतु चित्रकूट को गए[2] । यहाँ राम और भरत की क्या बातें हुईं इस पर कवि ने प्रकाश नहीं डाला है, परन्तु निष्कर्ष अंकित किया है । जब राम भरत के अनुनय-विनय, अनुरोध एवं आग्रह पर भी अयोध्या नहीं लौटे तब भरत चित्रकूट से आकर, नगर के बाहर नन्दिग्राम में राम की पादुकाओं को आगे रखकर राज्य की देखभाल करने लगे[3] । इस प्रायश्चित ने रामवनगमन सभी

1- वासुवाच स धर्मात्मा मूर्खो यत्ते कृतम् । यत्ते इत्या कुलं चैदमुत्साद्य धन लुब्धया ।।
महा0/वनपर्व/277/33 ।

2- महा0 वनपर्व/277/35-38 ।

3- चित्रकूटः स रामेण पितृदत्तेन कारितम् । नंदिग्राम करोद्राज्यं पुरस्कृत्यास्य पादुके ।।
महा0 वनपर्व/277/39 ।

कैकेयी के कुकृत्य की कालिमा को धो डाला ।

उपर्युक्त प्रसंग से भरत की भ्रातृ-भक्ति प्रकाशित हो जाती है । राम के प्रति अगाध प्रेम के कारण ही भरत राम के वनगमन समाचार सुनकर अत्यन्त शोकातुर एवं क्षुब्ध हो उठे थे तथा कैकेयी को धिक्कारते हुए रोने लगे थे[1] । कथा की संक्षिप्तता के कारण कवि ने ऐसे विशेष विवरण अथवा कथोपकथन प्रस्तुत नहीं किए हैं जिनसे भरत के स्नेहसिक्त भ्रातानुरागी हृदय का विशद परिचय प्राप्त हो सकता । चौदह वर्षों की सुदीर्घ अवधि के पश्चात् जब राम अयोध्या आए तब चारों भाई परस्पर मिलकर अति प्रसन्न हुए[2] ।परंतु उस अपूर्व मिलन का अति अल्प वर्णन अपर्याप्त ही प्रतीत होता है ।

भरत की निर्लोभता की ओर कवि ने स्पष्ट इंगित किया है " उन खड़ाऊं से आए आए हुए राम को भरत ने अतिसत्कार एवं परम प्रसन्नता के साथ उस राज्य को धरोहर के समान लौटा दिया ।[3]" इतने विशाल साम्राज्य का इस प्रकार लौटाना स्वयं में एक अभूतपूर्व आदर्श है । जिस महाभारत के मुख्य कथानक में कौरव अपने भाई पाण्डवों को सुई की नोंक के बराबर भूमि भी देने को तैयार नहीं थे, वहाँ राज्य प्राप्ति के लिए भीषण युद्ध हुआ, उसी महाभारत के उपाख्यान में भरत की राज्य के प्रति निरासक्ति, धर्म-भावना, सहृदयता एवं भ्रातृ-प्रेम एक ऐसा अद्भुत आदर्श प्रस्तुत करता है जिसकी महानता के समक्ष श्रीकृष्ण के अतिरिक्त महाभारत का प्रत्येक पात्र छोटा दिखाई देने लगता है । महाभारतकारों ने भरत के विषय में भी ही बहुत कम लिखा है, फिर भी उनके ये सभी गुण यहाँ भी दृष्टिगत हो जाते हैं, जो रामायण के भरत में है ।

अध्यात्म रामायण में भरत

अध्यात्म रामायण का रचना काल एवं रचनाकार- साम्प्रदायिक रामायणों में अध्यात्म रामायण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । श्री रामानन्द सम्प्रदाय में इसकी बहुत प्रतिष्ठा है । परंतु इस ग्रन्थ के रचनाकाल एवं रचनाकार के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है । " रामचरित मानस" (सं० 1631 वि०) पर अध्यात्म रामायण का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि " मानस" की रचना के समय " अध्यात्म-रामायण" प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय ग्रंथ के रूप में स्वीकार हो चुका था । " आनन्द रामायण" पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत

1- महाभारत/वनपर्व/277/33-34 । 2- महाभारत वनपर्व/291/63-64 ।

3- तदा तद्भरतो राज्यमागतायास्तिसत्कृतम् ।
न्यासं निर्यातयामास युक्तः परमया मुदा ।। महा० वनपर्व/291/65 ।

होता है । तुलसी से पूर्व हुए मराठी कवि एकनाथ अध्यात्म रामायण को प्राचीन ग्रन्थ मानते थे[1] । फादर कामिल बुल्के के अनुसार इस ग्रंथ की रचना ईसा की चौदहवीं अथवा पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई होगी[2] ।

अध्यात्म रामायण की विशेषता उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि है । इसमें वेदान्त दर्शन के आधार पर रामभक्ति का प्रतिपादन हुआ है[3] । अध्यात्म रामायण में रामानुज द्वारा प्रतिपादित समुच्चयवाद का विरोध किया गया है तथा विशिष्टाद्वैतवाद का भी समर्थन नहीं किया गया है । इस आधार पर फादर कामिल बुल्के ने माना है कि इसकी रचना श्री सम्प्रदाय तथा रामावत् संप्रदाय से अलग रहते हुए किसी स्वतंत्र दार्शनिक कवि द्वारा की गई थी[4] । अध्यात्म रामायण के हिन्दी अनुवादक श्री मुन्निलाल के अनुसार इस ग्रंथ के रचयिता महामुनि वेदव्यास जी हैं क्योंकि ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तरखण्ड के अन्तर्गत यह आख्यान माना जाता है[5] । ग्रंथ की शैली तथा उसमें प्रयुक्त "टीनार" आदि शब्दों के प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि इस काव्य का रचयिता कोई अज्ञात दार्शनिक कवि रहा होगा जिसने इसकी रचना सम्भवतः ईसा की 14 वीं शताब्दी में की थी ।

अध्यात्म रामायण का कलेवर चार हजार एक सौ अड़तालीस श्लोकों का है । इसमें राम कथा की अपेक्षा अध्यात्म निरूपण अधिक है । विभिन्न स्थलों पर राम की स्तुतियाँ हैं जिनमें राम को परमात्मा मानते हुए प्रार्थना की गई है कि अंतिम समय में उनके नाम का स्मरण रहे तथा मोक्ष प्राप्त हो । कथा की विषयवस्तु वाल्मीकि रामायण पर ही मुख्यतः आधारित है, परंतु इसमें विष्णु पुराण-पुरुष, परमात्मा के रामरूप में अवतरित होने का बारबार उल्लेख किया गया है । स्पष्ट रूप से अनेक बार कहा गया है कि राम विष्णु का, सीता महामाया अथवा लक्ष्मी का, लक्ष्मण शेषनाग का, भरत शंख का तथा शत्रुघ्न चक्र का अवतार हैं[6] ।

कथानक में बालकाण्ड में संक्षिप्तता के अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है । अयोध्याकाण्ड में जब भरत के अनुनय विनय करने पर भी राम अयोध्या का राज्य स्वीकार नहीं करते और प्रत्यावर्तित नहीं होते हैं तब भरत वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही यहाँ भी प्रायोपवेशन हेतु कुश बिछाकर बैठ जाते हैं । अंतर यह है कि इस अवसर पर अध्यात्म रामायण में मुनि वसिष्ठ उन्हें एकान्त में ले जाकर रामावतार का रहस्य एवं प्रयोजन बताते हैं जिसको सुनकर भरत अपना आग्रह त्याग देते हैं । अध्यात्म रामायण में महाराज जनक के चित्रकूट आने का उल्लेख नहीं है

1- कलकत्ता संस्कृत सिरीज, भाग 11 की भूमिका । 2- रामकथा उत्पत्ति और विकास/पृ0166
3- रामकथा उत्पत्ति और विकास पृ0 166 । 4- रामकथा उत्पत्ति और विकास/पृ0 166 ।
5- अध्यात्म रामायण । गीता प्रेस। निवेदन का पृ0 6 ।
6- अध्यात्म रामायण/1/4/17-18 ।
7- अध्यात्म रामायण 2/9/42-46 ।

और न ही युद्धकाण्ड में लक्ष्मण-शक्ति-आघात के अवसर पर संजीवनी लाने के प्रसंग में हनुमान की भरत से भेंट का वर्णन है ।

अध्यात्म रामायण में भरत का स्वरूपांकन- अध्यात्म रामायण में भरत का स्वरूपांकन अधिकांश में वाल्मीकि-रामायण के समान ही है । अंतर केवल दृष्टिकोण का है । अध्यात्म रामायण के भरत राम के अनन्य भक्त हैं , उनके शेष गुण भक्ति के सामने गौण हैं । वाल्मीकि के भरत रामभक्त हैं । वाल्मीकि रामायण में एक भाई का मानव के रूप में भाई के प्रति प्रेम एवं कर्तव्य दिखाया गया है जबकि अध्यात्म रामायण में भक्त का भगवान् के प्रति परमकष्टसाध्य आत्म-निवेदन दिखाया गया है ।

अध्यात्म रामायण के भरत विष्णु के अंशावतार हैं । बालकाण्ड में देवताओं तथा ब्रह्मा जी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उन्हें आश्वस्त किया कि वे कश्यप के घर पुत्र रूप से पृथक्-पृथक् चार अंशों में प्रकट होकर कौसल्या तथा अन्य दो माताओं के गर्भ से जन्म लेंगे[1] । बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में विश्वामित्र के साथ राम को भेजने के लिए समझाते हुए वसिष्ठ राजा दशरथ से कहते हैं कि "पूर्वकाल में पृथ्वी का भार उतारने के लिए ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की थी जिसे पूर्ण करने के लिए उन परमेश्वर ने तुम्हारे घर कौसल्या के गर्भ से जन्म लिया है । x x x । शेष जी लक्ष्मण के रूप में तथा भगवान् विष्णु के शंख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप में अवतार लिया है तथा उनकी योगमाया जनकनन्दिनी सीता के रूप में उत्पन्न हुई है[2] ।" इस प्रकार अध्यात्म रामायण में भरत को विष्णु का अंशावतार अथवा उनके शंख का अवतार माना गया है ।

भरत राम के समान ही सुंदर हैं । उनका वर्ण श्याम है तथा उनका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है ।

राम के प्रति भरत के हृदय में अगाध प्रेम तथा भक्ति भावना है । उनकी यह भक्ति बचपन से ही दृष्टिगोचर होती है । भ्रातृ-प्रेम तो बाल्यकाल में परस्पर मिलकर खेलने तथा एक साथ शिक्षा-दीक्षा होने से निरन्तर बढ़ता ही रहा, चारों भाइयों के विवाह भी एकसाथ हुए ।

भरत का राम प्रेम स्पष्ट रूप से अयोध्याकाण्ड में उस समय पाठक को प्रभावित करता है जब वे दशरथ के निधन के पश्चात् ननिहाल से वापस बुलाए गए हैं तथा कैकेयी से पिता की मृत्यु एवं राम,लक्ष्मण,सीता के वनगमन का समाचार सुनकर वज्राहत के समान शोक से पीड़ित होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। कैकेयी के यह समझाने पर कि " ऐसे महान् राज्य को पाकर दुःख

1- अध्यात्म रा0x1/2/27 । 2। अध्यात्म रा0/2/4/12-20 ।

का अवसर ही कहाँ है," वे क्रोध से जलते हुए कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। उस समय उनका प्रत्येक वाक्य हृदय की पीड़ा को प्रकट करता है। उन्होंने कैकेयी से कहा, " पापिनी तूने बात करने योग्य नहीं है। तू अपने पति की हत्या करने वाली है। तेरे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अब मैं भी प्रत्यक्ष ही महापापी हूँ। मैं या तो अग्नि में प्रवेश करूँगा या विष खा लूँगा अथवा कृष्ण से आत्महत्या करके यमलोक चला जाऊँगा। स्वामिघातिनी तू भी कुम्भीपाक नरक को जाएगी।[1]" यहाँ भरत ने कैकेयी की भर्त्सना उतने कठोर शब्दों में नहीं की है जैसी वाल्मीकि रामायण में की गई है।

कैकेयी से कुपित हो भरत कौसल्या के पास गए। विलाप करती हुई दीना कौसल्या को देखकर भरत को घोर कष्ट हुआ और उन्होंने कौसल्या के चरण पकड़ कर उन्हें बहुत समझाया। यहाँ भी वाल्मीकि रामायण के समान भरत अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए शपथ का उल्लंघन नहीं हैं[2]।

पिता का श्राद्ध करने के पश्चात् भरत अपने मन में राम का चिन्तन करते हुए यही सोचा करते थे कि " सीता तथा लक्ष्मण के सहित राम के भयंकर वन में चले जाने से मेरी माता दशमिमात्र से ही मेरे हृदय में राक्षसी के समान दाह उत्पन्न करती है। अब निश्चय ही मैं राज्य को छोड़कर वन को जाऊँगा। वहाँ मैं सुंदर शिखा युक्त श्री राम और सीता की सेवा नित्य करूँगा[3]।" श्राद्ध के पश्चात् जब वसिष्ठ ने राजसभा बुलाकर भरत से राज्याभिषेक हेतु अनुरोध किया तब दुःखी भरत का उत्तर आत्मग्लानि एवं रामभक्ति का द्योतक है, " मुनि! राज्य से मेरा क्या प्रयोजन? राम ही राजाधिराज हैं, हम तो उनके किंकर हैं। कल प्रातःकाल राम को लाने के लिए हम वन को जाएँगे[4]।" राम-प्रेम से प्रेरित भरत ने यह भी निश्चय किया कि " जिस प्रकार राम गए हैं उसी प्रकार जब तक वे लौटेंगे नहीं तब तक मैं भी शत्रुघ्न के सहित वल्कल वस्त्र तथा जटाधारण कर फल-मूल वन का ही आहार एवं भूमि पर शयन करूँगा[5]।"

1- आत्माख्याति पापे मे घोरे रौद्रे क्षुधातिनी। पापे रक्तगर्भातोऽहं पापवानस्मि साम्प्रतम्।
अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि विषं वा भक्षयाम्यहम्॥ कृष्णेन वाथ घातयानं हत्वा यामि यमक्षयम्।
क्षुधातिनि दुष्टे एवं कुम्भीपाके गमिष्यति॥
अध्यात्म रा० /2/7/80-81।

2- अध्यात्म रा० /2/7/87-90।

3- रामेऽरण्यं प्रयाते सह जनकसुतालक्ष्मणाभ्यां सुघोरम्।
माता मे राक्षसीव प्रदहति हृदयं दर्शनादेव सद्यः।
गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यम्
रामं सीतासमेतं शिखिरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे॥ अध्यात्म रा० /2/7/114।

4- अध्यात्म रा० /2/8/5-6।

5- अध्यात्म रा०/2/8/9-10।

भरत ने राम के समीप जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया और उन्होंने सेना सहित चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया । राम प्रेम के कारण ही राम के मित्र गुह के प्रति भरत का व्यवहार अत्यंत प्रेमपूर्ण था । भरत के हृदय का प्रेम कवि ने अयोध्या से चित्रकूट तक के मार्ग में अनेक बार प्रकट किया है । राम के आश्रम के निकट पहुँचकर तथा राम के चरण-चिन्हों को देखकर भरत प्रेम-विभोर होकर उस मंगलमय चरण-रज में लोटने लगे और मन ही मन कहने लगे, " अहो मैं परम धन्य हूँ जो श्री रामचन्द्र के उन चरण कमलों के चिन्हों से सुशोभित उस भूमि को देख रहा हूँ जिनकी चरण रज को ब्रह्मा आदि देवगण और सम्पूर्ण श्रुतियाँ भी निरन्तर खोजती रहती हैं[1] ।" यह चित्रण एक भक्त का भगवान के प्रति है न कि भाई का भाई के प्रति । अध्यात्म रामायण के भरत भक्ति के आदर्श हैं ।

चित्रकूट में भरत और राम का मिलन तो भक्तों के लिए अत्यन्त आनन्द का सृजन कराता है । भरत ने राम को देखते ही दौड़कर हर्ष और शोकयुक्त होकर उनके चरणों को पकड़ लिया और राम ने भरत को उठाकर उनका गाढ़ आलिंगन किया । दोनों के नेत्र प्रेमाश्रुओं की वर्षा कर रहे हैं । इस मिलन का आनन्द भक्त के लिए भगवत् प्राप्ति का आनन्द है ।

त्याग एवं निर्लिप्तता- भरत अत्यन्त निर्लोभी, उदार एवं अनासक्त हैं । अयोध्या के विशाल साम्राज्य को उन्होंने स्वीकार नहीं किया । चित्रकूट जाकर उन्होंने राम से बार बार राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की । माता के अपराध के लिए भी क्षमायाचना की । वे स्वयं वन में रहने का तथा राम के अयोध्या को प्रत्यावर्तन का बार बार अनुरोध करते रहे[2] । राम के किसी भी प्रकार राज्य स्वीकार न करने पर भरत धूप में कुश बिछाकर धरना करने बैठ गए । यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में भी है परन्तु यहाँ पर विशिष्टता यह है कि यहाँ गुरु वसिष्ठ भरत को एकांत में ले जाकर राम के साक्षात् विष्णु के अवतार होने सम्बन्धी गुप्ततम रहस्य को तथा रावण-वध सम्बन्धी अवतार उद्देश्य को बताते हैं[3] । विवश भरत को राम की चरण-पादुकाएँ लेकर अयोध्या को लौटना पड़ा । सम्पूर्ण प्रकरण में भरत की अनासक्ति स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है ।

धर्मपरायणता- अध्यात्म रामायण में भी भरत धर्मज्ञ एवं धर्मपरायण हैं तथा कुलधर्म का अनुसरण करने वाले हैं । इस धर्म-बुद्धि के कारण भी अयोध्या का विशाल साम्राज्य उनके लिए तृणवत् त्याज्य था । भरत की धर्मपरायणता उनके प्रत्येक आचरण से सिद्ध होती है ।

1- अध्यात्म रा० /2/9/1-3 । 2- अध्यात्म रा० /2/9/22-25 ; 28-33 ; 34-37 तथा 39-40 ।
3- अध्यात्म रा० /2/9/41-47 । 4- अध्यात्म रा०/6/15/1-4 ।
5- अध्यात्म रा०/7/9/1-7 ।

भरत को राज्य की अपेक्षा राम से कहीं अधिक प्रेम है जिसके कारण वे राम के अयोध्या से लौट आने पर उनका राज्य उन्हें धरोहर के समान लौटा देते हैं।[1] महाप्रयाण के समय राम द्वारा पुनः राज्य दिए जाने पर वे रोकर उसे अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि राम के बिना स्वर्गलोक या भू-लोक कहीं के भी राज्य की इच्छा भरत को नहीं है।[2] वे राम के साथ ही महाप्रयाण हेतु प्रस्थान करते हैं।

इस प्रकार अध्यात्म रामायण के भरत विष्णु के अंशावतार हैं। वे सबसे पहले भक्त हैं, बाद में और कुछ। वस्तुतः भरत के चरित्र में जो विशेषताएँ वाल्मीकि रामायण में दर्शायी गई है वे ही अध्यात्म रामायण में भी है। यहाँ विशिष्टता केवल भक्ति भावना की है। अध्यात्म रामायण के भरत अत्यन्त भोले भक्त दिखाई देते हैं मानों कवि की भक्ति भरत के रूप में साक्षात् सजीव हो उठी हो।

आनन्द रामायण में भरत का स्वरूप

आनन्द रामायण अन्य रामायणों से अनेक बातों में भिन्न है। यह कथा के विस्तार में अपनी मौलिकता रखती है। कवि ने अपना नामोल्लेख कहीं नहीं किया है अपितु प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में " श्रीमद्वाल्मीकि महामुनिप्रणीतकोटि- रामचरितान्तर्गतेषु आनन्दरामायणे" लिखकर महाकवि वाल्मीकि द्वारा रचित शतकोटि रामचरितों के अन्तर्गत इस आनन्द रामायण को माना है। अपने यश को महामुनि वाल्मीकि को समर्पित करने वाले इस अज्ञात कवि ने अपने समय का भी कहीं उल्लेख नहीं किया है। काव्यगत ऐतिहासिक सम्बन्धी तथा स्थानों सम्बन्धी कुछ कथन ऐसे अवश्य हैं जिनसे उक्त ग्रन्थ के रचनाकाल का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। तोपों, गोलों आदि का उल्लेख भी कवि ने किया है[4] जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रचना 13वीं अथवा 14वीं शताब्दी से पूर्व की कदापि नहीं है। राम की भरत विजय तथा जम्बूद्वीप विजय आदि से भी स्पष्ट होता है कि यह रचना गुप्त राजाओं के समय से पर्याप्त समय बाद की है। रचना के इस भाग पर कादम्बरी के चन्द्रापीड की दिग्विजय का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है[5]। विजय की आनन्द रामायण की रचना कादम्बरी की रचना के पर्याप्त काल के

1- अध्यात्म रामा0 /6/15/1-4 । 2- अध्यात्म रा0 /7/9/1-7 ।

3- देखिए आनन्द रामायण राज्यकाण्ड।पुष्पिका। सर्ग 13 व 3-4 ।

4- नानाशस्त्राणि वैचित्राणि वाहनानि समंततः । स्थापयन्त्य विमाने दृग अतस्तपः क्षणी वराः ।।
आनन्द रा0 राज्य का0 पुष्पिका 6/117 ।

5- देखिए आनन्द रामायण राज्यकाण्ड।पुष्पिका। सर्ग 7 व 8 ।

पश्चात् हुई होगी । आनन्द रामायण के भौगोलिक वर्णन अधिकांशतः अपुष्ट एवं काल्पनिक प्रतीत होते हैं । राम के द्वारा पृथ्वी मण्डल के सातों द्वीपों की विजय की गई । इन द्वीपों, इनमें स्थित देशों एवं राजाओं के नाम भी काल्पनिक प्रतीत होते हैं ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में शिव एवं राम तथा सीता एवं गौरी की उपासना में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा अनेक स्थलों पर की गई है । इसी प्रकार राम तथा कृष्ण की उपासना में भी समन्वय स्थापित किया गया है[1] । रामोपासक एवं कृष्णोपासक में एक स्थल पर वाक्युद्ध दिखाया गया है[2] । यह वाक् युद्ध हमारा ध्यान चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के उपासकों की ओर आकर्षित कराता है जिनमें प्रायः इस प्रकार के वाद हुआ करते थे । इसी के परिणामस्वरूप नानक, कबीर, तुलसी आदि सन्तों ने विभिन्न मत-मतान्तरों में समन्वय आनन्द रामायण की रचना भी कबीर के उदय से कुछ समय पूर्व की अथवा उसके समय की ही रही हो । महाकवि तुलसी के रामचरितमानस के कुछ अंशों पर आनन्द रामायण का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है ।

आनन्द रामायण के रचनाकार ने मनोहर काण्ड के आठवें सर्ग में वेदादिकों की स्तुति का वर्णन किया है । इसी सर्ग में सौ करोड़ श्लोकों वाली वाल्मीकि रामायण को समस्त रामायणों का मूल बताते हुए कवि ने उससे उद्भूत अनेक रामायणों का नामोल्लेख किया है । सम्भवतः ये रामायणें उस समय प्रचलित रही हों । इनमें कवि ने अध्यात्म रामायण तथा योगवासिष्ठ का उल्लेख भी किया है[3] । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आनन्द रामायण अध्यात्म रामायण तथा योगवासिष्ठ से बाद की रचना है । आनन्द रामायण की रचना सम्भवतः ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में हुई होगी ।

आनन्द रामायण की विषयवस्तु वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण से अनेक अंशों में भिन्न है । इसमें कुल नौ काण्ड हैं जिनमें कुल मिला कर एक सौ नौ सर्ग तथा मंगल और वृत्त आदि को छोड़कर 1252 श्लोक हैं[4] । आनन्द रामायण की रामकथा में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:-

---

1- न नन्दसूनोः पृथगस्ति रामो न रामतो न्यो वसुदेवसूनुः ।।
तथाप्ययोध्यापुरपालबाले त्वदग्रे धावति मे मनीषा ।।
आनन्द रा० राज्यकाण्डम् ।पूर्वार्द्धम्। 3/113 ।

2- दे० आ० रा० राज्यकाण्डम्।पूर्वार्द्धम्। तृतीय सर्ग ।

3- दे० आनन्द रामायण, मनोहरकाण्ड/8/60-71 ।

4- आनन्दरामचरितं सहस्राणि हि द्वादश: ।।10।। द्वे शते च त्रिषष्ट्यधिकश्लोका ज्ञेया मनीषिभिः
सर्वं देवि मया प्रोक्तं यथा दृष्टं त्वया पुरा ।। ।।11।।
आनन्द रा० स्तुति श्लोक 10-11 ।

(11) वाल्मीकि रामायण की समस्त कथा अत्यन्त संक्षेप में प्रथम काण्ड अर्थात् सारकाण्ड में दे दी गई है ।

(12) यात्राकाण्ड तथा यागकाण्ड में श्री राम की समस्त नागरिकों सहित पुष्पक विमान द्वारा गया आदि तीर्थ स्थलों की यात्रा, दक्षिणी पश्चिमी तथा उत्तरीभारत की यात्रा एवं अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया गया है ।

(13) विलासकाण्ड में कवि ने सम्भवतः कृष्णोपासकों के अनुकरण पर राम तथा सीता की विलास-क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, परन्तु यह वर्णन श्री राम की मर्यादा के अनुसार बहुत अंशों में मर्यादित ही है ।

(14) जन्म एवं विवाह काण्डों में सीता-निष्कासन की कथा, राम तथा उनके भ्राताओं के पुत्रों के जन्म का वर्णन, सीता से राम का पुनर्मिलन तथा राम एवं उनके भ्राताओं के आठों पुत्रों के विवाह का वर्णन किया गया है ।

(15) राज्यकाण्ड पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध में राम राज्य की सम्पन्नता का वर्णन, राम की दिग्विजय, विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा, मृगया वर्णन, वाल्मीकि के पूर्व जन्म की कथा, कुश की पुत्री का स्वयंवर, राम की दिनचर्या तथा रामावतार की श्रेष्ठता आदि का वर्णन किया गया है ।

(16) मनोहरकाण्ड में राम की विविध प्रकार की पूजा, उसकी विधि एवं माहात्म्य तथा मंत्र आदि बताए गए हैं ।

(17) पूर्णकाण्ड में राम की परमधाम यात्रा का वर्णन किया गया है तथा कुश के आगे की वंशावली बताई गई है । इस काण्ड के अंत में आनन्द रामायण की अनुक्रमणिका, फलश्रुति तथा अनुष्ठान एवं पारायण विधि बतायी गई है ।

इस प्रकार केवल सारकाण्ड में कवि ने राम कथा का वास्तविक वर्णन किया है, शेष काण्डों में उसके द्वारा प्रस्तुत कथा बहुत कुछ अंशों में मौलिक कल्पना की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है । कवि ने सम्पूर्ण ग्रन्थ में स्थान स्थान पर रामावतार की श्रेष्ठता, आनन्द रामायण के महात्म्य, राम की विविध प्रकार की पूजा एवं उपासना की विधि तथा स्तोत्रों एवं मंत्रों आदि की चर्चा की है । यह ग्रन्थ रामोपासना का विशिष्ट ग्रन्थ है । इसकी सबसे बड़ी विशेषता ही यह है कि पाठकों को इसके द्वारा रामोपासना

1- आनन्द रामायण का अनुक्रमणिका श्लोक स्वयं ही समस्त काण्डों की विशेषताओं का उल्लेख करता है:-

" आदौरावणमर्दनं द्विजगिरा तीर्थाटनं सीतया
साकेते दशवार्षिकरणं परन्या विलासारनम् ।

के विधि-विधान का विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

कवि ने मौलिक उद्भावनाओं द्वारा राम के चरित्र को अपने दृष्टिकोण से पूर्णता प्रदान करने की चेष्टा की है । इस प्रसंग में वैदेही-वनवास के पश्चात् सीता राम का पुनर्मिलन, राम की तीर्थ यात्रा, अश्वमेध-यज्ञ, पुत्र-पौत्रों के विवाहादि, पुत्र-पौत्रादिकों के साथ हास-विलासपूर्ण भरा-पूरा जीवन तथा दिग्विजय एवं विश्व के विभिन्न देशों की यात्रा आदि उल्लेखनीय पूरक अंग हैं ।

आनन्द रामायण में भरत के चरित्र का विकास

आनन्द रामायण के भी नायक राम हैं तथा राम के साथ भरत का वर्णन उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार वाल्मीकीय रामायण अथवा अन्य रामायणों में है । यह ग्रन्थ राम की उपासना विधि राम की स्तुतियाँ तथा पूजा के विधि-विधान से अधिक सम्बन्ध रखता है । कवि रामको विष्णु का पूर्ण अवतार मानता है,[1] लक्ष्मण को शेषनाग का, भरत को शंख का तथा शत्रुघ्न को चक्र का । इस बात का उल्लेख सारकाण्ड में अनेक स्थलों पर होता है । सर्व प्रथम तो ब्रह्मा ही रावण को बताते हैं कि " कौसल्या के गर्भ से साक्षात् भगवान् जनार्दन । श्री विष्णु ही महाराज दशरथ के राम आदि चार पुत्रों के रूप में जन्म लेंगे । उनमें से राम तुम को मारेंगे[2]।" पंचम सर्ग में मुद्गल कवि दशरथ से कहते हैं कि " तुम अपनी तीनों स्त्रियों के साथ यहाँ आए । श्री विष्णु तुम्हारे पुत्र राम बने, शेष लक्ष्मण, ब्रह्मा भरत तथा चक्र शत्रुघ्न बने[3]।" केवल इसी स्थल पर भरत को ब्रह्मा का अवतार बताया गया है अन्यथा उनको विष्णु का अंशावतार ही माना गया है ।

भरत यज्ञ के पायस से उत्पन्न महाराज दशरथ और कैकेयी के पुत्र हैं[4] । शत्रुघ्न उनके सहोदर भ्राता हैं । राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न में घनिष्ट पारस्परिक प्रेम एवं अटूट मित्रता है । चारों ही भाइयों की शिक्षा-दीक्षा एक साथ हुई । चारों अत्यन्त सुन्दर तथा गुणवान हैं । राम ने शिव-धनुष तोड़ कर सीता को प्राप्त किया तथा शेष तीनों भाइयों के सौन्दर्य एवं गुणों पर मुग्ध होकर राजा जनक ने अपनी तथा अपने भाई कुशकेतु की

1- आनन्द रामायण सारकाण्ड /3/391-393 ।

2- आनन्द रामायण सारकाण्ड/1/38-39 ।

3- आनन्द रामायण सारकाण्ड/5/40 ।

4- आनन्द रामायण सारकाण्ड/2/7 तथा 3/180 ।

की पुत्रियों से स्वयं ही उनके विवाह का प्रस्ताव किया[1]। भरत का मण्डवी के साथ तथा शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से विवाह किया गया[2]।

आनन्द रामायण में भरत को राम के समान वीर एवं अपराजेय पौरुष-सम्पन्न नहीं दिखाया गया है परन्तु वह वीर अवश्य हैं और राम की रक्षा के लिये मृत्यु का वरण करने के लिए भी तत्पर हैं। दीपावली के उत्सव पर जनक ने महाराज दशरथ को सपरिवार आमन्त्रित किया था। जब दशरथ अपने पुत्रों आदि के साथ अयोध्या को वापिस जा रहे थे, उस समय धनुषयज्ञ में पराजित हो जाने से शत्रुता रखने वाले बहुत से राजाओं ने मिलकर उन्हें सेना सहित घेर लिया। राम पिता को चिन्तित देखकर शत्रुओं से लोहा लेने के लिए आगे बढ़े। उनके साथ लक्ष्मण भी गए और उन दोनों को जाते देख कर भरत और शत्रुघ्न भी युद्ध के लिए चले[3]। जब अकेले राम पर समस्त शत्रुगण एक साथ ही अस्त्रों की वर्षा करने लगे तब लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी दौड़ पड़े तथा तारकासुर और कार्तिकेय के समान भयंकर युद्ध होने लगा। उन राजाओं ने अस्त्रों से बींधकर भरत को मूर्छित कर दिया तथा भरत रथ से गिर पड़े[4]। बाद में राम ने समस्त राजाओं को परास्त करके भगा दिया। रथ में भरत को मूर्छित देखकर कैकेयी विलाप करने लगी। महाराज दशरथ तथा कौसल्या आदि रानियाँ भी रोने लगीं। राम ने लक्ष्मण को भेजकर भृङ्गल ऋषि के आश्रम से संजीवनी लता प्राप्त की तथा उसके प्रयोग से भरत को जीवित किया[5]।

बहुत समय पश्चात् अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर लव के साथ युद्ध में भी भरत मोहनास्त्र से मूर्छित हो गए थे तथा लव उन्हें बगल में दबा कर सीता के पास ले गया था। एक बार भरत अपने मामा युधाजित् के आह्वान पर राम की आज्ञा से बहुत सैनिकों के साथ अपनी ननिहाल गए। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों को परास्त किया तथा तीन करोड़ नागरिकों को विभक्त कर दो पुरी बसायीं। पुष्करावती में पुष्कर को तथा तक्षशिला में तक्ष को राज्याभिषिक्त किया[6]।

उपर्युक्त वर्णनों में कवि ने भरत की वीरता अथवा युद्ध कौशल का वर्णन कहीं नहीं किया है। गन्धर्वों के साथ युद्ध में भरत की वीरता का वर्णन किया जा सकता था परन्तु कवि ने इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है।

1- आनन्द रामायण सारकाण्ड/3/179 से 185 तक।
2- " " " /3/184 ।
3- " " " /4/30 ।
4- " " " /4/38-40 ।
5- " " " /4/45-56 ।
6- " " " /राज्यकाण्डम्/सूर्यादि। 6/101-107 ।

अयोध्याकाण्ड में जहाँ रामचरित मानस का कवि भरत के भ्रातृ-प्रेम एवं भक्तिभाव का अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन करता है, आनन्दरामायण का कवि अति संक्षिप्त हो गया है । नाना के घर से लौटने से लेकर नन्दिग्राम तक की सम्पूर्ण कथा आनन्द रामायण में केवल अट्ठाईस श्लोकों में कह दी गई है । वाल्मीकीय रामायण तथा रामचरित मानस का सर्वाधिक मार्मिक स्थल आनन्द रामायण में उपेक्षित कर दिया गया है, परिणामस्वरूप भरत की आत्मविभोर कर देने वाली भक्ति का आनन्द पाठक को प्राप्त नहीं हो पाता है । आनन्द रामायण के अयोध्याकाण्ड की कथा के वर्णन से भरत का भ्रातृ-प्रेम एवं उनकी राम के प्रति भक्ति तो स्पष्ट रूप से लक्षित होती है परन्तु वर्णन इतना संक्षिप्त है कि लोक कल्याणकारी आदर्श अपनी सम्पूर्ण भाव प्रवणता के साथ प्रस्तुत नहीं हो पाया है । इस प्रसंग से भरत की धर्मशीलता भी स्पष्टतः प्रकट होती है ।

वाल्मीकीय रामायण तथा " मानस" के भरत अत्यन्त दयालु हैं । वे शान्त स्वभाव के हैं,अतः अपराधिनी कुब्जा को भी स्वयं नहीं मारते हैं । जब शत्रुघ्न उत्तेजित होकर उसे मारने लगते हैं तो दयानिधि भरत उसे छुड़ा देते हैं।परन्तु आनन्द रामायण के भरत स्वयं उसे पीटते हैं[1] ।

यह घटना भरत के अत्यन्त शालीनतापूर्ण चरित्र के अनुरूप नहीं है । स्वयं आनन्द रामायण के कवि ने भी भरत के शान्त स्वभाव का वर्णन ही विशेष रूप से चम्पिका के स्वयंवर के अवसर पर उसकी धात्री सुनन्दा के मुख से कराया है । वह चम्पिका से कहती है, " ये शत्रुघ्न के बड़े भाई हैं तथा कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं । ये भी राम की सेवा करते हैं । इन शान्त, युवा एवं दयिताप्रिय भरत को तू वर ले[2] ।" अतः ऐसे शान्त भरत के द्वारा मंथरा को पीटा जाना उनके चरित्र के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है ।

आनन्द रामायण में भी भरत द्रोणाचल को ले जाते हुए हनुमान् को बाण मारते हैं जिससे वह पर्वत गिर पड़ता है तथा हनुमान् भरत को रूप साम्य के कारण राम समझ कर विह्वल हो उठते हैं कि राम यहाँ कैसे आ गए । फिर भरत को हाथ में बाण लिए देख हनुमान् मन में यह सोचकर कि यह राम नहीं हैं उनसे कहते हैं कि, " मैं राम का दूत हूँ । आप तुम मेरा बल देख लो ।" यह सुनकर भरत ने उनसे पूछा, " दण्डकारण्यवासी मेरे भाई राम के साथ तुम्हारा समागम कहाँ से हुआ ।, विस्तारपूर्वक कहो ।" तब

1- आनन्द रामायण सारकाण्ड/6/93-119 ।

2- आनन्द रामायण विवाहकाण्ड/2/64-66 ।

मारुति ने भरत को राम का विस्तारपूर्वक समाचार कह सुनाया तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर द्रोणाचल को उठाकर चले गए । भरत ने अयोध्या में सब राजाओं को एकत्रित कर लंका जाकर राम की सहायता देने का विचार किया[1] । इस प्रकार भरत सदैव ही धर्म भावना से तथा स्नेहवश राम की सेवा के लिए तत्पर रहे हैं ।

उपर्युक्त के पश्चात् भरत के दर्शन हमें तब होते हैं जब चौदह वर्षों की अवधि समाप्त होने पर अन्तिम दिन भी राम नहीं लौटे तथा भरत अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार आत्मदाह हेतु चिता तैयार कराते हैं । वे शत्रुघ्न से कह रहे थे कि, " मेरी समझ में तो ऐसा आता है कि रावण ने युद्ध में राम लक्ष्मण को मार डाला । इसी कारण वे अभी तक नहीं लौटे । मैंने सब राजाओं को बुलवा भेजा है कि वे सब सेना सहित लंका जाकर राम की सहायता करें । मैं तो आज सूर्यास्त वेलामय अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा परन्तु तुम लंका जाकर युद्ध में रावण को मारकर सीता को छुड़ा लाना । फिर राम आदि हम तीनों भाइयों की पारलौकिक क्रिया करना[2] । भरत का यह कथन उनकी सत्य प्रतिज्ञता का सूचक अवश्य है परन्तु हठवादिता तथा अविवेक की ओर भी संकेत करता है । भरत जैसे शील सम्पन्न एवं विवेकपूर्ण व्यक्ति से इस प्रकार की हठ-वादिता की अपेक्षा नहीं की जा सकती है । उपर्युक्त घटना वर्णन में राजपूती हठ की झलक दिखाई देती है ।

भरत के चितारोहण से पूर्व ही हनुमान् राम के आगमन का संदेश लेकर उपस्थित हो जाते हैं और समस्त अयोध्यावासियों के हृदय में हर्ष की लहर दौड़ जाती है । भरत भी अग्नि के पास से हट जाते हैं । उन्होंने अयोध्या नगरी को तोरण-पताकादि से अलंकृत करवाया तथा हाथी को आगे कर राम की पादुकाओं को सिर पर धारण कर राम के स्वागतार्थ गए[3] । भरत ने राम को देखते ही साष्टांग प्रणाम किया तथा राम ने उन्हें आलिंगन किया । इतने दिनों बाद भरत को देखकर राम के नेत्रों में जल भर आया और उन्होंने भरत को सान्त्वना दी[4] । यह भाइयों के पारस्परिक प्रेम का द्योतक था ।

इस अवतार पर कवि ने भरत के त्यागमय स्वरूप का दर्शन कराने में सफल हुआ है । राज्याभिषेक के समय भरत ने राम की पादुकाओं का पूजन कर भक्तिपूर्वक उन्हें

1- आनन्द रामायण सारकाण्ड 11/61-72 ।
2- " " " 12/65-70 ।
3- " " " 12/81-82 ।
4- " " " 12/86 ।

राम के चरणों में पहिना दिया । तत्पश्चात् अत्यन्त विनीत भाव से वह श्री राम से कहने लगे, " आपकी धरोहर स्वरूप राज्य मैंने आज तक चलाया । यहाँ के भण्डारों को, सेना को तथा कोष को मैंने दस गुना कर दिया है । अब आप अपने इस नगर का देश का तथा राज्य का पालन स्वयं करें ।" यह सुनकर " तथास्तु " कह राम ने भरत को अपने पास बैठा लिया[1] । वाल्मीकीय रामायण में यह प्रसंग और अधिक भावपूर्ण है ।

भरत के त्याग एवं भ्रातृ-प्रेम का एक अन्य उदाहरण कवि ने पूर्णकाण्ड में भी प्रस्तुत किया है । राम अपने वैकुण्ठ जाने का समय जान कर सप्तद्वीपपति पद पर भरत को अभिषिक्त करना चाहते हैं, परन्तु भरत उसे स्वीकार न करके राज्य की निन्दा करते हैं तथा दु:खी होकर राम से कहते हैं, " मैं आपके चरणों की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं आपके बिना पृथ्वी अथवा स्वर्गलोक का राज्य भी नहीं चाहता हूँ । हे राजन् राघव ! आप इस सप्तद्वीपपति के पद पर कुश को बैठा दीजिए ।"[2] इस कथन पर अध्यात्म रामायण की छाया देखी जा सकती है ।

यात्रा आदि के समय भरत सब से आगे चलते थे[3] । यह राजपरिवार का यात्राक्रम था । आनन्द रामायण में राम ने लक्ष्मण को युवराज पद पर अभिषिक्त किया था अत: लक्ष्मण राम के पीछे चलते थे । जैसे राम सीता के साथ क्रीड़ा करते थे वैसे ही भरत माण्डवी के साथ करते थे[4] । भरत के पुष्कर तथा तक्ष नामक दो पुत्र थे । सभी भ्राताओं के पुत्रों के जन्म के समय बड़ी धूमधाम से उत्सव मनाए गए[5] । इसी प्रकार उपनयन आदि संस्कार भी सभी के बड़े उत्सव के साथ किए गए ।

1- भरत: पादुके ते तु राघवस्य सुपूजिते ।।
योजयामास रामस्य पादयोर्भक्तिसंयुत: । ततोऽतिविनयात्प्राह भरतो रघुनन्दनम् ।।
राज्यमेतन्न्यासभूतं मया निर्यापितं तव । कोष्ठागारं बलं कोशं सर्वं दशगुणं मया ।।
रघुराजेशा जगन्नाथ पालयेयं पुरं स्वकम् । तवेति राघवपादौ भरतो संन्यसेदपि ।।

आनन्द रामायण तारकाण्ड/12/92-95 ।

2- आनन्द रामायण [illegible] पूर्णकाण्ड/2/11-17 ।

3- " " [illegible] यात्राकाण्ड/4/26-27 ।

4- " " विलासकाण्ड /9/36-37 ।

5- " " जन्मकाण्ड/9/1-15 ।

राम के साथ उनके सभी भाई प्रत्येक उत्सव के अवसर पर रहते थे तथा उत्साह एवं आनन्द का अनुभव करते थे । विवाह काण्ड में भी भाइयों के पुत्रों के विवाहोत्सवों का वर्णन किया गया है । स्थान-स्थान पर राम तथा उनके भ्राताओं के हास-विलास एवं मनोविनोद का वर्णन भी किया गया है ।

जैसा पहिले कहा गया है, आनन्द रामायण में राम को परब्रह्म का पूर्णावतार माना गया है । भरत भी अंशावतार हैं । मनोहरकाण्ड में जहाँ राम की विभिन्न प्रकार कीपूजा-अर्चा का विधि-विधान बताया गया है वहीं राम के साथ ही भरत की पूजा का विधान भी है । अधिकांश स्तुतियों में राम को भरताग्रज कहकर भरत की महिमा एवं महत्व को स्वीकार किया गया है । "रामकवच" के साथ भरतकवच भी कवि ने प्रस्तुत किया है । पूर्णफल " कवच" का फल तभी प्राप्त होता है जब आराधक हनुमत्कवच, रामकवच,सीताकवच, लक्ष्मणकवच, भरतकवच तथा शत्रुघ्नकवच सभी को पढ़े । इस प्रकार भरत रामायण के पात्र मात्र ही नहीं हैं अपितु विष्णु का अंशावतार होने से देवस्वरूप हैं जिनकी पूजा-अर्चा भी राम के साथ किया जाना आवश्यक है[1] । इस प्रकार आनन्द रामायण में राम के साथ भरत को भी ईश्वरत्व अथवा ब्रह्मत्व के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया है । यद्यपि चारों भाई मानवीय लीला करते हैं, परन्तु पाठक को यह बात किसी भी स्थल पर विस्मृत नहीं हो पाती है कि वे परमात्मा अथवा उसके अंश हैं तथा अपनी समस्त लीलाओं के द्वारा मानवों के सम्मुख एक मानवीय आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं ।

पुराण साहित्य में भरत का स्वरूप

पुराण साहित्य की रचना प्राचीन कथाओं एवं इतिहास को प्रस्तुत करने के उद्देश्य मात्र से की गई प्रतीत नहीं होती है अस्तु यह कथा तथा इतिहास का निरूपण मात्र नहीं है । पुराणों में ब्रह्म तथा जीव के सम्बन्ध, वेद तथा यज्ञ, कर्म-बन्धन, मोक्ष के साधन आदि परमार्थ तत्वों पर अपनी अपनी धार्मिक परम्परा के अनुसार विचार किया गया है । कथाओं तथा प्राचीन इतिहास के माध्यम से धर्म निरूपण के उपर्युक्त तत्वों को स्पष्ट करने तथा रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है । अधिकांश पुराण अवतारवाद से सम्बन्धित हैं तथा ब्रह्म, ईश्वर अथवा भगवान के धरती पर अवतार ग्रहण कर अत्याचार हरण एवं जनकल्याण-प्रतिपादन की चर्चा करते हैं ।

1- आनन्द रामायण मनोहरकाण्ड /13/14 एवं 15 सर्ग सम्पूर्ण ।

अनेक पुराणों में विष्णु के दशावतारों अथवा चौबीस अवतारों का वर्णन किया गया है। अवतारों की श्रृंखला के इसी वर्णन में रामावतार का भी उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार शिव, देवी, विष्णु, कृष्ण आदि पर स्वतंत्र रूप से पृथक्-पृथक् पुराणों की रचना की गई है उस प्रकार रामावतार पर कोई पुराण नहीं लिखा गया है। रामावतार का वर्णन अधिकांशतः दशावतार अथवा चौबीस अवतार के प्रसंग में ही किया गया है। परिणामतः इन पुराणों में रामचरित का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है। उक्त परिस्थिति में भरत के स्वरूप का दर्शन इन काव्यों में प्राप्त करना दुर्लभ ही है। इनमें तो प्रासंगिक रूप से भरत का नामोल्लेख मात्र ही उपलब्ध है। हाँ किसी पुराण में कथा प्रसंगवश भरत के कुछ गुणों का उल्लेख अनायास ही हो गया है। यहाँ सर्व प्रथम अवतार परम्परा के प्रमुख पुराण भागवत पुराण के अतिरिक्त हरिवंश, विष्णु पुराण, वायु पुराण, कूर्म पुराण, अग्नि-पुराण, नारदीय-पुराण, ब्रह्म पुराण, गरुड़ पुराण, स्कन्द पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में भी राम-कथा का वर्णन प्राप्त होता है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण, नृसिंहपुराण, वह्नि पुराण, शिव पुराण, श्रीमद्देवीभागवत पुराण, महाभागवत पुराण, सौर पुराण, कालिका पुराण, आदि पुराण एवं कल्कि पुराण आदि उप पुराणों में भी रामचरित का उल्लेख किया गया है। इनमें से कुछ तो राम विषयक कथा अति संक्षिप्त है। अधिकांश पुराणों में कथा वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है। भरत चरित का वर्णन तो बहुत कम पुराणों में उपलब्ध है। यहाँ विस्तारपूर्वक केवल कुछ ही पुराणों की राम-कथा की चर्चा की जायेगी।

श्रीमद्भागवत्-पुराण में रामकथा तथा भरत का स्वरूप-

भागवत पुराण का रचना काल- पुराणों के रचनाकाल का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। इन ग्रन्थों में रचनाकार न तो कुछ अपने विषय में कहता है और न अपने युग अथवा समय के विषय में। ग्रन्थ रचना के समय के विषय में न तो कोई अन्तर साक्ष्य उपलब्ध होता है और न ही कोई बाह्य साक्ष्य। केवल परम्परा तथा जनश्रुति के आधार पर हम इन ग्रन्थों को व्यास प्रणीत मानते हैं। वस्तुतः जिस भी लेखक ने इनका संकलन किया है वह स्थान पर इनको व्यास (कृष्ण द्वैपायन) की रचना बताता है। लेखक अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर से व्यास का नामोल्लेख करता है। भागवत पुराण की चौबीस अवतारों की परम्परा में व्यास जी को भी भगवान का अवतार माना गया है[1]। भागवत पुराण के अनुसार व्यास श्री कृष्ण के पूर्व ही

1- श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय स्कन्ध/7/36।
कलेर्मे लिम्पियामसुभयनुना स्तोकायुषां स्वल्पिगमी यत दूरपारः आविर्हितस्तत्वमुनुर्ण स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ।। 36 ।।

आविर्भूत हो गए थे । महाभारत में भी वेदव्यास समय समय पर युधिष्ठिर आदि को उपदेश देते हैं । अतः यह माना जा सकता है कि व्यास जी ने महाभारत एवं विभिन्न पुराणों की रचना महाभारत युग में ही की होगी परन्तु वह मौखिक रही होगी तथा परम्परागत रूप में श्रोताओं को सुनाई जाती रही होगी । कालान्तर में यह रचनाएँ किसी विद्वान् लेखक द्वारा संकलित कर लिपिबद्ध कर दी गई होंगी तथा यह संकलनकर्ता व्यास जी की शिष्य परम्परा में से ही कोई रहा हो । इसीलिए प्रत्येक स्थान पर व्यास जी का नाम अत्यन्त श्रद्धापूर्वक लिया गया है । जो भी हो भागवत पुराण के लिपिबद्ध होने का समय महाभारत की रचना के बाद का है तथा स्कन्द आदि अन्य पुराणों की रचना से पूर्व का है । स्कन्दपुराण में तो भागवत पुराण का माहात्म्यवर्णन किया ही गया है । फादर कामिल बुल्के ने अपनी " राम-कथा" में भागवत पुराण का रचना-काल ईसा की छठीं अथवा सातवीं शताब्दी माना है[1] । परन्तु उक्त पुराण के अध्ययन से वह इससे अधिक प्राचीन प्रतीत होता है । यह भागवत धर्म-प्रवर्तन से पूर्व का ग्रन्थ है । सम्भवतः इसकी रचना ईसा की तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में हुई होगी ।

<u>श्रीमद् भागवत पुराण में रामकथा-</u> भागवत पुराण भगवान विष्णु के दश तथा चौबीस अवतारों का वर्णन करता है । इनमें से श्री कृष्णावतार का वर्णन प्रसंगवश अनेक बार तथा विस्तृत रूप से दशम स्कन्ध में किया गया है । यह भागवत पुराण मुख्यतः श्रीकृष्णावतार को प्रकाशित करता है । अवतारों की चर्चा इस पुराण में चार स्थलों पर की गई है- प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय में कवि बाईस अवतारों की स्पष्ट गणना करता है जिनमें रामावतार अठारहवाँ है; द्वितीय स्कन्ध के सातवें अध्याय में पुनः पच्चीस अवतारों का वर्णन किया गया है जिनमें इक्कीसवाँ रामावतार है ; तत्पश्चात् सम्पूर्ण ग्रन्थ में सोलह अवतारों का विस्तृत वर्णन किया गया है जिनमें दस प्रमुख हैं । इन दस अवतारों के अन्तर्गत रामावतार भी है । कवि ने नवम स्कन्ध के दसवें तथा ग्यारहवें अध्यायों में रामचरित का वर्णन किया है । भागवत पुराण में राम विषयक यही वर्णन सबसे विस्तृत है । चौथी बार एकादश स्कन्ध के चौथे अध्याय में पुनः अवतारों का वर्णन किया गया है जिसमें रामावतार का भी उल्लेख है ।

- -

1- फादर कामिल बुल्के- " राम -कथा" । उत्पत्ति और विकास । पृष्ठ 155 ।

प्रथम स्कन्ध में रामावतार के विषय में इतना उल्लेख मात्र ही किया गया है, कि "अठारहवीं बार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने के लिए उन्होंने भगवान ने राजा के रूप में रामावतार ग्रहण किया और सेतु बन्ध, रावण-वध आदि वीरतापूर्ण बहुत सी लीलाएँ की[1]।" द्वितीय स्कन्ध का वर्णन इससे कुछ विस्तृत है। इसमें कलावतार रूप जन्म, पिता की आज्ञा से वनगमन, रावण-वध एवं सागर द्वारा मार्ग दिए जाने का उल्लेख किया गया है[2]।

इसके पश्चात् नवें स्कन्ध के दसवें व ग्यारहवें अध्याय में रामावतार का सविस्तार वर्णन किया गया है।" देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परब्रह्म श्री हरि ही अपने अंशों से चार रूप धारण कर राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे- राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न[3]। इसके पश्चात् धनुष यज्ञ तथा सीता विवाह एवं परशुराम का गर्व हरण आदि कथायें अत्यन्त संक्षेप में कही गई हैं। वनगमन की घटना का वर्णन भी अत्यन्त संक्षेप में किया गया है। विषयवस्तु की संक्षिप्तता के कारण भरत का चित्रकूट जाना, राम को प्रत्यावर्तित कर अयोध्या लाने के प्रयास का यहाँ उल्लेख भी नहीं किया गया है। कवि शूर्पणखा-विरूपीकरण तथा खर-दूषण आदि के वध की घटना का उल्लेख मात्र करता हुआ सीताहरण का वर्णन करता है। जटायु के अन्तिम संस्कार, कबंध-वध, सुग्रीव मैत्री तथा बालि-वध आदि घटनाओं का वर्णन भी एक श्लोक मात्र में ही किया गया है[4]। इसी श्लोक में सीतान्वेषण तथा वानरों की सेना के साथ श्री राम के समुद्र तट तक पहुँचने का उल्लेख है। समुद्र पर क्रोध, उसके द्वारा राम की स्तुति तथा सेतु निर्माण का वर्णन चार श्लोकों में किया गया है। युद्ध का वर्णन, रावण संहार, राक्षसों एवं रावण की स्त्रियों का विलाप तथा रावणादि राक्षसों का दाह संस्कार आदि का वर्णन भी संक्षेप में ही है। राम सीता को अशोक वन में जाकर देखते हैं। सीता की अग्नि परीक्षा का उल्लेख नहीं किया गया है। विभीषण को राज्य देकर राम अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं।

भागवत पुराण में भरत-मिलाप का वर्णन सुन्दर एवं हृदयस्पर्शी है। " श्री राम को जब यह ज्ञात हुआ कि भरत केवल गोमूत्र में पकाया हुआ जौ खाते हैं, वल्कल पहिनते हैं, जटा धारण किए हैं तथा पृथ्वी पर डाभ बिछाकर सोते हैं तब उनका हृदय करुणा से भर गया। राम का आगमन सुनकर, पुरवासी, मंत्री और पुरोहितों को साथ लेकर भरत श्री राम की

1- श्रीमद् भागवत महापुराण प्रथम स्कन्ध /3/22-1
2- श्रीमद् भागवत् महापुराण द्वितीय स्कन्ध /7/23-25 ।
3- श्रीमद् भागवत् महापुराण नवम स्कन्ध/10/ 2 ।
4- श्रीमद्भागवत महापुराण नवम स्कन्ध /10/12 ।
5- " " " " /10/34-40 ।

पादुकाएँ सिर पर धारण कर उनके स्वागतार्थ गए । उनके नन्दिग्रामस्थ शिविर से उनके साथ लोग बाजे बजाते तथा मंगलगान करते हुए चले । वेदपाठी ब्राह्मण वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगे तथा सुन्दरी, पताकाएँ फहराने लगीं । रंग-बिरंगी ध्वजाओं तथा स्वर्णमय साज से सजाये गए घोड़ों से युक्त स्वर्णमण्डित रथों पर सोने के कवच धारण किए हुए सैनिक उनके साथ चले । सेठ-साहूकार, श्रेष्ठ वारांगनाएँ, पैदल चलने वाले सेवक तथा महाराजाओं के योग्य छोटी बड़ी सभी वस्तुएँ भी उनके साथ जा रही थीं ।"

" राम को देखते ही भरत का हृदय प्रेम के उद्रेक से गद्गद हो गया, नेत्रों में प्रेमाश्रु भर आए तथा वे राम के चरणों पर गिर गए । उन्होंने राम के सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं तथा नेत्रों से अश्रु वर्षा करते हुए हाथ जोड़ कर खड़े हो गए । श्री राम ने अपने दोनों हाथों से भरत को उठाकर बहुत देर तक अपने हृदय से लगाए रखा । राम के प्रेमाश्रुओं से भरत का स्नान हो गया[1] । " राम सब से मिलकर राजमहल में गए । गुरु वसिष्ठ ने उनका अभिषेक कराया । भरत के आग्रह पर श्री राम ने राज्य स्वीकार किया[2] । कवि ने रामराज्य का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से छः श्लोकों में किया है[3] ।

नवम स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में राम द्वारा किए गए यज्ञों, दान, ब्राह्मणों के प्रति स्नेह एवं आदर, सीता-त्याग, पुत्र जन्म आदि का वर्णन किया गया है । भरत के दो पुत्र तक्ष और पुष्कल हुए[4] । भरत ने करोड़ों गन्धर्वों का संहार दिग्विजय में किया तथा उनका सब धन लाकर अपने अग्रज श्री राम के चरणों में अर्पित कर दिया[5] । तत्पश्चात् शत्रुघ्न द्वारा रावण-वध तथा सीता के पृथ्वी प्रवेश की कथा है । भागवत पुराण के अनुसार सीता के भूमि प्रवेश के पश्चात् लोक को अन्तर्निगृह करके श्रीराम ने तेरह हजार वर्षों तक अखण्ड रूप से अग्निहोत्र किया[6] । तदनन्तर राम अपने ज्योतिर्धाम को चले गए । इसके पश्चात् कवि ने राम का परमात्मा के रूप में यशोगान एवं स्तुति की है । अन्त में राम राज्य की समृद्धि, पुरवासियों के प्रेम तथा उनके प्रति राम के व्यवहार का वर्णन है[7] ।

चौथी बार एकादश स्कन्ध के चौथे अध्याय में अवतारों का पुनः वर्णन किया गया है । यहाँ इक्कीस अवतारों के वर्णन में रामावतार अठारहवाँ है । यह वर्णन मात्र आधे[8]

- -

1- श्रीमद्भागवत महापुराण नवम स्कन्ध /10/39-40 ।
2- अग्रहीदासनं भ्राता पुरस्मित्य पुनाहितः ।
श्रीमद् भागवत पुराण नवम स्कन्ध /10/51 ।
3- " " " " /10/51-56 ।
4- " " " " /11/12 ।
5- " " " "/11/13-14 ।
6- " " " "/11/18 ।
7- " " " " /11/20-36 ।
8- " " " एकादश स्कन्ध /4/21 ।

श्लोक में किया गया है ।

भागवत की कथा वस्तु का आधार वाल्मीकीय रामायण ही है । कथा अत्यन्त संक्षिप्त में परन्तु स्पष्ट रूप से कही गई है । उस समय श्री राम भगवान अथवा परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे तथा इष्ट देव के रूप में उनकी पूजा अर्चना हुआ करती थी । कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है, " श्री राम का निर्मल यश समस्त पापों को नष्ट करने वाला है । वह इतना फैल गया है कि दिग्गजों का श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलता से चमक उठता है । आज भी निष्पाप कवि राज सभाओं में उसका गान करते हैं । स्वर्ग के देवगण तथा पृथ्वी के राजागण अपने किरीटों से उनके चरणों की सेवा करते हैं । उन्हीं रघुवंश के स्वामी/श्री राम की मैं शरण जाता हूँ ।"[1]

श्रीमद्भागवत महापुराण में भरत का स्वरूप - जैसा कि ऊपर कहा गया है श्रीमद्भागवत पुराण में चार स्थलों पर रामकथा का उल्लेख किया गया है, इनमें से प्रथम तथा चतुर्थ स्कन्ध के वर्णनों में तो भरत का नाम तक नहीं आया है । द्वितीय स्कन्ध के वर्णन में मात्र इतना ही कहा गया है कि" हम पर अनुग्रह करने के लिए समस्त कलाओं के स्वामी भगवान अपनी कलाओं के साथ इक्ष्वाकु वंश में अवतरित होते हैं ।" इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि भगवान कलाओं के साथ अर्थात् लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के साथ जन्म लेते हैं । स्पष्टतः रूप से भरत का नामोल्लेख यहाँ पर भी नहीं किया गया है । भरत का स्पष्ट वर्णन तो नवम स्कन्ध में ही किया गया है । राम वन गमन का प्रसंग कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है यहाँ तक कि राम को मनाने हेतु भरत के चित्रकूट जाने तक का उल्लेख नहीं किया है ।

भरत के दर्शन हमें मुख्यतः नवम स्कन्ध के दशम अध्याय में होते हैं । यहाँ भ्रातृवत्सल भरत राम के आने की प्रतीक्षा अति उत्कण्ठा से करते हैं तथा उनके अयोध्या आने का समाचार सुनकर उनकी पादुकाओं को सिर पर रखकर समस्त पुरवासियों, अमात्यों एवं पुरोहितों के साथ, गायन, वादन, ब्रह्मघोष एवं वेद मंत्रों के पाठ की ध्वनि सेयुक्त लोकोत्सव उनके स्वागतार्थ जाते हैं । राम को देखते ही भरत का हृदय प्रेम के उद्रेक से गद्गद हो उठा, नेत्रों में आँसू आ गए और वे राम के चरणों पर गिर पड़े । उन्होंने पादुकाएँ राम के सामने रख दीं तथा अश्रुपात करते हुए हाथ जोड़कर राम के सम्मुख खड़े हो गए । राम ने भी अपने दोनों हाथों से पकड़ कर बहुत देर तक भरत को

1- श्रीमद्भागवत पुराण नवम स्कन्ध/11/21 ।

हृदय से लगा रखा[1]। उनके नेत्रजल से भरत का स्नान हो गया। भाइयों के पारस्परिक प्रेम का यह अद्वितीय उदाहरण है। राम का त्याग एवं भ्रातृ-प्रेम दिव्य, एवं अलौकिक है परन्तु भरत का भ्रातृ-प्रेम, त्याग तथा धर्माचरण राम से भी बढ़कर है। वहीं अनुनय-विनय करके वे राम को अयोध्या का राज्य लौटाते हैं।

श्रीमद् भागवत पुराण में भरत के चरित्र में वे सभी गुण दर्शित हैं जो वाल्मीकीय रामायण के भरत के चरित्र में हैं। भागवत पुराण के भरत अति सौम्य, धैर्यपरायण एवं संयमी हैं। जहाँ राम चौदह वर्षों तक वन में अविचल का पालन करते हुए रहे, वहाँ भरत नगर से बाहर नन्दिग्राम में पर्णकुटी रचकर, केवल गो मूत्र में पकाये जौ खाकर, वल्कल धारण कर, जटा धारण कर, पृथ्वी पर शयन करते हुए राम के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करते रहे[2]। समस्त सुख साधन उपलब्ध होते हुए भी जल में कमल के समान राजलक्ष्मी से निर्लिप्त रहे। त्याग एवं संयम का इससे बढ़कर विश्व में और कौन सा दूसरा उदाहरण उपलब्ध हो सकेगा। भरत का आदर्श पतित को भी पवित्र करने की क्षमता रखता है।

विष्णु-पुराण

पाश्चात्य लेखकों ने पुराण साहित्य में विष्णु पुराण को अपेक्षाकृत प्राचीन माना है। फादर कामिल बुल्के इसका रचना काल चौथी शताब्दी ई० मानते हैं[3]। विष्णु-पुराण में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन तो सविस्तार किया गया है परन्तु रामचरित का उल्लेख अत्यन्त संक्षिप्त है। केवल चतुर्थ अंश के चौथे अध्याय में सगर, सौदास आदि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के वर्णन-क्रम में ही कवि ने राम का भी चरित वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण रामचरित मात्र

1- पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रच्छिन्नहृदयेक्षणः ।। पादुके चास्य पुरतः प्रांजलिर्व्यचलोजनः ।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैः जलैः ।।
श्रीमद् भागवत् पुराण नवमस्कन्ध/10/39-40 ।

2- उपगीयमानचरितः आशुत्थादिभिर्मुदा । गोमूत्रपक्वं हुत्वा आतरं वल्कलाम्बरम् ।।34।।
महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् । भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ।।35।।

श्रीमद् भागवत महापुराण नवम स्कन्ध/10/34-35 ।।

3- फादर कामिल बुल्के- रामकथा । उत्पत्ति और विकास।
पृष्ठ 154 ।

अठारह श्लोकों अथवा वाक्यों में कह दिया गया है जिससे इसकी संक्षिप्तता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है[1]। भरत का तो प्रसंगवश नामोल्लेख मात्र ही हुआ है।

विष्णु पुराण के अनुसार " भगवान् कमलनाभ जगत् की स्थिति के लिए अपने अंशों से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार रूपों से दशरथ के पुत्र-भाव को प्राप्त हुए[2]।" इस कथन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यहाँ भी भरत को विष्णु का अंशावतार माना गया है। इसके पश्चात् राज्याभिषेक के समय लक्ष्मणादि के साथ भरत का भी नामोल्लेख हुआ है तथा इसी वाक्य में राम को तीनों भाइयों का प्रिय भी कहा गया है[3]। तत्पश्चात् एक वाक्य में भरत द्वारा गन्धर्व लोक विजय की चर्चा की गई है। इसी वाक्य में यह भी कहा गया है कि भरत ने युद्ध में तीन करोड़ गन्धर्वों का वध किया[4]। इस वाक्य के आधार पर कहा जा सकता है कि भरत वीर थे एवं संग्रामकर्मी थे। राम के समान ही उनका अवतार भी दुष्टों के विनाश के लिए हुआ था। कवि स्वयं ही आगे कहता है, " इस प्रकार अपने अतिशय बल-पराक्रम से महान् दुष्टों को नष्ट करने वाले राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न सम्पूर्ण जगत की यथोचित व्यवस्था करने के अनन्तर स्वर्गलोक को सिधारे[5]। अन्त में भरत के दो पुत्र तक्ष और पुष्कल के होने का उल्लेख किया गया है[6]। बस, सम्पूर्ण विष्णु-पुराण में भरत के विषय में केवल इतना ही उल्लेख है।

उपर्युक्त विवरण से भरत के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर इंगित होता है:-

(1) भरत विष्णु के अंशावतार हैं तथा राम के समान ही उनके अवतार ग्रहण करने का प्रयोजन भी दुष्टों का संहार है।

(2) वे वीर हैं तथा गन्धर्वों से संग्राम में विजयी हुए।

(3) वे अपने भ्राता राम को प्रेम करते हैं तथा उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं।

विष्णु पुराण का राम चरित वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है परन्तु अत्यन्त संक्षिप्त है।

1- श्री विष्णु पुराण/4/4/86-104 ।

2- तत्रापि भगवानब्जनाभो जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नत्वेन चतुर्धा पुत्रत्वमापातीह ।।
विष्णु पुराण/4/4/86 ।

3- विष्णु पुराण/4/4/99 ।

4- भरतोऽपि गन्धर्व विजय साधनाय गच्छन् संग्रामे गन्धर्वकोटीस्तिस्त्रो जघान ।। 100 ।।
श्री विष्णु पुराण/4/4/100 ।

5- श्री विष्णु पुराण/4/4/102 । 6- श्री विष्णु पुराण/4/4/104 ।

ब्रह्म-पुराण में भरत

ब्रह्म पुराण में भी राम विषयक कथा अत्यन्त संक्षिप्त रूप में दी गई है। इस ग्रन्थ के 123वें अध्याय में रामतीर्थ के प्रसंग में देवासुर संग्राम में कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति, श्रवण कुमार मरण के कारण दशरथ को श्राप, रामजन्म, विश्वामित्र के यज्ञ की राम द्वारा रक्षा तथा अहिल्या उद्धार, सीता प्राप्ति, दशरथ के नरक गमन तथा गौतमी तीर्थ पर राम के द्वारा पिंडदान किए जाने से दशरथ की नरक से निवृत्ति आदि का वर्णन किया गया है[1]। अध्याय 154 में सीता त्याग का उल्लेख है तथा अध्याय 157 में किष्किंधा तीर्थ माहात्म्य में रावणवध के बाद राम द्वारा पाँच दिन तक गौतमी तट पर निवास की चर्चा की गई है। सम्पूर्ण रामचरित किसी भी स्थल पर उपलब्ध नहीं है। केवल 213वें अध्याय में एक अत्यन्त संक्षिप्त रामकथा पुनः उपलब्ध है जिसमें स्पष्ट है कि राम अपने तीनों भाइयों सहित विष्णु के अवतार थे[2]। इस प्रसंग में राम राज्य का वर्णन कुछ विस्तार सहित किया गया है। यह सम्पूर्ण रामकथा 124वें श्लोक से 158वें श्लोक तक कुल 35 श्लोकों में कही गई है जिसमें से 14 श्लोकों में राम राज्य का वर्णन है। यह कथा लगभग इसी रूप में हरिवंश पुराण में भी है।

पद्म-पुराण

रचना काल- पद्म पुराण विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण से पर्याप्त समय पश्चात् लिखा गया प्रतीत होता है। यह भी व्यास प्रणीत माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका भी किसी अज्ञात कवि ने जिसने अपना यश व्यास को समर्पित कर यह रचना की है। लेखक का नाम अज्ञात होने के कारण रचना-काल का भी अनुमान लगाना कठिन ही है। फिर भी इस ग्रन्थ की रचना का समय ईसा की दसवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच माना जाता है। फादर कामिल बुल्के के अनुसार इसके पातालखण्ड की रचना 12 वीं शताब्दी में हुई होगी तथा उत्तरखण्ड अपना वर्तमान रूप 1500 ई० के लगभग प्राप्त कर सका है।

1- ब्रह्मपुराण अध्याय /123 ।

2- यो दाशरथ्याथ पुनः पद्मलोचनः ।।
कृत्वाऽस्त्रार्थं महाबाहुश्चतुर्थो प्रभुरीश्वरः । लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ।।
ब्रह्मपुराण/213/124-25 ।

3- रामकथा । उत्पत्ति और विकास:- पृष्ठ 159 ।

पद्म पुराण में रामकथा- पद्म पुराण में राम कथा अनेक स्थलों पर कही गई है। रामचरित मुख्यतः पाताल खण्ड, सृष्टि खण्ड तथा उत्तरखण्ड में उल्लिखित है। पातालखण्ड में रामाश्वमेध का वर्णन किया गया है। यह वर्णन रावण वध के पश्चात् राम के अयोध्या प्रत्यागमन से प्रारम्भ होता है। भरत के राम के प्रति उदात्त प्रेम का यहाँ भावपूर्ण वर्णन किया गया है। राज्याभिषेक के पश्चात् रामराज्य वर्णन तथा सीता परित्याग की कथा कही गई है। अश्वमेध यज्ञ, राम लेखा तथा लव कुश में युद्ध तथा सीता राम का पुनर्मिलन भी वर्णित है।

इसके पश्चात् पाताल खण्ड में ही अश्वमेध यज्ञ से पूर्व के रामचरित का भी वर्णन किया गया है। इस स्थल पर राम द्वारा विभीषण मोक्ष तथा राम द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन है। अन्त में राम वाल्मीकि तथा अन्यान्य पुराकल्प रामायण की चर्चा की गई है।

सृष्टि खण्ड में राम द्वारा दशरथ का आदर, प्रेम प्रभाव के कारण लक्ष्मण द्वारा सीता की भर्त्सना एवं राम के प्रति रोष व्यक्त करना तथा प्रेम प्रभाव दूर होने पर राम लक्ष्मण का पुनर्मिलन तथा लक्ष्मण की राम से क्षमा याचना आदि का वर्णन किया गया है[1]। सृष्टि खण्ड के 32 वें अध्याय में जम्बूक वध की कथा का भी उल्लेख है। फिर राम द्वारा विभीषण को उपदेश दिया गया है। सृष्टि खण्ड में अहिल्या की कथा भी है।

उत्तर खण्ड में रघुवंश से मिलती जुलती दिलीप की गौ सेवा का वर्णन किया गया है[2]। सुन्दर राम की कथा[3], राम रक्षा स्तोत्र[4] तथा जम्बूक-वध की कथा भी इसी खण्ड में वर्णित है। इसके अतिरिक्त रामाचार के कारण सहित एक संक्षिप्त रामचरित इस खण्ड के अध्याय 269 से 271 तक दिया गया है। इसके अन्तर्गत रामाचार के कारण, विष्णु का देवों को वानर रूप में पृथ्वी पर अवतरित होने का आदेश, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के जन्म का वर्णन, सीता-उत्पत्ति, विश्वामित्र के यज्ञ की राम लक्ष्मण द्वारा रक्षा, ताटका, मारीच तथा सुबाहु का वध, अहिल्या-उद्धार, राम तथा उनके तीनों भाइयों का विवाह, परशुराम का मद-मर्दन, कैकेयी के वचनों से प्रेरित दशरथ की आज्ञा से

1- पद्मपुराण सृष्टि खण्ड अध्याय 28 ।
2- पद्मपुराणउत्तरखण्ड अध्याय 198-199 ।
3- " " " 16/105 ।
4- " " " 74 ।
5- " " " 230 ।

राम, लक्ष्मण व सीता का वन-गमन, जयन्त की कथा, राम द्वारा शूर्पणखा को विरूप किया जाना, खरदूषणादि का वध, सीताहरण, जटायु का स्वर्गारोहण, शबरी-उद्धार, सुग्रीव-मैत्री, सीतान्वेषण, सेतुबंध, रावण-वध, विभीषण को राज्य प्राप्ति, सीता की अग्नि शुद्धि, सीता त्याग तथा राम के स्वधाम गमन का उल्लेख किया गया है । सम्पूर्ण पद्म-पुराण में राम-कथा विभाग वर्णन इतने ही हैं ।

पद्म-पुराण में भरत का चरित्र- पद्म पुराण के भरत विष्णु का अंशावतार हैं ।[1] उनका जन्म धर्ममय जीवन निर्वहन का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए हुआ है । पाताल खण्ड में कवि द्वारा प्रस्तुत उनका चित्र मूर्तिमान् धर्म की छवि प्रतीत होता है । कवि ने बिल्कुल ठीक कहा है कि उनको विधाता ने सम्पूर्ण ∅ सतोगुण से ही बनाया है[2] । भूमि पर शयन करने वाले, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले तथा जटावल्कलधारण करने वाले कृशांग भरत तपस्या की साक्षात् मूर्ति प्रतीत होते हैं । वह इतनी कठिन तपस्या कर रहे हैं कि जो तक ग्रहण नहीं करते तथा जल भी बार बार नहीं पीते हैं[3] । माता के राज्य लोभ से उद्भूत राम-वन-गमन रूपी महापाप का कारण वे स्वयं को ही मानते हैं तथा इसी ग्लानि की ज्वाला में उनका हृदय निरन्तर जलता रहता है । उनके मन में घोर पश्चाताप है । उनका धर्मनिष्ठा एवं न्यायप्रिय मन इस बात को कैसे सहन कर सकता था कि उनके धर्मनिष्ठ एवं निर्दोष बड़े भाई वन वन में फिरें । अतः वे नित्य प्रार्थना करते हैं कि, " हे तीनों के नेत्र स्वरूप ! देवताओं के स्वामी सूर्य देव! आप मेरे महापाप को दूर कीजिए । मेरे कारण जगत्पूज्य रामचन्द्र को वन जाना पड़ा है । क्योंकि प्रायश्चित्त स्वरूप वे जो का अन्न तक ग्रहण नहीं करते हैं तथा तब

1- ततोऽस्य प्रार्थितः पूर्वं तपता तेन भोः सुराः । पत्नीषु भूत्वा तिसृषु चतुर्थोऽपि भवत्कुले ।।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताख्यात्मान्वितः । कर्ताऽस्मि रावणोद्धारं तत्र तमूलकथाहम् ।।
पद्म पुराण, पातालखण्ड/7/25-26 ।।

2- नमस्कार भरतं धर्म मूर्तिमुत्तम । विधाता सकलांशेन तत्वेनैव विनिर्मितम् ।।13।।
पद्म पुराण/पातालखण्ड/2/13 ।।

3- गतीनायी ब्रह्मचारी जटावल्कलसंयुतः । कृशांगश्चिष्टदुःखार्तः कुमारो रामकर्यां भुवः ।।
मद्यान्नमपि नो भुंक्ते जलं पिबति नो मुहुः । उद्दन्तं यः सविकारं नमस्कृत्य प्रयाति च ।
पद्मपुराण/पातालखण्ड /1/30-31 ।।

4- जगन्नेत्र सुरस्वामिन् हर मे दुष्कृतं महत् ।
मदर्थे रामचन्द्रोऽपि जगत्पूज्यो वनं गतो ।।

पद्मपुराण /पातालखण्ड/1/32 ।

सुख त्याग कर अत्यन्त कठिन तपस्या करते हुए नन्दिग्राम में निवास करते हैं ।

भरत अपने बड़े भाई राम को अपने प्राणों से अधिक प्रेम करते हैं तथा वन में राम के लौटने की प्रतीक्षा अति उत्कण्ठा के साथ कर रहे हैं । राम स्वयं ही कहते हैं, " हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही मेरे भाई के पास जाओ जो मेरे वियोग के कारण कृश शरीर हो गया है । वह वल्कल वस्त्र तथा जटाएँ धारण किए है और मेरे विरहजन्य ताप के कारण फलाहार तक नहीं करता है । - - - - मेरे वियोग से उत्पन्न दुःख की ज्वाला से दग्ध शरीर वाले मेरे उस भाई को तुम मेरे आगमन के समाचार रूपी वर्षा से सींच दो[1] ।"

भरत राम के प्रिय भक्त हैं । राम के प्रत्यागमन की सूचना से उनको अपार हर्ष होता है । वे हर्ष विभोर हो हनुमान् से कहते हैं, " मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैं इस रामागमन संदेश के उपलक्ष में तुम्हें दे सकूँ । अतः रामसंदेशहारक कपि मैं तुम्हारा आजन्म दास बन गया हूँ ।" इससे बढ़कर प्रेम एवं भक्ति की अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है ।

भरत अत्यन्त दयालु एवं सहृदय हैं । उन्हें राम का वनगमन बहुत कष्ट देता रहा है[4]। सुकुमारी सीता वन में कैसे रहती होंगी, कठिन भूमि पर कैसे चलती होंगी, आदि चिन्ताओं से उनका दयालु हृदय व्याकुल रहता था । फूलों के बिछौने पर सोने वाली सीता भूमि पर नंगे पाँव चलती होंगी । जिस जानकी को राजा लोग भी नहीं देख पाते थे वही अब कंटकाकीर्ण वन में भयंकर किरातों के द्वारा देखी जाती होंगी । राम और सीता को यह समस्त दुःख उनके कारण ही प्राप्त हो रहे हैं, यह सोचकर भरत और भी अधिक दुःखी हो उठते थे । उनका दयाविगलित हृदय करुण क्रन्दन कर उठता था[5] ।

पद्म पुराण के भरत धर्मज्ञ एवं विवेकी हैं । वे राम के प्रत्यागमन की वेला अतिक्रमित होते देख आनन्द रामायण के भरत के समान चिता रचकर भस्म होने नहीं जाते हैं अपितु हृदय में शोक एवं दुःख के होते हुए भी विवेकपूर्वक उनके आने की प्रतीक्षा

- -

1- भर्त्तारं च भ्रातरं वीरं तमीरणसूनुभव । मद्वियोगकृशं यष्टिं वपुषो विभ्रतं हठात् ।।
यो वल्कलं परिधत्ते जटाश्चत्ते शिरोरुहे । फलानां भक्षमपि न कुर्यादिरहातुरः ।।
× × × × × ×
मद्वियोगदुःखाग्नि ज्वालादग्धकलेवरम् । मदागमनसंदेशवारिवृष्ट्या कुरुष्व तम् ।।
पद्म पुराण/पातालकाण्ड/2/4-7 ।।

2- जगाद भम तन्नास्ति यत्तुभ्यं दीयते मया । दासोऽस्मि जन्मपर्यन्तं रामसंदेशहारक ।।
पद्म पुराण/पातालकाण्ड/2/18 ।।

3- पद्म पुराण पातालकाण्ड/2/32-42 ।।

करते हैं ।

भरत के उच्चकोटि के विवेक का एक अन्य स्थल पर भी पद्मपुराण में उल्लेख उपलब्ध है । एक बार सीता निन्दा प्रसंग में राम सीता त्याग का निर्णय लेकर भरत को सीता को वन में छोड़ आने की आज्ञा देते हैं, उस समय भरत उन्हें बहुत समझाते हैं । वे कहते हैं, " वीरों से पूजित जानकी की लंका में अग्निशुद्धि हो चुकी थी । स्वयं ब्रह्मा जी तथा आपके पिता दशरथ ने भी कहा था कि यह शुद्ध है ।" वह ही लोकपूजित जानकी एक धोबी के कहने से भार डालने अथवा त्यागने योग्य कैसे हो गई ? ब्रह्मादि से प्रशंसित आपकी कीर्ति तो लोक को पवित्र करती है, वह एक धोबी के कहने से आज कलुषित कैसे हो जायेगी ? इसलिए सीता की निन्दा से आपको जो महान् दुःख हुआ है उसको छोड़िए तथा उस सौभाग्यशाली सहधर्मिणी के साथ राज्य कीजिए ।[1]" फिर भी जब राम सहमत नहीं हुए और जानकी निष्कासन पर ही दृढ़ रहे तब भरत को असहनीय पीड़ा हुई। उनका शरीर काँप उठा, नेत्रों में अश्रु उमड़ पड़े तथा वे शोक के आवेग से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े[2] । भरत से बढ़कर विवेकी और दयालु कौन हो सकता है ? वास्तव में मानवता का सच्चा स्वरूप भरत में ही साकार हुआ है ।

पद्म पुराण में भरत की सच्चरित्रता का वर्णन तो रामने अपने एक वाक्य में ही कर दिया है, " जिसके लिए पराई स्त्री माता के समान तथा पराया धन मिट्टी के ढेले के समान है, मेरा वह धर्मात्मा भाई प्रजा को पुत्रवत् देखता है[3] ।" वस्तुतः पदमपुराण में भरत को

1- तथ्युक्त्वा भरतः प्राह भ्रातरं दुःखाकुलम् । जानकी पद्मनिर्दुष्टाऽभूल्लंकायां वीरपूजिता ।।
ब्रह्माऽब्रवीदिदं शुद्धा पिता दशरथस्तथा । कथं सा रजकोक्तिमात्राद्दुष्टा तथा लोकपूजिता ।।
ब्रह्मादिसंस्तुता कीर्तिस्तव लोकान्पुनाति हि । सा कथं रजकोक्त्या वै कलुषाऽऽदेय भविष्यति ।
तस्मात्त्यज महादुःखं सीतायाध्यासमुद्भवम् । कुरु राज्यं तया साधिन्तर्धर्मिण्या सुभाग्यया ।।

पद्मपुराण/पाताल०/56/54-57 ।।

2- इति वाक्यं समाकर्ण्य रामस्य भरतोऽपतत् ।
मूर्छितः सन्निपातो हि कम्पयुक्तः सवाष्पकः ।। 64 ।।

पद्मपुराण/पाताल०/56/64 ।।

3- परस्त्री यस्य मातेव लोष्टवत्कांचनं पुनः ।
प्रजाः पुत्रानिवेक्षेद्यो भ्राता मम धर्मिणः ।। 6 ।।

पद्मपुराण/पाताल०/2/6 ।

धर्मज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ, त्यागी, तपस्वी, अग्रजानुरागी, रामभक्त, दयालु एवं सहृदय के रूप में चित्रित किया गया है। अन्धभक्ति से वे आचरणतल में लग्न नहीं होते अपितु विवेक का सहारा लेते हैं। उनमें मानवता का सर्वोत्कृष्ट आदर्श देखा जा सकता है। कवि ने उनका सम्पूर्ण स्वरूप तो इस आधे श्लोक में ही अंकित कर दिया है, " विधाता सकलाश्चैव सत्यैनेव विनिर्मितौ[1] ।।"

<u>अन्य पुराणों में भरत चरित-</u> उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी राम कथा का उल्लेख हुआ है। वायु पुराण तथा कूर्म पुराण में राम कथा अति संक्षिप्त होने के कारण भरत की चरित्र वर्णन का अवकाश ही नहीं रहा। अग्नि पुराण में पाँचवें अध्याय से लेकर ग्यारहवें अध्याय तक रामायण कथा का वर्णन किया गया है। विषय सूची में लिखा ही इस प्रकार गया है- " अथश्रीमद्रामायणारम्भः" । अग्नि पुराण की यह रामकथा वाल्मीकीय रामायण का संक्षिप्त मात्र है। अतः भरत का चरित्र-विकास भी वाल्मीकीय रामायण से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार का रामचरित विषयक वर्णन नारदीय महापुराण में उपलब्ध होता है। भविष्य पुराण तथा गरुड़ पुराण भरत चरित वर्णन की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है।

स्कन्द पुराण के माहेश्वर खण्ड, वैष्णव खण्ड, ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्य खण्ड एवं अवन्ती खण्ड आदि में रामचरित के विभिन्न प्रसंगों का आंशिक अथवा समग्र रूप से वर्णन किया गया है परन्तु उसमें भरत चरित का उल्लेख सीमित ही है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण तथा श्रीमद्देवीभागवत पुराणों में भी रामकथा का उल्लेख लगभग एकसा ही किया गया है। नृसिंह पुराण की रामकथा वाल्मीकीय रामायण के प्रथम छः काण्डों की कथा का संक्षिप्त मात्र ही है परन्तु इसमें अवतारवाद पर अधिक बल दिया गया है। इसमें राम के यज्ञों का वर्णन तो मिलता है परन्तु सीता त्याग का उल्लेख नहीं है। वह्नि पुराण की रामकथा अत्यन्त विस्तृत है[2]। यह मुख्यतः वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है।

इस प्रकार पुराण साहित्य में रामकथा अनेक स्थलों पर उपलब्ध है। कहीं पर तो उसका अत्यन्त विस्तार प्रस्तुत है और कहीं पर प्रसंगवश संक्षेप में कही गई है। रामकथा के आख्यान एवं उपाख्यान भी अनेक स्थलों पर वर्णित हैं। "पुराण साहित्य में रामकथा" पर तो पृथक से एक सम्पूर्ण ग्रन्थ ही लिखा जा सकता है।

1- पद्मपुराण/पातालखण्ड/2/13 ।। 2- रामकथा- उत्पत्ति और विकास/पृष्ठ 162 । ले०-फादर कामिल बुल्के ।

पुराण साहित्य की रामकथा में भरत-चरित का स्थान भी कथा-विस्तार के अनुसार हो रहा है । विष्णु आदि पुराणों में जिनमें रामकथा ही अत्यन्त संक्षिप्त है उनमें भरत के चरित का विकास भी नहीं किया गया है । जिन पुराणों में रामकथा कुछ विस्तार से कही गई है उनमें मुख्यकथा वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही है ; परिणामस्वरूप उनमें भरत का स्वरूप-चित्रण भी वाल्मीकीय कथा पर ही आधारित है । समस्त पुराणों में भरत चरित का सर्वोत्कृष्ट चित्रण पद्म पुराण में किया गया है । इस पुराण के पातालखण्ड के प्रथम दो अध्यायों में वन से राम के प्रत्यागमन की प्रतीक्षा करते हुए मुनिव्रतधारी, तपस्वी एवं धर्मज्ञ भरत की झाँकी नन्दिग्राम में प्रस्तुत की गई है । पहिले कवि ने स्वयं, तत्पश्चात् श्री राम के मुख से और फिर हनुमान् के द्वारा भरत के अनुपम चारित्रिक गुणों का वर्णन कराया है । इतने से भी कवि को संतोष नहीं हुआ और वह भरत के गुण-सौन्दर्य का अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करवाने अनिर्वचनीयता को प्राप्त हो गया । तब समस्त वर्णनों का प्रतीक स्वरूप यह वाक्य उसकी लेखनी से फूट पड़ा, " विधाता सकलांश्चित्रान् सत्येनैव विनिर्मितान् ।" भरत के चरित्र का यही सबसे सुन्दर विवेचन है ।

संस्कृत ललित साहित्य में भरत का स्वरूप

संस्कृत साहित्य का समस्त रामकथा विषयक साहित्य मूलतः वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है । समस्त रामायणें कथावस्तु के विषय में थोड़ा बहुत अन्तर करती हुई मुख्य रूप से वाल्मीकीय रामायण का ही आश्रय लेती हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण पुराण साहित्य में भी मुख्य रामकथा वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है । अपने अपने दृष्टिकोण से अथवा अपने मत के प्रश्रय एवं पुष्टि के लिए अथवा अपने मत के महात्म्य-प्रदर्शन के लिए लेखकों ने बहुधा तीर्थ वर्णन, शिवपूजा तथा शक्ति पूजा आदि के विषय में मूल रामकथा में अन्तरकथाएँ तथा उपाख्यान आदि जोड़ दिए हैं । कथा का विस्तार अथवा संकोच भी इसी आधार पर किया गया है । कुछ लेखकों ने अपने दृष्टिकोण से राम के चरित्र के उदात्तीकरण के लिए भी कुछ आख्यान जोड़े हैं । इसी प्रकार रामविषयक संस्कृत ललित साहित्य भी मुख्य रूप से वाल्मीकि रामायण पर आधारित है । कवियों ने अपनी रुचि के अनुसार रामकथा में कहीं कहीं श्रृंगारिक वर्णन बढ़ा दिए हैं ।

बृहद्धर्म पुराण में वाल्मीकीय रामायण को समस्त काव्यों, इतिहास, पुराण आदि

का मूल स्रोत माना गया है। ब्रह्मा ने स्वयं रामायण की रचना करने के लिए वाल्मीकि को आदेश दिया तथा कहा कि तुम्हारे द्वारा कही गई रामायण का संसार में कवि लोग अनुसरण करेंगे[2]। राम विकास काव्य का अनुशीलन करने से बृहद्धर्मपुराण की यह बात एकदम सत्य सिद्ध होती है। वास्तव में कवियों ने राम के लोकोत्तर चरित्र के वर्णन के बिना अपनी वाणी को फलवती नहीं समझा। इसकी पुष्टि राध्य नाटक के निम्नलिखित छन्द से होती है -

बीजं यस्य चिरार्जितं सुचरितं प्रज्ञा नवीनोऽङ्कुरः
काण्डः पंडितमण्डलीपरिचयः काव्यं नयः पल्लवः।
कीर्तिः पुष्पपरम्परा परिणतः सोऽयं कविस्वद्रुमः
किं वन्द्यः क्रियते विना रघुकुलोत्तंसं प्रशंसाफलम् ॥13॥

न केवल रामायण की कथावस्तु अपितु उसकी काव्य शैली भी भारत तथा उसके आसपास के देशों के कवियों को निरन्तर प्रभावित करती रही है। रामकथा पर आधारित संस्कृत लक्षित साहित्य महाकाव्यों एवं नाटकों के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जिस प्रकार रामायणों एवं रामाख्यानों में राम के चरित्र के साथ ही कथा प्रसंगवश भरत का चरित्र भी उभरा है उसी प्रकार लक्षित साहित्य में भी यथास्थान भरत के चरित्र का भी विकास हुआ है।

संस्कृत महाकाव्यों में भरत का चरित्र- संस्कृत महाकाव्यों में भरत का चरित्र रामायण की भाँति ही विकसित हुआ है। सभी राम काव्यों में कथा नायक तो राम ही हैं। भरत तो कथा विकास में एक आवश्यक पात्र हैं। भरत के चरित्र की महनीयता सभी कवियों ने स्वीकार की है और अपनी काव्य-कथा के अनुरूप ही भरत का चरित्र वर्णित किया है। भरत की धर्म-भावना, कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृ-वत्सलता, भक्ति-भावना तथा उदारता एवं मानव सुलभ करुणा सभी काव्यों में यथास्थान प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उभरी है। कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में भरत का उल्लेख अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया है।

संस्कृत में रघुवंश, सेतुबन्ध, रावण-वध, जानकी हरण, अभिनन्दनकृत रामचरित रामायण मंजरी, उदारराघव आदि अनेक रामकाव्य उपलब्ध हैं, परन्तु यहाँ पर हम मुख्य रूप से कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के आधार पर ही भरत का स्वरूप वर्णन करेंगे।

1- रामायणं महाकव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
सम्पूर्णं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयोः ॥ 28 ॥
बृहद्धर्मपुराण/पूर्वभाग/अध्याय/25/28 ।

2- कृते त्वया महाकाव्ये भाव्यैर्रामेष्टितो।
लोकेऽनुचरिष्यन्ति कवयोऽन्ये सहस्राशः ॥ 80 ॥ बृहद्धर्मपुराण/पूर्वभाग/अध्याय 25/80 ।

रघुवंश

रचना-काल- कालिदास के आविर्भाव के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। हिप्पोलाइट जैसे जहाँ कालिदास को ईसा से आठ शताब्दी पूर्व का बताते हैं,[1] वहीं भण्डारकर[2] तथा कैनेडी[3] उन्हें ईसा की छठीं शताब्दी का ही मानते हैं। अधिकांश विद्वान कालिदास को गुप्तवंशीय राजाओं का समकालीन मानकर उनके ग्रन्थों का रचनाकाल तीसरी अथवा चौथी शताब्दी ईसवी मानते हैं। वस्तुतः उक्त सभी मत असंगत एवं अकृष्ट प्रतीत होते हैं। भारतीय परम्परा एवं जनश्रुति कालिदास को उज्जैनी के विक्रमादित्य का राजकवि मानती है। कालिदास की कृतियाँ भी इस बात की पुष्टि करती हैं। उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् चलाया था जो ईसवी सन् से 57 वर्ष पुराना है। कालिदास के ग्रन्थों का रचना काल भी ईसा पूर्व प्रथम शती है। श्री करिन्दीकर भी कालिदास का समय 57 वर्ष ईसा पूर्व ही मानते हैं।[4]

रघुवंश महाकाव्य में रामचरित- कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में इक्ष्वाकुवंश के उन्तीस राजाओं का वर्णन किया है। दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक इन राजाओं में अग्निवर्ण के अतिरिक्त शेष सभी में पैतृक उच्च चारित्रिक गुण विद्यमान थे। रघुवंश के राजाओं के इन गुणों का सारांशभूत वर्णन कवि ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही अपनी लघुता तथा ग्रन्थ की महत्ता का वर्णन करते हुए किया है।[5]

कवि ने अपने उन्नीस सर्ग वाले इस उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ का एक अच्छा भाग श्री रामचरित को ही समर्पित किया है। राम का संक्षिप्त जीवन-चरित दशम सर्ग से लेकर पन्द्रहवें सर्ग तक कुल छः सर्गों में कवि की अपनी शैली में वर्णित है। इन्हीं छः सर्गों में यथास्थान भरत का भी उल्लेख किया गया है। भरत की जितनी भी झाँकी कवि प्रस्तुत कर सका है, वह अतीव सुन्दर है। राम के चरित्र ने निश्चय ही काव्य की महत्ता को बढ़ा दिया है। भरत मिलाप छन्द तो कवि की अलौकिक काव्य प्रतिभा के अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं।

1- दे0 क्रोनिकल वर्क्स ऑफ कालिदास, पेरिस /
सा0 पी0 पण्डित इन्ट्रोडक्शन टू रघुवंश पृ0 27-28 ।
2- भण्डारकर- इण्डियन रिव्यू । । 1902/405 ।
3- कैनेडी-प्रीफेस टू बृहत्संहिता/20 ।
4- दे0 रघुवंश ऑफ कालिदास- टीकाकार एम0एस0 करिन्दीकर भूमिका का पृष्ठ 18 ।
5- रघुवंशम् प्रथम सर्ग/5-9 ।।

रघुवंश महाकाव्य में भरत- रघुवंश महाकाव्य में भरत के दर्शन सर्व प्रथम दशम सर्ग में उनके जन्म के समय होते हैं। कौसल्या ने राम को जन्म दिया और " कैकेयी को भरत नामक शीलयुक्त पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने माता को वैसे ही सुशोभित किया जैसे लक्ष्मी को विनय सुशोभित करती है[1]।" भरत के वंशानुक्रम से सुसंस्कृत स्वभाव में नम्रता जन्म से ही परिलक्षित होती है। महान् व्यक्तित्व का आभूषण ही नम्रता है। कालिदास ने इस पारिवारिक गुण को विशेष महत्व भी दिया है। चारों भाइयों के स्वभाव का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि " उन । रामभरतादि। भाइयों की स्वाभाविक नम्रता शिक्षा से हविष्य से अग्नि के सहज तेज के समान बढ़ गई[2]।" वस्तुतः रघुवंश जैसे गुण सम्पन्न उच्च कुल में जन्म लेकर भरत भी वैसे ही गुण सम्पन्न हुए। जिस प्रकार रघु से उनके पुत्र अज ने दीपक से जलाए गए दीपक के समान ही प्रकाश प्राप्त किया था उसी प्रकार भरत में भी वंश परम्परा से प्राप्त सभी गुण और भी विकसित रूप में विद्यमान थे।

चारों भाइयों में बाल्यकाल से ही अत्युत्कृष्ट पारस्परिक प्रेम था। " परस्पर विरोधरहित उन चारों ने रघु के उस निष्पापवंश को उसी प्रकार सुशोभित किया जिस प्रकार सुन्दर नन्दन वन को परस्पर अविरोधी ऋतुएँ प्रकाशित कर देती हैं[3]।" जिस प्रकार वाल्मीकि ने राम और लक्ष्मण तथा भरत और शत्रुघ्न का अविमुक्त साहचर्य दिखाया है वैसे ही कालिदास ने भी उसको स्वीकार किया है, " उन चारों भाइयों में दो दो कीरकता अथवा साहचर्य कभी विच्छिन्न नहीं हुआ। जैसे वायु और अग्नि तथा चन्द्रमा और समुद्र का[4]।" परवर्ती संस्कृत तथा हिन्दी काव्यों में चारों दशरथ कुमारों की यही भ्रातृ-भक्ति अत्यधिक समुज्ज्वल एवं पवित्र रूप में दर्शायी गयी है। उनका यह पारस्परिक प्रेम इतना पवित्र आदर्श स्वरूप था

1- कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान्। जनयित्रीमलंचक्रे यः प्रश्रय इव श्रियम्॥
रघुवंश महाकाव्यम् दशम सर्ग।

2- स्वाभाविकं विनीतत्वं तेषां विनय कर्मणा। मुमुचुर्न सहजं तेजो हविषेव हविर्भुजाम्॥
रघुवंशमहाकाव्यम् 10।

3- परस्पराविरुद्धास्ते तद्वंशस्यार्थ कुलम्। अन्वमुद्यन्तयाभातुर्दैवारण्यमिवर्तवः॥
रघुवंशमहाकाव्यम् 10।

4- तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं विभिदे न कदाचन। यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः॥
रघुवंशमहाकाव्यम् 10।

कि इसकी समता किसी भी काल में कोई भी भाइयों का युग्म या समूह नहीं पा सका। यहाँ तक कि महाभारत के प्रसिद्ध पंच-पाण्डव भी उस भ्रातृ-प्रेम की समता नहीं कर सकते।

इन चारों भाइयों के स्वाभाविक गुणों एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रजा अत्यन्त प्रसन्न थी। इन्हें स्वामी रूप में पाकर प्रजा को अनिर्वचनीय सुख और शान्ति का अनुभव होता था। " प्रजाओं के स्वामी उन चारों राजकुमारों ने प्रभाव तथा विनय से ग्रीष्मकाल के अन्त में श्यामवर्णों सेतयुक्त दिवसों के समान प्रजाओं के मन को हरण कर लिया। यह अष्टादशन्य आकर्षक दशरथ कुमारों के परम मानवीय चारित्रिक गुणों का परिणाम मात्र था।

कालिदास ने रघुवंश में रामकथा संक्षेप में ही वर्णित की है क्योंकि रघुवंश के राजाओं से सम्बन्धित विशाल कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में इससे अधिक वर्णन सम्भव नहीं था। महाराज दशरथ की रामवियोगजन्य मृत्यु के पश्चात् जैसे ही भरत अयोध्या आए, तुरन्त राम से मिलने वन को चले गए। सगे सम्बन्धियों, सेना तथा राज्याभिषेक की सामग्री भी वे साथ में लेकर चले। उन्हें आशा थी कि राम उनकी याचना पर कदाचित् अयोध्या लौट आयें। उन्होंने वन में श्री राम को राजलक्ष्मी अर्पित की, परन्तु राम ने उसे अस्वीकार कर दिया। राम से पहिले राजलक्ष्मी प्राप्त हो जाने के कारण भरत ने अपने आपको "परिवेत्ता"[2] समझा। दृढ़प्रतिज्ञ राम को पिता की आज्ञापालन के प्रति अविचल देखकर भरत ने उन्हें राज्य की अधिष्ठात्री देवता बनाने के लिए उनसे उनकी खड़ाऊँ माँगी जो भरत के दुलार एवं आग्रह को रखने के लिए राम ने उनको दे दीं। राम द्वारा इस प्रकार लौटा दिए गए भरत ने अयोध्या में प्रवेश नहीं किया, अपितु नगर के बाहर नन्दिग्राम में निवास करते हुए धरोहर के समान राम के राज्य की रक्षा करते रहे। बड़े भाई राम में अटल भक्ति वाले तथा राज्य की तृष्णा से विमुख भरत मानों माता के पास

1- ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामा ग्रा दिवसा इव ॥

रघुवंशमहाकाव्यम् 10 ।

2- बड़े भाई के अविवाहित रहते अपना विवाह करने वाले छोटे भाई को "परिवेत्ता" कहते हैं। यह विवाह शास्त्र विरुद्ध है।

का प्रायश्चित्त करने लगे[1] ।

इसके अनन्तर सम्पूर्ण चतुर्दश सर्ग में कवि ने केवल राम के वनचरितों का ही वर्णन किया है । तेरहवें सर्ग में कवि ने राम के पुष्पक विमान द्वारा लंका से अयोध्या प्रत्यावर्तन का वर्णन किया है । यह सर्ग प्रकृति-वर्णन के लिए प्रसिद्ध है । इस सर्ग के अन्त के श्लोकों में भरत की प्रशंसा कवि ने सरसता एवं शालीनता के साथ की है । राम के मुख से कवि कहता है, " यह जो कपिश्यामल पृथ्वी की धूलि के कारण सन्ध्या काल सा प्रतीत हो रहा है, इससे ज्ञात होता है कि हनुमान् से मेरे आने का समाचार सुनकर सेना सहित भरत मेरे स्वागत के लिए आए हैं । यह सज्जन भरत पिता की आज्ञापालनस्वरूप प्रतिज्ञा को पूर्ण किए हुए मेरे लिए । स्वयं भोग न करने से। निर्दोष राजलक्ष्मी को उसी प्रकार समर्पित करेंगे जैसे दुष्ट मैं खर आदि राक्षसों को मारकर लौटे हुए मेरे लिए सज्जन

1- अथानाथाः प्रकृतयो मातृबन्धुविवासिनम् ।
भोगैरानाययामासुर्भरतं स्वाभिलाषुभिः ।।
श्रुत्वा तथाविधं मृत्युं कैकेयीतनयः पितुः ।
मातुर्न केवलं स्वस्याः श्रियो व्यावर्त्तयद्मुखः ।।
ततोन्यवचान्नगाद्वार्यं दर्शितानाकुलालयैः ।
तस्य पश्यन्कुलीभिर्नेष्टकुर्वाणिद्भुमान् ।।

चित्रकूट वनस्थं च कथितस्यर्गतिर्गुरोः ।
लक्ष्मया निमन्त्रयांचक्रे तमुच्चिष्टसम्पदा ।।

स हि प्रथमये तस्मिन्नकृत श्री परिग्रहे ।
परिवेत्तारमात्मानं मेने स्वीकरणाद्भुवः ।।

तमग्रजमयाकर्तुं निर्दोषास्त्वभिः पितुः ।
ययाचे पादुके पश्चात् कौ राज्याधिदेवते ।।

स चित्रकूटस्तवेत्युक्त्वा भ्रातरं नैवाभिषेकपुरीम् ।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक् ।।

दुर्दभवितरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः ।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत् ।।

रघुवंशमहाकाव्यम् /12/12-19 ।

लक्ष्मण ने निर्दोष एवं सुरक्षित तुम को सौंपा था[1]।" श्री राम पुनः उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं, " जो भरत पिता के द्वारा दी गई तथा अंक में आई हुई लक्ष्मी की मेरी अपेक्षा के कारण अर्थात् मुझ में भक्ति होने के कारण युवा होकर भी भोग न करते हुए इतने वर्षों उस राज्यश्री के साथ मानों असिधारव्रत का अभ्यास कर रहे हैं[2]।"

भरत मिलन के पश्चात् कवि ने राम के राज्याभिषेक तथा लव कुश के जन्मादि का वर्णन किया है। एक स्थल पर भरत के गन्धर्वों के साथ युद्ध का वर्णन भी किया गया है जिससे भरत की वीरता तथा युद्ध-कौशल का ज्ञान होता है।

<u>भरत का चित्रण-</u> जैसा उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है भरत के चरित्र में वे सभी उदात्त गुण उपलब्ध हैं रघुवंश जिनके लिए प्रसिद्ध रहा है। बाल्यकाल से ही राम के प्रति भक्ति एवं अनुराग उनके आचरण में स्पष्टतः लक्षित है। जहाँ वालि तथा रावण जैसे दुष्ट भाई हैं, जहाँ सुग्रीव तथा विभीषण जैसे अपने ही भाई का अहित करने वाले उपस्थित हों वहाँ भरत का भ्रातृ-प्रेम का उदाहरण एक अत्यन्त उज्ज्वल एवं महान् आदर्श प्रस्तुत करता है।

भरत का त्याग भी महान् एवं अनुकरणीय है। जिस राज्य का अर्धांश पाने के लिए लोग घोर कुकृत्य करने से नहीं चूकते हैं उस विशाल राज्य को भरत ने तृणवत् त्याग दिया। प्राप्त हुई राजलक्ष्मी को त्यागना कितना कठिन है, यह अज राम द्वारा कहे गए श्लोक से स्पष्ट ही है। इस त्याग के लिए भरत ने चौदह वर्षों तक नगर के बाहर रहकर तपस्या की। इससे बढ़कर त्याग का और कौनसा कीर्तिमान हो सकता है। राज्य के लिए तो उसी युग के दो भाइयों ने अपने अपने भाइयों का वध करा दिया था, परन्तु भरत ने प्राप्त की हुई राजलक्ष्मी का भी स्पर्श नहीं किया। भरत की श्रेष्ठता वर्णनातीत है। वे साधुता का आदर्श हैं। असिधारव्रत से तुलना कर कवि ने भरत के त्याग एवं तपश्चर्या की कठिन महानता को कितना स्पष्ट कर दिया है।

1- चिरवत्सलन्यासविधिं पुरस्तादुपतो रजः पार्थिवमुज्जिहीते।
अथो हनूमत्कपिसैन्यवृत्तिः प्रत्युद्गतो मां भरतः सतीर्थ्यः ॥
अष्टादशैवं परिलङ्घ्य राम प्रत्यर्पयिष्यत्यनघां न साधुः।
हत्वा निवृत्ताय मृधे जटादीन्नैरक्षितां त्यागिव लक्ष्मणो मे।
रघुवंश-महाकाव्यम् /13/64-65

2- पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाऽप्यङ्कगतामभोक्ता।
द्वादश वर्षाणि तपः सतीर्थ्यमभ्यस्यतीव प्रतमासिधारम् ॥
रघुवंशमहाकाव्यम् /13/67 ।

भरत की श्रेष्ठता एवं पवित्रता की तुलना संसार में किसी से नहीं की जा सकती है क्योंकि भरत अपने अलौकिक त्याग एवं पवित्र चरित्र के कारण अतुलनीय एवं अनुपम हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सीता अपने श्रेष्ठतम पातिव्रत्य के कारण। अतः कवि ने प्रसंगवश में ही उस अनुपम त्यागी भरत की पावनता की तुलना पतिव्रता शिरोमणि सीता से की है:-

* तस्मिन्परयुगशिखरं तुलितं तद्यन्दूरं तुलां यदभजोर्जितकार्मुकायाः ।
ज्येष्ठानुवृत्तिनियमे च शिरोऽस्य तावीरन्योन्यमाकलयतुर्भुवनैकवीरौ ।।

। रघुवंशमहाकाव्यम् 13/73 ।

जैसा ऊपर कहा गया है कालिदास ने भरत की वीरता का वर्णन भी किया है, परन्तु वह गौण रूप से ही है। भरत का गन्धर्वों के साथ युद्ध वर्णन कवि ने किया है। यद्यपि इस प्रसंग में मात्र एक श्लोक लिखा गया है परन्तु उसी भरत की वीरता तथा रण-कौशल प्रत्यक्ष हो जाता है।

* वहाँ, गन्धर्व देश में भरत ने सब गन्धर्वों को जीत कर, उनसे शस्त्रों का ग्रहण करना सुना कर केवल वीणा को ही ग्रहण कराया।[1] अर्थात् भरत ने पराजित गन्धर्वों में फिर कभी शस्त्र उठाने का साहस न किया।

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में भरत के स्वरूप का चित्रण अति संक्षेप में किया है, परन्तु उनका यह संक्षिप्त वर्णन भी सारपूर्ण एवं सुन्दर है तथा उसमें भरत के चरित्र के समीचीन गुण उद्घाटित हुए हैं। भरत का चरित्र वस्तुतः हृदय को इतना प्रभावित करता है कि वाणी के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति कठिन हो जाती है। विषयवस्तु की विशालता को दृष्टि में रखते हुए भरत का अधिक वर्णन सम्भवतः विषयान्तर बन जाता है इसलिए कवि ने विराम भी लिया है, यह विषयानुकूल है, सुन्दर, सशक्त एवं प्रभावपूर्ण है।

जानकी हरणम्

इसके कवि कुमारदास हैं। रचना काल अनिश्चित है। यह बीस सर्गों की उत्कृष्ट काव्य रचना है। कथानक वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। कथा प्रारम्भ दशरथ के विवाहों से हुआ है। द्वितीय सर्ग में रावण से पीड़ित देवताओं को विष्णु ने अवतार लेकर रावण का वध करने का आश्वासन दिया है। चतुर्थ सर्ग में पुत्रेष्टियज्ञ, रामादि का जन्म, बालक्रीड़ा, धनुर्वेद शिक्षा आदि हैं। भरत का चित्रण चारों भाइयों में से एक के रूप में है।

1- भरतस्तान गन्धर्वान्युधि निर्जित्य केवलम् । आतोद्यं ग्राहयामास तमस्याजह्रुरायुधम् ।।
। रघुवंशमहाकाव्यम् ।

फिर अष्टम सर्ग तक विश्वामित्र यज्ञ-रक्षा तथा सीता राम के विवाहादि का वर्णन है। नवम सर्ग में भरतादि के विवाह का उल्लेख, परशुराम प्रसंग तथा भरत के ननिहाल जाने का संकेत है। दशम सर्ग में रामवनगमन की कथा है। इसी सर्ग में भरत के चित्रकूट आगमन का भी उल्लेख कर दिया गया है। राम ने समझा-बुझाकर अपनी पादुकाएँ देकर भरत को लौटा दिया। दशम सर्ग में ही सीता हरण तक की समस्त कथा कह दी गई है। एकादश से उन्नीसवें सर्ग तक राम के अनेक चरितों का, रावण-वध तथा सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन है। बीसवें सर्ग में राम का अयोध्या लौटना, भरतादि से मिलना, राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन किया गया है। अन्त में कवि ने अपना कुल परिचय भी तीन श्लोकों में दिया है।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि भरत चरित के दृष्टिकोण से "जानकी हरणम्" महत्वपूर्ण नहीं है। इसके चतुर्थ, नवम, दशम तथा बीसवें सर्ग में भरत का यत्किंचित् उल्लेख हुआ है, जिसमें कथा का निर्वाह ही महत्वपूर्ण है चरितांकन नहीं। फिर उपर्युक्त सर्गों के भरत विषयक उल्लेखों से भरत का जो स्वरूप उभरता है वह वाल्मीकि रामायण से भिन्न नहीं है।

संस्कृत नाटकों में भरत

संस्कृत काव्यों एवं नाटकों का एक बड़ा भाग राम कथा पर आधारित है। राम का चरित्र अनुकरणीय होने के कारण कवियों ने रामचरित अंकन के द्वारा अपनी लेखनी को कृतकृत्य किया है। जिससे लोकरंजन तथा लोक शिक्षा दोनों एक साथ चल सकें। परिणामतः राम के चरित्र को कथावस्तु के रूप में लेकर संस्कृत साहित्य में अनेक नाटकों की रचना हुई है जैसे- प्रतिमा नाटक, अभिषेक, उत्तररामचरित, महावीरचरित, उदात्त राघव, कुन्दमाला, अनर्घराघव, बालरामायण, महानाटक अथवा हनुमन्नाटक, आश्चर्यचूडामणि, प्रसन्नराघव, उल्लासराघव आदि। राम के लोकरंजक एवं आदर्श चरित्र के अभिनय की प्रथा बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। इसी के परिणामस्वरूप उपर्युक्त तथा वर्तमान समय में अनुपलब्ध अनेक नाटकों की रचना हुई। हरिवंश के निम्नलिखित श्लोक से इस बात की पुष्टि होती है:-

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।
अन्य किन्नोरमेवस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ।।

जिस प्रकार धार्मिक साहित्य एवं संस्कृत ललित साहित्य में काव्यों में राम को नायक के रूप में स्वीकार कर भरत को गौण स्थान ही मिला है उसी प्रकार संस्कृत नाटकों में भी भरत की भूमिका राम के चरित्र विकास के सहायक के रूप में ही प्रस्तुत की गई है। इन समस्त नाटकों में से केवल प्रतिमा नाटक में भरत को अधिक महत्व दिया गया है तथा

ये तीसरे , चौथे, छठे तथा सातवें(अंतिम) अंकों में इस नाटक के नायक प्रतीत होते हैं ।

प्रतिमा नाटक

श्री रामकथा सम्बन्धी नाटकों में प्रतिमा नाटक प्राचीनतम समझा जाता है । यह भास रचित है । महाकवि भास आलंकारिक भावव्यंजना, सरलता तथा मधुरता आदि के प्रतीक हैं । उनकी उपमायें भी बहुत सुन्दर हैं ।

रचना-काल- महाकवि भास का उदय कालिदास से पूर्व हो चुका था । कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में भास का उल्लेख आदरपूर्वक किया है । परन्तु दुःख का विषय तो यह है कि कालिदास के समय के विषय में ही विद्वान् एकमत नहीं हैं अतः उनके पूर्ववर्ती भास के समय के विषय में भी अनेक मत हैं । श्री गणपति शास्त्री तथा श्री हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार इनका समय 600 ई0 पू0 से 400 ई0 पू0 के मध्य है । डा0 काशी प्रसाद जायसवाल 100 ई0 पू0 भास का समय निर्धारित करते हैं । इसके अतिरिक्त प्रो0 देवधर आदि कुछ विद्वान भास के नाटकों का रचनाकाल ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही मानते हैं । जो भी हो इतना तो सर्व सम्मत से स्वीकार्य है कि भास के नाटकों का सृजन कालिदास से पर्याप्त समय पूर्व हो चुका था ।

प्रतिमा नाटक की रामकथा- प्रतिमा नाटक का प्रारम्भ अयोध्याकाण्ड की कथा से होता है । महाराज दशरथ राम के राज्याभिषेक का निश्चय करते हैं तथा समस्त तैयारियाँ होने लगती हैं । जनता को इस समाचार से अपार हर्ष होता है । सीता हास-परिहास में एक पेटी द्वारा लाए गए वल्कल पहिन लेती है तथा उसी समय राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर अपने आभूषण दान कर देती हैं । अकस्मात् अभिषेक के मंगल वाद्य रुक जाते हैं तथा अभिषेक रुक जाने से प्रसन्न राम सीता के समीप आते हैं । इसी समय इस घटना से क्षुब्ध लक्ष्मण भी प्रवेश करते हैं । तत्पश्चात् तीनों ही वनवास के लिए तैयार हो जाते हैं ।

द्वितीय अंक में रामवनगमन तथा दशरथ के शोक संताप, सुमन्त्र के राम को वन पहुँचा कर लौटने की कथा तथा दशरथ की मूर्च्छा आदि का वर्णन है ।

तृतीय अंक में महाराज दशरथ की अत्यन्तता सुनकर भरत का मामा के घर से प्रत्यागमन दिखाया गया है । नगर में प्रवेश से पूर्व ये रघुवंशी राजाओं के प्रतिमागृह में रुक जाते हैं । वहीं पर उन्हें दशरथ की मृत्यु तथा राम के वनगमन का समाचार सुनने को मिलता है, जिसे सुनकर वह अत्यन्त दुःखित होकर मूर्च्छित हो जाते हैं । कैकेयी के प्रत्याख्यान पर कैकेयी की भर्त्सना करते हैं तथा स्वयं वन जाने का निश्चय करते हैं ।

चतुर्थ अंक में भरत चित्रकूट पहुँचते हैं। भरत का राम से स्नेहमय मिलन होता है तथा भरत राम से अयोध्या लौटने के लिए बहुत अनुनय-विनय करते हैं। राम द्वारा किसी भी प्रकार लौटना स्वीकार न करने पर भरत राम की पादुकाएँ लेकर लौट आते हैं परन्तु राम से प्रतिज्ञा करा लेते हैं कि वनवास की अवधि समाप्त हो जाने पर वह अयोध्या आकर राज्यभार ग्रहण करेंगे।

पंचम अंक में सीता हरण तथा जटायु-वध की कथा का वर्णन किया गया है।

छठें अंक में सुमन्त्र जनस्थान से लौटकर भरत से मिलते हैं। उनके द्वारा सीताहरण का वृत्तान्त सुनकर भरत क्रोध तथा शोक से विह्वल हो उठते हैं।

सप्तम अंक में विजयी राम जनस्थान को लौटते हैं। भरत भी सपरिवार वहाँ पहुँच जाते हैं तथा वहाँ पर ही राम का राज्याभिषेक किया जाता है। तत्पश्चात् पुष्पकारूढ़ राम सम्पूर्ण परिवार एवं परिजनों सहित अयोध्या को लौट आते हैं।

<u>प्रतिमा नाटक में भरत का चरित्र-</u> प्रतिमा नाटक में तीसरे, चौथे, छठें तथा सातवें अंकों में भरत प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण पात्र के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि नाटक के नायक तो राम ही हैं परन्तु भरत का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि ध्यान से देखा जाये तो कवि ने राम से भी बढ़ कर भरत के चरित्र को उभारने का प्रयत्न किया है। प्रतिमा नाटक के भरत दया, करुणा, प्रेम-स्नेह, कर्तव्य परायणता, शील-सौजन्य तथा विनय की प्रतिमूर्ति हैं। वे विवेकी तथा बुद्धिमान हैं।

प्रतिमा नाटक में भरत को लक्ष्मण से छोटा बताया गया है। चौथे अंक में परस्पर मिलन के समय भरत लक्ष्मण को अभिवादन करते हैं तथा लक्ष्मण उन्हें आशीर्वाद देते हैं[1]। वे रूप तथा स्वर में महाराज दशरथ तथा राम के समान ही सुन्दर हैं। राम स्वयं उनका स्वर सुनकर कह उठते हैं कि यह मेरे पिता के समान गम्भीर स्वर किसका है, जो मेरे हृदय में भाई की शंका उत्पन्न करता है[2]।

1- सुमन्त्रः - अये कुमारो लक्ष्मणः।
भरतः - एष गुरुपादु, आर्य। अभिवादये।
लक्ष्मणः - देहिरहि, आयुष्मान् भव।
प्रतिमा नाटकम्, चतुर्थो ङ्कः, पृ0 59।

2- कस्यासौ सदृशारः स्वरः पितुर्मे
गाम्भीर्यादु परिभवतीति मेघनादम्।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य कम्पशंकां
सस्नेहः कृतिमयमिश्रितः प्रविष्टः॥

प्रतिमा नाटिका/4/5 ॥ पृष्ठ 58।

भरत का राम से इतना रूप सादृश्य है कि स्वयं लक्ष्मण कहते हैं, " आर्य ! यह आपके प्रिय तथा भ्रातृ स्नेही भरत आए हैं, जिनमें आपका रूप दर्पण के समान प्रतिबिम्बित है ।"[1]

भरत न केवल सुन्दर हैं परन्तु राम के समान शीलवान् भी हैं । वे अल्पभाषी एवं मृदुभाषी हैं । वे पिता की रुग्णता का समाचार सुनकर आ रहे थे । मार्ग में सूत ने बताया कि आपके पिता को महान् हृदय परिताप है, उनकी व्याधि के उपचार में वैद्य भी कुशल नहीं हैं, बिना भोजन किए भूमि पर लेटे हैं, ऐसे समय में भाग्य की ही आज्ञा है । उत्तर में भरत केवल इतना ही कहते हैं, " मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाइये ।"[2] कैकेयी के द्वारा घोर अनर्थ किए जाने पर भी भरत अपने शीलाचरण के अनुरूप मर्यादा के भीतर ही उसकी भर्त्सना करते हैं । वे उससे मात्र इतना ही कहते हैं, " आह ! पापिनि ! तुम मेरी माता कौसल्या और सुमित्रा के बीच में उसी प्रकार शोभा नहीं पाती हो जिस प्रकार गंगा और यमुना के बीच प्रकिष्ट कोई औरी नदी ।"[3] यह पूछने पर कि उसने ऐसा क्या कार्य किया है जिससे वह रोती हीना हो गई है, भरत कहते हैं, " क्या किया यह पूछती हो ? राज्यलिप्सावाली तुमने राजा के प्राणों की भी परवाह नहीं की । "तुम वन को चले जाओ" ऐसा कह कर बड़े पुत्र को वन भेज दिया । जनराजपुत्री द्वारा वल्कल-वस्त्र धारण करने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं गया विधाता ने उसे कुछ से भी कठोर बनाया है ।"[4] मंथरा को डाँटने-फटकारने या मारने की भी कोई सूचना कवि ने अपने नाटक में नहीं दी है । भरत का

1- अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः । तं पश्यन्ती मम ते रूपमादर्श इव लिख्यते ॥7॥
प्रतिमा नाटक 4/7 ॥ । पृष्ठ 61 ।

2- पितुर्मे को व्याधिः ? हृदयपरितापः क्व महान् । किमाहुर्वैद्याः ? न खलु भिषजः तम कुशलाः ।
किमाहारं भुङ्क्ते क्षणमपि ? भूमौ निरशनः ।
किमाज्ञा स्यात् ? देवस्य, स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ।
प्रतिमा नाटक 3,1/1पृष्ठ 41।

3- मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे । गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥8॥
प्रतिमा नाटक /3/8 । । पृष्ठ 51 ।

4- भरतः- किं कृतमिति वदसि ?
त्वया राज्यैषिणा नृपतिरसुभिर्वियोजितः । तातं ज्येष्ठं च त्वं प्रव वनमिति प्रेषितवती ॥
न शीर्णं यद्दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीम् । अहो धाता तुष्टं भवति हृदयं कर्कशमिदम् ॥9॥
प्रतिमा नाटक /3/9 ॥

आचरण तो सम्पूर्ण नाटक में ही शील एवं मर्यादा से परिपूर्ण है ।

भरत की श्रीशिक्षा अथवा कर्तव्य-आज्ञा भी भरत ने भली प्रकार प्रदर्शित की है । " स्त्री हन्तुम्" शब्द सुनते ही उनका मन शंका से भर उठता है तथा वे कहते हैं, " यदि यह नीच स्त्री मुझ को त्यागी करता है तब तो मुझे अग्नि से शरीर की शुद्धि करनी ही होगी ।[1] वस्तुतः श्री-आकार, कुल-मर्यादा तथा आभिजात्य सुलभ सहृदयता उनके व्यवहार में सम्पूर्ण नाटक में परिलक्षित होती है । पिता और भ्राता के बिना उनको अयोध्या जनशून्य वन के समान प्रतीत होती है[2] । अयोध्या में प्रवेश करने के पूर्व ही वे अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेते हैं । वे जानते हैं कि वंश परम्परा से राज्य राम का है अतः उन्हें स्वीकार्य नहीं है । सुमन्त्र द्वारा राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना के उत्तर में वे स्पष्ट रूप से कहते हैं -" मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ लक्ष्मणाग्रज राम हैं । उनके बिना अयोध्या अयोध्या नहीं है । अयोध्या तो वहीं है जहाँ राम निवास करते हैं[3] ।"

रामायण की भाँति ही प्रतिमा नाटक के भरत भी राम के भक्त तथा भ्रातृवत्सल हैं, इसलिए वे राम को जगतीतल का दूसरा चन्द्रमा मानते हैं[4] । राम अपने उत्तम त्यागमय शीलाचरण के कारण भरत के लिए देवाभिदेव हैं । भरत स्पष्ट शब्दों में कहते हैं, " मेरी माता का प्रिय करने के लिए जिसने राजलक्ष्मी का भी विसर्जन कर दिया, उन राम को मैं देखना चाहता हूँ । वे ही मेरे परमाराध्य देवता हैं[5] ।" भाई को परमाराध्य इष्ट देव के रूप में मानने वाले भरत से बढ़कर भ्रातृ-प्रेम का आदर्श और कौन प्रस्तुत कर सकता है । माता की कुटाई के कारण भले ही वे अपने आपको क्रोध, कृतघ्न, नीच और साहसी आदि कह डालें परन्तु अपनी भ्रातृ-भक्ति पर उन्हें गर्व है[6] ।

1- भरतः- कृतार्थमेव तत्कार्यं यत् स्त्री-हन्तुः त्यक्तः । कुतः पितृनिर्मितं तद् नष्टं कर्म कृतवतः त्यजति यदि मां भार्या कुलकीटम् । त्यक्ष्ये च भवतीं सत्यं तत्र देहं विशोधयन्
प्रतिमा नाटक/3/5 ॥

2- अयोध्यामरण्यीभूतां पिता-माता च वर्जिताम् ।
विपन्नतातां मुक्तपाणिं श्रीहतेव नदीमिव ॥6॥ प्रतिमा नाटक/3/6 ॥

3- तत्र यास्यामि यत्रास्ते लक्ष्मणाग्रजः । नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या
यत्र राघवः ॥8॥ प्रतिमा नाटक /3/11 ॥

4- त्वमेव नो नरपतिः सहसानुजाने परोक्षतातविरहेऽनुसरन्मयाः ।
इष्टं प्रयान्त्यनुमतं तव रामभद्रान्मन्ये जगत्यपि ॥1॥
प्रतिमा नाटक/4/1 ॥

5- मम भ्रातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता । तमहं द्रष्टुमिच्छामि देवं परमं मम ॥2॥
प्रतिमा नाटक/4/2 ॥

6- निश्चिन्त कृतघ्नत्व प्राकृतः प्रियतातः । भक्तिमानागतः कर्तुं कुलकीटं
परित्यजति ॥4॥
प्रतिमा नाटक/4/4 ॥

प्रतिमा नाटक में भरत के आने पर लक्ष्मण प्रसन्न होते हैं। शंकालु दृष्टि से उनको वाल्मीकीय रामायण की भाँति बुरा भला नहीं कहते हैं। वहाँ तो स्वयं लक्ष्मण ही उन्हें राम का प्रिय और भ्रातृवत्सल स्वीकार करते हैं[1]। राम भी भरत के अतुलनीय भ्रातृ-स्नेह को जानते हैं, इसीलिए भरत को देखते ही कह उठते हैं " आओ, आओ इक्ष्वाकुकुमार ! स्वस्ति। चिरंजीवी हो। ब्याघ्र के समान विशाल वक्षस्थल को फैलाओ। अपनी दोनों विशाल भुजाओं से मेरा आलिंगन करो। शारदीय पूर्णचन्द्र के समान मुख को ऊँचा करो तथा दुःख से दग्ध मेरे इस शरीर को अपने स्पर्श से शीतल करो[2]।" भाइयों के पारस्परिक प्रेम की इससे सुन्दर झाँकी और कौनसी हो सकती है? भरत राम को राज्य सौंपना चाहते हैं और राम उसे अस्वीकार कर देते हैं। भरत राम के चरणों में वन में ही पड़ा रहना चाहते हैं परन्तु राम उन्हें अपनी सौगन्ध दिला कर राज्य के पालनार्थ अयोध्या भेजते हैं[3]। यहाँ भी अन्य रामायणों की भाँति भरत राम की चरण पादुकाएँ लेकर ही अयोध्या जाते हैं[4]।

जनस्थान से आये हुए लक्ष्मण से सीता हरण का वृत्तान्त सुनकर भरत बहुत दुःखित होते हैं[5], वे सेना तथा माताओं के सहित जनस्थान पहुँच जाते हैं। उधर राम भी रावण का वध करके जनस्थान में मुनि जनों का दर्शन करने विमान से उतरते हैं। यहीं भरत और राम का पुनर्मिलन होता है तथा यहीं उनका राज्याभिषेक हो जाता है।

वस्तुतः भरत के चरित्र का सुन्दरतम अंकन तो कवि ने राम के मुख से करा दिया है। चित्रकूट में सीता के कहने पर कि, " आर्यपुत्र ! भरत बहुत कल्याणपूर्ण बातें कह रहे हैं। आप इस समय क्या सोच रहे हैं?" राम उत्तर देते हैं, " मैं त्याग को जो मेरे पिता के लिए शोक कर रहा हूँ। उन्होंने विशिष्ट गुणों से युक्त अपने इस पुत्र भरत को नहीं देखा। यदि ऐसे गुणनिधि पुत्र को पाकर भी बड़े बड़े महानुभावों पर भाग्य। दुर्भाग्य। का प्रभाव पड़ जाता

1- दे० प्रतिमा नाटक अंक/4/7 ।।

2- वक्षः प्रसारय ब्याघ्रपुटप्रमाणमालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।
उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ।।19।।
प्रतिमा नाटक/4/9 ।।

3- दे० प्रतिमा नाटक अंक 4 श्लोक 13 ।

4- पादौपधृत्तो तव वाहके मे स्तेनाद्यक्ष प्रकाश मद्मनी ।
यावद् भवानेष्यति कीर्तिसिद्धिं तावत् भविष्यन्नयनाधिपेयः ।।14।।
प्रतिमा नाटक/4/14 ।

5- पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे ।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्भवार्यो जीमूतचन्द्र इव के प्रभावियुक्तः ।। 2 ।।
प्रतिमा नाटक/6/2 ।।

है, तो उस भाग्य को धिक्कार है[1]। निश्चय ही भरत के गुण समस्त दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणत करने की क्षमता रखते हैं। रामराज्य इस बात की पुष्टि करता है।

अभिषेक नाटक- भासकृत इस नाटक में सीता हरण से रामराज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन है। प्रतिमा नाटक के भरत के स्वप्नाङ्कन के पश्चात् अभिषेक नाटक के भरत का चित्रण महत्वपूर्ण नहीं है। इसमें अयोध्याकाण्ड की कथा न होने के कारण भरत चरित के विकास का अवकाश ही नहीं है।

उत्तररामचरित- भवभूति का " उत्तररामचरित" अपने करुण रस की उत्तम अभिव्यक्ति के लिए प्रसिद्ध है, परन्तु इसमें भरत के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। अतः भरत के चरित्र के दृष्टिकोण से उत्तररामचरित का उल्लेख करना व्यर्थ ही है।

महानाटक अथवा हनुमन्नाटक

रचना-काल- हनुमन्नाटक की रचना का समय भी संस्कृत के अन्य काव्यों अथवा नाटकों के समान ही ठीक ठीक निश्चित नहीं है। रचनाकार अपने तथा अपने समय के विषय में मौन है। फादर कामिल बुल्के के अनुसार इसकी रचना सम्भवतः ईसा की दसवीं शताब्दी में हुई है[2]। परन्तु मूल रचना के पश्चात् इसमें अनेक क्षेपक जोड़े गए हैं। सम्भवतः यह प्रक्षेप ईसा की चौदहवीं शताब्दी तक जोड़े गए हों तथा नाटक ने अपना वर्तमान स्वरूप १५वीं शताब्दी में प्राप्त किया हो। सम्प्रति महानाटक के दो भिन्न पाठ प्रचलित हैं- दामोदर मिश्र का तथा बंगाल में मधुसूदन का। ए० एस्टोर के अनुसार दामोदर मिश्र का पाठ मूल रचना के अधिक निकट है तथा प्राचीन है[3]। दामोदर मिश्र ने इसे श्री हनुमानकृत ही माना है[4]।

1- तं चिन्तयामि सुपतिं सुरलोकयातं येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके धिग् भो विधेर्दिव कर्म पुरुषोत्तमेषु ॥ 12 ॥
प्रतिमा नाटक /५/12 ।

2- दे० " रामकथा उत्पत्ति और विकास"- फादर कामिल बुल्के पृ०/202/अनु० 234 ।
तथा दे० दि प्राब्लेम ऑफ दि महानाटक- श्री एस० के० डे०
इं० हि० क्वा०, भाग 7/पृ० 537 आदि ।

3- दे० दि एस्टेस्टे वार्सियोन इस महानाटक- ए० एस्टोर जर्नल ओरियन्टल सोसाइटी/1936 ।

4- रचितमनिलपुत्रेणाथ वाल्मीकिनाख्यो निहितममृतबुद्ध्या प्राह्य महानाटकं यत् ॥
सुमतिनृपतिभीतिक्षोभदूरं तदत्रेम प्रथितमयतु विश्वं मिश्रदामोदरेण ॥ 96 ॥
हनुमन्नाटक 14/96 ॥

परिचय- यह चौदह अंकों का विशाल नाटक है । इसके विभिन्न पाठों में अनेक प्रक्षेप हैं । इसकी विशालता एवं घटनाओं को देखते हुए यह रंगमंच पर अभिनय के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है । सम्भवतः इसकी रचना का उद्देश्य अभिनय न रहा हो । हो सकता है कि इसका पाठ यात्राओं में किया जाता हो ।

महानाटक का रामचरित- महानाटक की रामकथा सीता स्वयंवर से प्रारम्भ है तथा रावण-वध तक वर्णित है । मूलकथा वाल्मीकीय रामायण पर ही आधारित है परन्तु उसमें अनेक स्थलों पर घटनाओं में भिन्नता दिखाई गई है । घटनाओं की भिन्नता के उदाहरण इस प्रकार हैं- सीता स्वयंवर में रावण के दूत की उपस्थिति, परशुराम का मार्ग में न मिलकर मिथिला में ही मिलना, एक पूरे अंक में राम और सीता के संभोग-विलास का वर्णन जो मर्यादा का उल्लंघन करता हुआ सा प्रतीत होता है,[1] राम के वनगमन के समय भरत का अयोध्या में ही उपस्थित रहना,[2] अहिल्योद्धार का वृत्तान्त अगस्त्याश्रम से पंचवटी की ओर जाते समय, मायामृग को मारने के लिए राम और लक्ष्मण का एक साथ जाना, वालि-वध के प्रसंग में वालि द्वारा स्वयं राम को ललकारना, सीता द्वारा हनुमान् को तीन अभिज्ञान दिए जाना- चूड़ामणि, काग की कथा तथा राम द्वारा सीता को तिलक देना ; अपने पिता के वध के कारण अंगद का राम से फिर रहना तथा रावण को युद्ध में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से उसे अपमानित करना, रावण द्वारा राम और लक्ष्मण के मायामय सिर दिखाकर सीता को छलने का प्रयास करना, रावण का रामरूप धारण कर अपने दस मायामय सिरों को हाथ में ले सीता को छलने का पुनः प्रयत्न करना, अंगद द्वारा राक्षसी प्रभंजनी का वध, लक्ष्मणमूर्छित में हनुमान् को हटाने के लिए ब्रह्मा द्वारा नारद को भेजने का उल्लेख, चिकित्सा हेतु रावण के वैद्य सुषेण को लंका से लाया जाना, द्रोण-पर्वत को लाते समय भरत द्वारा हनुमान् को बाण मार कर गिराना, रावण का राम से सन्धि प्रस्ताव करना जिसमें वह जामदग्न्य के परशु को लेकर सीता को लौटाना चाहता है तथा राम इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देते हैं ; रावण-वध के पश्चात् अंगद द्वारा अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए समस्त सेना को ललकारना, इसी प्रसंग में आकाशवाणी होना कि वालि कृष्णावतार में राम से अपने वध का बदला लेगा आदि ।

1- देखिए श्री हनुमन्नाटक अंक 2 सम्पूर्ण ।

2- " " अंक 3/5 ।

जैसा और वर्णित कथा-भेदों से स्पष्ट है कि कवि ने पूर्णरूपेण रामायण का अनुसरण न करके स्थान स्थान पर घटनाक्रमों में कुछ हेर फेर कर मौलिकता लाने का प्रयास किया है। इस सम्बन्ध में एकाध स्थल पर " अभिषेक नाटक" का तथा कुछ स्थलों पर " महावीरचरित" का कवि की रचना पर प्रभाव पड़ा है। कुछ प्रसंगों को सर्वथा छोड़ दिया गया है जैसे भरत का चित्रकूट जाकर राम को लौटाने का प्रयास करना। महानाटक में हनुमान् को रुद्रावतार माना गया है।

<u>महानाटक में भरत-चरित-</u> इस नाटक में भरत अत्यन्त गौण पात्र के रूप में पाठक के सम्मुख आते हैं। राम के विवाह के समय भरत आदि भ्राताओं का विवाह नहीं दिखाया गया है। इस नाटक में भरत अपने मामा के घर भी नहीं गए हैं। राम के वन जाते समय वे अयोध्या में ही विद्यमान हैं। उन्हें राम के वन को भेजे जाने से घोर दुःख होता है और वह कह उठते हैं, " हा पिता! हा माता! आह! भले ही मुझे प्रज्वलित अग्नि में दग्ध कर दो, भले ही मुझे वज्र, पर्वत, कृपाण अथवा बाण मार डालें, उनको यह भरत सहन कर लेगा, परन्तु रामचन्द्र के चरणों के वियोग को सहन नहीं कर पायेगा।[1]" राम के वन चले जाने पर राजा दशरथ स्वर्गारोही हुए। इसके पश्चात् " मातस्तातः क्वयातः ?" इत्यादि छन्द अंकित है। यह छन्द " प्रसन्नराघव" में भी है।[2] हनुमन्नाटक में इस छन्द का प्रसंग ठीक नहीं बैठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह इस नाटक में प्रेपक मात्र है। जो भी हो इस श्लोक से भरत का रामवनगमन के प्रति दुःख, शोक एवं क्षोभ प्रकट होता है।

हनुमन्नाटक में भरत के चित्रकूट जाने का प्रसंग नहीं है। नन्दिग्रामवास एवं प्रतीपवास आदि का वर्णन भी नहीं है। भरत के त्याग, दया, प्रेम आदि उदात्त गुणों की ओर संकेत मात्र भी कवि ने नहीं किया है। कवि की दृष्टि केवल राम जानकी तथा हनुमान की ओर ही लगी रही है।

द्रोण पर्वत को लाते समय हनुमान अयोध्या के ऊपर से आकाश मार्ग से जाते हैं। उस समय भरत उन्हें " यह क्या है ? ऐसा कह कर बाण मार कर पृथ्वी पर गिरा देते हैं।

1- तत्र भरतः-
हा तात मातरहह ज्वलिताग्नौ मां कार्यं दहत्वशनिकूपाणबाणः ।।
मन्यन्तु तान्निकटतो भरतः सहेतं हा रामचन्द्रपदयोर्न पुनर्वियोगम् ।। 5 ।।
श्री हनुमन्नाटक/3/5 ।

2- देखिए- प्रसन्नराघव नाटक/5/18 ।

उस समय उनके मुख से राम और लक्ष्मण का नाम सुनकर भरत व्याकुल हो जाते हैं तथा वशिष्ठ जी उसी द्रोणगिरि से औषधि प्राप्त कर हनुमान को जीवित करते हैं।[1] पहिले लक्ष्मण शक्ति के समय राम द्वारा भरत की वीरता का स्मरण किए जाने तथा वायु पुत्र को धिक्कारने के कारण[2] हनुमान ने भरत का पराक्रम देखना चाहा और भरत से आग्रह किया कि वे द्रोण पर्वत को राम तक पहुँचा दें क्योंकि हनुमान थक गए हैं।[3] जब भरत द्रोणगिरि सहित हनुमान को अपने बाण पर बैठा कर राम के समीप भेजना ही चाहते थे तब हनुमान् बाण से उतर गए। उनका गर्व दूर हो गया था। भरत के बाहु पराक्रम का यशोगान करते हुए वे राम के शिविर में शीघ्रता से पहुँच गए।[4] इस प्रकार कवि ने भरत की वीरता का वर्णन करना चाहा है।

चौदहवें अंक में राम के अयोध्या आने पर कवि ने केवल इतना ही कहा है कि "श्री राम सीता तथा वानरेन्द्र के साथ अपनी पुरी अयोध्या में पहुँचे जहाँ भरतादि के द्वारा उनका स्वागत किया गया तथा मुनियों ने उनका राज्याभिषेक किया।"[5] इसके अतिरिक्त भरत के विषय में और कुछ भी नहीं कहा गया है। वस्तुतः भरत के चरित्र के विषय में हनुमन्नाटक का कवि उदासीन रहा है।

प्रसन्नराघव नाटक

रचना-काल- इस नाटक के रचयिता महादेव के पुत्र जयदेव हैं।[6] इसकी रचना का भी समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। सम्भवतः इसकी रचना ईसा की 12वीं अथवा 13 वीं शताब्दी में हुई होगी।

1- दे० हनुमन्नाटक/13/22 से 26 ।

2- हा वत्सलक्ष्मण धिगस्तु समीरसूनुं यस्त्वां रणेऽपि परिहृत्य पराङ्मुखोऽभूत् ।
योपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं यस्त्वामधिज्यधनुरुद्धतसंगितातात् ।। ।। ।।
हनुमन्नाटक/13/11 ।

3- देखिए हनुमन्नाटक/13/27 । 4- देखिए हनुमन्नाटक/13/29-30 ।

5- देखिए हनुमन्नाटक/14/70 ।

6- विख्यातो महादेवमतरतनिष्यन्दमन्थरः कुरुते जी विश्वाधरमधुरभावं जयति ।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवः श्रवणयो- रयातीदातिथ्यं न किमिह
महादेवतनयः ।। 14 ।।

अपि च -
लक्ष्मणस्तेव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिनन्दनः ।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद्भृङ्गायते मनः ।। 15 ।।

प्रसन्न राघव की कथावस्तु- यह सात अंकों का सुन्दर नाटक है जिसे सुगमता से अभिनीत किया जा सकता है। युद्धादि के प्रकरण कथा रूप में सुना दिए गए हैं। कथा वस्तु का प्रारम्भ सीता स्वयंवर से किया गया है। बाण तथा रावण भी इस स्वयंवर में सीताहरण की लालसा से आते हैं। दोनों में विस्तृत बाहु युद्ध होता है और दोनों ही पराजित होकर लौट जाते हैं। द्वितीय अंक में वाग्विलास में राम और सीता का पारस्परिक आकर्षण एवं पूर्वानुराग दिखाया गया है। तृतीय अंक में जनक से परिचय तथा राम द्वारा धनुर्भंग एवं सीता-परिणय दर्शाया गया है। चतुर्थ अंक में परशुराम पहिले तो अपना दूत भेजते हैं बाद में स्वयं धनुषीय स्थली पर आकर राम से विवाद करते हैं तथा अन्त में राम को विष्णु का धनुष देकर चले जाते हैं। पंचम अंक में गंगा, यमुना, सरयू, सागर, शुद्धभद्रा, गोदावरी के मुख से राम वनगमन, दशरथ मरण, कैकेयी-भर्त्सना, मार्ग का वर्णन, वन में राम का निवास, सीताहरण, जटायुमरण तथा वालिवध और सुग्रीव की राज्य प्राप्ति आदि का वर्णन कराया गया है। छठें अंक में राम का विरह वर्णन है। विद्याधर रत्नशेखर विरह-व्याकुल राम को लंका की समस्त घटनाएँ इन्द्रजाल द्वारा दिखाता है। इन घटनाओं में हनुमान् द्वारा लंकादहन तथा सीता-संदेश भी हैं। अन्तिम अर्थात् सप्तम अंक में कुम्भकर्ण तथा मेघनाद के वध का वृत्तान्त रावण नेपथ्य से सुनता है। इसी प्रकार विद्याधर एवं विद्याधरी की वार्ता से विभीषण की रक्षा करते हुए लक्ष्मण के शक्ति से आहत होने तथा हनुमान् द्वारा गन्धमादन पर्वत लाकर महौषधियों की सुगन्धि से लक्ष्मण के जीवित होने का पता चलता है। विद्याधरों का युग्म राम रावण संग्राम का भी वर्णन करता है तथा रावण-वध की सूचना देता है। सीता की अग्नि परीक्षा, हनुमान् का रामागमन का संदेश लेकर अयोध्या को जाना, राम का अयोध्या को पुष्पक द्वारा प्रत्यागमन, भरत द्वारा उनका स्वागत, सुर्य द्वारा आशीर्वाद इत्यादि घटनाओं का वर्णन भी सप्तम अंक में किया गया है।

प्रसन्न राघव नाटक में भरत चरित्र- रामकथा पर आधारित अन्य नाटकों के समान ही प्रसन्नराघव के नायक भी राम हैं तथा उपनायक लक्ष्मण हैं। इस नाटक में भरत का स्थान तो अत्यन्त ही गौण दिखाया गया है। सम्पूर्ण नाटक में उनके द्वारा कथोपकथन मात्र एक श्लोक में कराया गया है, वह भी सरयू के मुख से। सम्पूर्ण नाटक में केवल चार स्थानों पर

1- मातस्तातः क्वयातः सुरवनिमगमं हा कुतः पुत्रशोकात्कोऽसौ पुत्रचतुर्णां त्यजसि कथमिदानीं यत्य जातः किमत्य ।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तयातो कथाने
मत्वाग्रहः कर्ण ते किमिह तवमराधीशता हा हतोऽस्मि ।। 10 ।।

प्रसन्नराघव/5/10 ।

ही भरत का नामोल्लेख हुआ है । इस नाटक में सर्व प्रथम तीसरे अंक में जनकपुरी में जनक से राम लक्ष्मण के परिचय के समय भरत का नामोल्लेख विश्वामित्र द्वारा किया जाता है । उनका आशय है कि राम लक्ष्मण के अतिरिक्त महाराज दशरथ के दो पुत्र और भी हैं जिनके नाम भरत और शत्रुघ्न हैं तथा जो रामलक्ष्मण के प्रतिबिम्ब के समान हैं[1]। पुनः इसी अंक के अन्त में विवाह के प्रसंग में राजा जनक कहते हैं कि " भरत और शत्रुघ्न से माण्डवी और श्रुतकीर्ति के परिणय की अभिलाषा है[2]।

उपर्युक्त के पश्चात् भरत का उल्लेख पंचम अंक में किया गया है । महाराज दशरथ के मरण का कारण बताते हुए सरयू गंगा से कहती है कि कैकेयी ने राजा से कहा था, " तुम्हारे द्वारा जो मुझको दो अभीप्सित वर दिए जाने हैं वे इस प्रकार दीजिए- कौसल्या का पुत्र वन में प्रवेश करे तथा भरत युवराज बने[3]।" वन जाते समय राम लक्ष्मण को समझाते हैं, " अपने शील से शीतल तथा अच्छे कार्यों में रत भरत का मेरे समान ही परिशीलन करो[4]।" पुनः इसी अंक में यमुना द्वारा यह कहने पर कि इसमें (राम वनगमन में) भरत का मत तो नहीं था सरयू भरत और कैकेयी के संवाद को उद्धृत करती है जो निम्नवत् है-

मातस्तातः क्व यातः सुरपति भवनं हा सुतः पुत्रशोकात्को सौऽपुत्रवधूनां
रुधमवरुजाया यस्य जातः किमस्य । प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा
किं तथासौ व भावे मद्वाग्वज्रः पतं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि ।

उक्त वार्तालाप पर प्रसन्न होकर गंगा कहती है कि भरत राम के योग्य अनुज हैं ।

1- विश्वामित्रः- अथ किम् । यौ खलु भरतशत्रुघ्नौ प्रतिबिम्बाविव रामलक्ष्मणयोः ।
प्रसन्नराघवम् तृतीयो अंकः ।

2- जनकः- (सहर्षम्) कथं माण्डवीश्रुतकीर्तिभ्यां भरतशत्रुघ्नावपि परिणयमनुबंधतो भगवान् ।
प्रसन्नराघवम् तृतीयो अंकः ।

3- त्वया देयं यन्मे द्वयमभिहितं देहि सरिदं वनं कौसल्येयो विशतु युवराजो भवतु भरतः ।
प्रसन्नराघवम् /5/4 ।

4- गमय वत्स निमील्य विलोचने
कतिचिदत्र निमेषकलाः समाः ।
अपि च मामिव शीलसुशीलतां
सुभरतं भरतं परिशीलय ॥ 7 ॥
प्रसन्नराघवम् /5/7 ।

सरयू पुनः भरत की प्रशंसा करते हुए कहती है, " राम के वन को चले जाने पर किसी प्रकार भरत ने चेतना प्राप्त कर राजा दशरथ का मृतक संस्कार कर उन्हें इन्द्रलोक प्राप्त कराया। भाई के विछोह के शोक से संतप्त मित्रों से घिरे हुए भरत नन्दिग्राम में निवास करते हुए, समस्त भोगों को त्याग कर, राम के पुनरागमन की प्रतीक्षा करते हुए अयोध्या की रक्षा। राज्य व्यवस्था। कर रहे हैं।[1]" उल्लेखनीय है कि भरत का चित्रकूट जाकर राम को लौटा लाने का प्रयास इस नाटक में नहीं दिखाया गया है। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान गन्धमादन पर्वत को ले आते हैं परन्तु मार्ग में उनका भरत से मिलन आदि भी नहीं दिखाया गया है। राम की रावण पर विजय के पश्चात् राम सीता एवं वानरों के साथ चन्द्र एवं ज्योत्स्ना के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहे हैं, उसी समय सीता लक्ष्मण से पूछती हैं कि हनुमान् कहाँ हैं ? तब लक्ष्मण बताते हैं कि उनको रामचन्द्र ने बन्धु अर्थात् भरत को आनन्दित करने हेतु अयोध्या को भेजा है[2]। राम पुष्पक विमान के द्वारा अयोध्या के निकट पहुँच जाते हैं, तब लक्ष्मण हर्षपूर्वक देखकर कहते हैं, " यह भरत आ रहे हैं और आपके अभिषेक का निश्चय करके यह भगवान् वशिष्ठ आ रहे हैं।[3]" सम्पूर्ण नाटक में भरत का उल्लेख मात्र उक्त स्थलों पर ही किया गया है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत की कवि ने पूर्णरूप से उपेक्षा ही की है। भरत विषयक जो भी उल्लेख है उससे फिर भी इतना आभास तो मिल ही जाता है कि भरत धर्मनिष्ठ, भ्रातृवत्सल, उदार एवं वैराग्यपूर्ण हैं। कवि ने भरत के स्वरूप को प्रकट करने वाले रामकथा के स्थलों को अपने काव्य में समाहित नहीं किया है।

1- रामे प्राप्ते कथमपि भरतश्चेतनां प्राप्य तातं नीत्वा दैवेन्द्रलोकं
मुनिजनवचनादूर्ध्वदेहक्रियाभिः।
भ्रातुः शोकाभितप्तः सकलपरिवृतः पालयामास नन्दिग्रामे तिष्ठन्नयोध्यां
रघुपतिपुनरागामिभोगावीरः ॥ 10 ॥

प्रसन्नराघवम् /5/10 ।

2- लक्ष्मणः - आर्ये ! स एष रामचन्द्रेण बन्धुमानन्दि-तुमयोध्यायां प्रेषितः ।

प्रसन्नराघवम्- सप्तम अंकः ।

3- लक्ष्मणः- अयमसौ भरतानुयातस्त्वदभिषेकेतुं- मतिप्रभावानलब्धतिपतिः ।

प्रसन्नराघवम्- सप्तम अंकः ।

द्वितीय-भाग

मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य में भक्ति

तृतीय अध्याय - तुलसी हिन्दी रामकाव्य में भक्ति

1. सामान्य परिचय, पूर्ववर्ती परम्परा में रामभक्ति, स्वामी रामानन्द की प्रेरणा ।
2. विष्णुदास के काव्य में भक्ति
3. प्रियादास के काव्य में भक्ति
4. ध्रुवदास के काव्य में भक्ति
5. तुलसीपूर्व रसिक सम्प्रदाय में भक्ति

चतुर्थ अध्याय - तुलसी साहित्य में भक्ति का स्वरूप रामचरितमानस, कवितावली, रामाज्ञाप्रश्न, गीतावली, दोहावली, अन्य रामायण तथा विनयपत्रिका में भक्ति ।

पंचम अध्याय - रीतिकालीन रामकाव्य में भक्ति- रामचन्द्रिका, अकबरचरित, अवधविलास नाथदास, रामायणीय गोकुलदास, रामायणीय मधुसूदन, रामविनोद चैनदास, रामकवि, आनन्द रघुनन्द, रामायणीय लुकदास, अवधविलास अर्जुनदास तथा रामरसाल में भक्ति का परिशीलन ।

तृतीय अध्याय

तुलसी पूर्व रामकाव्य में भरत

हिन्दी रामकाव्य का प्रारम्भ- प्रारम्भ में प्रतिपादित किया गया है कि हिन्दी रामकाव्य पर सर्वाधिक प्रभाव संस्कृत रामकाव्य का है। इसीलिए इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय संस्कृत में रामकाव्य के विकास को समर्पित किए गए हैं। केवल हिन्दी का ही नहीं, अपितु समस्त भाषाओं का सम्पूर्ण राम-साहित्य वाल्मीकीय रामायण से प्रभावित दिखाई देता है। वाल्मीकीय रामायण में राम को मानवीय भूमि पर स्थापित किया गया है। मानव होते हुये भी वे समस्त मानवों के लिए आदर्श हैं, वे महापुरुष हैं। श्री प्रेमशंकर के अनुसार " वाल्मीकि राम को मानवीय भूमि पर रखते हुए उन्हें उच्चतम मानव मूल्यों से सम्बद्ध करते दैवत्व का भी संकेत करते हैं। राम के व्यक्तित्व के प्रति रामायण के अन्य पात्रों में जो समर्पण-भाव है, उससे क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि मानवीय चरित्र के साथ राम को केन्द्र में रखकर भक्ति-भावना का भी विकास होता दिखाई देता है[1]।" श्री प्रेमशंकर ने " रामकाव्य और तुलसी" में इसके अनेक उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं[2]।" राम का यही दैवत्व उनमें विष्णु अथवा परब्रह्म के अवतार होने की सम्भावना उत्पन्न करता है। वाल्मीकि रामायण के ही बालकाण्ड में राम के विष्णु का अवतार होने का उल्लेख है। परवर्ती कवि भास, कालिदास तथा भवभूति आदि ने भी पुरुषोत्तम राम के दैवत्व को स्वीकार किया है। ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात् तो रामभक्ति का स्रोत ही फूट पड़ा। अनेक सौ वर्ष कवि भक्ति-पीयूष पान कर राम का गुणगान अपने अपने ढंग से करने लगे। अध्यात्म रामायण, आनन्द-रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव आदि इसी क्रम में लिखे गए ग्रन्थ हैं।

संस्कृत की काव्यपरम्परा के अनुसार हिन्दी में भी कवियों ने दशावतार वर्णन किया। हिन्दी के प्रथम कवि चन्दबरदाई ने रामकथा का वर्णन दशावतार-वर्णन के अन्तर्गत किया है। कवि ने " पृथ्वीराज रासो " के दूसरे प्रस्ताव का शीर्षक " अथ दसम" रखा है। इस प्रस्ताव में दशावतार वर्णन ही है। इसमें छंदों की कुल संख्या 586 है। कवि ने इसके प्रथम छंद में हरिस्तुति तथा दूसरे में दशावतार का नाम स्मरण किया है[3]। दशावतार स्तुति के प्रसंग में

1- रामकाव्य और तुलसी- पृ0 9 । 2- वही ।

3- मछ कछ बाराह पुनभियव, नारसिंह बामन पहसभियव ।
तुव दासरथ हलधर नभियव, बुद्ध कलंक नमो दहनभियव ।।

पृ0 रा0, अध्याय /2 ।

18वें से 30वें छंद तक राम की स्तुति की गई है जिसमें रामचरित ही संक्षेप में दे दिया गया है । स्तुतियों के पश्चात् अवतारों की कथा कही गई है । रामावतार की कथा का वर्णन वाल्मीकीय रामायण के आधार पर है जिसमें वीर रस की प्रधानता है । युद्ध का वर्णन विशद रूप में किया गया है और शेष रामचरित संक्षेप में वर्णित है । ताड़का-वध से लेकर पंचवटी वास तक की कथा मात्र एक छंद में कह दी गई है । 268 वें छंद में शूर्पणखा-प्रसंग, खरदूषण-वध, सीता हरण तथा हनुमान के लंका प्रस्थान की कथा का वर्णन है । तत्पश्चात् सुन्दरकाण्ड की कथा संक्षेप में दी गई है । 274वें से 299 वें छंद तक युद्ध का वीररस पूर्ण वर्णन है । युद्ध में रावण को मारकर, विभीषण को राज्य देकर, सीता और लक्ष्मण सहित राम ने अयोध्या को प्रस्थान किया । रामकथा के अन्तिम छंद में कवि ने रावण-वध के औचित्य को पुष्ट सा किया है ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी " रासो" में यत्र-तत्र राम कथा विषयक निर्देश मिलते हैं । " संयोगिता पूर्वजन्म प्रस्ताव" में भृंगुवोधा एवं सुमन्त ऋषि वार्तालाप में दशावतार वर्णन किया गया है । इसी प्रकार तीसरे प्रस्ताव में किल्ली-कथा प्रसंग में भविष्यवक्ता की अटलता पर प्रकाश डालने हेतु राम की चर्चा की गई है[2] । इस प्रकार के अन्य वर्णन भी " रासो" में उपलब्ध हैं । " पृथ्वीराज रासो" के इन वर्णनों से यह सिद्ध हो जाता है कि " रासो" की रचना के समय रामकथा बहुत लोकप्रिय थी ।

रासो में रामकथा का जो भी वर्णन उपलब्ध है उसमें ओजपूर्ण शैली में युद्ध का वर्णन विशेष रूप से किया गया है । शेष रामचरित अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है । परिणामतः राम के अतिरिक्त राम कथा के अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण " न" के बराबर है । भरत के शान्त, सरल स्वभाव के चित्रण का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है ।

- -

1- तरुनि नाम तारिका । ग्यान हरि परसी रामं ।
वरि सत्ती धानुष्य । किय तब सुम्भह कामं ।
केकिये वर मांगि । राम वन भरथ सुराजं ।
तब दसरथ दुर्ब कीन । भयो सुर काज अकाजं ।
दसरथ पाइ परसे उभय । पंचवटी बैठिय सुटिय ।
कह चंद छंद परबंध करि । लंक कंक चिहि विधि सुरिय । पृ0 रा0/2/267 ।

2- फेरि व्यास कहे सुनि अनगराइ । भवितव्य बात मेटी न जाय ।
रघुनाथ हाथ त्रैलोक देव । ते कनक मृग लागे पछेव ।
मारीच अम्ब आयो धरन्न । हुइ होनहार सीता हरन्न ।

पृ0 रा0/3/3 ।

रासो के पूर्व तथा रासो के पश्चात् भी प्राकृत एवं अपभ्रंश में रचे गए अनेक ग्रंथों में दशावतार वर्णन किया गया है । चौदहवीं शताब्दी में विरचित काव्य "प्राकृत पैंगलम् " के वर्णवृत्त 207 में दशावतार की तथा 211 में श्री राम की स्तुति की गई है[1] । इस प्रकार प्राकृत, अपभ्रंश काव्य तथा हिन्दी के प्रारम्भिक काव्यों में संस्कृत के अनुकरण पर दशावतार वर्णन के माध्यम से रामचरित वर्णन की परम्परा दिखाई देती है ।

हिन्दी रामकाव्य रचना की प्रमुख धारा वस्तुतः भक्ति-साहित्य में प्रस्फुटित हुई है । श्री रामानुजाचार्य के प्रभाव से भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ । रामानुजाचार्य श्री यामुनाचार्य के शिष्य थे । इनका समय सन् 1016 से 1137 ई0 के मध्य माना गया है[2] । रामानुजाचार्य ने "प्रपत्ति" अथवा शरणागति की कल्पना की । उन्होंने जातिवाद का खण्डन कर भक्ति के द्वार सभी के लिए उन्मुक्त किए । ईश्वर को सगुण मानकर उन्होंने साकारोपासना का प्रचार किया । आगे चलकर पन्द्रहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द ने इसी भक्ति परम्परा में रामभक्ति को गति दी । उत्तर-भारत में रामानन्द ही रामभक्ति की आधारशिला हैं । हिन्दी रामकाव्य के उद्गम-स्थल एवं प्रेरणा-स्रोत भी वे ही हैं ।

स्वामी रामानन्द- रामभक्ति के प्रेरक स्वामी रामानन्द का तेजस्वी व्यक्तित्व जाति-भेद न रखकर जनसाधारण में रामभक्ति का संचार करता रहा । श्री बदरी नारायण श्रीवास्तव ने " रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव " में कहा है कि, " मध्ययुग में स्वामी रामानन्द ने " सीताराम" को अपना परमोपास्य बनाकर ऐसी भक्ति-पद्धति का प्रचार किया था, जिसका द्वार मानवमात्र के लिए उन्मुक्त था । उनकी इस प्रगतिशील चिन्ताधारा ने संतों एवं भक्तों का एकदल ला तैयार कर दिया जो सभी प्रकार के धार्मिक विभेदों को दूर कर एक सामान्य जीवन-पथ का निर्माण करने में जुट गया ।"[3]

स्वामी रामानन्द के जीवन के विषय में विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं है । अतः उनके काल-निर्धारण में भी कठिनाई है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वामी रामानन्द का जीवनकाल 15 वीं शताब्दी विक्रमी के चतुर्थ चरण से 16 वीं शताब्दी के तृतीय चरण के बीच

1- पयाह उक्ति सिरे जिणि लिज्जिअ । तेज्जिअ रज्ज बन्धो जो विसु ।
तोडरि सुन्दरि संगहि लग्गिअ । मारु विराध कबंध तहा हसु ।
मारइ मिल्लिअ बालि विहंडिअ । रज्ज सुगीवह दिज्ज अखंडिअ ।
बंधि समुद्द विभीसिअ रावण । से तुह राहव दिज्जउ निव्वह ।
प्राकृत पैंगलम्-वर्णवृत्त 211 ।

2- रामकाव्य और तुलसी- पृ0 11 । । ले0 प्रेमशंकर । ।

3- " रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव ", पृ0 488 ।
। ले0 श्री बदरी नारायण श्रीवास्तव ।

मानते हैं[1]। श्री रामार्चन पद्धति में स्वामी जी का समय लगभग विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में ही निर्धारित होता है। पं० कलेव प्रसाद उपाध्याय के अनुसार भी स्वामी रामानन्द का समय उपर्युक्तवत् ही है[2]। परन्तु परम्परागत साक्ष्य के आधार पर यह निर्विवाद नहीं कहा जा सकता। डा० फर्कुहर, एच०एच० विल्सन तथा मैकालिफ आदि विद्वानों ने स्वामी जी का जीवन-काल पन्द्रहवीं शताब्दी ई० माना है[3], परन्तु उसके कोई दृढ़ आधार नहीं है। सम्प्रदाय में स्वामी रामानन्द की जन्म तिथि विक्रम सम्वत् 1356 माघ कृष्ण सप्तमी, गुरुवार मानी जाती है। अगस्त्य संहिता के भविष्योत्तर खण्ड में यह तिथि अंकित है[4]। डा० बड़थ्वाल एवं[5] डा० रामकुमार वर्मा[6] आदि विद्वान इसी मत से सहमत हैं। डा० ग्रियर्सन ने भी स्वामी जी की जन्म तिथि विक्रम संवत् 1356 ही मानी है[7]। स्वामी जी की पुण्यतिथि अधिकांश विद्वानों ने विक्रम संवत् 1467 मानी है। अगस्त्य संहिता में भी यही पुण्य तिथि दी गई है[8]। इन तिथियों के विषय में सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है।

कुछ विद्वान स्वामी रामानन्द को दाक्षिणात्य मानते हैं, परन्तु उनके पास ऐसा मानने का कोई दृढ़ आधार नहीं है। सम्प्रदाय में स्वामी जी का जन्म स्थान प्रयाग को माना जाता है। अगस्त्य संहिता के अनुसार स्वामी जी के पिता का नाम पुण्यसदन था, जो प्रयाग निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। स्वामी रामानन्द के गुरु स्वामी राघवानन्द थे। स्वामी जी ने स्वयं "श्री रामार्चन पद्धति" में अपने गुरु का नाम राघवानन्द बताया है[9]। स्वामी राघवानन्द ही राम भक्ति को दक्षिण से उत्तर में लाए थे। भक्ति के विषय में स्वामी रामानन्द अपने गुरु की अपेक्षा अधिक उदार थे तथा उन्होंने भक्ति के द्वार चारों वर्णों के लिए खोल दिए। उनके बारह शिष्य प्रसिद्ध हैं - अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पद्मावती, नरहर्यानन्द, भावानन्द, पीपा, रैदास, धना, सेन और सुरसुरी। यह शिष्य परम्परा स्वामी रामानन्द के उदार दृष्टिकोण को प्रमाणित करती है। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार "रामानन्द के प्रभाव से राम और उनकी भक्ति का प्रभाव इतना अधिक था कि

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 115-116/ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
2- भागवत सम्प्रदाय, पृ० 253। ले० पं० कलेव उपाध्याय।
3- "सेल आउटलाइन्स ऑफ दि रिलीजस लिटरेचर आफ इण्डिया" पृ० 323। ले० जे० एम० फर्कुहर।
4- अगस्त्य संहिता सं० पं० रामनारायण दास।
5- हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृ० 41।
6- हिन्दी का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० 300।
7- एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग 10।
8- अगस्त्य संहिता- सम्पादक पं० रामनारायणदास।
9- श्री रामार्चन पद्धति, पृ० 2-3।

संत-सम्प्रदाय में भी राम और उनकी भक्ति का ही स्वीकार किया गया । यह बात दूसरी है कि राम का नाम ही संत सम्प्रदाय में मान्य हुआ, राम का व्यक्तित्व नहीं ।[1] स्वामी रामानन्द ने जनसाधारण में रामोपासना का प्रचार किया । नाभादास ने उन्हें राम की ही भाँति लोक-कल्याण करने वाला बताया है । उनके शिष्यों ने भक्ति का व्यापक प्रचार किया । भक्ति के क्षेत्र में समाज के दलितों तथा स्त्रियों के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त हुआ[2] । उनकी उपर्युक्त शिष्य-सूची इसकी पुष्टि करती है । " जाति-पाँति पूछै नहिं कोई । हरि को भजै सो हरि का होई ।" उनकी उदारता सदैव प्रतिष्ठित उचित है ।

विशिष्टाद्वैतवादी होते हुए भी वे अद्वैतवादी भक्ति एवं भक्ति-ग्रन्थों के प्रति सम्मान प्रकट करते थे । उनके उदार दृष्टिकोण, साहित्य-सर्जना एवं साहित्य-प्रेरणा ने उन्हें अमर बना दिया । यद्यपि स्वयं वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे और उन्होंने " श्री वैष्णवमताब्ज-भास्कर" तथा " श्री रामार्चनपद्धति" ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे हैं, परन्तु हिन्दी (भाषा) में भी सामान्य जन के कल्याणार्थ लिखना तथा भाषा में लिखने की प्रेरणा देना भी उस युग में उनके लिए ही सम्भव हो सका था । श्री रामानन्द की अनेक रचनाओं में भाषा में लिखी हनुमान जी की यह आरती भी है- " आरति कीजै हनुमान लला की । दुष्टदलन रघुनाथ कला की ।" स्वामी रामानन्द के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ "कबीर" में लिखा है कि, " उनके लिए भक्ति बड़ी चीज थी, फिर चाहे वह निर्गुण की हो, या सगुण की, द्वैतवाद से हो अथवा अद्वैतवाद से । उनकी उपदिष्ट भक्ति भिन्न-भिन्न रुचि, विद्या और संस्कार वाले शिष्यों में नाना रूप से प्रकट हुई ।" यह बात निर्विवाद है कि हिन्दी राम काव्य-सुरसरि का मौलिक स्वामी रामानन्द ही हैं ।

<u>तुलसी के पूर्व का हिन्दी रामकाव्य-</u> स्वामी रामानन्द से भाषा में काव्य रचना की प्रेरणा प्राप्त कर कविता के अनेक स्वर मुखरित हो उठे । कबीर आदि सन्त कवियों ने राम को निराकार एवं निर्गुण ब्रह्म का पर्याय मानकर भक्ति-रचनायें कीं । दूसरी धारा के कवियों ने सगुण-भक्ति की रसधारा में आप्लावित हो दाशरथि राम को ब्रह्म का अवतार मानकर काव्य रचना की । तुलसी तक पहुँचने से पूर्व इस धारा में कुछ रामकाव्य अवश्य रचे गए, परन्तु वे तुलसी की प्रतिभा के सामने फीके पड़ गए तथा जन-स्मृति में अपना अस्तित्व नहीं रख सके ।

1- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास ।

2- तुलसीपूर्व राम साहित्य, पृ० 117 । ले० डा० अमरपाल सिंह ।

3- " कबीर" पृ० 109-110 । ले० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ।

डा0 अमरपाल सिंह ने अपने विद्वतापूर्ण ग्रन्थ " तुलसीपूर्व रामसाहित्य" पर खोज की है तथा उनके अनुसार ईश्वरदास तथा विष्णुदास आदि कवियों ने तुलसी से पूर्व हिन्दी में राम काव्य रचना की है ।

तुलसी द्वारा " मानस" रचना के पर्याप्त समय पूर्व से ही संस्कृत धर्म काव्यों के विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में रूपान्तर किए जाने की प्रथा चल पड़ी थी । उस युग में श्रीमद्भागवत पुराण के भाषा में अनेक रूपान्तर किए गए । महाभारत तथा अन्य धर्म ग्रन्थों के भी हिन्दी रूपान्तर किए गए । वाल्मीकि रामायण के भी भाषा रूपान्तर किए गए । तेलगू में भास्कर रामायण, रंगनाथ रामायण या द्विपद रामायण, मलयालम में रामचरितम्, कण्णश रामायण, अध्यात्म रामायण तथा केरलवर्मा रामायण, तमिल में कंब रामायण तथा कन्नड़ भाषा में तोरवे रामायण आदि दक्षिणी भाषाओं में लिखी गई रामायणें हैं । असमिया में माधव कंदलीकृत रामायण, बंगला में कृत्तिवास रामायण, उड़िया में सरलादास की रामायण(अप्राप्य) तथा मराठी में एकनाथकृत भावर्थ रामायण इत्यादि भी बहुत अंशों में वाल्मीकीय रामायण का भाषानुवाद ही हैं । हिन्दी में इस प्रकार का आदिकाव्य का रूपान्तर सर्व प्रथम विष्णुदास ने किया ।

उपर्युक्त के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी में राम काव्य का सृजन संस्कृत राम काव्य के आधार पर प्रारम्भ हुआ था । दशावतार वर्णन के अन्तर्गत चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज रासो में रामावतार का वीरतापूर्वक वर्णन किया है । रामानन्द के शिष्यों ने राम की भक्ति निर्गुण शाखा तथा सगुण शाखा दोनों में ही की । काव्य रचना भी दोनों प्रकार की हुई । सगुण भक्ति शाखा में राम भक्ति की दो धारायें प्रवाहित हुई । इसमें प्रथम है ~~एक को~~ मर्यादावादी राम भक्ति जिसमें तुलसी से पूर्व विष्णुदास तथा ईश्वरदास ने राम का यशोगान किया । सूर द्वारा रचित राम काव्य भी पूर्णतः मर्यादावादी ही है । इस मर्यादावादी राम भक्ति का दिव्य एवं उत्कृष्टतम विकास तुलसी के रामचरितमानस के रूप में दिखायी देता है, जिसके सामने शेष सभी रचनाएँ फीकी पड़ गई । राम भक्ति की द्वितीय धारा रसिक सम्प्रदाय के रूप में विकसित हुई जिसका हिन्दी में प्रारम्भ स्वामी अग्रदास से हुआ है । तुलसी के मर्यादापुरुषोत्तम के प्रभाव से यह धारा पर्याप्त समय तक दबी रही , परन्तु 18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी में इसमें भी पर्याप्त रचनाएँ हुई हैं ।

<u>विष्णुदास-</u> श्री लोकनाथ द्विवेदी सिलाकारी ने " विष्णुदास कविकृत रामायण कथा " का सम्पादन किया है । उनके अनुसार विष्णुदास ग्वालियर के शासक डूंगेन्द्र सिंह के राज्याश्रित कवि थे । महाराज डूंगेन्द्र सिंह का शासन सन् 1424 ई0 से प्रारम्भ हुआ था । सन् 1442

ई0 में कवि ने " रामायनकथा" की रचना की थी । " छितईवार्ता" के रचयिता नारायणदास सम्भवतः इन्हीं के पुत्र थे । विष्णुदास ने अपने पिता का नाम कर्णदास[1] बताया है तथा गुरु का नाम सुन्दरनाथ[2] । इन्हीं सुन्दरनाथ को सहजनाथ भी कहा गया है । कवि ने सन् 1435 में महाभारत कथा की रचना की थी ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी हस्तलिखित पुस्तकों विषयक खोज रिपोर्टों में इनकी अनेक रचनाओं का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं- महाभारत कथा, स्वर्गारोहण, रुक्मिणीमंगल, सनेह लीला तथा स्वर्गारोहण पर्व । ये सभी रचनाएँ अप्रकाशित हैं । विष्णुदास का रुक्मिणीमंगल ब्रजभाषा में गेय-पद पद्धति में लिखा गया है । सूर के सौ वर्ष पूर्व ही विष्णुदास ब्रजभाषा के पदों में कृष्ण-लीला गान कर चुके थे । यह ब्रजभाषा के सम्भवतः प्रथम पदकार थे ।

नागरी प्रचारिणी सभा की 1941-43 की खोज रिपोर्ट में विष्णुदास की " भाषा वाल्मीकि रामायण" रचना की सूचना प्रथम बार दी गई थी[3] । यद्यपि विष्णुदास नाम के एक से अधिक कवि हुए हैं," भाषा वाल्मीकि रामायण" के रचनाकार यही विष्णुदास माने गए हैं । डा0 माता प्रसाद गुप्त भी इससे सहमत हैं[4] ।

<u>रामायन-कथा-</u> रामायन कथा अथवा विष्णुदास की रामायण निर्विवाद रूप से रामविषयक हिन्दी प्रबन्धात्मक काव्यमाला का प्रथम पुष्प है । अब तक की खोजों के आधार पर यह बात पुष्ट एवं प्रमाणित है । " रामचरितमानस" से लगभग एक सौ बत्तीस वर्ष पूर्व[5] विष्णुदास अपनी रामायण-कथा भाषा काव्य के रूप में लिख चुके थे । अतः तुलसी पूर्व के रामकाव्य में विष्णुदास की रामायन-कथा का महत्व बहुत अधिक है । डा0 भगीरथ मिश्र ने " रामायन कथा" की भूमिका में लिखा है कि " हिन्दी साहित्य में रामकथा को लेकर इतना विस्तृत काव्य विष्णुदास के पूर्व नहीं मिलता । नागरी प्रचारिणी सभा की सन् 1941-43 की रिपोर्ट में भाषा वाल्मीकि रामायण में, जिसके रचयिता विष्णुदास माने गए हैं 219 पत्र तथा 6241 अनुष्टुप बताए गए हैं । भाषा वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त रूपान्तर हिन्दी चौपाइयों में किया गया है ।

- -

1- रामायनकथा/1/10 । 2- " सुन्दरनाथ पास गई दयया" रामायनकथा 1/7-9 ।
3- ना0 प्र0 सभा खोज रिपोर्ट, 1941-43, पृ0 734 संख्या 254 ।
4- हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ0 305 ।
5- चौदह सत निन्यानवे लिखी । पून्यो पवित्र रमाइन किखी ।।

रामायण । विष्णुदास । 1/11 ।

विषयवस्तु- कथा का मूलाधार वाल्मीकि-रामायण ही है परन्तु काण्डों का विभाजन वाल्मीकि रामायण के समान नहीं है । सम्पूर्ण कथा तीन ही काण्डों में वर्णित है । इनके नाम बालकाण्ड, सुन्दरकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड हैं । बालकाण्ड की कथा वस्तु में राम जन्म से लेकर हनुमान के लंका को प्रस्थान तक की घटनाएँ हैं । सुन्दरकाण्ड में वाल्मीकि रामायण के सुन्दर एवं सुष्ठ काण्ड की कथावस्तु समाहित की गई है । उत्तर-काण्ड के प्रारम्भ में आरण्यकथा, इन्द्रहत्या, अहिल्या उत्पत्ति तथा राजानुग आदि के पौराणिक आख्यानों का वर्णन किया गया है । सीता निर्वासन की कथा, रामराज्य वर्णन तथा राम के स्वर्गारोहण की कथाएँ भी इस काण्ड में दी गई हैं[1] । डा० अमरपाल सिंह के अनुसार म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद की खण्डित प्रति में सुन्दरकाण्ड को हनू काण्ड कहा गया है । रामायण-कथा की विषय-वस्तु वाल्मीकि रामायण पर आधारित है अतएव घटना-क्रम भी उक्त ग्रन्थ के आधार पर ही दिया गया है । चरित्रों का वर्णन भी लगभग वैसा ही है । ग्रन्थ की भाषा सरल एवं सुबोध है जो आज भी सुगमता से समझी जा सकती है ।

रामायण-कथा में भरत का स्वरूप

श्री सिलाकारी ने लिखा है" कथानक, चरित्र-चित्रण, रस-स्थापन, अंतरंग और बहिरंग प्रकृति के यथार्थ और भाषा के प्रांजल भावमय प्रवाह के साथ परिनिष्ठित स्वरूप के गठन और संस्थापन तथा धर्म, समाज और नीति आदि के वर्णन और कथोपकथन आदि सभी दृष्टियों से विष्णुदास की यह रचना प्रौढ़ और प्रशंसनीय है ।[2]"

रामायण कथा के राम परब्रह्म के अवतार हैं । परिणामतः भरत भी अंशावतार हैं । इसके अनुसार समस्त वानर देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए हैं[3] । रामायण कथा में कैकेयी के गर्भ से भरत का जन्म लोहे की खान से स्वर्ण के उत्पन्न होने के समान बताया

1- राधो करै निर्कंटक राज । नव निधि दस चतुरंग जु साज ।।
आगे बंधु भरथ लछमना । तेहिं राम बली ता घना ।।
नित नित सभा बैठि राऊ । छह दरसन कह करै पसाऊ ।।
लोग सुखी दीसै धन धान । करै राज सो इन्द्र समान ।।

रामायण कथा, पृ० 237/49-50 2- रामकथाप्रस्तावना, पृ० 48 ।

3- जब अवतार लखन को भयो । चित्रामिन जग्य तब ठयो ।।

रामायण कथा 1,2,23 ।

गया है[1]। केवल जन्म के समय ही भरत का उल्लेख हुआ है। चारों भाई पिता के भक्त तथा धर्म का आचरण करने वाले हैं। इसके पश्चात् राम के विश्वामित्र के साथ जाने का वर्णन है; तत्पश्चात् विवाह का। विवाह के पश्चात् ही महाराज ने भरत तथा शत्रुघ्न को उनकी ननिहाल को प्रेषित कर दिया तथा राम और लक्ष्मण को अपने पास रखा[2]। महाराज दशरथ ने राम का राज्याभिषेक करने का निर्णय किया। गणिकों ने उन्हें बताया कि यह राम के राज्याभिषेक हेतु शुभ दिन तथा शुभ घड़ी नहीं है, परन्तु महाराज ने भरत की अनुपस्थिति में ही रामको राज्याभिषेक करना श्रेयस्कर समझा[3]।

स्पष्ट है कि यहाँ महराज दशरथ को भरत के आचरण पर वाल्मीकि के दशरथ की अपेक्षा अधिक शंका है। एक और विशेष अन्तर कवि ने कथा में यह दर्शाया है कि किसी समय राम ने मंथरा को लात मार दी थी जिससे वह कुबड़ी हो गई थी। तब ही से वह राम के प्रति मन में वैर रखती थी। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर मंथरा ने कैकेयी के कान भरे और परिणामस्वरूप कैकेयी ने अपने दो वर माँग लिए। यहाँ कैकेयी भी राम से अत्यन्त अपरिष्कृत ढंग से कहती है, " तुम अभी पिता की आज्ञा पूर्ण करो। मैं तुम्हें घर से निकाल कर ही भोजन करूँगी।" यहाँ भी वाल्मीकि रामायण के समान राम सीता को समझाते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में सीता भरत के सामने राम की प्रशंसा न करें। इस प्रकार राम भी यहाँ भरत के व्यवहार के प्रति अधिक आश्वस्त प्रतीत नहीं होते। सीता भी उत्तर में कहती है, " भरथ पास को बिनती करै। कैसे अन्न वस्त्र बिनु सरै॥" और भी अनेक तर्कों के आधार पर सीता राम के साथ वन को चली जाती हैं। यहाँ भी राम सुमन्त्र को भरत के लिये स्नेहमय संदेश देते हैं और कहते हैं, " कीजो बहुत भरत की सार।"

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् भरत ननिहाल से आने पर कैकेयी के द्वारा राम-वनगमन का दुःखद संवाद सुनकर, कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। यह भर्त्सना अत्यन्त

1- भरत कैकई गरभ उठान। मानहु लोह खानि सो बान॥ रामायन कथा 1,2,18 ।

2- उपजी बुद्धि तबै भुवाल। समधे भरथ बहाँ मगलाल॥
तिनके साथ सँतोषन दियौ। राम लखिमन घर राखियौ॥
रामायन कथा 1,2,142-143 ।

3- ज्यौं ज्यौं भरथ गए परदेस। करी तिलक यौं कहै नरेस॥
यह है सदा राम को दास। राजतीअ को नहीं खिलासु॥
रामायन कथा 1,2,167 ।

संक्षिप्त है तथा अधिक कटु नहीं है[1]। यहाँ भी शत्रुघ्न द्वारा मारी जाती हुई मंथरा को भरत बचा लेते हैं। वाल्मीकि रामायण के समान कौसल्या भरत को उलाहना देती हैं तथा भरत शपथपूर्वक अपनी निर्दोषिता सिध्द करते हैं, परन्तु यह शपथ मात्र " सिर पर हाथ रखने" की है, वाल्मीकि के समान अनेक श्लोकों में नहीं है[2]।

दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् भरत राम के पास जाने का निश्चय कर, सेना सहित चित्रकूट के लिए प्रयाण करते हैं। गंगा तट पर श्रृंगवेरपुर गुह रत्नों की भेंट लेकर उनसे मिलता है परन्तु शंकाकुल वह पूछ ही लेता है, " भरत तुँ रामहिं मारन जाय" ? शंका का कारण विशाल सैन्य दल है अतः गुह भरत का " सति भाउ" जानना चाहता है। भरत गंगा पार पहुँचे। गुह उन्हें पाँच योजन तक पहुँचाने गया। भरद्वाज ऋषि ने भरत का आतिथ्य किया तथा चित्रकूट का मार्ग बता दिया। यहाँ भरद्वाज मुनि भरत के आशय पर शंकित नहीं हैं। संभवतः यह परिवर्तन इस प्रसंग की संक्षिप्तता के कारण है।

उधर राम ने भरत की दल से भयभीत मृगों को भागते देखा। रामायण कथा में काग-प्रसंग यहीं पर वर्णित है। यहाँ भी सैन्य भरत को आया देखकर लक्ष्मण क्रुध्द होकर कहते हैं, " पाप बुध्दि धारण कर भरत आए हैं।" राम को भरत के प्रति इस प्रकार की शंका नहीं है। उन्हें विश्वास है कि " मेरे जीवित रहते भरत राज्य को स्वीकार नहीं करेंगे। वे मुझको लिवाने आ रहे हैं।[3]" अभी राम लक्ष्मण की वार्ता हो ही रही थी कि भरत आ पहुँचे। राम और भरत प्रेमपूर्वक मिले। भरत ने राम से घर चलने हेतु विनय की[4]। राम ने उसे स्वीकार नहीं किया। जाबालि तथा वसिष्ठ ने भी राम को समझाया परन्तु उन्होंने राज्य स्वीकार नहीं किया। तब भरत ने यहाँ भी वाल्मीकि रामायण के समान ही धरना दिया। तुरन्त ही राम ने भरत को उठा कर कहा कि " भाई तुम मुझे अपयश न दो। हमारे वंश में धरना नहीं दिया जाता है[5]।" राम ने चौदह वर्षोपरान्त अयोध्या आकर राज्य करना स्वीकार कर लिया। भरत ने अवलंबन चाहा। राम ने पादुकाएँ दीं।

- -

1- यह सुनि भरथ भयो संताप। तोहि कुबुध्दि न लाग्यो पाप ।।
सुरज कौ कुलथल दियो। द्रोह जु राम कुँवर को कियो ।।
चारौं पुत्र तोहि इक तार। करति राम कह हेतु अपार ।।

रामायण कथा 1,5,21-22 ।

2- माता तुमहिं सीस कर धरौं। जो हौं लोभ राज को करौं ।। रामायण कथा 1,5,32

3- लछिमन वचन सुनत हँसि राम। यह न होइ रघुकुल को काम ।।
मो जीवत करि सकतु न राज। आयो मोहिं लिवावन काजु ।। रामायण कथा 1,5,55-56 ।

4- बिनती भरथ करी कर जोरि। अबहिं देव घर चलहु बहोरि ।।
सुनी राम प्रभा दुख दयो। दसरथ सुर्ग राम बन गयो ।। रामायण कथा 1,5,62 ।

5- कौन समान तुम्हारो प्रभु। इमहिं अलोक बंधु मति देहु ।।
धरनु न होइ हमारे धौं। सुनि अब करी बात निरसंक ।। रामायण-कथा 1,5,72-74 ।।

भरत ने वहीं राम के सामने ही पादुकाओं को सिंहासनस्थ किया । भरत राम से विदा लेकर अयोध्या को चले । राम के बिना दशरथ की पुरी में रहना भरत को स्वीकार नहीं है[1] । अतएव गुरु की सहमति प्राप्त कर उन्होंने नगर के बाहर नन्दिग्राम में अपना निवास बनाया तथा जटा वल्कल धारण कर तपश्चरण करने लगे ।

रामायण कथा में हनुमान के संजीवनी लाते समय अयोध्या जाने का वर्णन कवि ने किया है यद्यपि इस प्रकार का वर्णन वाल्मीकि रामायण में नहीं है । मेघनाद-वध के पश्चात् रावण के बाण से लक्ष्मण को शक्ति लगी है । द्रोण पर्वत को जाते समय हनुमान भरत से मिलकर यह निवेदन करते हैं कि लक्ष्मण को संजीवनी प्राप्त कराने तक सूर्योदय न हो । भरत औषधि से प्रकाशित पर्वत को लेकर आते हुए हनुमान को सूर्य समझ कर बाण मारते हैं । हनुमान जब भरत को अपना परिचय देते हैं तब भरत उन्हें पर्वत सहित राम के पास पहुँचाने की बात कहते हैं । हनुमान वहाँ पर्वत सहित अपने सम्पूर्ण भार के साथ बाण पर बैठ कर भरत के बल की परीक्षा लेते हैं । जब बाण छूटने ही वाला था तब हनुमान बाण से उतर पड़े तथा " राखि-राखि गुन परख्यो तोहि " कहते हुए भरत की स्तुति कर चले गए[2] । इस प्रकरण से भरत की सर्व-सामर्थ्य-सम्पन्न वीरता का वर्णन कवि ने कराया है ।

रावण-वध तथा सीता मिलन के पश्चात् राम भरत से मिलने के लिए आतुर हैं । उन्हें वीर-जटाधारी भरत के दुःखों की कल्पना अयोध्या पहुँचने के लिए आतुर बना रही है । वानर राक्षस प्रमुखों के साथ पुष्पक द्वारा अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं । इस काव्य के अनुसार राम वन में पन्द्रह वर्ष पाँच दिन रहे थे[3] । भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचकर राम ने हनुमान को आज्ञा दी कि वे अयोध्या जायँ तथा उनके आने का समाचार भरत को सुनायें । भरत को राम का आगमन अच्छा न लगे तो राम अयोध्या को न जाकर वन को लौट जायँगे । यह प्रसंग वाल्मीकीय रामायण में भी है परन्तु इतने स्पष्ट शब्दों में नहीं है । उधर हनुमान जब भरत के पास पहुँचे तो भरत को यह विश्वास ही नहीं हो पा रहा था कि हनुमान वास्तव में राम का संदेश लेकर आए हैं; फिर भी वे बहुत प्रसन्न हुए और हनुमान का पुरस्कृत किया । पुष्पक के आते ही भरत ने हाथ जोड़े । उस समय राम ने सुग्रीवादि से भरत की प्रशंसा करते हुए कहा, " देखी साधु कैसु जिहिं रीति । ऐसी मन महँ मेरी प्रीति ।।

- -

1- राम बिना यह दसरथ पुरी । मन महँ अस जानि परिहरी ।।
रामायण-कथा 1,5,78 ।

2- रामायण-कथा, 2, रावणवध खण्ड, 94-122 ।

3- पन्द्रह बरस पाँच दिन गए । आनँद दिन रामहिं वन भए ।।
रामायण कथा,2, राम-राज्य वर्णन खण्ड ,100 ।

भरत नेराश्य को उनका राज्य लौटा दिया । राम के राज्याभिषेक का वर्णन कवि ने विस्तार से किया है । इस ग्रन्थ में भी राम राजसूय यज्ञ करने का विचार करते हैं और श्यामय भरत राम को महान् नरसंहार करना उचित नहीं है " कहकर राजसूय यज्ञ से विरत करते हैं । तब राम अश्वमेध यज्ञ करते हैं । अंत में राम भरतादि सहित परम धाम को जाते हैं ।

यद्यपि सिलाकारी जी ने विष्णुदास के चरित्र चित्रण की प्रशंसा की है, परन्तु रामायन कथा में कवि ने अयोध्याकाण्ड के मर्मस्पर्शी स्थलों को अति संक्षिप्त कर दिया है जिसके कारण भरत के चरित्र का विकास उस सुंदर एवं विशद रूप में नहीं हो सका है जिसमें वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस में हुआ है । फिर भी भरत की सौम्यता त्याग, दया एवं सहस्या, धार्मिकता एवं राम के प्रति प्रेम आदि प्रकट हुए हैं ।

ईश्वरदास

कवि परिचय एवं रचना-काल- मध्यकाल में अनेक कवि एक ही नाम के हुए हैं । नाम ऐक्य वास्तविक रचनाकार के एवं उसके काल के विषय में भ्रम उत्पन्न करदेता है । यह जानना कठिन हो जाता है कि कौन सी कृति किसकी है । विनयवश भक्त कवियों ने अपने विषय में बहुत कम कहा है । कुछ कवियों ने अपना तथा अपने पिता का नामोल्लेख किया तथा रचना-काल की ओर भी संकेत किया है परन्तु अपना पूर्ण परिचय नहीं दिया है । विनम्रता अहंकारशून्यता, लोकैषणा का त्याग, सुयश को ईश्वरार्पित करने की प्रवृत्ति आदि ने भक्त कवियों को यहाँ तक अभिभूत कर रखा था कि अध्यात्म-रामायण के कवि ने अपने नाम का भी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं किया है । सम्भवतः इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण कविवर ईश्वरदास ने भी अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है, केवल कवियों की तत्कालीन परम्परा के अनुसार यत्र-तत्र दोहों में अपने नाम का उल्लेख मात्र कर दिया है । यह भी उल्लेखनीय है कि मध्य युग में अनेक कवि ईश्वरदास नाम के हुए हैं ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी खोज रिपोर्टों में ईश्वरदास की रचनाओं में भरत-मिलाप, अंगद-पैज तथा स्वर्गारोहण का उल्लेख किया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने " हिन्दी साहित्य के इतिहास " में लिखा है, " दिल्ली के बादशाह सिकन्दर शाह (संवत् 1546-1574) के समय में कवि ईश्वरदास ने " सत्यवती-कथा" नाम की एक कथा दोहे चौपाइयों में लिखी थी, जिसका आरम्भ सो व्यासजनमेजय के संवाद से पौराणिक ।

होता है, पर जो अधिकतर कल्पित, स्वच्छंद और मार्मिक मार्ग पर चलने वाली है।"[1] शुक्ल जी का मत है कि परवर्ती साहित्यकारों ने दोहा-चौपाई का क्रम यहीं से प्राप्त किया है। ईश्वरदास की रचनाओं में रामकाव्य से सम्बन्धित तीन ग्रन्थ माने जाते हैं- राम-जन्म, भरत मिलाप, अंगद -पैज। इनके अतिरिक्त सत्यवती-कथा तथा स्वर्गारोहण भी इनकी रचनाओं के रूप में स्वीकार की जाती है।

कवि ने " सत्यवती-कथा" में रचना-काल सम्वत् 1558 विक्रम अंकित किया है तथा तत्कालीन दिल्ली शाह का नाम सिकन्दर बताया है[2]। यह समय ऐतिहासिक दृष्टि से सही जान पड़ता है, क्योंकि सिकन्दर लोदी का शासन काल सन् 1488 से 1506 ई0 माना गया है। राम-जन्म, भरत-मिलाप तथा अंगद -पैज को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने एक ही ग्रन्थ का अंश स्वीकार किया है। उनका कथन है कि, " संभव है कवि ने रामचरित्र पूरा लिखा हो और ये उसी के अंश हों।"[3] ईश्वरदास की रामभक्ति-परक रचनाओं में भरत मिलाप इस दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण है कि कवि ने इस ग्रन्थ में भरत को दास्यभक्ति की उपासना में उत्कृष्ट आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। हिन्दी भक्ति-काल में दास्यभाव की भक्ति का प्रारम्भ ईश्वरदास की रचनाओं से ही होता प्रतीत हुआ है।

ईश्वरदास की कृतियों का सम्पादन डा0 शिव गोपाल मिश्र द्वारा किया गया है। भरत-मिलाप की कुछ प्रतियों में ग्रंथकर्ता के रूप में तुलसीदास का नाम आया है, जिन्हें विद्वानों ने गोस्वामी तुलसीदास से भिन्न एवं उनका पूर्ववर्ती माना है, परन्तु इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है। भरत-मिलाप और सत्यवती-कथा एक ही कवि की लिखी रचनाएँ प्रतीत होती हैं, इस तर्क के आधार पर भरत-मिलाप का रचयिता ईश्वरदास को ही माना जाना चाहिए। इन दोनों रचनाओं में सरस्वती वन्दना से ग्रन्थ प्रारम्भ

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ0 74।

2- जोति एक पंडित के संगा, पांच आत्मा आठौ अंगा।
आठौ मास पाख उजियारा, तिथि नौमी सो मंगलवारा।
नरपत अपनी मेक्क बन्दा, पंच जना सो सदा अनंदा।।
जोगिनीपुर दिल्ली बहु थाना, साह सिकन्दर बहु सुलताना।
कंठ बैठु सरसुती, पिहुया कवति दीन्ह।
ता दिन कथा अरम्भ यह ईसरदास कवि कीन्ह।। । सत्यवती कथा, दोहा 5।

3- काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 1956/1

किया गया है तथा दोनों की समाप्ति फलश्रुति के साथ कवि नाम सहित की गई है। दोनों रचनाओं में शाब्दिक साम्य भी है। इन दोनों रचनाओं को एक ही कवि ईश्वरदास द्वारा रचा गया समझना ही समीचीन प्रतीत होता है।

भरत विलाप- ईश्वरदास की रचनाओं में भरत-विलाप का विशेष महत्व है क्योंकि यह काव्य भाषा में दास्य भक्ति की अनूठी कृति है। विषयवस्तु के दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण के अयोध्याकाण्ड की सामग्री के आधार पर रचा गया है। भरत-विलाप में रामवनवास के पश्चात् भरत के ननिहाल से लौटने, दशरथ की अन्त्येष्टि, राम को लौटा लाने हेतु भरत का चित्रकूट प्रयाण, राम से राज्य स्वीकार करने तथा अयोध्या को लौट चलने हेतु अनुनय-विनय, अनुरोध एवं आग्रह, राम के द्वारा अनुरोध अस्वीकृत किए जाने पर भरत का राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटने तक का वर्णन किया गया है। रचना, दोहा, चौपाई में की गई है। इस काव्य का मुख्य रस करुण है। काव्य-नायक भरत राम के अनन्य भक्त हैं। उनकी भक्ति दास्य भाव की है,जो अत्यन्त उत्कृष्ट है।

कथा की विशिष्टता यह है कि यहाँ गुरु वशिष्ठ नहीं अपितु कैकेयी महाराज के स्वर्गारोही होने के पश्चात् भरत को पत्र लिखकर ननिहाल से बुलाती है[1]। भरत को अनिष्ट की आशंका से अधिक व्याकुलता एवं आतुरता है[2]। यहाँ भरत राम के वनगमन का समाचार सुनकर कौसल्या के भवन में जाकर कौसल्या एवं सुमित्रा के साथ विलाप करते हैं। इसके पश्चात् वे कैकेयी के पास जाकर उनकी कटु भर्त्सना करते हैं। दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् वे कैकेयी की पुनः भर्त्सना पुनः करते हैं तथा सैन्य वन के लिए प्रस्थान करते हैं। इस ग्रन्थ में उनके निषाद राज गुह से भेंट करने का उल्लेख नहीं किया गया है। वन से

1- रचि रचि कैकेयी पत्र लिखाया, दूत हाथ दै नैहर पठाया।
जाहु दूत भरत के पासा, अवधपुरी के भयो निरासा।

2- रैनि भोर न मन पतिआई, अब सो अयोध्या देखहुँ जाई।
आतुर चलेऊ न बाल सँभारा, आगे पीछे न एक बिचारा।
चलि चलि आए अवध प्रवेसा, नहिं सँभार पाग सिर केसा।
डंका कलस रोवत धाई, पुनि बहु नगर लोग कुलताई।

अयोध्या लौटने की कथा तथा भरत का नन्दिग्राम में तपश्चरण वाल्मीकि रामायण के समान ही है । अन्त में भरत-विलाप का श्रुति माहात्म्य कहा गया है ।

ईश्वरदास की रचनाओं को " हिन्दुस्तानी" के सम्पादक ने साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि की नहीं बताया है परन्तु राम भक्ति के प्रारम्भिक भाषा-काव्य विकास में इनका स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । इनकी भाषा अवधी है, जो अत्यन्त सरल है, परन्तु तुलसी की अवधी के समान परिमार्जित नहीं है । आचार्य शुक्ल के अनुसार यह अयोध्या के आसपास की ठेठ अवधी भाषा है[1] । डा० अमरपाल सिंह के अनुसार " ईश्वरदास की रचनाएँ कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं । इनमें तत्कालीन अवधी का स्वरूप सुरक्षित है । शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से भी कृतियाँ बहुमूल्य हैं । x x x x । इन रचनाओं की भाषा प्रवाहपूर्ण एवं सजीव है । कथा प्रसंगों के वर्णन प्रौढ़ एवं मार्मिक हैं[2] ।" भरत-विलाप में जिस दास्य भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है , वह रामचरित मानस की पूर्व पीठिका के रूप में दिखाई देती है । मानस में इसी दास्य-भक्ति का विशद स्वरूप दिखाई देता है[3] ।"

<u>भरत-विलाप में भरत का स्वरूप-</u> जैसा पहिले ही कहा जा चुका है भरत विलाप की कथा रामवनगमन के पश्चात् भरत के ननिहाल से लौटने से प्रारम्भ होती है । सम्पूर्ण काव्य में भरत के हृदय की करुण वेदना व्यक्त की गई है । राम-वन-गमन के कारण भरत को महान् शोक, दुःख एवं ग्लानि है। राम-निर्वासन का समाचार उनके लिए इतना असह्य एवं शोक-प्रद है कि उसे सुनते ही वे मूर्छित हो जाते हैं[4] । चेतना प्राप्त होने पर कौसल्या के पास जाकर सुमित्रा से मिल कर बार-बार रोते हैं ।

- -

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ० 75 ।

2- तुलसी पूर्व राम साहित्य- पृ० 164-65 ।

3- तुलसी पूर्व राम साहित्य- पृ० 166 ।

4- बारहिं बार मोह बस, भूमि परे मुरझाई ।
हूदै सुमिरि रघुनायकहिं, बहुरि उठे सुधि पाई ।।
सुमिर राम लछिमन दोउ भाई, रोवत भरथ कौसिला पहिं जाई ।
तहाँ सुमित्रा बैठि बिलपाई, भरथहिं देखि बिकल उठि धाई ।
भरथ सुमित्रा रोवे गल लाई, पुनिसुमित्रा बोध कराई ।
कौसिल्या तब रोवति आई, भरथहिं देखि बिकल होइ धाई ।
रोवहिं भरथ बहुत बिलपाई, पुनि कौसल्या बोध कराई ।।

कोमल हृदय दयालु भरत के लिए राम के वनवास जन्य कष्ट असह्य हैं । राम नंगे पाँव वन को गए हैं । कुश कंटकों से आकीर्ण पथ पर वे कैसे चले होंगे इस चिन्ता से भरत का कोमल हृदय व्याकुल है।[1] राम को वन भेजने के कारण वे कैकेयी से रूष्ट हैं और उसकी कटु भर्त्सना करते हैं । जिस राज्य के लिए राम को वन भेजा गया वह भरत को स्वीकार्य नहीं है । उसे त्याग कर वे तो अब वन को जायेंगे[2]। कैकेयी भर्त्सना में यहाँ वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा कटुता कम है ।

भरत-विलाप के भरत इतने शोकाकुल हैं कि वे राम के पास वन जाने का निर्णय निश्चित रूप से नहीं कर पाते हैं । क्रोध तथा शोक के आवेग में कैकेयी से वे कहते तो हैं कि " जिस भरत के लिए तुमने यह अकरणीय कार्य किया है, वह भरत तो । तुम्हारे मनोरथ को निष्फल करेगा। अब वन को जायेगा।" परन्तु उनका यह दृढ़ निश्चय नहीं है । वन जाने हेतु उन्हें गुरु वशिष्ठ परामर्श देते हैं और कहते हैं कि, " तुम शीघ्र ही राम को बुला लाओ, कैकेयी का कलंक तुरन्त मिट जायेगा[3]।" भरत इस महामंत्र को शिरोधार्य कर चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं । स्मरणीय है कि वाल्मीकि रामायण में यह निर्णय बिना वशिष्ठ के परामर्श के भरत स्वयं ही करते हैं जो वशिष्ठ एवं अन्य सभासदों द्वारा प्रशंसित एवं अनुमोदित किया जाता है । भरत-विलाप में शोकावेग के कारण भरत की विवेकशीलता एवं निर्णय लेने की क्षमता कुंठित सी प्रतीत होती है ।

भरत-विलाप के भरत भ्रातृ-प्रेमी हैं । उन्हें राम तथा लक्ष्मण दोनों से प्रेम है । वे समय-समय पर राम के साथ लक्ष्मण का भी स्मरण करते हैं । कौसल्या से पूछते हैं, " लक्ष्मण

- -

1- रौवत कलपत होइहि जाई, वन महँ कुस काँटा अधिकाई ।
कैसे सिधारेहु श्री रघुराई, तुम बैठे बिनु जी मोर जाई ।
केहि विधि ते तुम वन पगुधारा, कठिन पंथ पगु हैं सुकुमारा ।

2- धिग जीवन कैकई तोहारी, भरतेउ जीन होति महतारी ।
केवल राज करी घर जाई, हमहुँ जान वन जहँ रघुराई ।।
जेहि नीती अकरम कीन हैं माई, सो तो भरथ कनहिं अब जाई ।

3- समुझि सो रामवास कनतेला, रोवत भरथ भए मन मैला ।
गुरु वसिष्ठ तब बोलत जाई, धीरज धरहु समय लखि माई ।
तब उठि भरथ गुरुहिं सिर नाई, दै असीस तब गुरु समुझाई ।
तेगि राम पहँ आय बुलाई, केवल कलंक तुरति मिट जाई ।
तब उठि भरथ जी कनहिं सिधारा, जेहि वन राम लखन पगु धारा ।

और राम कहाँ है ?[1]" कैकेयी को धिक्कारते हैं कि, " तू ने राम तथा लक्ष्मण को वन भेज दिया तुझे धिक्कार है[2]।"

भरत राम के छोटे भाई ही नहीं अपितु अनन्य भक्त भी हैं। राम उनके स्वामी हैं और वे राम के सेवक हैं। वे कैकेयी से स्पष्ट कह देते हैं कि, " राम चरन चित लाय हमारी, राज करो द्विज जनम तुहारी"[3]। वे राम को स्वामी कहकर सम्बोधित करते हैं। वे अनन्य भक्त स्वयं राम तथा सीता के चरणों में लौ लगाकर राम के समीप वन में ही रहना चाहते हैं[4]। उन्होंने राम से अयोध्या का राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना करते हुए कहा कि " आज्ञपो मैं मै आपका सेवक हूँ, आप की सेवा करके जीवन पार करना चाहता हूँ[5]।" भरत आज्ञाकारी सेवक हैं। उन्हें स्वामी की प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य है। उनकी प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए राम जब उन्हें अयोध्या को लौट जाने का आदेश देते हैं, तब वे उसका भी पालन करते हुए अयोध्या को लौट जाते हैं। सेवक का यही कर्तव्य है कि वह स्वामी की आज्ञा का पालन करे। भरत-सेव्य भाव अथवा दास्य भाव की भक्ति के आदर्श हैं।

भरत त्यागी, तपस्वी, सहृदय, सज्जन एवं विनयशील हैं। जब लक्ष्मण और राम नहीं लौटे तब भरत ने भक्त के अवलम्बन स्वरूप राम की पादुकाएँ ही सिर पर धारण कर लीं। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे नगर के बाहर नन्दिग्राम[7] में निवास करेंगे। तदनुसार भरत नन्दिग्राम में भूमि पर ही कुशासन बिछा कर तपस्यारत हुए।

1- पूँछ भरथ कहाँ दुवौ भाई, कहवाँ लखन कहाँ रघुराई।
   किन देखा मोर नैन जुड़ाई, पुनि कौसल्या कहा बिलखाई।
2- राम लखन बन दीन पठाई, द्विज तव जनम केकई माई।
3- तब भरथ कहन अस लागे, तुम बिन सामी सबै अभागे।
4- संग रहहिं हम बिपत गँवाई, दंपति चरन नाथ लौ लाई।
5- कहा भरथ तुम मोरहिं काजा, पूजहु राज अवधपुर राजा।
   आज्ञन मह हम सेवक तोहारा, करि सेवा पावहिं निस्तारा।
6- रामचन्द्र की आयुस पाइ, चले भरथ चरनन सिर नाइ।
   सेवक धर्म जानि सुखमाना, आए भरथ अवध अस्थाना।
7- नहिं आए लछिमन रघुराई, तब पौजा सिर लीन चढ़ाई।
   राम लखन सिय बन सुख पाइ, चरन ताल महिं तेज बनाइ।
   हमहुँ रहब पुर बाहर जाइ, नंदिग्राम कुछ कोपरी बनाइ।
   कुस बिछौ साथरी बनाइ, बैठे आसन प्रभु मन लाइ।
   आगे पौजा धरि सिर नाइ, रागहिं जपत सदा सुख पाइ।

भरत के शील स्वभाव की प्रशंसा राम ने उन्हें अतुलनीय रूप से उत्कृष्ट बता कर की है । सौन्य भरत को आया देखकर उत्तेजित लक्ष्मण को राम ने समझाया था कि " शील-सुभाई में भरत के समान कोई नहीं है । उन्हें तो सद्गुणों का भी भूषण समझो ।" यह कह कर मानों इसके प्रमाण को लक्ष्मण के सामने सिद्ध करने हेतु राम ने उनको भरत के पास भेजा तथा भरत के लक्ष्मण से परम प्रेममय मिलन ने उक्त कथन को पुष्ट कर दिया । भरत का चित्रांकन " अनुपम सद्गुण भूषण" के रूप में सर्वथा उचित है । राम का यह कथन पूर्णरूपेण सत्य है, " दसरथ पिता भरथ इस भाई, सत्य कहौ जग कोउ न पाई ।"

सूरदास का रामकाव्य

तुलसी पूर्व रामकाव्य के रचयिताओं में महाकवि सूरदास का नाम उल्लेखनीय है । सूर मुख्यतः कृष्ण-भक्त कवि हैं तथा उनका विशाल सूरसागर कृष्ण-भक्ति के रस से परिपूर्ण है । उन्होंने सम्पूर्ण श्रीमद् भागवत के कृष्ण चरितों का अपने पदों में गान किया है । भागवत[1] के नवम स्कन्ध में रामचरितावलि में वर्णित है । इसी के आधार पर सूर ने राम काव्य की रचना की है,[2] परन्तु सूरदास का यह रामचरित भावपूर्ण, सरस एवं मौलिक है । सूरसागर में कवि ने कुल 199 पदों में रामचरित का गान किया है तथा सूरसारावली में केवल 13 पदों में । इस प्रकार सूर का रामचरित कुल 212 पदों में उपलब्ध है ।

रचनाकाल- कवि ने इस ओर कोई संकेत नहीं किया है कि यह राम विषयक काव्य किस समय रचा गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि० में माना है तथा इनके गो लोकवास का समय संवत् 1620 बताया है । स्पष्ट है कि सूर तुलसी के पूर्ववर्ती हैं । तुलसी के जीवन-वृत्तान्त पर सर्वाधिक प्रामाणिक रचना बाबा वेणीमाधवदास कृत मूल गोसाईं चरित मानी जाती है । इस रचना में कवि ने संवत् 1616 में महाकवि सूरदास के तुलसीदास से कामदगिरि पर मिलने का उल्लेख किया है । सूरदास को स्वामी गोकुलनाथ जी ने तुलसीदास के दर्शनार्थ प्रेरित किया था । सूर ने अपना सूरसागर तुलसी को

1- भरत समान न सील सुभाई, सद्गुन भूषन मानौ भाई ।
राघवन्द्र कर आयुस पाई, लछिमन गए भरथ के ठाई ।
दण्ड प्रनाम कीन मन लाई, धाए भरथ अंक भेंट लाई ।

2- " हमलौं ज्यौं सुकदेव सुनायौ । " सूरदास" त्यौं ही कहि गायौ ।"
सूर रामचरितावली,। । । गीता प्रेस। ।

दिखाया तथा कुछ पद गाकर भी सुनाए । तुलसी ने सूरकाव्य की प्रशंसा की तथा सूरदास को आग्रह पूर्वक एक सप्ताह तक अपने पास रोका । सूर प्रशंसकों ने कहा है कि गोस्वामी जी सूरदास से मिलने गए थे । हो सकता है कि बाद में गोस्वामी जी भी सूरदास से मिलने गए हों । बाबा बेनीमाधवदासकृत 'मूल गोसाईं चरित' से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संवत् 1616 में सूर एवं तुलसी का पारस्परिक मिलन हुआ था । उस समय तक सूर सूरसागर रच चुके थे । सूर के काव्य से तुलसी प्रभावित हुए होंगे, जो उनकी गीतावली, कृष्ण गीतावली तथा विनय पत्रिका से स्पष्ट है । गोस्वामी जी की रामभक्ति से सूर भी प्रभावित हुए थे जिसका परिणाम उनके द्वारा रचित रामचरित से सम्बन्धित पदों में प्रस्फुटित हुआ है । सूर मिलन के पन्द्रह वर्ष उपरान्त तुलसी ने " मानस" की रचना प्रारम्भ की । 'मानस' से पूर्व संवत् 1628 विक्रम में वे राम गीतावली एवं कृष्ण गीतावली के पदों की रचना कर चुके थे[2]। सूर ने अपने राम विषयक पद निश्चित रूप से पहले पूर्व रच लिए थे । अतः सूर निर्विवाद रूप से तुलसी रामकाव्य से पूर्व के रामचरित गायक हैं तथा उनके रामकाव्य ने तुलसी के काव्य को प्रभावित भी किया है ।

सूरदास ने अभेदोपासना को महत्त्व दिया है तथा उसी के आधार पर राम तथा कृष्ण दोनों की उपासना की है । उनकी अभेदोपासना का मूल श्रीमद् भागवत में ही निहित है । स्मरणीय है कि श्रीमद् भागवत् के दशम स्कन्ध में यशोदा कृष्ण को रामकथा सुनाकर सुलाना चाहती हैं । सीता-हरण की बात सुनते ही नंदनन्दन कृष्ण की नींद दूर हो गई और वे " लक्ष्मन धनुष दो" कहते हुए उठ बैठे । यह लीला सूरदास ने अपने पदों में गायी है । सूर के लिए कृष्ण ही के रूप राम थे । डा० माताप्रसाद गुप्त ने लिखा है, " सूरदास सामान्यतः वल्लभ के पुष्टि संप्रदाय के कहे जाते हैं किन्तु उनमें हमें वह साम्प्रदायिकता नहीं मिलती जो उस सम्प्रदाय के शेष सभी भक्तों में मिलती है । सम्प्रदाय के और किसी प्रमुख

1- सोरह से सोरह लगे, कातक गिरि द्विज बास ।
सुधि एकांत प्रदेस महँ, आए सूर सुदास ।। 29 ।।
पठए गोकुलनाथ जी, कृष्ण रंग में बोरि ।
दुग फेरत चित चातुरी, लीन्ह गोसाईं छोरि ।। 30 ।।
कवि सूर दिवाच्छ सागर को । सुधि प्रेमकथा नट नागर को ।।

बाबा बेनीमाधवदासकृत " मूलगोसाईं चरित" दो० 29-31 ।

2- जब सोरह से वसु बीत गए । पट जोरि तबै सुधि ग्रंथ गए ।।
तेहिं रामगीतावलि नाम धर्यो । अरु कृष्णगीतावलि रीति लर्यो ।।

बाबा बेनीमाधवदासकृत " मूलगोसाईं चरित," दोहा 33 ।

भक्त ने रामचरित का गान नहीं किया है, किन्तु सूरदास की एक अनन्य पदावली रामचरित का गान करती है।[1] राम साहित्य में सूरदास का योगदान उल्लेखनीय है। इनका रामावतार वर्णन गेय पद शैली में है।

सूरसागर में रामकथा-

सूरसागर की रामकथा सूरसारावली की अपेक्षा विस्तृत है। सूरसागर के अन्तर्गत छः काण्डों में रामकथा का वर्णन किया गया है। बालकाण्ड का प्रारम्भ राम जन्मोत्सव से होता है। इसके पश्चात् दो पदों में राम की बालक्रीड़ाओं का वर्णन कवि ने किया है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा अहिल्योद्धार, धनुर्भंग तथा राम विवाह का वर्णन कवि ने संक्षेप में किया है। वाल्मीकि रामायण के समान सूर ने भी परशुराम प्रसंग राम विवाह के पश्चात् दिखाया है। इस प्रकार तेरह पदों में बालकाण्ड की विषयवस्तु का वर्णन किया गया है।

अयोध्याकाण्ड में राम वनगमन की कथा का वर्णन है। दशरथ की करुण वेदना को कवि ने मार्मिक रूप से व्यक्त किया है। केवट प्रसंग अति सुन्दर तीन पदों में लिखा गया है। मार्ग में ग्राम वधुएँ सीता से राम और लक्ष्मण के विषय में पूछती हैं। यह प्रसंग भी बहुत सुन्दर है। दशरथ मरण तक की कथा में कोई विशेषता नहीं है। कैकेयी की भर्त्सना का प्रसंग तो है परन्तु यहाँ भरत के वचन उतने मर्मभेदी नहीं हैं जितने वाल्मीकि रामायण में हैं। भरत का चित्रकूट गमन तथा राम से उनका मिलन भी भाव विभोर करने वाला है परन्तु कवि ने यह प्रसंग अति संक्षिप्त कर दिया है। सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड की कथा का वर्णन कवि ने मात्र अट्ठाईस पदों में किया है।

अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा विरूपीकरण, खरदूषण वध, सीता-हरण, जटायु की राम के द्वारा अन्त्येष्टि आदि की कथाएँ कवि ने भावपूर्ण शैली में लिखी हैं। किष्किन्धाकाण्ड भी अति संक्षिप्त लिखा गया है। इसमें राम सुग्रीव मित्रता, बालि वध तथा सीता की खोज के लिए देश देशान्तरों को वानर भेजे जाने का वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड का प्रारम्भ जाम्बवन्त द्वारा की गई हनुमान की प्रशंसा से हुआ है। हनुमान का सागर संतरण, सीता की खोज, अशोक-वाटिका-विध्वंस, लंका-दहन तथा सीता का संदेश राम को निवेदित किए जाने आदि का वर्णन इस काण्ड की कथा के विषय हैं। विशेषता यह है कि जब हनुमान सीता को देखकर चिन्तित हैं कि यह सीता हैं अथवा नहीं तब आकाशवाणी उनके सन्देह का निवारण करती है। इसी प्रकार लंका दहन के समय जब हनुमान चिन्तातुर हो उठते हैं कि कहीं सीता तो नहीं जल गईं तब पुनः आकाशवाणी द्वारा उनकी शंका का निवारण होता है। इस प्रकार की आकाशवाणियाँ सूरदास की इस

1- हिन्दी साहित्य, पृ० 306 । । नो- डा० माता प्रसाद गुप्त ।

कथा की ही विशेषता है, अन्य राम काव्यों में आकाशवाणी की सम्भावना नहीं की गई है । अरण्यकाण्ड से लेकर सुन्दरकाण्ड तक भरत का उल्लेख नहीं हुआ है ।

लंकाकाण्ड की सम्पूर्ण कथा 89 पदों में लिखी गई है । इसमें सेतुबंध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा है । कथा के मुख्य बिन्दु हैं हनुमान तथा राम की सेतुबंध से पूर्व की वार्ता, विभीषण की शरणागति, मंदोदरी-रावण संवाद । रावण मंदोदरी के समाने इसबात को स्वीकार करता है कि जानकी कोई साधारण स्त्री नहीं है अपितु विषय-वासनारूपी जल से भरे संसार-सागर से अभय प्राप्ति के लिए जहाज हैं । रावण को वैकुण्ठ प्राप्त कराने के लिए वे साधन हैं । इसीलिए रावण उनको हर लाया है । श्री राम जैसे केवट के बिना अभिमानी रावण भवसागर पार कैसे उतर सकता है[1] । इसके पश्चात् सागर पर सेतु बाँधने का प्रसंग, अंगद का दौत्य, लंका पर वानरों द्वारा आक्रमण, राम का नागपाश-बंधन, कुम्भकर्ण-वध, लक्ष्मण की मूर्च्छा, विलाप करते हुए राम का भरत को स्मरण करना इत्यादि हैं । सूरदास ने भी संजीवनी लाते हुए हनुमान के अयोध्यापुरी के ऊपर से आने का वर्णन किया है । यहाँ भरत हनुमान का मिलन दिखाया गया है । हनुमान द्वारा लायी गयी संजीवनी से लक्ष्मण पुनर्जीवित हो उठे । तत्पश्चात् मेघनाद-वध एवं रावण-वध का वर्णन किया गया है ।

लक्ष्मण ने लंका में जाकर सीता के दर्शन किए तथा सीता को लेकर वे राम के समीप आए । इसके पश्चात् अग्नि-परीक्षा की कथा वर्णित है । कौसल्या के राम आगमन की उत्कण्ठा पूर्ण प्रतीक्षा में शकुन मनाने का वर्णन, भरत द्वारा स्वागत की तैयारी, राम-भरत मिलन तथा राज्याभिषेक का वर्णन सुन्दर है । राम के अयोध्या प्रवेश के समय प्रिय दर्शन की प्यासी अति आतुर नगर की स्त्रियों का वर्णन किया गया है जिन्हें राम का मुख देखकर लोक-लाज नहीं रही और जिनका विरह-कृश शरीर राम को देखकर उत्फुल्ल हो उठा । यह पद हिन्दी राम काव्य में रसिक परम्परा

1- यह सीता निरमै को बोहित, सिंधु सुख विषै को पानी ।।
जोहि गवन सुरपुर कौं कीये, अपने काज कौं मैं हरि आनी ।
सूरदास स्वामी केवट बिन, क्यौं उतरै रावन अभिमानी ।।

सूर-रामचरितावली, 130 ।

का बीज बिन्दु समझा जा सकता है[1]। अन्त में कवि राम की राजकाज व्यस्तता का वर्णन करते हुए कहता है कि प्रभु राम को समय ही नहीं है जब सूर अपना दुखड़ा सुना सके। इसलिए प्रभु पतित सूर का उद्धार करो यह लिखकर पहुँचना ही उपयुक्त है[2]।

सूरसारावली की कथा- सूर सारावली में केवल 13 पदों में संक्षिप्त रूप से रामकथा कही गई है। इसके अनुसार राजाराज रावण तथा कुम्भकर्ण का वध करने के लिए ब्रह्मा सहित समस्त देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु ने राम रूप में अवतार लिया। श्री राम पूर्णावतार हैं। इसमें वाल्मीकि की शतकोटि श्लोकों की रामायण का उल्लेख है। राम जन्म के प्रसंग में दशरथ के घर में पूर्ण ब्रह्म के चतुर्व्यूह अवतार धारण करने का उल्लेख किया गया है। पुरुषोत्तम श्री राम नारायण हैं, लक्ष्मण संकर्षण, भरत प्रद्युम्न तथा शत्रुघ्न अनिरुद्ध हैं[3]। शेष कथा सूरसागर की कथा के समान ही है परन्तु संक्षिप्त है। इसके अनुसार विवाह के पश्चात् राम बारह वर्षों तक अयोध्या के राजकार्यों में सुखपूर्वक रहे[4]। यहाँ भी चित्रकूट में भरत के राम के प्रत्यावर्तन हेतु आग्रह करने पर वशिष्ठ उन्हें समझाते हैं कि राम ब्रह्म का अवतार हैं जो पृथ्वी का भार दूर करेंगे। राम ने भरत को अपना चित्रपट भी दिखाया[5]। इस कथा में जब राम अगस्त्य के आश्रम पहुँचे तो अगस्त्य तथा उनकी पत्नी

1- देखन कौं मंदिर आन चढ़ी।
रघुपति- पूरनचंद विलोकत, मनु पुर-जाधि-तरंग बढ़ी ।।
पिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर मुख-ग्रास रढ़ी।
रही न लोक-लाज मुख निरखत, सीस नाइ आसीस पढ़ी ।।
भई देह जो देह करम-बस, मनु तट गंगा अनल दढ़ी।
सूरदास प्रभु दृष्टि सुधानिधि, मानौ फेरि बनाइ गढ़ी ।। सूर-रामचरितावली, 194।

2- सूर-रामचरितावली, 198।

3- पुण्य नछत्र नौमी जु परम दिन लग्न सुभ्रष्ट सुभ वार।
प्रगट भए दसरथ-गृह पूरन चतुर्व्यूह अवतार ।।
तीनौं व्यूह संग ले प्रगटे पुरुषोत्तम श्री राम।
संकर्षन-प्रद्युम्न, लछमन-भरत, महासुख धाम ।।
सत्रुघ्नहि अनिरुद्ध कहियतु हैं, चतुर्व्यूह निज रूप।
सूर-रामचरितावली। सूर-सारावली से। 201।

4- द्वादस बरस बिराजे था बन, फिर भू भार हरौं।
किछु बचन प्रमान किए भूप, सब यह काज करौं ।। सूर-रामचरितावली, 207।

5- गुरु वसिष्ठ मुनि कह्यौ भरत सौं राम ब्रह्म अवतार।
बन मैं जाय बहुत मुनि तारैं, दूर करैं भू-भार ।।
पुनि निज चित्रपट जो अपनौ, सो हरि जाय दिखायौ।
आज्ञा पाय चले निज पुर कौं, प्रभुहिं मीत समझायौ ।।
सूर-रामचरितावली, 208।

ने उन्हें एवं सीता को दिव्य वस्त्राभरण दिए[1]। स्मरणीय है कि मानस आदि ग्रंथों में यह कार्य अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया ने किया है। कथा के अन्त में राम द्वारा अनेक अश्वमेध यज्ञ किये जाने का वर्णन है। सूर सारावली के वर्णनों में एक विशेष बात यह भी है कि इनमें सीता की अग्नि- परीक्षा, सीता निष्कासन, लव-कुश जन्म एवं सीता के पृथ्वी-प्रवेश की कथाओं का वर्णन नहीं है अपितु सीता को अनेक प्रकार से लाड़-लड़ाने का संकेत किया गया है। सूर का रामचरित वर्णन अत्यन्त शालीन, मर्यादापूर्ण, सरस एवं मधुर है।

सूर रामकाव्य में भरत- सूर सारावली के वर्णन में कवि ने राम को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना है। श्री राम ने चतुर्व्यूह अवतार धारण किया जिसमें भरत प्रद्युम्न हैं[2]। सूर - सागर की कथा में इस प्रकार का उल्लेख नहीं है। बाल-लीला वर्णनों में भरत का उल्लेख भी किया गया है। चारों भाई एक साथ विचरण करते हैं, राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न। ये चारों मुक्ति, धर्म, धन एवं धाम अर्थात् परम पुरुषार्थ के साक्षात् स्वरूप हैं[3]।

सूर के भरत का स्वरूप अयोध्याकाण्ड में वाल्मीकि रामायण के अनुरूप है। उनके मन में कौसल्या के प्रति अगाध श्रद्धा एवं प्रेम है। महाराज दशरथ के निधन के पश्चात् अयोध्या आने पर वे सर्व प्रथम कौसल्या से ही मिलते हैं। कौसल्या के मन में भी भरत के प्रति अपरिमित विश्वास और प्रेम है। दशरथ के मरण के समय वे विलाप करती हुई कहती है कि "जब तक भरत अयोध्या को लौटकर आये तब तक कोई राम को वन जाने से रोक लो।"[4] उन्हें विश्वास है कि भरत के रहते कोई अनिष्ट अयोध्या में

- -

1- मुनि अगस्त्य आश्रम चु गए हरि, बहु विधि पूजा कीन्ही।
दिव्यवसन दीने जब मुनि नैं, फिर यह आज्ञा दीन्हीं॥
दसकंधर कौं बेगि संहारो, दूरि करो भुवि-भार।
मोपा मुद्रा दिव्य वस्त्र लै दीने जनक-कुमारि॥ सूर-रामचरितावली, 208।

2- सूर-रामचरितावली, सूर-सारावली, 201।

3- धनुहीं बाण लए कर डोलत।
चारौं बीर संग इक सोभित, बचन मनोहर बोलत॥
लछिमन, भरत, सत्रुहन सुंदर, राजिवलोचन राम।
अति सुकुमार, परम पुरुसारथ, मुक्ति-धर्म-धन-धाम॥
सूर-रामचरितावली, सूर-सागर, 6।

4- रानहिं रानी कौऊ जाइ।
जब लगि भरत अयोध्या आवैं, कहति कौसल्या माइ॥
पठयौ दूत भरत कौं ल्यावन, बचन कह्यौ चितलाइ।
दसरथ बचन राम बन गमने, यह कहयौ अरथाइ॥
सूर-रामचरितावली, 36।

घटित नहीं हो सकता । स्मरणीय है कि वाल्मीकि के भरत को ननिहाल से लौटने पर कौसल्या के उलाहने सहन करने पड़ते हैं, परन्तु सूरदास के भरत को कौसल्या स्नेहपूर्वक हृदय से लगाती हैं । सूर के भरत को अपनी दोषहीनता सिद्ध करने के लिए किसी सौगन्ध अथवा शपथ की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि वाल्मीकि रामायण तथा राम-चरितमानस में भरत को सौगन्धपूर्वक सिद्ध करना पड़ता है कि वे राम-वनवास के विषय में निर्दोष हैं ।

कैकेयी की कटु भर्त्सना सूर के भरत ने भी की है । उन्हें कैकेयी की क्रूरता पर आश्चर्य है । राम के वन जाते समय कैकेयी का पाषाण-हृदय फट क्यों नहीं गया । कैकेयी ने अपने ही हाथों पति के काल को कैसे बुला लिया । उसने राम को वनवास देकर भरत को अपराधी बना दिया[1] । इन शब्दों के अतिरिक्त और अधिक कठोर शब्द भरत ने कैकेयी के प्रति नहीं कहे हैं । वाल्मीकि रामायण में कैकेयी की भर्त्सना का प्रसंग अत्यन्त उग्र एवं कठोर है जहाँ भरत यह कहने से भी नहीं चूकते कि " यदि मातृ-वध पाप न होता तो मैं कैकेयी को मार ही डालते ।" सूर की कैकेयी भर्त्सना मर्यादित एवं संक्षिप्त है ।

वाल्मीकि के भरत धर्म के विग्रहवान स्वरूप हैं परन्तु सूर के भरत राम-प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं । तुलसी के भरत में इन दोनों स्वरूपों का समन्वय है । सूर के भरत को राम का वियोगजनित दुःख है । वे राम के बिना अयोध्या में अन्न जल ग्रहण नहीं करना चाहते । उनके अनुसार राधव के विरह से तो शरीर में आग लगाकर मर जाना ही श्रेयस्कर है[2] । जैसे चकोर चन्द्रमा में अनुरक्त है उसी प्रकार सूर के भरत भी राम का मुखमण्डल देखकर ही जीवित रहते हैं । रामचन्द्र के बिना भरत का अयोध्या से क्या नाता[3] ।

1- तैं केकइ कुमति कियौ ।
अपने कर करि काल हँकारयौ, हठ करि नृप अपराध लियौ ।
श्रीपति चलत रह्यौ कहि कैसैं, तेरौ पाहन- कठिन हियौ ।
मो अपराधी के हित कारन, तैं रामहिं बनवास दियौ ।।
कौन काज यह राज हमारैं, इहिं पावक परि कौन जियौ । सूर-रामचरितावली, 37 ।
लौटे " सूर" धरनि दौउ बंधु, मनौं तपत विष विषम पियौ ।।

2- आजु अयोध्या जल नहिं अँचवौं मुख नहिं देखौं माइ ।
सूरदास राघव बिछुरे हैं, मरन भलौ दव लाइ ।। सूर-रामचरितावली, 36 ।

3- मुख-अरबिंद देखि हम जीवत, ज्यौं चकोर ससि राता ।
" सूरदास" श्रीरामचंद्र बिनु कहा अयोध्या नाता ।।
सूर-रामचरितावली, 38 ।

सूर के भरत की भक्ति दास्य भाव की है । यदि सेवक के लिए स्वामी का राज्य अपहरण कर लिया जाए तो इससे बढ़कर पापाचरण और क्या हो सकता है । भरत को अपने लिये राज्य तथा राम को वनवास दिया जाना बड़ी अनैतिक तथा अनुचित बात लग रही है । जिस प्रकार श्वान सिंह की बलि नहीं खा सकता उसी प्रकार भरत भी राम के राज्य को ग्रहण नहीं कर सकते[2] । व्याकुल भरत राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं । वहाँ राम से स्पष्ट रूप से कहते हैं " हे रघुनाथ । आपसे विमुख होकर किस प्रकार जीवित रहा जा सकता है ? आपके चरण-कमलों के दर्शन के बिना तो पृथ्वी । राज्य। के समस्त सुख तुच्छ एवं नगण्य हैं । उनकी परवाह कौन करे ।" भरत ने हठ करके राम के चरण पकड़ लिए और कहा, " हे नाथ । निष्ठुरता को त्याग दीजिए । कौसल्या माता बहुत दुःखी हैं इसलिए आप घर चलिए ।"[3] जब राम किसी प्रकार अयोध्या को नहीं लौटे तो भरत उनकी चरण-पादुकाओं को अवलम्ब रूपी ग्रहण करके अयोध्या को लौट गए ।

सूर के भरत वीर हैं । राम उनकी वीरता की प्रशंसा लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में करते हैं । उनका कथन है, " इतनी विपत्ति भरत यदि सुन पाते तो वे सेना सजाकर यहाँ आ जाते । राक्षसों की तो बात ही क्या है, वे धनुष हाथ में लेकर सम्पूर्ण विश्व को जीत सकते हैं ।"[4] सूरदास ने हनुमान के संजीवनी लाते समय अयोध्या में भरत से मिलने का वर्णन किया है । हनुमान के मुख से सीता-हरण तथा लक्ष्मण के ब्रह्मास्त्र द्वारा आहत होने की दुखद घटनाओं को सुनकर भरत को बहुत दुःख हुआ । विलम्ब होते देख उन्होंने हनुमान से कहा, " पर्वत सहित मेरे बाण पर बैठ जाओ तो तुरन्त ही राम के पास पहुँचा दूँ ।" सूर के भरत बलवान् हैं परन्तु उन्हें अपने बल पर गर्व नहीं है। समस्त श्रेय तो श्रीराम का

- -

1- धुग तव जन्म, जिएन धुग तेरो, कही कपट मुख बाता ।
सेवक राज, नाथ बन पठए, यह कब किनी विधाता ।। सूर-रामचरितावली, 38 ।

2- आए भरत दीन ह्वै बोले, कहा कियौ, केकइ माइ ।
हम सेवक, वे त्रिभुवन पति, का स्वान सिंह बलि खाय ।। सूर-रामचरितावली, 36 ।

3- तुमहिं विमुख रघुनाथ, कौन विधि जीवन कहा बनै ।
चरन- सरोज बिना अवलोके, को सुख धरनि गनै ।
हठि करि रहे, चरन नहिं छाड़े, नाथ लखौ मिठुराई ।
परम दुखी कौसल्या जननी, चलौ सदन रघुराई ।। सूर-रामचरितावली, 42 ।

4- इतनी विपति भरत सुनि पावैं, आवैं साजि बरूथ ।
कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, बिनु सिलाधर जूथ ।।

सूर-रामचरितावली, 167 ।

है जिनकी पादुकाएँ भरत ने शिरोधार्य कर रखी हैं जिनके बल अथवा प्रताप से भरत भरत कहलाते हैं।[1]

भरत के स्वरूप का वास्तविक वर्णन तो महाकवि ने उत्तरकाण्ड के एक पद में ही सम्पूर्णता के साथ कर दिया है। श्री राम भरत की ओर संकेत करते हुए सुग्रीव से कहते हैं, " कपिराज ! वह देखो, जिनके सिर पर मेरी चरण पादुका है वे भरत आ रहे हैं। मेरे भाई का शरीर मेरे वियोग में कृश हो गया है। सभी राज सुखों का भोग उन्होंने मन से भुला दिया है। तपस्या, बड़े भाई के प्रति छोटे का व्यवहार, सेवा, स्वामी के प्रति सेवक का धर्म इन सब बातों की उन्होंने संसार को शिक्षा दी है।"[2]

भरत को देखकर राम विमान त्यागकर पैदल ही दौड़ चले। यहाँ पाठक को अनायास ही ग्राह से गज की रक्षा करने वाले गरुड़ छोड़कर पैदल दौड़ते हुए भगवान विष्णु का स्मरण हो आता है। राम ने भरत को उठाकर हृदय से लगाया और प्रेममय अश्रुधारों से उन्हें स्नान करा दिया। ऐसा लगा मानों विरह की अग्नि में जलते हुए भरत की ज्वाला श्री राम ने शांत कर दी।

अब भरत ने श्रीराम को मणिमय आसन पर बैठाकर उनका पाद-प्रक्षालन किया। चरण धोते समय नेत्रों से प्रेमाश्रु बरसने लगे। राम के पावन चरणों का स्पर्श करते ही भरत के अंग-प्रत्यंग के दुख दूर हो गए। भरत द्वारा राम के चरण धोने का वर्णन कवि ने पूरे एक पद में किया है[4] मानों राम के चरणों में अपनी भक्ति समर्पित की हो। दास्य भक्ति का यही चरमोत्कर्ष है।

1- त्यों परबत तर बैठि पवन सुत। हौं प्रभु पै पहुँचाऊँ।
" सूरदास" प्रभु-पाँवरि मम सिर, इहिं बल भरत कहाऊँ।। सूर-रामचरितावली, 175।

2- देखौ कपिराज। भरत ये आए।
मम पाँवरी सीस पर जाके, कर-अँगुरी रघुनाथ छाए।।
छीन सरीर बीर के बिछुरैं, राज-भोग चित हौं बिसराए।
तप तरु लघु-दीरघता, सेवा, स्वामी धर्म सब जगहिं सिखाए।। " " , 195।

3- पुष्प-विमान दूरिहीं छाँड़ि, चपल चरन आवत प्रभु धाए।
आजानु-बाहन पगनि केवट-सुत कनकदण्ड ज्यौं निरत उठाए।।
भेंटत आँसू भरे पीठि पर, बिरह अगिनि मनु जात बुझाए।

4- मनिमय आसन आनि धरे।
दधि-मधु-नीर कमल के दोपर आपुन भरत अरे।।
प्रथम भरत बैठाइ बंधु को, यह कहि पाइ परे।
हौं पावौं प्रभु-पाइ-परवारन, रुचि कर तौ पकरे।।
निज कर चरन पखारि प्रेम-रस आनँद आँसु ढरे।
जनु सीतल सौ तप्त सलिल दै, सुखित समीर करे।
परसत पानि चरन पावन, दुख अंग-अंग सकल हरे।
" सूर" सहित आनँद चरन-जल सेवत सीस धरे।। सूर-रामचरितावली, 196।

तुलसी पूर्व रामकाव्य में रसिकोपासना

उपर्युक्त के अतिरिक्त रामभक्ति का एक रसिक सम्प्रदाय भी प्रचलित हुआ था। यह कृष्ण भक्ति के रसिक कवियों के समान ही भगवान की गोप्य रास लीलाओं का श्रृंगारपूर्ण वर्णन करते थे तथा युगल स्वरूप का ध्यान करते थे। राम भक्ति में यह रसिक कवि यद्यपि तुलसी से पर्याप्त समय पूर्व से ही अपनी रचनाएँ करते आ रहे थे परन्तु रामोपासना की इस पद्धति के एक सम्प्रदाय विशेष तक सीमित होने के कारण तथा सिद्धान्तों की गोपनीयता के कारण इनके काव्यमय उपदेशों का प्रचार केवल सम्प्रदाय के लोगों तक ही सीमित रहा। राम काव्य की इस धारा का भी मूल- स्रोत वाल्मीकि रामायण में ही है जो कालान्तर में संस्कृत के ललित साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। राम भक्ति की यह मधुर भावना की धारा आनन्द रामायण रामलिंगामृत, भुशुंडि रामायण, हनुमत्संहिता, कौशल खण्ड आदि ग्रन्थों में स्पष्टतः प्रवाहित है। हिन्दी काव्य में यह सूरदास के काल से प्रवाहित है तथा राम भक्ति की इस मधुर-भाव धारा पर कृष्ण-भक्ति का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई देता है। डा० माता प्रसाद गुप्त के अनुसार इस धारा के आदि प्रवर्तक स्वामी अग्रदास हैं जिन्होंने अग्रअली के नाम से रचनाएँ की हैं[1]। जनकनन्दिनी की एक सखी के रूप में उसी भावना से अग्रदास ने भक्ति की है। उनसे निसृत भक्ति भावना की यह मधुर उपासना धारा तुलसी के मर्यादावाद के प्रभाव से दब गई, परन्तु कालान्तर में रीतिकाल में जब सम्पूर्ण काव्य लगभग श्रृंगारमय हो गया था तब यह धारा अपने सम्पूर्ण वेग से पुनः प्रकट होकर मधुर-रस-स्रोत प्रवाहित करने लगी। श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र ने रामभक्ति में रसिक भावना का स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध करते हुए कहा है, " रामाश्रित मधुर उपासना अपने आप में ही प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित-पुष्पित, स्वतंत्र साधना श्रेणी के रूप में ही इस उत्तरकाण्ड में छा गई थी और फिर भी मर्यादा की मुखता के कारण इसे छूकर देखने का अवसर नहीं मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य ही बनी रही[2]।"

स्वामी अग्रदास के शिष्य नाभादास जी हुए हैं। नाभादास ने अपने " भक्तमाल" में स्वामी रामानन्द के शिष्य प्रशिष्यों की दशधा भक्ति का भण्डार बताया है। नवधा भक्ति के पश्चात् दशधा भक्ति प्रेम लक्षणा भक्ति है। नाभादास जी ने मानदास की

1- हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० 305। ले० डा० माता प्रसाद गुप्त।

2- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना- पृ० 118। ले०- श्री भुवनेश्वर नाथ मिश्र।

श्री रघुनाथ जी की गोप्य केलि प्रकट करने वाला बताया गया है । उन्होंने स्वयं दास्य भक्ति की विवेचना नहीं की है । प्रियादास के अनुसार नाभादास ने " नाभा अली" के नाम से काव्य रचना की है ।[1]

स्वामी अग्रदास स्वामी कृष्णदास पयहारी के शिष्य थे तथा इनका आविर्भाव विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माना जाता है । अग्रदास के शिष्य नाभादास ने अपने गुरु की भक्ति निष्ठा के विषय में एक छप्पय भक्तमाल में लिखा है ।[2] भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने एक कवित्त में राजा मानसिंह । आमेर का राजा। के स्वामी अग्रदास के दर्शनार्थ आने का वर्णन किया है ।[3]

वस्तुतः रामभक्ति में रसिक धारा शठकोपाचार्य से ही चली आ रही थी । यह साधना रहस्य साधना के नाम से प्रचलित थी तथा इसके अधिकारी केवल आचारनिष्ठ महात्मा ही थे । स्वामी अग्रदास ने इस रसिक रहस्य साधना की अपने काव्य में व्याख्या की तथा इसको संगठित किया । स्वामी अग्रदास मधुरभाव उपासकों को रसिक कहते थे, अतएव उनके सम्प्रदाय का नाम ही रसिक सम्प्रदाय पड़ गया । अग्रदास ने अपने सम्प्रदाय में आचार पर बल दिया है परन्तु शृंगार रस को भी अतुलनीय माना है ।

- -

1- भक्तमाल । कथा। - पृ0 34 ।

2- सदाचार ज्यों संत प्राप्त जो करि आए । सेवा सुमिरन सावधान परणत्रिय लाये ।।
प्रतिष्ठ काम सों प्रीति, सुख कृत करत विरन्तार । रसना निकसि नाम, मनहुँ बंधी धारावार
।श्री। कृष्णदास कृपा करि भक्तिदत्त, मन क्रम करि अटल दयो ।
।श्री। अग्रदास हरिभजन बिन, काल वृथा नहिं बितयो ।। भक्तमाल, छप्पय 41 ।

3- दरसन काज महाराज मानसिंह आयो,
छायो बाग माँझ, बैठे द्वार द्वारपाल हैं ।
हारि के पठीया गए बाहिर ले डारिबे को,
देखि भीरभार, रहे बैठि ये रसाल हैं ।
आये देखि नाभा जू ने साष्टांग करी ,
ठाढ़े, भरी जल आँखें बली अँसुवनि जाल हैं ।
राजा मग चाहि, हारि, आनि के निहारि नैन,
जानन आय जानी श्री दासनि दयाल हैं । भक्तमाल। कथा। पृ0 320 ।

4- रस शृंगार अनूप है तुलयें को कोउ नाहिं । तुलये को कोउ नाहिं सोइ अधिकारी जग मैं ।
कंचन कामिनि देखि हलाहल लागत तन मैं । अंध जाचत जग के भोग रोग सम त्यागेउ छन्दा
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा। नहीं "अग्र" अस सन्त के सरि लायक जग माहिं ।
रस सिंगार अनूप है तुलयें को कोउ नाहिं ।।

अग्रदास कुंडलिया ।

अग्रदास की रचनाएँ- हितोपदेश उपबाण बावनी, ध्यान मंजरी, रामध्यानमंजरी, कुंडलिया, रागचरित के पद, राम ज्योनार तथा पदावली हैं परन्तु आचार्य शुक्ल ने इनमें से प्रथम चार का ही इनकी रचनाओं में उल्लेख किया है । इनकी रचनाओं में " अनुरागसार" अथवा शृंगार सागर को भी माना गया है परन्तु यह उपलब्ध नहीं है । डा० अमरपाल सिंह के अनुसार स्वामी अग्रदास की रचनाएँ निम्नलिखित हैं-[2]

(1) ध्यान मंजरी अथवा रामध्यान मंजरी ।

(2) कुंडलिया अथवा हितोपदेश उपबाण बावनी ।

(3) रामज्योनार ।

(4) पदावली ।

तुलसी पूर्व राम साहित्य में स्वामी अग्रदास के काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है । अग्रदास का काव्य रामभक्ति में रसिक धारा का उद्गम स्थल है । तुलसी का मर्यादा बाँध भी इस रसिक धारा को बाँध नहीं सका और तुलसी के बाद अवसर पाकर यह धारा अपने सम्पूर्ण वेग से प्रवाहित हो चली । रसिक सम्प्रदाय की रचनाओं में भरत की सुमर्यादित भक्ति का वर्णन बहुत कम है । स्वयं स्वामी अग्रदास की रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन जिससे भरत के स्वरूप का विकास हुआ हो अनुपलब्ध ही है । रीति कालीन रसिक कवियों के विषय में जहाँ तुलसीदासोत्तर रामकाव्य के अन्तर्गत की गई है ।

चतुर्थ अध्याय

तुलसी काव्य में भरत

हिन्दी साहित्य में " रामचरितमानस" सम्पूर्ण रूप से रामचरित का प्रतिनिधि काव्य है । मानस के पूर्व अथवा पश्चात् रचे गए समस्त रामकाव्य या तो मानस में प्रतिबिम्बित हैं अथवा मानस से प्रस्फुटित होकर काव्य धारा के रूप में प्रवाहित हुए हैं। वाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम तुलसी की लेखिनी तक आते आते परमात्मा राम बन चुके थे और तुलसी ने उन्हें पूर्ण परब्रह्म परमेश्वर के पद पर प्रतिष्ठित कर सम्पूर्ण उत्तर भारत को रामभक्ति की पीयूष धारा से अभिषिक्त कर दिया । अपने युग में तो रामचरितमानस का जो भी महत्व रहा हो, कालान्तर में वह जन-जन के मानस का हार बन गया तथा उत्तरभारत का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य सिद्ध हुआ । " मानस" का स्थान साहित्य जगत् से भी बढ़कर धर्म तथा नीति के जगत् में है । " मानस" धर्म के क्रियात्मक रूप का आदर्श है तथा लोक जीवन " मानस" को ही सर्वग्राह्य एवं सुगम धार्मिक ग्रन्थ समझता है । " मानस" में जो कुछ कहा गया है वह लोक के लिए अनुकरणीय है तथा धर्माचरण का सुगम स्वरूप है । तुलसी ने उत्तरकाण्ड के एक प्रसंग में कहा है " निर्णय सकल पुराण वेद कर । कहउँ तात जानहिं कोविद नर ।।" वस्तुतः मानस स्वयं ही सम्पूर्ण वेद-पुराण-स्मृति आदि का सारतत्व है, जो अत्यन्त मधुर, सरल, दोषरहित एवं ग्रहणीय है । जिस प्रकार राम के स्वरूप की अनन्तता के कारण उनके समग्र स्वरूप को लेखिनीबद्ध नहीं किया जा सकता है उसी प्रकार काव्य शिरोमणि " रामचरितमानस" के महत्व को भी उसकी अनन्त प्रभाव-शीलता के कारण पूर्णरूपेण अभिव्यक्त किया जाना सम्भव नहीं है । " मानस" उत्तर भारत के रामभक्तों का "मन" है । उनके जीवन का प्रेरणामय आधार है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, " तुलसी के मानस से रामचरित की जो शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँच कर भगवान् के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया । रामचरित की इस जीवन-व्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित सब के हृदय और कण्ठ में सब दिन के लिए बसा दिया ।"[1] " रामकाव्य उत्पत्ति और विकास" के लेखक फादर कामिल बुल्के ने भी लिखा है, " राम-भक्ति के विकास में " रामचरितमानस " का महत्व अद्वितीय है ।"[2]

1- गोस्वामी तुलसीदास- । ले0- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ- 4 ।

2- रामकथा- उत्पत्ति और विकास- ले0 फादर कामिल बुल्के पृष्ठ 243 ।

तुलसी की रामकथा के आधार- तुलसी का "मानस" कथा के विषय में मुख्य रूप से वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है तथा उसकी जड़ें वेद-पुराण एवं अन्य शास्त्रों में भी प्रतिष्ठित हैं। तुलसी ने स्वयं ही ग्रन्थारम्भ में लिखा है:-

" नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-
भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति ।।"[1]

वाल्मीकीय रामायण के अतिरिक्त कवि अध्यात्म रामायण से भी प्रभावित हुआ है। अध्यात्म रामायण के समान ही तुलसी ने भी राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। राम का अपनी माता को अपना विष्णु रूप दिखाना, मृगया में पावन हरिणों या मृगों को मारना, राम के निर्वासन के लिए सरस्वती का अयोध्या भेजा जाना, माया सीता का प्रसंग, रावण द्वारा हरण किए जाने का प्रसंग तथा सेतुबन्ध के समान शिव प्रतिष्ठा आदि अध्यात्म रामायण पर ही आधारित हैं।

डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार तो कथा प्रसंगों में तुलसी ने अध्यात्म रामायण को ही प्रमुख आधार बनाया है। उनका कथन है कि," अध्यात्म रामायण को तो वे। तुलसी। मानस में प्रायः आधार रूप में लेकर चले हैं। यदि दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि मानस में पूरे प्रसंग के प्रसंग अध्यात्म रामायण के छायानुवाद मात्र हैं। इस प्रकार की सहायता उन्होंने वाल्मीकि रामायण से नहीं ली है।"[2]

राम सीता का धनुष तोड़ने से पूर्व जनकपुर में पुष्पवाटिका में पारस्परिक दर्शन तथा प्रेम का सुन्दर वर्णन तुलसी ने मानस तथा गीतावली में "प्रसन्न राघव" नाटक के प्रभाव से किया है। अरण्यकाण्ड के अन्त में नारद का विरही राम से मिलना तथा उनसे भक्ति का वरदान प्राप्त करने की कथा मानसकार ने सम्भवतः रामगीत गोविन्द के प्रभाव से अंकित की है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त रामचरित मानस के निम्नलिखित प्रसंग भी वाल्मीकि रामायण से भिन्न हैं:-

(1) शिव-कथा । वाल्मीकि ने शिवकथा वर्णन नहीं किया है।

(2) धनुष यज्ञ में राजसभा के मध्य राम द्वारा धनुष तोड़ने का मानस का प्रसंग इस

- -

1- श्री रामचरितमानस, बालकाण्ड । मंगलाचरण।, श्लोक 7 ।
2- तुलसीदास - ले० डा० माता प्रसाद गुप्त । पृ० 283 ।

जैसे में वाल्मीकि रामायण में राम को पेटिका में रखा धनुष दिखाया जाता है और राम उसे चढ़ा देते हैं ।

(13) वाल्मीकीय रामायण में रामविवाह के पश्चात् बारात के अयोध्या के लिए प्रस्थान करने पर मार्ग में परशुराम का आगमन दिखाया गया है, परन्तु रामचरितमानस में परशुराम संवाद धनुर्भंग के पश्चात् तथा राम विवाह के पूर्व वर्णित है । लक्ष्मण तथा परशुराम के मध्य वाद विवाद भी मानस की विशेषता है ।

(14) वाल्मीकीय रामायण में महाराज जनक के चित्रकूट जाने का उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु " मानस" में भरत के चित्रकूट चले जाने के पश्चात् जनक भी चित्रकूट पहुँचते हैं तथा राम को अयोध्या लौटाने के प्रयास से सम्बन्धित सभाओं में भाग लेते हैं ।

(15) मानसकार ने श्रीराम के प्रति अटूट श्रद्धा का भाव रखते हुए तथा मर्यादा के कारण भी किसी पात्र से मर्यादा का उल्लंघन करने वाले कठोर एवं अभद्र शब्द नहीं कहलाए हैं, वाल्मीकि रामायण में कौसल्या, दशरथ तथा लक्ष्मण आदि अवसरानुकूल कठोर उक्तियों का प्रयोग करते हैं । डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस प्रकार के मर्यादा-पूर्ण चरित्र-चित्रण को तुलसी की मौलिकता बताया है, " इस मौलिक योग का दर्शन हम सबसे अधिक उनकी चरित्र कल्पना में करते हैं ।"[1]

(16) हनुमान द्वारा संजीवनी लाने के लिए जाते समय कालनेमि का वध तथा पर्वत लेकर आते समय भरत के बाण से आहत होकर गिरना तथा भरत से भेंट की कथा भी " मानस" में है , वाल्मीकि रामायण में इन घटनाओं का उल्लेख नहीं है ।

(17) रामचरितमानस में दी गई उत्तरकाण्ड की विषयवस्तु वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा से पर्याप्त मात्रा में भिन्न है । तुलसी ने राम के राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन किया है और चारों भाइयों के दो-दो पुत्रों के जन्म का केवल तीन चौपाइयों में उल्लेख मात्र कर दिया है ।[2] वाल्मीकि रामायण

1- तुलसीदास- ले० डा० माताप्रसाद गुप्त । पृ०- 284 ।

2- दुइ सुत सुन्दर सीता जाए । लवकुश वेद पुरानन्ह गाए ।।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर । हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर ।।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे । भए रूप गुन सील घनेरे ।।

रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 25 ।

के उत्तरकाण्ड में सीता निष्कासन की कथा सविस्तार वर्णित है तथा लव-कुश के जन्म, शिक्षा दीक्षा, रामायण गान आदि का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। राम के निज लोक गमन की कथा भी वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में मिलती है। परन्तु स्मरणीय है कि अधिकांश विद्वान वाल्मीकि रामायण के उत्तर-काण्ड को ही प्रक्षिप्त मानते हैं। "मानस" के कुछ संस्करणों में भी लव-कुश काण्ड नामक एक प्रक्षिप्त काण्ड देखा जाता है जिसे विद्वान् तुलसी की रचना नहीं मानते। इसके अतिरिक्त भी तुलसी की कुछ मौलिक उद्भावनाएँ रामचरितमानस में स्पष्टतः प्रस्फुटित हुई हैं:-

(1) मानस का रूपक।

(2) रामचरित के तीन वक्ता तथा तीन श्रोता- शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि- गरुड़ तथा याज्ञवल्क्य- भारद्वाज।

(3) चित्रकूट जाते समय एक तापस से भेंट तथा उसके द्वारा राम की वन्दना। आचार्य शुक्ल का अनुमान है कि इस ढंग से कवि ने अपने आपको ही राम के पास पहुँचाया है।

(4) नारद की श्रीराम से अनेक बार भक्तिपूर्ण भेंट।

(5) हनुमान् जी का सुग्रीव से अनुमति प्राप्त कर राम की सेवा में ही रहना।

(6) काकभुशुण्डि की कथा एवं ज्ञान-भक्ति विवेचन आदि।

(7) शिव तथा राम भक्ति का सुन्दर समन्वय।

यह बात निर्विवाद है कि तुलसी अपने समय के अद्वितीय विद्वान थे। उन्होंने समस्त वेद शास्त्रों, पुराणों, उस समय प्रचलित रामायणों, संस्कृत के राम विषयक लक्षित काव्यों तथा लोक साहित्य का विशद अध्ययन किया था। परिणाम-

---

1- रामकथा उत्पत्ति और विकास - पृष्ठ 245, अनुच्छेद 296 ।

2- (3) हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 149 । लेखक- रामचन्द्र शुक्ल । ।

3- (4) तेहि अवसर एक तापस आवा। तेज पुंज लघुबयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तनु पुलकि निज इष्टदेव पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥
राम प्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरे तन कहि सब कोऊ॥

रामचरितमानस, 2,210-11 ।

स्वस्य उनके काव्य में इन विभिन्न साहित्य-कृतियों के सुन्दरतम परन्तु लोक कल्याणकारी अंशों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है । तात्पर्य यह है कि तुलसी की रामकथा का "मानस" तथा अन्य ग्रन्थों में वाल्मीकीय रामायण का आधारभूत ग्रन्थ है तथा अध्यात्म रामायण ने अवतारवाद, भक्ति तथा ज्ञान की विवेचनाओं में तुलसी के काव्य को प्रभावित किया है । उनके कवि हृदय को प्रसन्न-राघव नाटक, हनुमन्नाटक तथा ललित साहित्य के राम कथा विषयक अन्यान्य काव्य ग्रन्थों ने स्पर्श किया तथा तुलसी ने उनके अंशों को चुनकर लोक कल्याणार्थ अपनी काव्यमाला में पिरो लिया । डा० कलेव प्रसाद मिश्र के अनुसार, " उन्होंने गीता की अनासक्ति, श्रमणों का अहिंसावाद, वैष्णवों का अनुराग, जैनों का वैराग्य, शाक्तों का जयघोष, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, रामानुज की भक्ति भावना, निम्बार्क का द्वैताद्वैत भाव, मध्व की रामोपासना, वल्लभ का बालरूप आराध्य, चैतन्य का प्रेम, गोरख आदि योगियों का संयम, कबीर आदि संतों का नाम माहात्म्य ही नहीं, किन्तु मुसलमानों का मानव-बन्धुत्व तथा सामूहिकत्व भी आदरसहित अपनाया ।[1]" डा० कलेव प्रसाद मिश्र आगे लिखते हैं, " मूल कथा ली गई वाल्मीकीय रामायण से, संवाद तथा विवेचन की शैली ली गई भक्ति परक अध्यात्म रामायण से, भाव-प्रवणता और आकर्षण के लिए मसाले लिए गए धार्मिक एवं ललित साहित्य के अन्य उपयुक्त ग्रन्थों से ।[2]" " रामायण निगदितं अपि चिन्त्योऽपि" का अर्थ भी यही है।

तुलसी के मानस की कथावस्तु का अध्ययन करने के दृष्टिकोण से श्री श्रीधर सिंह की कृति " मानस का कथा शिल्प" अत्यन्त उपयोगी है । उन्होंने आधार ग्रन्थों से तुलना करते हुए मानस की कथा की मौलिकता एवं नवीनता को अभिव्यक्ति समझाया है । " मानस" की कथावस्तु विषद अध्ययन के लिये डा० रांगेय राघव के " तुलसीदास का कथा शिल्प", श्री परशुराम चतुर्वेदी की " मानस की रामकथा," प्रो० जगन्नाथ राय की " रामचरितमानस की कथावस्तु" आदि भी उपादेय ग्रन्थ हैं । कथा के क्षेत्र में वाल्मीकि और तुलसी के काव्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए डा० राम प्रकाश अग्रवाल के द्वारा प्रस्तुत शोध ग्रन्थ " वाल्मीकि और तुलसी" (साहित्यिक मूल्यांकन) अधिक महत्वपूर्ण एवंउपयोगी हैं ।

- -

1- मानस में रामकथा- 2, पृ० 64 ।

2- मानस में रामकथा- 2, पृ० 80 ।

रामचरितमानस का रचनाकाल- " मानस" में कवि ने रचना काल का निर्देश स्वयं ही कर दिया है । " संवत् सोरह सै इकतीसा । करउँ कथा हरि पद धरि सीसा ।। " स्पष्ट है कि रचना प्रारम्भ सं0 1631 के चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी । भौमवार। को किया । " मानस" की शैली एवं काव्य सौष्ठव से स्पष्ट है कि यह कवि की प्रौढ़ रचना है तथा उनके कवि-जीवन के मध्यकाल में रची गई है ।

रामचरितमानस की कथावस्तु- रामचरितमानस की कथावस्तु का अनुक्रमणिका के रूप में संक्षिप्त विवरण स्वयं गोस्वामी जी ने कथा के प्रारम्भ तथा अन्त में दिया है । रामचरितमानस की कथा सर्व विदित है और उसका परिचय साधारण एवं असाधारण सभी प्रकार के व्यक्तियों से है । प्रबन्ध के विस्तार को सीमित रखने के दृष्टिकोण से यहाँ कथा-वस्तु का विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता ।

मानस में भरत-चरित्र-

भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होय भवरस विरति ।।

भक्त शिरोमणि भरत का जीवन सियाराम के प्रेम पीयूष से परिपूर्ण था इसीलिए यम-नियम-संयम से परिपूर्ण विषम व्रत का आचरण वे ही कर सकते थे । संसार के दुःख और संतापों को, भावना की दरिद्रता को, मानव सुलभ दम्भ तथा दोषों को भरत के अतिरिक्त अपने सुयश की अद्भुत कथा से औरकौन दूर कर सकता है तथा अति साधारण व्यक्तियों के हृदय में भी राम भक्ति की सरिता भरत के अतिरिक्त और कौन बहा सकता है अर्थात् जीव को परब्रह्म राम की ओर उन्मुख करने के लिए भरत का चरित्र ही सबसे बड़ा साधन है[1] । इसीलिए मानसकार का कथन है कि भरत के चरित को सादर परन्तु नियमपूर्वक सुनने से श्री सीताराम के चरणों में भक्ति तथा सांसारिक विषय वासनाओं के रस से विरक्ति अवश्य ही हो जाती है । इतना ही नहीं भरत के स्मरण मात्र से जिन्हें राम-प्रेम सुलभ नहीं होता उनके समान अभागा कौन है[2]" स्पष्ट है कि भरत का चरित्र

1- सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जन्म न भरत को ।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठ राम सनमुख करत को ।। मानस, 2,326 ।

2- कहतसुनत सतभाय भरत को। सीयराम पद होहि नरत को ।।
सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को । जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को ।।

रामचरितमानस 2,304 ।

तुलसी ने राम भक्त के रूप में ही मुख्यतः प्रस्तुत किया है । इस दिशा में तुलसी के दृष्टिकोण को समझ लेना श्रेयस्कर होगा ।

रामचरितमानस की भूमिका में तुलसी ने अपना चरित्र विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट किया है । भरत का भी स्वरूप वर्णन उन्होंने बालकाण्ड के प्रारम्भ में ही वन्दना के रूप में कर दिया है[1] । डा० राम प्रकाश अग्रवाल के अनुसार इस प्रस्तावना से तुलसी के चरित्र-चित्रण विषयक निम्नलिखित विचार दिग्दर्शित होते हैं[2] :-

(1) सामान्य मनोवैज्ञानिक स्तर पर चरित्र-विश्लेषण करना उनका लक्ष्य नहीं है क्योंकि उनके अनुसार " कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ।।" साधारण मनुष्य का चित्रण उनके अनुसार माँ शारदा का अपमान करना ही है ।

(2) राम कथा के समस्त पात्र उनके लिए वन्दनीय हैं ।

(3) सभी पात्र राम के आश्रित और आधीन हैं । राम के कारण ही उनका महत्व है ।

(4) सीता और राम का भी वस्तुतः एक ही व्यक्तित्व है । तुलसी ने इस बात को " गिरा-अरथ जल-बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।" कहकर स्पष्ट किया है ।

(5) पात्रों की एक निश्चित रूप-रेखा कवि के मन में है, उसी के अनुसार उसने कथा को गूँथा है । सभी पात्र अवतारवाद से सम्बन्धित हैं ।

(6) कथा के समान कवि ने पूर्व परिचय के नाते अधिकांश पात्रों की स्थिति और चरित्र का आभास प्रारम्भ में ही दे दिया है । भरत के विषय में कहा गया है, " पुनहुँ पुण्य भरत के चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ।। रामचरन पंकज मनजासू । लुब्ध मधुप इव तजइ न पासू ।" इन दो पंक्तियों में ही कवि ने भरत के स्वरूप सम्बन्धी अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है ।

(7) उसकी कथा में उत्तम और अधम पात्रों का सम्मिलित समाज है । इस प्रकार आदर्श और यथार्थ का मेल स्वयमेव होगया है ।

(8) राम का चरित्र सावधानी से समझा जाना चाहिए, उनके दृश्यमान दोष भी मूल रूप में गुण ही हैं ।

(9) राम के चरित्र का विश्लेषण उनका प्रधान लक्ष्य है ।

1- रामचरितमानस - 1,17 ।

2- वाल्मीकि और तुलसी- साहित्यिक मूल्यांकन- पृ० 115 ।

॥10॥ उनके राम एक साथ ही परब्रह्म, लोक प्रतिष्ठ ऐतिहासिक राम ॥ दशरथी राम॥, ईश्वर और विष्णु हैं । मंगलाचरण में कहा है, " वन्देऽहं सततं कारुण्यं रामाख्यमीशं हरिम्" ।

॥11॥ राम के स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्वरूपों का वर्णन उनका अभिप्रेत है । दोनों में अज्ञानजन्य भेद प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में एकता या अभेद है । यह " सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा " कह कर स्पष्ट कर दिया गया है ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन को मानस के भरत पर घटित करने पर ज्ञात होगा कि भरत राम के बन्धु ही नहीं उनके सबसे बड़े भक्त हैं । भरत पूर्णरूपेण राम के अधीन हैं । राम उनके प्राण और जीवन हैं[1] । वे राम की परछाईं हैं[2] । भक्ति की पराकाष्ठा भी यही है कि भक्त भगवानमय हो जाये । उसका इतना उत्कर्ष हो कि उसमें और इष्ट में अभेद हो जाये । यही उसकी महिमा का विस्तार भी है । भरत की यह भक्ति जन्य महिमा इतनी अलौकिक तथा व्यापक है कि राम ही इसको जानते हैं परन्तु वर्णन वे भी नहीं कर सकते[3] । भक्त शिरोमणि भरत[4] की महिमा अनिर्वचनीय है ।

भरत के लिये राम केवल अग्रज मात्र ही नहीं हैं, वे उनके प्रियतम हैं, उनके आराध्य इष्ट हैं । राम के चरणों का प्रेम ही भरत का परम प्राप्य है । इस अमृतमय प्रेम को प्राप्त करने का साधन भी यही पीयूषमयी प्रेम है । महाराज जनक विदेह ने चित्रकूट में सुनयना को समझाया था, " परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ।। साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ।।" यह निष्काम भक्ति है जिसका ध्येय सदा, सर्वदा आराध्य के पदपद्मों में निरन्तर प्रेम की वृद्धि है । इसी भक्ति के वशीभूत होकर भक्त भगवान से मात्र भक्ति का वरदान

- -

1- राम प्रानहुँ तें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे ।।
रामचरितमानस, 2,169 ।

2- मन थिर करहु देव डरु नाहीं । भरतहि जानि राम परिछाहीं ।।
रामचरित मानस, 2,266 ।

3- अगम सबहिं बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ।।
भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।।
रामचरितमानस, 2,288 ।

4- राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ।।
रामचरितमानस 2,219 ।

चाहता है । इसी भँति ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है । यह आनन्द मोक्ष से भी बढ़ कर है । इसीलिए सगुणोपासक मोक्ष नहीं लेते हैं तथा उनके राम अथवा परमेश्वर अपनी भक्ति देते हैं । भरत भी इसी प्रकार की भक्ति के पथ के संयमी पथिक हैं । वे मन-तन-सर्वत्र राम के प्रेम का वरदान माँगते रहते हैं ।यथा-

(1) भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू । सकल सुखद सेवक सुरधेनू ।।
जोरि पानि बर मागउँ एहू । सीय राम पद सहज सनेहू ।।
रामचरितमानस 2,197 ।

(2) देखा स्यामल धवल हिलोरे । पुलक सरीर भरत कर जोरे ।।
सकल काम प्रद तीरथ राऊ । बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ।।
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।।
अस जियँ जानि सुजान सुदानी । सफल करहिं जग जाचक बानी ।।
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ।।
रामचरितमानस, 2,204 ।

(3) तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा । निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ।
मन हीं मन मागहिं बरु एहू । सीय राम पद पदुम सनेहू ।।
रामचरितमानस 2,224 ।

भरत का यह राम प्रेम समस्त तर्क-वितर्कों से परे है । यह बुद्धि और विचार की सीमा की परिधि में नहीं आ सकता । भरत तो स्नेह तथा ममता की सीमा हैं ।[1] प्रेम के विषय में याचक का आदर्श उनको ग्राह्य है । उनका प्रेम कोई प्रत्युत्तर नहीं चाहता । प्रियतम उन्हें प्रेम करे अथवा न करे परन्तु वे उसे प्रेम करते रहेंगे । भले ही राम उनको कुटिल समझें, भले ही संसार उनको गुरुद्रोही तथा स्वामि द्रोही समझे परन्तु सीताराम के चरणों में उनका प्रेम अनुदिन बढ़ता ही रहे, यह उनकी कामना है ।[2]

1- देखि परम/भरत रघुबर की । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ।।
भरत अवधि सनेह ममता की । जद्यपि राम सीय समताकी ।।
रामचरितमानस 2,289 ।।

2- जानहुँ राम कुटिल कर मोही । लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही ।।
सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।।
रामचरितमानस 2,205 ।

यह चातक की उस प्रीति का अनुसरण है जिसमें मेघ चाहे जन्म भर चातक की तृष्णा बुझा दे तथा जल माँगने पर चाहे वज्र और पत्थर ही बरसाये फिर भी चातक की मेघ के लिए रट बनी ही रहती है क्योंकि चातक की रटन घटने से तो उसकी जात ही घट जायेगी, उसकी तो प्रेम बढ़ने में ही भलाई है[1]। स्वर्ण को तपाने से जैसे उसमें चमक आ जाती है उसी प्रकार प्रियतम के चरणों में प्रेम के नियम के निर्वहन से प्रेमी का गौरव बढ़ जाता है[2]। भरत का यह प्रेम सिध्दांत सर्वथा अनूठा है। यह प्रेम की पराकाष्ठा है। यह उसका अमृतमय स्वरूप है।

प्रेम मूलक भक्ति के समस्त लक्षण भरत की राम भक्ति में उपलब्ध हैं। नाम स्मरण, प्रियतम राम के चरित्र-श्रवण के प्रति अनुराग, प्रियतम के कष्टों की चिन्ता, तन-मन की सुधि का विस्मरण इत्यादि।

भरत के हृदय में अपने अग्रज के प्रति प्रेम प्रारम्भ से दृष्टिगोचर होता है। चारों भाइयों का साथ साथ खेलना, साथ ही भोजन करना, एक साथ ही पढ़ना तथा एक साथ ही कर्ण-वेध आदि संस्कारों का होना स्वाभाविक प्रेम की वृध्दि में सहायक साधन बने। राम के मृदु-वत्सल स्वभाव तथा उनके नेतृत्व ने तीनों अनुजों के हृदय को जीत लिया था। वे तीनों न केवल उनके अनुज ही थे अपितु वास्तविक रूप में अनुग बन गए थे। राम अपनी वत्सलता, स्नेहशीलता तथा उदारता के कारण खेल में स्वयं न जीतकर भरत को जिता देते थे। चित्रकूट की सभा में भरत ने राम के स्वभाव की इन्हीं विशेषताओं का वर्णन करते हुए बचपन के उन मधुर दिनों का स्मरण किया है तथा इस प्रकार राम को उनकी सहज वत्सलता का स्मरण कराया है[3]। बालकाण्ड में राम विवाह की सूचना तथा राम के पत्र को देखकर भरत के प्रेम की [illegible]

1- कहु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातक रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥
रामचरितमानस 2,205 ।

2- कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥
रामचरितमानस 2,205 ।

3- मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोहु न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
रामचरितमानस 2,260 ।

जो अभिव्यक्ति कुशल कवि ने दिखाई है, वह संक्षिप्त होते हुए भी हृदयस्पर्शी है।[1]

राम के राज्याभिषेक का निर्णय हो जाने पर जब राम तथा सीता के दाहिने अंग फड़कते हैं तब दोनों परस्पर यही कहते हैं कि " ये शुभ शकुन भरत के आगमन के पूर्व सूचक हैं। भरत को गए बहुत दिन हो गए हैं, उनसे मिलने की इच्छा बढ़ती जा रही है। शुभ शकुनों से प्रिय-मिलन का विश्वास होता है। संसार में हमें भरत के समान कौन प्रिय है। शकुन का फल निश्चित रूप से प्रिय भरत से मिलन ही है।[2]" राम के हृदय का यह प्रेम राम में भरत की अटूट आस्था तथा प्रेम का दृढ़ आधार है। भरत राम के प्रेम को भली प्रकार जानते हैं और उन्हें यह भी विश्वास है कि राम उनके हृदय की गति को जानते हैं।

ननिहाल में दुःस्वप्न देखने पर तथा अन्य अपशकुन दृष्टिगोचर होने पर वे माता पिता तथा भाइयों की कुशलता की कामना करते हैं।[3] इससे उनका स्वाभाविक भ्रातृ स्नेह प्रकट होता है। अयोध्या आने पर भी वे सबसे पहिले पिता, माताओं, सीता-राम तथा लक्ष्मण की कुशल पूछते हैं जो उनके स्वाभाविक भ्रातृ-स्नेह का सूचक है।[4] पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर वे अत्यन्त मर्माहत हुए। उस समय सबसे अधिक पछतावा उन्हें इसी बात का हुआ कि पिता स्वर्ग जाते समय उन्हें राम को नहीं सौंप गए।[5] परन्तु जब कैकेयी राम वन गमन का समाचार

1-केतक रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरत सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते पाती आई॥
कुसल प्रानप्रिय बन्धु दोउ अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस॥ 290॥
सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ बिसेषी॥
रामचरितमानस 1, 290-91।

2- राम सीय सनसगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहउ सगुन फल दूसर नाहीं॥
रामहिं बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥
रामचरितमानस, 2, 7।

3- मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥ मानस 2, 157।

4- कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता।
रामचरितमानस 2, 159।

5- जात न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपहु मोही।
रामचरितमानस 2, 160।

सुनाती है तब तो भरत को पिता का मरण भी भूल गया और और यह जानकर कि यह सब अनर्थ उनके ही कारण । उनको राज्य दिलाने के लिए। हुआ है वे स्तम्भित होकर मौन हो गए[1]। जिन राम को भरत प्राणाधिक प्रेम करते थे उनको उनके ही । भरत के ही। कारण वन-वन में भटकना पड़े, इससे बढ़कर शोक और पीड़ा का क्या कारण हो सकता है । माता के कुकृत्य पर उन्हें बहुत अधिक क्षोभ हुआ तथा उनका हृदय पश्चाताप से भर गया । इस घोर मानसिक उत्पीड़न से व्यथित भरत ने अपनी माँ की भर्त्सना की तथा राम की माता कौसल्या से मिलने चले गए । कौसल्या की दशा देखकर उन्हें घोर दुःख हुआ और उनके सामने अपनी निर्दोषिता को सिद्ध करने के लिए अनेक सौगन्धें खाईं । परन्तु कौसल्या उनके राम-प्रेम को जानती थीं उन्होंने उनसे स्पष्ट कहा कि राम तुमको प्राणों से भी प्रिय हैं और उन्हें भी तुम प्राण से अधिक प्रिय हो । चन्द्र भले ही विष-वमन करने लगे, बर्फ से भले ही अग्नि धारा प्रवाहित हो उठे, जलधर भले ही जल से विरक्त हो जाये और ज्ञान हो जाने पर भी भले ही मोह न मिटे परन्तु तुम राम के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते हो[2] ।

महाराज दशरथ का दशगात्र विधान आदि करने के उपरान्त अयोध्या में राज सभा बैठी । गुरु वशिष्ठ ने भरत को राज्य लेने के लिए अनेक भाँति समझाया, मंत्रियों ने गुरु के प्रस्ताव का अभिनन्दन किया, माता कौसल्या ने सरल एवं स्नेह-पूर्ण वाणी में भरत से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। इन समस्त स्नेहपूर्ण प्रस्तावों तथा अनुरोधों को सुनकर भरत अति व्याकुल हो उठे । उनके हृदय में राम-विरह पुनः प्रबल हो उठा । नयनों की अश्रुधारा से हृदय के विरहरूपी नवीन अंकुरों को वे मानों सींचने लगे । उनकी उस दशा को देखकर सभी अपने शरीर की सुध-बुध भूल

- -

1- भरतहिं बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ।।
रामचरितमानस 2,160 ।

2- राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे ।।
बिधु बिष चवै स्रवैहिम आगी । होइ बारिचर बारि बिरागी ।।
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू । तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू ।।
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुजस लहहीं ।।
रामचरितमानस 2,169 ।

गए । उनके स्वाभाविक प्रेम की पराकाष्ठा की वे सब सराहना करने लगे ।[1]

भरत को राम प्राणों से भी प्रिय हैं । उनके वियोग में वे जीवित नहीं रहना चाहते[2] । उनके प्रबल स्नेही मन का ही मंगलमय निर्णय था कि कल ही उस वन को चल दें जहाँ राम वनवास कर रहे हैं, क्योंकि उनके मन की बात राम के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता[3] । उनके मन में भक्ति की अडिग आस्था है तथा श्रीराम के स्नेह एवं शरणागत वत्सलता में भरपूर विश्वास है । जिस राम ने शत्रु का भी अपकार नहीं किया वह अपने शिशु सेवक परतो कृपा ही करेगा[4] । भरत को विश्वास है कि राम अपना जानकर उनको त्यागेंगे नहीं । राम को अयोध्या लौटा लाने के इस प्रस्ताव को सुनकर तथा भरत के अगाध स्नेह को देखकर माताएँ, सचिव, गुरु तथा नगर निवासी सभी उनकी प्रशंसा करने लगे कि भरत राम के प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं[5] ।

भरत का राम प्रेम अत्यन्त व्यापक एवं उदार है । वे राम की प्रत्येक वस्तु से प्रेम करते हैं । जिसे राम प्रेम करते हैं और जो राम को प्रेम करता है वह भरत के लिए बहुत अधिक प्रिय है । चित्रकूट जाते समय भरत ने निषादराज गुह को देखकर यह सुनते ही कि यह राम का सखा है रथ त्याग दिया तथा

1- सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए ।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए ।।
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की ।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की ।। रामचरितमानस 2,176 ।

2- देखेहुँ भव तनु अनुरागे । पावँर प्रान अघाइ अभागे ।।
बाँह पीर बिरहँ प्रान प्रिय लागे । देखन सुनब बहुरावब आगे ।।
रामचरितमानस 2,180 ।

3- आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । को बिय कै रघुबर बिनु बूझा ।।
एकहिं आँक इहउ मनमाहीं । प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ।।
रामचरितमानस 2,183 ।

4- जद्यपि मैं अनभल अपराधी । भै मोहि कारन सकल उपाधी ।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी । छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ।।
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ।।
अरिहू अनभल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ।।
जद्यपि जननु कुमातु हौं मैं सठु सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ।। ।। 183 ।।
रामचरितमानस 2,183 ।

5- भरतहि कहहिं सराहि सराही । राम प्रेम मूरति तनु आही ।।
रामचरितमानस 2,184 ।

उतरकर उमगते हुए प्रेम के साथ उससे मिलने चल दिए । दंडवत् करते हुए गुह को उन्होंने हृदय से लगा लिया मानों उनकी भेंट लक्ष्मण से हो गई हो । प्रेम उनके हृदय में समाता न था ।[1] उन्होंने राम का वह विश्राम स्थल देखा जहाँ राम ने सीता सहित वह रात्रि व्यतीत की थी । कुश-साथरी को उन्होंने प्रणाम किया और उसकी प्रदक्षिणा की । राम के चरण चिन्ह की धूलि को आँखों से लगाया । उनके इस प्रेम का वर्णन करना कठिन है ।[2] राम तथा सीता की उस कुश साथरी को देखकर उन्हें धीर दुःख हुआ । वे बार बार स्वयं को धिक्कारने लगे । तब वेदज्ञ ने उनको धैर्य बंधाते हुए बताया कि आपसे बढ़कर राम को और कोई भी प्रिय नहीं है । उस रात्रि भी राम बार-बार आपकी ही प्रशंसा करते रहे ।[3] भरत के प्रेम को देखकर अयोध्या के नागरिक उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हैं । प्रेम से विह्वल एवं प्रियतम के विरह से व्याकुल भरत जब प्रयाग पहुँचे तो उन्होंने जन्म जन्म में रामचरण-अनुराग की पुष्टि का वरदान माँगा और त्रिवेणी ने उनके राम प्रेम की भरपूर प्रशंसा की ।[4] भरद्वाज कवि ने भी उन्हें राम के प्रेम से आश्वस्त किया । उन्होंने बताया

1- करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुँ लखन लखि भेंट भइ प्रेमु न हृदय समाइ ।। रामचरितमानस 2,193 ।

2- कुस साँथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन धाई ।।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई । बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।।
रामचरितमानस 2,199 ।

3- राम तुम्हहिं प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि । यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि ।।
बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी ।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी ।।
तुलसी न तुम्हसो राम प्रीतमु कहतु हौं सोहैं किएँ ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ ।।
रामचरितमानस 2,201 ।

4- भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी । भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ।
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू । रामचरन अनुराग अगाधू ।।
बादि गलानि करहु मनमाहीं । तुम्ह सम रामहिं कोउ प्रिय नाहीं ।।
तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल ।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल ।। 205 ।।
रामचरितमानस 2,205 ।

कि राम के मन में तुम्हारे समान कोई दूसरा प्रेम पात्र नहीं है । राम, लक्ष्मण तथा सीता ने यह रात्रि तुम्हारी प्रशंसा करते हुए ही व्यतीत की थी । तुम्हारे श्रीराम को ऐसा प्रेम है जैसा विषयासक्त मनुष्य को सांसारिक सुखों से पूर्ण जीवन पर होता है । तुम्हारे विषय में तो मेरा यह मत है कि तुम तो मानो साक्षात् शरीर धारी राम-प्रेम हो ।

भरत के चित्रकूट पहुँचने पर इन्द्र ने चाहा कि भरत और राम का मिलन न हो तब देवगुरु बृहस्पति ने उन्हें समझाया और भरत के विषय में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया,-

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम राम जप जेही ।।

मार्ग की स्त्रियाँ भी भरत के स्वभाव की प्रशंसा करती हुई कहती हैं कि भरत का भ्रातृत्व, भक्ति एवं आचरण कहने और सुनने से दुख तथा दोषों को हरने वाले हैं ।[2] राम स्वयं भी लक्ष्मण का रोष शान्त करते हुए भरत की प्रशंसा करते हैं[3]।

भरत के रामप्रेम का अति मार्मिक चित्रण तो महाकवि ने चित्रकूट में राम भरत के मिलन के अवसर पर किया है । भरत राम की पर्णकुटी के समीप पहुँच रहे हैं । राम-मिलन की सम्भावना से उनका मन उत्कंठित है । मिलन की आशा आनन्द दे रही है परन्तु माता का दुष्कर्म मन में शंकाएँ उत्पन्न कर रहा है । वे विचार करते हैं, " चाहे मलिन-मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर सम्मान करें, मैं तो राम के ही चरणों की शरण में हूँ । राम अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दास

1- सनमुख भरत रघुबर मन माहीं । प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं ।।
लखन राम सीतहिं अति प्रीती । निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ।।
जाना मरमु नहात प्रयागा । मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा ।।
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें । सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ।।
यह न अधिक रघुबीर बड़ाई । प्रनत कुटुंब पाल रघुराई ।।
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू । धरें देह जनु राम सनेहू ।।
तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु ।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु ।।

रामचरितमानस 2,208 ।

2- भायप भगति भरत आचरनू । कहत सुनत दुख दूषन हरनू ।।
जो किछु कहब थोर सखि सोई । रामबंधु अस काहे न होई ।।

रामचरितमानस 2,223 ।

3- देखिए रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड 231,232 ।

का ही है । संसार में यश के भाजन केवल चातक और मछली हैं, जो अपने नेम-प्रेम को सदा नया बनाए रखने में निपुण हैं ।[1]" वियोगाग्नि परन्तु प्रेम से विह्वल भरत आगे बढ़ रहे हैं । माता का दुष्कर्म मानों उन्हें पीछे लौटाता है परन्तु उनके धैर्य की पूरी भक्ति के बल पर आगे चलती है । जब राम का वत्सल स्वभाव याद आता है तब उनके चरण बड़ी उतावली के साथ मार्ग पर पड़ते हैं । इस समय भरत की दशा जल प्रवाह में जल के भँवर के समान है । भरत के मन के सोच और प्रेम को देखकर निषाद उस समय अपने शरीर की सुध बुध भूल कर विदेह सा हो गया ।[2] धैर्य धर कर निषाद ने भरत को सीता तथा लक्ष्मण के द्वारा लगाए गए तुलसी के थाँवले दिखाये तथा वट वृक्ष की छाया में सीता के कर कमलों द्वारा बनाई गई वेदिका दिखाई । यह सब देखकर भरत के नेत्रों में प्रेमाश्रु आ गए । वे उन सब वस्तुओं को प्रणाम करते हुए चले । उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वती भी सकुचाती हैं । राम के चरण चिन्हों को देखकर वे अति हर्षित होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो । भरत की अतीव अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी तथा जड़ जीव भी प्रेम मग्न हो गए । भरत के प्रेम से निषादराज ऐसा प्रभावित हुआ कि वह मार्ग भूल गया । सब देवताओं ने पुष्पवृष्टि के साथ उनको मार्ग बताया । उनके प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक अनुराग से भर गए तथा उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि पृथ्वी तल पर भरत का जन्म न होता तो प्रेम के आधिक्य से जड़ को चेतन तथा चेतन

1- जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी । जौं सनमानहिं सेवकु मानी ।।
मोरें सरन रामहि की पनही । राम सुस्वामि दोसु सब जनही ।।
जाइ जल चातक मीना । नेम पेम निज निपुन नवीना ।।
अस मन गुनत चले मग जाता । सकुच सनेह सिथिल सब गाता ।।

रामचरितमानस 2,234 ।

2- देखत मगहुँ मातुकृत खोरी । कस न भगति बस धीरज धोरी ।।
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ । तब पथ परत उताइल पाऊ ।।
भरत दसा तेहि अवसर कैसी । जल प्रवाह जल जलि गति जैसी ।।
देखि भरत कर साधु सनेहू । भा निषाद तेहि समय बिदेहू ।।

रामचरितमानस 2,234 ।

को जड़ कौन करता[1] । कवि ने सुन्दर रूपक द्वारा भरत के प्रेम तथा विरह की गहनता को स्पष्ट किया है ।

" पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ।।" 238 ।।

प्रेम की विह्वलता का दृश्य राम और भरत के मिलन के समय दर्शनीय है । साधन वन की ओर से भरत ने दूर से ही मुनि मण्डली के मध्य विराजमान श्रीराम को देखा और उनको देखकर वे ऐसे प्रेम विभोर हुए कि उन्हें हर्ष-शोक, सुख-दुख आदि समस्त द्वन्द भूल गए । यह भाव-विभोरता का उत्कृष्ट दृश्य है । यह ब्रह्मानन्द प्राप्ति की स्थिति है । प्रियतम राम को देखकर भरत सुख-दुःख आदि स्थितियों को भूलकर प्रिय मिलन के आनन्द में विभोर हो गए । राम को देखकर वे " पाहि नाथ, पाहि गुसाईं " कहकर पृथ्वी पर दण्डवत् गिर गए । लक्ष्मण ने सुनकर शब्दों को पहिचाना और राम से निवेदन किया कि भरत प्रणाम कर रहे हैं । उधर राम के हृदय में भी उतना ही स्नेह था । " भरत प्रणाम कर रहे हैं" यह सुनते ही राम भी प्रेम विभोर हो उठे । प्रेम की विह्वलता ने उनको अधीर बना दिया । वे शीघ्रतापूर्वक उठे । उस समय उनको अपने तन की सुधि नहीं थी । परिणामतः कहीं उत्तरीय गिरा, कहीं तरकस, कहीं धनुष और कहीं बाण ।राम ने दौड़ कर भरत को बरबस उठाकर हृदय से लगा लिया । उन दोनों के मिलन -प्रेम को देखकर उस समय सब लोगों को अपने तन मन की सुध भूल गई । श्रीराम और भरत की मिलन-प्रीति का वर्णन कैसे किया जासकता है ? यह तो कवियों के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से ही अगम है । दोनों ही भाई मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को विस्मृत कर परम प्रेम से पूर्ण थे । कवि अक्षर और अर्थ के बल पर उस प्रेम का पूर्ण वर्णन नहीं कर सकता है । भरत और राम का प्रेम इतना अगम है कि ब्रह्मा,

- -

1- सखा बचन सुनि बिटप निहारी । उमगे भरत बिलोचन भारी ।।
करत प्रनाम चले दौउ भाई । कहत प्रीति सारद सकुचाई ।।
हरषहिं निरखि राम पद अंका । मानहुँ पारसु पायउ रंका ।।
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं । रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ।।
देखि भरत गति अकथ अतीवा । प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा ।।
सखहि सनेह बिबस मग भूला । कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला ।।
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे । सहज सनेहु सराहन लागे ।।
होत न भूतल भाव भरत को । अचर सचर चर अचर करत को ।।

रामचरितमानस 2.238 ।

विष्णु और महेश की भी पहुँच वहाँ तक नहीं है ।

भरत कठिन से कठिन कष्टों को सहन करके भी राम को अयोध्या लौटाना चाहते हैं । वे दिन रात इसी चिन्ता में निमग्न हैं कि श्री राम किसी प्रकार अयोध्या को लौट चलें । उनकी चिन्ता एवं व्यथा को देखकर गुरु वशिष्ठ प्रस्ताव करते हैं कि भरत और शत्रुघ्न तो वन को चले जायँ और राम, लक्ष्मण और

- -

1- सानुज सखा समेत मगन मन । बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ।।
पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं । भूतल परे लकुट की नाईं ।।
बचन सप्रेम लखन पहिचाने । करत प्रनामु भरत जिय जाने ।।
बंधु सनेह सरस एहि ओरा । उत साहिब सेवा बस जोरा ।।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई । सुकबि लखन मन की गति भनई ।।
रहे राखि सेवा पर भारू । चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू ।।
कहत सप्रेम नाइ महि माथा । भरत प्रनाम करत रघुनाथा ।।
उठे राम सुनि पेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।।

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ।। 240 ।।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी । कबि कुल अगम करम मन बानी ।।
परम पेम पूरन दोउ भाई । मन बुधि चित अहमिति बिसराई ।।
कहहु सुपेम प्रगट को करई । केहि छाया कबि मति अनुसरई ।।
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा । अनुहर ताल गतिहि नटु नाचा ।।
अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरिहर को ।
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती । बाज सुराग कि गाँडर ताँती ।।

रामचरितमानस 2, 240-41 ।

सीता वापिस अयोध्या लौटें । भरत इस प्रस्ताव पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहने लगे कि, " मुनि ने जो कहा, वह करने से जगत भर के जीवों को उनकी अभीष्ट वस्तु देने का फल होगा । चौदह वर्ष मात्र क्या है ? मैं तो वन में जीवन भर वास करूँगा । इससे अधिक और कोई सुख मेरे लिए नहीं है । राम सीता हृदय की जानने वाले हैं तथा आप सर्वज्ञ सुजान हैं । यदि आप सच कह रहे हैं तो अपने वचनों को कार्यान्वित कराइए[1] ।" भरत के इस प्रेम को देखकर वशिष्ठ जी तथा सहित प्रेम मग्न होकर अपनी सुध-बुध भूल गए । राम के सामने जब राज समाज जुड़ा तब भरत ने मुनि की आज्ञा से उपर्युक्त प्रस्ताव रखा और कहा कि "यदि यह स्वीकार्य न हो तो लक्ष्मण को लौटा दीजिए और मुझे अपने साथ वन को ले चलिए अथवा हम तीनों ही भाई वन को चले जायें और राम जानकी अयोध्या को प्रत्यावर्तित हों[2]" उन्होंने यह भी कहा कि "यह मैं अपने तथा अयोध्या निवासियों के स्वार्थ के लिए कह रहा हूँ । सेवक का कर्तव्य तो स्वामी की आज्ञाओं का पालन करना है । आप प्रसन्न होकर जिसे जो आज्ञा देंगे उसे शिरोधार्य कर पालन करेगा जिससे सब उपद्रव और उलझनें मिट जायेंगी[3] ।" भरत का यह कथन उनके उत्कृष्ट प्रेम, भक्ति एवं आज्ञापालन का उदाहरण है ।

भरत का अनुपम राम प्रेम देखकर कौसल्या भरत के विषय में चिन्तित हैं । वे सुनयना से कहती हैं, " महाराज जनक को समझाना कि लक्ष्मण को घर लौटाकर भरत को राम के साथ वन को भेज दिया जाए क्योंकि भरत के हृदय में गूढ़ प्रेम है । उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती है[4] ।" सुनयना ने उसी चिन्ता तथा आतुरता के साथ कौसल्या का संदेश महाराज जनक से कहा । जनक ने उत्तर में भरत के प्रेम तथा शील स्वभाव की प्रशंसा करते हुए कहा कि, " भरत भूलकर भी राम की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे । अतः स्नेह के वश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिए[5] ।" इस स्थल पर कवि ने जनक के मुख से भरत की भूरि-भूरि सराहना कराई है[6] ।

1- देखिए रामचरितमानस 2,256-57 ।
2- " " 2,268-69 ।
3- " " 2,269 ।
4- " " 2,283-84 ।
5- " " 2,289 ।
6- " " 2,289 ।

चित्रकूट में आज पुनः राम सभा की बैठक होने जा रही है। देवों को भय है कि भरत के प्रेम एवं भक्ति से प्रभावित हो कर राम कहीं अयोध्या न लौट जायें, अतः वे शारदा देवी से भरत की बुद्धि फेरने का अनुरोध करते हैं। माँ शारदा कहती हैं, " यह संभव नहीं है। भरत के हृदय में सीता राम का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहाँ अंधकार कैसे किया जा सकता है।[1]" राम सभा में राम की बुद्धि भरत की भक्ति से प्रभावित हो गई है। भरत की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुखद हैं परन्तु उनका वर्णन करना कठिन है। जिनकी भक्ति का सकोच मात्र देखकर मुनिगण तथा महाराज जनक प्रेम मग्न हैं उनका वर्णन कवि कैसे कर सकता है। उनकी भक्ति और सुन्दर भाव से कवि के हृदय में सुबुद्धि विकसित हो रही है। भरत के स्वभाव का वर्णन देवों के लिए भी सुगम नहीं है। भरत के सद्भाव को कहो सुनो कौन अभुव्य सियरामचरणानुरागी न हो जायेगा।[2]

राम सभा में भरत के प्रेम पर उनके विवेक ने विजय पा ली तथा वे स्वामी राम की आज्ञापालन के लिए तत्पर हो गए। उनका सिद्धान्त था कि " आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।" अतः प्रत्येक परिस्थिति में उनको राम की आज्ञा शिरोधार्य है।[3] राम ने उनको स्नेहपूर्वक अयोध्या को लौटाने तथा पिता की आज्ञा का पालन करने का अनुरोध किया। सुमन्त्र के कर्तव्य को समझाया। भरत किसी प्रकार

1- देखिए रामचरितमानस 2,295।

2- भरत प्रीति नीति विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहि किमि सकही। भगति सुभाउ सुमति हिय हुलही॥
× × × × ×
भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघुमति चापलता कवि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

रामचरितमानस 2,303-4।

3- सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥ 300॥
प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई॥
सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥

रामचरितमानस 2,300-301।

हृदय के प्रेमावेगों को दबाकर आज्ञा पालन के लिए तैयार हो गए परन्तु बिना आधार के उनके मन में न सन्तोष हुआ और न शांति । प्रभु राम ने कृपा कर उन्हें अपनी पादुकाएँ दीं । जिनको भरत ने सादर मस्तक से लगा लिया । करुणानिधान राम के चरणपीठ मानों प्रजा के प्राणों के दो प्रहरी हों, भरत के स्नेह रूपी रत्न के लिए मानों संपुटक हों और जीव के साधन के लिए मानों राम नाम के दो अक्षर हों । भरत इस अवलम्बन को पाकर प्रसन्न हो गए[1] । उन्होंने उठकर विदा माँगी । राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया । राम भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे हैं । राम के उस प्रेम रस का वर्णन नहीं किया जा सकता । तन, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा । धीर धुरंधर राम ने भी धैर्य त्याग दिया । वे अपने कमल नेत्रों से अश्रु बहाने लगे । राम तथा भरत की विदाई के इस दृश्य को देखकर मुनिगण, गुरु वशिष्ठ तथा महाराज जनक जैसे विरक्त व्यक्ति भी प्रेम मग्न हो गए । कवि यहाँ पर अत्यन्त भावुक हो उठा है । वह कहता है कि, " जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी । प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ।। बरनत रघुबर भरत वियोगू । सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ।।" तो सकोच रसु अकथ सुबानी । सगुन सनेह सुभिरि सहुयानी ।।"

भरत के चले जाने पर राम को भरत के वियोगका दु:ख हुआ । वे सीता तथा लक्ष्मण से भरत के स्नेह स्वभाव तथा उनकी सुन्दर वाणी की सविस्तार सराहना करने लगे । वस्तुत: भरत भ्रातृ-प्रेम का वह उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जो प्रत्येक युग में अनुकरणीय है ।

मानस के भरत बड़े धर्मज्ञ भी हैं परन्तु उनकी यह प्रवृत्ति भक्ति मूलक है । राम का प्रेम तथा उनकी भक्ति भरत का स्वभावगत गुण है । उनकी धार्मिकता उसी का एक अंग मात्र है । आज्ञा पालन भी उसी भक्ति उद्भूत धार्मिक भावना का एक अंग है । उनकी भक्ति दास्य भाव की है, जो उन्हें स्वामि की सेवा, आज्ञा-पालन आदि के लिए स्वाभाविक रूप से प्रेरित करती है । स्वामि के प्रति अपने कर्तव्य के मूल सिध्दान्त को तुलसी ने भरत के मुख से इस प्रकार कहलाया है -

जो सेवकु साहिबहिं संकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।।
सेवक हित साहिब सेवकाई । करै सकल सुख लोभ बिहाई ।।

सेवक का कर्तव्य तो स्वाभाविक स्नेह से स्वामि की सेवा करना है । उसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों फल, स्वार्थ तथा कपट आदि त्याग कर स्वामि-सेवा में निरत होना चाहिए । आज्ञा पालन के समान अच्छे स्वामि की अन्य कोई सेवा नहीं है स्वामी की आज्ञा भी उसका प्रसाद अथवा अनुग्रह है जो भक्तिपूर्वक शिरोधार्य करना चाहिए ।

1- रामचरितमानस 2,316 ।

भरत के इस सेवक भाव की प्रशंसा श्री राम, वशिष्ठ, मुनिगण तथा जनक सभी करते हैं[1]। चित्रकूट की अन्तिम सभा में गुरु वशिष्ठ तथा महाराज जनक दोनों राम तथा भरत दोनों के सेवक-सेव्य भाव की प्रशंसा करते हैं-

" सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेमु पेमु अति पावन पावन ।।"

तुलसी की राम भक्ति का भी यही आदर्श है जिसकी स्पष्ट विवेचना उन्होंने उत्तरकाण्ड में की है[2]।

यद्यपि मानस के भरत पहिले रामभक्त हैं, बाद में कुछ और, फिर भी वे राम को अयोध्या वापिस लाने के लिए उनसे सविनय अनुरोध करते हैं, प्रायोपवेशन के लिए कटिबद्ध नहीं होते । उनमें हठ नहीं है, शालीनता है । वे स्वामी का रुख देखकर चलने वाले सेवक हैं । साहिब को संकोच में डालना उन्हें अच्छा नहीं लगता है । इसीलिए राम का पिता की आज्ञा पालन करने का निश्चय देखकर वे स्वयं उनकी आज्ञा के अनुसार अयोध्या को लौट जाने को तैयार हो जाते हैं । उनमें आज्ञा-पालन की धर्म बुद्धि जाग्रत है ।

भरत अत्यन्त विवेकी हैं । कठिन से कठिन अवसरों पर भी उनकी विवेकशीलता कुण्ठित नहीं होती है । मामा के घर से लौटने पर राम वनगमन से उत्पन्न अत्यन्त विषम तथा विकट परिस्थिति भरत के सामने उत्पन्न हुई थी परन्तु उनके प्रेम तथा विवेक ने उस समय राम को मनाने चित्रकूट जाने का श्रेयस्कर निर्णय उनसे कराया । चित्रकूट पहुँचने पर अनेक अनुनय-विनय के पश्चात् भी राम के अयोध्या को लौट आने के लिए सहमत न होने पर विवेकी भरत ने राम की आज्ञा पालन को ही श्रेयस्कर समझा तथा वे अपने राज-समाज सहित अयोध्या को वापिस चले गए । पुनः विवेकी भरत ने राम की पादुकाओं को सिंहासनासीन कर स्वयं एक सेवक के रूप में ही राज्य संचालन किया । राम के समान ही नगर से बाहर रह कर तपस्वी जीवन व्यतीत करने का उनका निर्णय जहाँ उनके राम-प्रेम का द्योतक है, वहीं उनकी विवेकशीलता तथा धर्म-परायणता का भी अनुपम उदाहरण है । उनकी वाणी तथा उनका आचरण उनकी विवेकशीलता को सिद्ध करते हैं । कवि उनकी वाणी के विषय में कहता है -

" बिमल बिबेक धरम नय साली । भरत भारती मंजु मराली ।।"

1- रघुराउ सिखिन सनेहँ साधु सराहे मुनि सिखिन धनी ।
मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी ।।
भरतहिं प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से ।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम निलिन से ।। रामचरितमानस 2,301

2- सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि । भजहु राम पद-पंकज अस सिद्धांत बिचारि
रामचरितमानस 7,119 ।

अत्यन्त मार्मिक परिस्थिति में उनके विवेक ने उनके प्रेम पर विजय पाई है । यह उनके आत्म संयम का स्वरूप है । चित्रकूट सभा में जब गुरु वशिष्ठ तथा महाराज जनक भी करणीयता के विषय में राम को कोई उत्तर न दे सके, सब लोग भरत का ही मुँह ताकने लगे तब भरत के विवेक ने ही उत्तर दिया । तुलसी ने इस अवसर का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं सुन्दर किया है -

सभा सकुच बस भरत निहारी । राम बंधु धर धीरज भारी ।।
कुलगुरु देखि सनेहु सँभारा । बहुरि बिधि बिमि धरज निवारा ।।
तौक कमलोपन मति छोनी । हरी बिमल गुनगन जग जोनी ।।
भरत बिबेक बराह बिसाला । अनायास उधरी तेहि काला ।।
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे । रामु राउ गुर साधु निहोरे ।।
छमब आजु अति अनुचित मोरा । कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ।।

इतना ही नहीं धर्मपरायण भरत के मन में करुणा का अजस्र स्रोत है । पिता की मृत्यु से भी बढ़कर उन्हें इस बात का दुःख एवं शोक था कि उनके कारण सीता-राम को कष्ट उठाना पड़ा है । राम वन-गमन की बात सुनते ही भरत कैकेयी को धिक्कारते हुए कहते हैं,

" धर गाँगरा मन भइ नहिं पीरा ।"

इस अर्द्धाली में ही कवि ने भरत के मन की करुणा की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति कर दी है । उनकी करुणा तथा शालीनता कैकेयी के प्रति भी अति कठोर वाणी का प्रयोग नहीं होने देती है । शत्रुघ्न जब मंथरा को घसीटने लगते हैं तब दयानिधि भरत ही उनको छुड़ाते हैं । यह महात्मा की महानता है जिसने प्रेरित वह शत्रु को भी क्षमा कर देता है ।

कौसल्या की करुण दशा देखते ही भरत व्याकुल हो उठते हैं । अपने आप को धिक्कारने लगते हैं[1] । अयोध्या की राज सभा में, निषाद गुह तथा भारद्वाज ऋषि के सम्मुख उन्होंने अपने दुःख का सबसे बड़ा कारण राम का वनवास ही बताया है । शृंगवेरपुर के एक अशोक-वृक्ष के नीचे कुश की साथरी देखकर उनके नेत्रों में आँसू आ गए तथा हृदय ग्लानि से भर गया । उनको इस बात का विशेष दुःख हुआ कि विशाल

- -

1- को बिधुत मोहि सरिस अभागी । गति अति तोरि मातु जेहि लागी ।।
पितु सुरपुर बन रघुकुल केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ।। मानस २, १६४

साम्राज्य के स्वामी की पुत्री तथा स्वर्ग से स्पर्धा रखने वाले अयोध्या साम्राज्य के महाराज की पुत्रवधू एवं श्रीराम जैसे समर्थ एवं प्रतापी पति की पत्नी को भूमि पर बिछी तृण-शैय्या पर सोना पड़ा । लक्ष्मण कितने कोमल, सुकुमार तथा सर्व प्रिय हैं । जिन लक्ष्मण को पहिले कभी गर्म हवा भी नहीं लगी थी, वे वन में सब प्रकार की विपत्ति सह रहे हैं । रघुवंशमणि राम सुख-स्वरूप हैं तथा मंगल एवं आनन्द के आगार हैं, वे भी पृथ्वी पर कुश बिछा कर सोते हैं । विधाता की गति बहुत बलवान है । राम ने तो कभी कानों से भी दुःख नहीं सुना था । महाराज स्वयं जीवन-वृक्ष के समान उनकी सार-सँभाल करते थे । माताएँ भी रात दिन उनकी वैसी सार-सँभाल करती थीं जैसे पलक नेत्रों की तथा सर्प अपने मणि की । वे ही श्रीराम अब वनों में पैदल भटकते हैं तथा कन्द-मूल-फल का भोजन करते हैं । कैकेयी को धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है जिसके कारण यह सब उत्पात हुए ।"[1]

भरत अपने मन की व्यथा का भरद्वाज मुनि के सामने निवेदन करते हैं । वे कहते हैं, " मुझे माता की अविवेकपूर्ण करनी का भी सोच नहीं है तथा इस बात का भी दुःख नहीं है कि संसार मुझे बुरा समझ रहा है । परलोक के बिगड़ने का भी भय मुझे नहीं है । यहाँ तक कि पिता के निधन का भी मुझे शोक नहीं है । x x x x । मुझे तो । घोर। दुःख इस बात का है कि राम, लक्ष्मण और सीता मुनि का वेष धारण कर बिना जूतों के । नंगे पाँव। वन वन में भटक रहे हैं । वे वल्कल वस्त्र पहनकर, फलाहार कर, भूमि पर परते तथा कुशादि बिछा कर सोते हैं तथा वृक्षों के नीचे निवास करके नित्य सर्दी-गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं । इसी दुःख की ज्वाला से मेरा हृदय निरन्तर जलता रहता है । मुझे दिन में भूख नहीं लगती है और रात में नींद नहीं आती है ।[2]

1- रामचरितमानस 2,198-201 ।

2- मोहि न मातु करतब सोचू । नहिं दुःखु जियँ जग जानिहि पोचू ।।
नाहिन डरु बिगरहि परलोकू । पितहु मरन कर मोहि न सोकू ।।
x x x x x
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं । करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं ।।
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात ।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात ।। 211 ।।
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती । भूख न बासर नीद न राती ।

रामचरितमानस 2,211-12 ।

चित्रकूट की प्रथम सभा में भी भरत राम के वनवास के कष्टों को देखकर बहुत दुःखी होते हैं। माताओं का दुःख एवं व्याकुलता उनसे देखी नहीं जाती। नगरवासियों का भी विकल विरह ज्वर देखो नहीं बनता। वे कहते हैं "श्री राम, लक्ष्मण तथा सीता के साथ मुनि-वेष धारण कर बिना जूतों के नंगे पाँव ही वन को चले गए यह सुनकर इस कठोर घाव को भी मैंने सह लिया। अब यहाँ आकर सब कुछ मैंने अपनी आँखों से देखा। यह जड़ जीव जीता रहकर सब कुछ सहा रहा है।"[1] इस प्रकार राम के वनवास के कष्टों को देखकर अपने आपको धिक्कारना उनके हृदय की करुणा की ही अभिव्यक्ति है। भरत का चरित्र प्रत्येक ग्रंथ में भ्रातृ-प्रेम, करुणा तथा मानवता के गुणों से परिपूर्ण है।

तुलसी के भरत में एक अन्य विशेषता उनका अवतारी होना है। देवताओं के कष्टों तथा पृथ्वी पर हो रहे अत्याचारों को मिटाने के लिए परब्रह्म ने देवों तथा पृथ्वी को वरदान के रूप में आश्वस्त किया था कि वे अंशों के सहित रघुकुल में चार भाइयों के रूप में अवतार लेंगे।[2] मनु तथा शतरूपा को भी परब्रह्म ने यह वरदान दिया था कि भक्तों को नर-लीला दिखाने के लिए वे अंशों सहित उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे।[3] उनके अवतार पुरुष होने की बात उनके नामकरण से भी सिद्ध होती है -

" विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।"[4]

विश्व का भरण-पोषण करने वाला परमशक्तिमान् ईश्वर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है। जिसके हृदय में अनुराग का निवास हो वह ईश्वर ही है।[5] नामकरण के समय वशिष्ठ मुनि स्पष्ट ही कह देते हैं, " जेठ सुत्र मुनि तव सुत चारी।। मुनि जन धन संतत जिव प्राना। बाल केलिरस तेहि सुख माना।"[6]

कवि ने स्थान स्थान पर राम के परब्रह्म होने का स्मरण कराया है। यत्र-तत्र उनके ब्रह्मस्वरूप की चर्चा की है। कौसल्या को उनके विराट स्वरूप के दर्शन कराये हैं। इस प्रकार राम के ब्रह्म का अवतार होने का स्मरण करा कर कवि परोक्ष रूप से यह भी याद दिला देते हैं कि चारों भाई ही ब्रह्म का अंशावतार हैं।

1- सुनि बन गमनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा।।
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ।।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।।
अब सब आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई।।
रामचरितमानस 2,262 ।

2- देखिए रामचरितमानस 1,186-187 ।
3- " " 1,151-152 ।
4- " " 1,197 ।
5- " " 1,198 ।
6- " " 1,198 ।

कवि ने भरत का चरित्र इतना सुन्दर चित्रित किया है कि समस्त मानव-सुलभ दुर्बलताओं से ऊपर उठ कर एक अद्भुत एवं अलौकिक आदर्श को प्रस्तुत कर मनुष्य मात्र को देवत्व की परिधि तक उठाने का प्रयास करता है । स्वयं तो भरत निर्दोष हैं ही, उनका पुण्यशील आचरण कैकेयी तथा दशरथ के दोषों को भी नगण्य बना देता है । उनके उदार, त्यागमय परन्तु स्नेहपूर्ण आचरण को देखकर कैकेयी के मन का कालुष्य धुल गया एवं सत्य को देखने की अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई । ग्लानि तथा पश्चात्ताप से उसका मन भर गया । उनके आचरण ने कौसल्या के हृदय को भी शुद्ध से शुद्धतर बना दिया । केवट गुह एवं लक्ष्मण को उनके त्रुटिपूर्ण, एक पक्षीय विचारों के प्रति ग्लानि उत्पन्न करा कर दृष्टिकोण में विवेकपूर्ण उदारता प्रदान की । भरत को जिसने भी देखा, जो भी उनके सम्पर्क में आया वह उनके आचरण की भव्यता, उदारता, सौम्य, शुद्धता, सरलता, आदि से प्रभावित हुए बिना न रह सका । भरत के इस अनुपम आचरण की प्रशंसा काव्य के महानू नायक राम के मुख से कराकर भरत के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार कवि ने पाठकों को कराया है-

तीन काल तिभुवन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।।
उर आनत तुम पर कुटिलाई । जाइ लोक परलोक नसाई ।।
× × × × ×
मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार ।। 263 ।।
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।।

भरत के सुयश का वर्णन कवि ने भरद्वाज ऋषि से निम्नलिखित रूपक के द्वारा कराया है, -

* नव बिधु बिमल तात जस तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।।
उदित सदा अँथइहि कबहूँ ना । घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ।।
कोक तिलोक प्रीति अति करिही । प्रभु प्रताप रवि छबिहि न हरिही ।।
निसि दिन सुक्ल सदा सब काहू । ग्रसिहि न केतु करसबु राहू ।।
पूरन राम सुपेम पियूषा । गुरु अवमान दोष नहीं दूषा ।।
राम भगत अब अमिअँ अघाहूँ । कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ ।।

1- देखिए रामचरितमानस 2,206-210 ।

इससे बढ़कर भरत की प्रशंसा और क्या की जा सकती है कि भरद्वाज कवि यहाँ तक कह देते हैं कि, " समस्त पुण्यों का फल तो श्री सीता राम लक्ष्मण का दर्शन है और उस दर्शन के फल का महान् फल तुम्हारा । भरत का। दर्शन है । प्रयाग राज समेत तुम्हारा बड़ा भाग्य है । भरत ! तुम धन्य हो । तुमने अपने सुयश से जगत को जीत लिया है ।" वस्तुतः "मानस" के अयोध्याकाण्ड के नायक ही भरत हैं । कवि ने अत्यन्त प्रेम विभोर होकर भरत के स्वप्न का चित्रण किया है ।

कवि ने लंकाकाण्ड में द्रोण पर्वत को लेकर अयोध्या के ऊपर से जाते हुए हनुमान के भरत के बाण से आहत होकर गिरने, भरत के राम कृपा की दोहाई देने पर हनुमान के विगत श्रमक्लान्त होकर राम का समाचार सुनाकर पुनः लंका जाने का वर्णन किया है । उत्तरकाण्ड में वनवास की अवधि की समाप्ति पर प्रेमातुर प्रतीक्षारत भरत का अंकन कवि ने बड़ी कुशलता एवं प्रेम-पूर्णता के साथ किया है । जहाँ भी भरत का प्रसंग आया है, कवि उनकी राम भक्ति से प्रभावित हो भाव-विभोर हो उठा है तथा वह वर्णन अत्यन्त सुन्दर एवं हृदयग्राही बन पड़ा है ।

कवितावली- कवितावली गोस्वामी जी की उत्तरकालीन रचना है । डा० माता प्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ को गोस्वामी जी की अन्तिम तथा अपूर्ण रचना माना है । उनके अनुसार इसका रचनाकाल सं० 1661 तथा 1680 के बीच है[2] ।

कवितावली में भरत- कवितावली में कवित्तों के रूप में कवि ने रामकथा का अति संक्षिप्त वर्णन किया है । चारों भाइयों की शोभा का वर्णन कवि ने बड़ी रुचि से किया है । तत्पश्चात् तुरन्त ही धनुर्भंग का प्रसंग वर्णन है, फिर राम विवाह का । अन्त में परशुराम -लक्ष्मण-संवाद का पाँच छन्दों में वर्णन कर बालकाण्ड समाप्त कर दिया गया है ।

अयोध्याकाण्ड में कवि ने राम वनगमन का तथा वन-पथ पर शोभित तीनों पथिकों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है, परन्तु भरत-प्रसंग को छुआ भी नहीं है । भरत के चित्रकूट गमन आदि का वर्णन कवितावली में नहीं है । अरण्यकाण्ड केवल एक छन्द में है । हनुमान के समुद्रोल्लंघन सम्बन्धी एक कवित्त कह कर किष्किन्धाकाण्ड भी समाप्त कर

1- सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ।।
तब तापस करतूल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ।।
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ।।
भरत धन्य तुम जसु जग जयऊ । कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ ।।
रामचरितमानस, 2,210 ।

2- " तुलसीदास"-ले० डा० माता प्रसाद गुप्त । पृ० 254 ।

दिया है ।

सुन्दरकाण्ड में अशोकवनविहारिनी सीता का दर्शन कर हनुमान वन उजाड़ते हैं तथा लंकादहन का सुविस्तृत वर्णन किया है । स्मरणीय है कि "मानस" में यह वर्णन अति संक्षिप्त है । अन्त के सात कवित्तों में सीता से विदा लेकर सागर पार कर हनुमान के राम को सीता का समाचार देने का वर्णन है ।

लंकाकाण्ड में त्रिजटा द्वारा सीता को आश्वासन, समुद्रोल्लंघन तथा अंगद के दूतत्व के पश्चात् मन्दोदरी-रावण-संवाद का तेरह कवित्तों में विस्तृत-वर्णन किया गया है । युद्ध का वर्णन भी अनेक छंदों में ओजपूर्ण शैली में किया गया है । लंकाकाण्ड के केवल एक छंद में हनुमान द्वारा द्रोण-पर्वत के साथ भरत को कुशल लाने का उल्लेख किया है ।[1]

उत्तरकाण्ड में राम की कृपालुता, विनय, नाम-विश्वास, कलि-वर्णन, रामगुणगान, चित्रकूट वर्णन, तीर्थराज वर्णन, अंतर-स्तवन आदि विषय हैं । एक छंद में कवि भरत से भी राम के दर्शन हेतु सहायता करने की याचना करता है ।[2]

कवितावली में भरत के विषय में विशेष रूप से अथवा पृथक से कुछ नहीं कहा गया है । रामकथा के जो अंश भरत से सम्बद्ध हैं उनका वर्णन कवि ने अपने इस काव्य में नहीं किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि जो दृश्य अथवा प्रसंग कवि को अधिक प्रिय हैं और जिनका अधिक विस्तार कवि रामचरितमानस में काव्य की प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से नहीं कर सका है, उनका इच्छा के अनुसार विशद विस्तार उसने कवितावली में किया है । भरत के स्वरूप का सुविस्तृत वर्णन तो कवि " मानस" में भरपूर कर चुका है । कवितावली में भरत का स्वरूप भी एक प्रकार से राम में ही समाहित समझना चाहिए ।

1- कवितावली, 6,55 ।

2- हनुमान । हौं कृपाल, लाहिले सलाम ।
भावते भरत । कीजै सेवक- सहाय जू ।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरेतें आपुही सुधारि लीजै भाय जू ।।

कवितावली, 7,136 ।

विनयपत्रिका में भरत- विनय-पत्रिका में विनय के पद संगृहीत हैं। यह कवि की अत्यन्त परिपक्व एवं प्रौढ़ रचना है। सम्भवतः यह उसकी अन्तिम रचना भी है। विनय-पत्रिका के अन्तिम पदों में कवि ने एक स्थान पर कहा भी है -

" तुलसीदास अपनाइये, कीजै न ढील, अब जिवन-अवधि अति नेरे ।।"

। पद 273।

डा० माता प्रसाद गुप्त ने तुलसी की कृतियों का जो काल निर्धारण किया है उसके अनुसार विनय-पत्रिका कवि की उत्तरकालीन रचना है। उनके अनुसार यह सम्वत् 1653 विक्रम में लिखी गई है[1]। यह भी हो सकता है कि विनय-पत्रिका के कुछ पद और भी बाद में रचे गए हों।

विषयवस्तु- विनय के इन पदों में कवि ने भगवान श्रीराम से विनती की है कि उसे त्रय तापों, कलि की कुचालों तथा संसार के स्वभाव के दोषों से त्राण मिले। ग्रन्थ के प्रारम्भ में देवताओं से तथा राम-परिवार के सभी सदस्यों से विनय की गई है कि वे तुलसी की बात प्रभु को दिला दें तथा उसकी विनय-पत्रिका महाराज रामचन्द्र जी से स्वीकृत करा दें।

मारुति तथा लक्ष्मण की स्तुति करने के पश्चात् कवि भरत की स्तुति करता है। इस स्तुति में उसने एक प्रकार से भरत के स्वरूप का सारांश कह दिया है। उसका आशय इस प्रकार है, " बड़े भाग्यशाली भरत की जय हो, जो जानकीपति श्रीराम के चरण-कमलों के मकरन्द का पान करने के लिए रसिक भ्रमर हैं। वे नृपशिरोमणि श्रीराम के अनुरागी भक्त हैं। इन्द्र, कुबेर आदि लोकपालों को दुर्लभ है, सुखप्रद महा साम्राज्य से भी जो विरक्त रहे, अति धीर प्रतियों में जो सर्व श्रेष्ठ हैं तथा जिनकी शुद्ध बुद्धि सदा तन्मय तदेव स्वामी श्री राम के प्रेम में लवलीन रहती है, ऐसे भरत की जय हो। जिनका हृदय उपाधि रहित होकर भक्तिभाव से पंक्ति है, जो भाई के लिए चित्रकूट पर्वत पर पैदल गए, जो राम की पादुका सदा राजा के मंत्री बन कर पृथ्वी का पालन करते रहे, जो धर्म की धुरी को धारण किए हैं तथा श्रेष्ठ वीर हैं उन भरत की जय हो।"

विनय-पत्रिका में इसी पद में आगे भरत की वीरता का वर्णन किया गया है। भरत का यह गुण अन्यत्र उनकी धर्मपरायणता, राम भक्ति, भ्रातृवत्सलता, करुणा, मानवता आदि गुणों के समान दबा हुआ सा है। विनय-पत्रिका के इस पद में कवि कहता है, " लक्ष्मण को शक्ति लगने पर संजीवनी लाते हुए भरत के बाण से आहत हनुमान ने जिनके धनुष-बाण की महिमा का वर्णन किया था, जो अतुल पराक्रमी हैं तथा जिनका बाहुबल

1- देखिए- तुलसीदास । ले० डा० माता प्रसाद गुप्त। पृ० 254 ।

बड़ा भारी है, जिनकी गुढ़गति केवल श्रीराम ही जानते हैं, ऐसे भरत की जय हो। रण-प्रांगण में गन्धर्वों के गर्व को नष्ट करने वाले, तथा फिर से उनको राम के सुयश का गान कराने वाले भरत की जय हो। माण्डवी के चित्त रूपी चातक के लिए जो नवीन मेघ हैं ऐसे अभयदाता भरत की तुलसीदास शरण है।"

1- जयति

भूमिजा-रमण-पादकंज- मकरंद- रस -
रसिक- मधुकर भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषण, भानुवंश- भूषण, भूमिपाल -
मणि रामचन्द्रानुरागी ॥ 1 ॥

जयति विधुदेव-धनदादि-दुर्लभ-महा-
राज- संराज- सुख- पट- विरागी।
खड्ग- धाराव्रती- प्रथमरेखा प्रकट
कुटमति- युवति पति- प्रेमपागी ॥ 2 ॥

जयति निखिलाधि-अभिलाष-पंकित-हृदय,
बंधु-हित चित्रकूटाद्रि धारी।
पादुका- भूप-सचिव, पुहुमि-पालक परम
धरम-धुर-धीर, परवीर भारी ॥ 3 ॥

जयति संजीवनी- समय- संकट हनूमान
धनुबान- महिमा बखानी।
बाहुबल विपुल परमिति पराक्रम अतुल,
गुढ़गति- जानकी-जानि जानी ॥ 4 ॥

जयति रण-अजिर गन्धर्व-गण- गर्वहर,
फिर किए रामगुणगाथ- गाता।
माण्डवी-चित्त-चातक- नवांबुद- बरन,
सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥ 5 ॥

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पदों में भरत का नामोल्लेख हुआ है तथा उनकी भक्ति, राम प्रेम तथा राम का उनके प्रति-प्रेम एवं भरत के तपस्या की ओर महाकवि ने इंगित किया है। राम का स्वभाव वर्णन करते हुए कवि ने एक स्थल पर कहा है, " भरत जी का तो आप सदा भरी सभा में सम्मान करते रहते हैं, उनकी प्रशंसा करते करते तो आपके हृदय में तृप्ति नहीं होती[1]।" भरत के आदर्श भ्रातृ-प्रेम की ओर इंगित एक विनय-पद में इस प्रकार किया गया है, " अपने-अपने भाई के साथ भक्तता करने से सुग्रीव तथा विभीषण बड़े भारी दुःख से गल रहे थे। हे राम! आपने उनकी विल सेवा पर रीझ कर उन्हें भरत के समान मान लिया[2]।" 145वें पद में कवि ने पुनः इस ओर संकेत किया है[3]। 215वें पद में पुनः इसी भाव के दर्शन होते हैं, जब कवि कहता है, " राजा एवं शत्रु विभीषण को शरण में आया जानकर आपने उठकर उसे भरत की भाँति ऐसे प्रेम से हृदय से लगा लिया कि अपने शरीर की सुध-बुध भी भूल गए[4]।"

जिस प्रकार राम भरत के प्रेम एवं स्वभाव को जानते हैं उसी प्रकार भरत भी राम के स्वभाव, गुण, शील, महिमा तथा प्रभाव को जानते हैं। राम के इन गुणों को केवल चार लोग ही जानते हैं - भगवान शंकर, हनुमान, लक्ष्मण तथा भरत[5]।" भरत राम के स्वभाव को जानते हैं, उनके भक्तों में शिरोमणि हैं तथा भ्रातृ-भक्ति के आदर्श

1- आनाये सुग्रीव विभीषन, तिन न तज्यो छल"-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥

विनय-पत्रिका, 100।

2- बंधु-बैर कपि- विभीषन गुरु गलानि गरत।
तेया केहि रीझि राम, किये सरिस भरत॥

विनय-पत्रिका, 134 ॥

3- पुनरपि, बंधु-भय-विकल, विभीषन, उठि सो भरत ज्यों भेटयो॥

विनय-पत्रिका, 145 ।

4- रजनियर अरु रिपु विभीषन सरन आयो जानि।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि॥

विनय-पत्रिका, 215 ।

5- राम! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर, हनुमान, लखन भरत ।

विनय-पत्रिका 251 ।

एवं राम के परम-प्रिय हैं, इसलिए कवि अपनी विनय-पत्रिका के स्वीकृत किए जाने की सिफारिश भरत जी से कराना चाहता है[1]। परन्तु भरत संकोची हैं इसीलिए उनकी रुचि देखकर तुलसी की सिफारिश लक्ष्मण ही करते हैं, -

मारुति- मन, रुचि भरत की लखि लखन कही है।
कपि कानहु नाथ। नाम सों परतीति- प्रीति
एक किंकर की निबही है ।। । ।।
। विनय-पत्रिका, 279 ।

और परिणाम मंगलमय एवं अभीप्सित हुआ कि " बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ - हाथ सही है।"

रामाज्ञा-प्रश्न में भी भरत का प्रासंगिक उल्लेख है। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने सम्भवतः अपने काव्य-जीवन के प्रारम्भ में की थी। इसकी भाषा शैली तथा विषय-वस्तु के अध्ययन से ऐसा ही ज्ञात होता है। डा0 माता प्रसाद गुप्त के अनुसार इसका रचनाकाल सं0 1621 वि0 है[2]। कुछ विद्वान् एक हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका के आधार पर इसको सं0 1655 वि0 की रचना मानते हैं।

रामाज्ञा-प्रश्न शकुन-विचार के लिए लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें सात सर्ग हैं तथा प्रत्येक सर्ग में सात सप्तक हैं। इनके द्वारा प्रश्न विचार किया जाता है। इसमें राम कथा का ही संक्षिप्त वर्णन है। इस " रामाज्ञा प्रश्न" तीन सौ पैंतीस दोहों में रचित है। शकुन-विचार सम्बन्धी इन दोहों में भरत के नाम, ध्यान तथा स्मरण को सुखों विद्या तथा विनय का दाता एवं मंगल-दाता बताया गया है[3]। चारों भाइयों के स्मरण को मंगल-मोद दायक कहा गया है[4]।

- -

1- लखन-सुवन। रिपु-दवन। भरतलाल। लखन। दीन की।
निज निज अवसर सुधि किए, बलि जाउँ,
दास आस पूजिहै खास खीन की ।। विनय-पत्रिका, 278 ।

2- तुलसीदास, पृ0 254 ।

3- (क) भरत भारती रिपुदवन, गुरु गनेस हनुमान।
सुमिरत सुलभ सुखद सब, विद्या विनय विधान ।। रामाज्ञा-प्रश्न, 1.1.4 ।
(ख) सेवक सखा सुबन्धु हित, सगुन विचारु बिलोकि।
भरत नाम सुमिरत किएँ, सुमिरि सत्य सब सोकि ।। रामाज्ञा-प्रश्न 2.4.3 ।
(ग) देखिए रामाज्ञा-प्रश्न 3.4.3/4.4. 2 ।

4- देखिए रामाज्ञा-प्रश्न 1.2.7 / 1.3.1/1.3.3/4.1.7 /4.2.2. /4.3.1-3/ 7.1.1 ।

द्वितीय सर्ग के पंचम सप्तक में कवि ने प्रश्नों के रूप सूचक रूप से भरत के चरित्र का वर्णन किया है । इस प्रसंग में 6: दोहे लिखे गए हैं, जिनमें भरत के अयोध्या आने, पिता की मृत्यु तथा राम के वनगमन तथा माता के कुकृत्य कौतुनकर ~~भरत तथा माता के कुकृत्य की सुनकर~~ भरत के महान विषाद का वर्णन है । पिता की क्रिया करके भरत के चित्रकूट जाने, राम-भरत संवाद तथा पादुका लेकर भरत के अयोध्या लौटने का वर्णन भी है । फिर भरत के कठिन नियम-व्रत, शुभ धर्म तथा रामचरण अनुराग का उल्लेख है[1] । स्पष्ट है कि मानस के भरत का संक्षिप्त रूप यह भरत हैं, जिनका कवि ने बड़े मनोयोग एवं भाव-विह्वलता से " मानस" में विस्तार किया है ।

चतुर्थ सर्ग के चतुर्थ सप्तक के एक दोहे में कवि ने भरत के सौन्दर्य का वर्णन भी किया है,- " भरतु स्यामतन राम सम, सब गुन रूप निधान ।
सेवक सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ।। 1 ।।"

कवि ने एक अन्य स्थल पर भरत की भलाई की सीमा कहा है और उनके शील-स्नेह, धर्म-बुद्धि तथा " भायप-भगति" की सराहना की है[2] । उसके अनुसार भरत का आचरण सुन्दर, शुद्ध, स्वामि के धर्म-व्रत, प्रेम तथा कल्याण सेयुक्त नियमों का निर्वाह करने वाला है[3] । रामाज्ञा- प्रश्न का उद्देश्य स्वरूप-वर्णन न होने पर भी भरत के स्वरूप का ज्ञान लेश में हमें इस ग्रन्थ में भी हो जाता है ।

- -

1- गुरु आयसु आय भरत, निरखि नगर-नर-नारि ।
सानुज सोचत पोच बिधि, लोचन मोचत बारि ।। 1 ।।
भूप- मरन प्रभु बन- गवनु, सब बिधि अवध अनाथ ।
रोवत सपुहि कुमातु-कृत, भींजि हाथ धुनि माथ ।। 2 ।।
सेट-बिहित पितु-करम करि, लिये संग सब लोग ।
चले चित्रकूटहिं भरत, ब्याकुल राम-बियोग ।। 3 ।।
रामदरसु हिय हरषु बहु, भूपति- मरन- बिषादु ।
सोचत सकल समाज सुनि, राम-भरत- संबादु ।। 4 ।।
सुनि सिय आसिष, पाँवरी पाइ, नाइ पद माथ ।
चले अवध-सोचापकल, बिकल लोग सब साथ ।। 5 ।।
भरत-नेम-व्रत धरम सुभ, रामचरन- अनुराग ।
सगुन सपुहि साहस करिय, सिद्ध होय जग जाग ।। 6 ।। रामाज्ञा-प्रश्न 2,5, 1-6 ।

2- भरत भलाई की अवधि, सील सनेह निधान ।
धरमभगति भायप सगुन, सगुन सुखद कल्यान ।। 3 ।। रामाज्ञा-प्रश्न 5,4,3 ।

3- देखिए रामाज्ञा-प्रश्न 6,4, 2 ।

जानकी मंगल में भरत- जैसा नाम से स्पष्ट है, यह ग्रन्थ केवल राम-विवाह का ही वर्णन करता है। कुछ विद्वान् इसका रचना-काल सं0 1643 वि0 मानते हैं, परन्तु डा0 माता प्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ की रचना रामाज्ञा-प्रश्न और पार्वती मंगल के मध्य में मानी है। उनके अनुसार इसकी रचना सं0 1627 के आस-पास हुई होगी। डा0 रामकुमार वर्मा सं0 1643 वि0 को ही इस ग्रन्थ का रचना-काल मानते हैं।

विषय-वस्तु की दृष्टि से केवल राम विवाह का वर्णन किया गया है। राम के साथ ही उनके तीनों अनुजों के विवाह का भी उल्लेख किया गया है। भरत के विवाह के विषय में कवि ने इस प्रकार लिखा है, -

जनक अनुज तनया दुइ परम मनोरम।
बेठि भरत कहँ ब्याहि सब रीति सुख सम।।

इस काव्य में उत्तम वर्णन किया गया है परिमार्जन नहीं। परिणामतः भरत का भी चरित्र इसमें उपलब्ध नहीं है।

गीतावली में भरत का स्वरूप

मानस के पश्चात् कवि ने भरत की " भावमयमूर्ति" का सजीव चित्रण गीतावली में किया है। गीतावली गीतिकाव्य है, जिस पर सूर के सूरसागर का प्रभाव अनेकतः प्रतीत होता है। इसमें " मानस" जैसी प्रबन्धात्मकता सुलभ न होना स्वाभाविक ही है तथा इसकी जैसी गीतमय होने के कारण प्रत्येक पद स्वयं में सार्थक है। कथा की दृष्टि से कुछ अंश जो मानस" में कहे गए हैं इसमें छोड़ दिए गए हैं। इसी प्रकार कुछ अंश जो मानस में नहीं हैं गीतावली में जोड़ दिए गए हैं। डा0 माता प्रसाद गुप्त ने इनका विश्लेषण इस प्रकार किया है-

(क) गीतावली के मानस से भिन्न अंश-

(1) जनक विवाह का निमंत्रण दशरथ के पास अपने पुरोहित सतानन्द के द्वारा भेजते हैं।

(2) परशुराम और राम की भेंट बारात की वापसी में होती है।

(3) वन-यात्रा के समय गंगा पार करने के पूर्व राम और केवट में कोई बातें नहीं होती। गीतावली में राम-केवट संवाद का वर्णन किसी भी रूप परन्तु है।

(4) चित्रकूट में राम के पास जनक का आगमन नहीं होता है।

1- देखिए- डा0 माता प्रसाद गुप्त का " तुलसीदास" पृ0 225-27 ।

(5) प्राणांत के लिए त्रिजटा से सीता अग्नि-याचना नहीं करती हैं ।

(6) सेतुबंध के अवसर पर राम शिवलिंग की स्थापना नहीं करते हैं ।

(ख) " मानस" में वर्णित घटनाओं के अतिरिक्त अथवा उनसे आगे बढ़े कथा प्रसंगों का गीतावली में क्रम:-

(1) राम के चित्रकूट से दण्डकारण्य जाने की सूचना निषादराज अयोध्या को भेजता है ।

(2) सीताहरण के कारण राम को व्याकुल देखकर देवता चिंतित होते हैं, और लक्ष्मण जब उन्हें इसका कारण बताते हैं, वे राम को सीता का पता बताते हैं[1] ।

(3) हनुमान जब सीता के सामने राम नामांकित मुद्रिका डाल देते हैं, तब सीता भावावेश में उस मुद्रिका से राम का कुशल प्रश्नादि करती हैं[2] । मुद्रिका उसका उत्तर देती है और हनुमान इसे सुनकर रोने लगते हैं[3] ।

(4) रावण से निराहत विभीषण सीधे राम की शरण में नहीं जाते । पहिले वह उसके लिए अपनी माता से अनुमति प्राप्त करते हैं[4], जो उन्हें एक बारअपने बड़े भाई के अपराध को क्षमा करके यहीं बने रहने के लिये समझाती भी हैं । फिर वे कुबेर से इस सम्बन्ध में परामर्श करते हैं और यहाँ पर शंकर की प्रेरणा पाकर अपने संकल्प में दृढ़ हो जाते हैं तथा राम की शरण में चले जाते हैं ।

(5) संजीवनी लेकर आते हुए हनुमान भरत के बाण से आहत होकर गिरते हैं और उनसे माताएँ लक्ष्मण-मूर्छा का समाचार पाती हैं । उस समय वीर-माता सुमित्रा अपने एक पुत्र के शोक को अन्तर में छिपाकर राम की सहायता के लिए दूसरे पुत्र को भी जाने का आदेश करती दिखाई देती हैं ।

(6) उत्तरकाण्ड में राज्याभिषेक के पश्चात् दोलोत्सव, दीपमालिकोत्सव तथा वर्षोत्सव आदि के वर्णन आते हैं जिन पर कहीं कहीं रसिक-प्रभाव देखा जा सकता है ।

1- देखिए गीतावली, अरण्यकाण्ड 10-11 ।

2- " " , सुन्दरकाण्ड 3,4 ।

3- " " " 5 ।

4- " " " 26 ।

(7) अन्त में सीता-निर्वासन तथा लवकुश के जन्म आदि की कथा भी है ।

(ग) इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी रुचि के अनुसार कुछ कथाओं का विस्तार तथा कुछ प्रसंगों का संकोचन भी किया है । नीचे वे प्रसंग दिए जा रहे हैं कवि ने जिनका मानस की अपेक्षा गीतावली में विस्तार किया है :-

(1) राम जन्म महोत्सव- वर्णन - प्रथम छः (छंद) पदों में केवल जन्म महोत्सव का ही वर्णन किया गया है ।

(2) चारों भाइयों की बाल-लीलाओं का वर्णन - कवि ने बाल-लीलाओं का सविस्तार वर्णन लगभग अड़तीस पदों में किया है । राम के बाल सौन्दर्य का वर्णन कवि का प्रिय विषय है । मानस में बाल-लीलाओं का वर्णन बहुत संक्षिप्त है ।

(3) विश्वामित्र के साथ जाते हुए राम के सौन्दर्य का वर्णन - जनकपुर में दोनों भ्राताओं के रूप-माधुर्य की प्रशंसा ।

(4) वन-पथ पर जाते हुए राम-लक्ष्मण -सीता के सौन्दर्य-माधुर्य की ग्राम -वधुओं द्वारा प्रशंसा कवि ने 33 पदों में कराई है ।

(5) विभीषण की शरणागति ।

(6) अशोक वनवासिनी सीता का विरह ।

(7) अवधि के समाप्तप्राय होने पर कौसल्या की चिंता एवं उत्कण्ठा ।

(8) उत्तरकाण्ड में राजाराम के सौन्दर्य का वर्णन ।

(9) अयोध्या के आनन्दोत्सवों का वर्णन ।

(घ) गीतावली में " मानस" की रामकथा के निम्नलिखित वर्णन या तो छोड़ दिए गए हैं अथवा उनको अति संक्षिप्त कर दिया गया है:-

(1) राम विवाह का वर्णन संक्षिप्त कर दिया गया है ।

(2) परशुराम-प्रसंग का वर्णन नहीं किया गया है केवल कौसल्या छल और संकेत करती है ।

(3) कैकेयी के कोप भवन प्रवेश का कथा प्रसंग वर्णित नहीं है । केवल मात्र अयोध्याकाण्ड के प्रथम पद में छल और संकेत है । चित्रकूट सभाओं का वर्णन अत्यधिक संक्षिप्त है तथा चित्रकूट के जनक के आगमन का उल्लेख नहीं है ।

(4) काक- कथा का वर्णन नहीं किया गया है ।

(5) राम-लक्ष्मण-सीता के ऋषि मुनियों के आश्रमों में जाने का वर्णन नहीं किया गया है ।

(6) शूर्पणखा- विरूपीकरण तथा खर-दूषण-वध के प्रसंगों का वर्णन भी नहीं किया गया है ।

(7) सुग्रीव- मैत्री तथा बालि-वध से सम्बन्धित कथा-प्रसंगों का वर्णन नहीं किया गया है ।

(8) वानरों के स्वयं प्रभा तथा सम्पाती से मिलन प्रसंगों की ओर मात्र संकेत कर दिया गया है ।

(9) हनुमान द्वारा अशोक-वन विध्वंस तथा लंकादहन की ओर मात्र संकेत किया किया गया है ।

(10) इसी प्रकार सेतु बंध, शिव-स्थापना आदि प्रसंगों का भी वर्णन नहीं किया गया है ।

(11) अंगद रावण संवाद संक्षिप्त कर दिया गया है ।

(12) युद्ध का वर्णन नहीं किया गया है । केवल लक्ष्मण-मूर्छा तथा हनुमान द्वारा संजीवनी लाने के प्रसंग का वर्णन उपलब्ध है । तत्पश्चात् कवि ने विजयी राम की छवि अंकित की है । लंकाकाण्ड के एक पद में युद्ध सम्बन्धी घटनाओं की ओर संकेत मात्र किया गया है । इस पद में अरण्यकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक की महत्वपूर्ण घटनाओं का अयोध्या में प्राप्त समाचार के रूप में नामोल्लेख मात्र कर दिया गया है ।

गीतावली में भरत का स्वरूप

गीतावली में भी भरत का स्वरूप वही है जो रामचरितमानस में है । भरत बाल्यकाल से राम के मन को मोहने वाले, उनके परम प्रिय हैं । वे राम के अनुज भी हैं और सखा भी । भरत राम के आज्ञाकारी सेवक भी हैं । बाल्यकाल में चारों भाई साथ - साथ खेलते हैं । राम स्वयं हार जाते हैं और भरत को जिता देते हैं । इतना ही नहीं वे भरत के जीतने पर प्रसन्न होकर मित्रों को हाथी, घोड़े, रत्न आदि देकर पुरस्कृत करते हैं । मानस में अयोध्याकाण्ड में भरत चित्रकूट की सभा में राम के स्वभाव की प्रशंसा करते हैं- " मैं निज नाथ सुभाउ निज जोही । हारेउँ खेल जितावहिं मोही ।।" गीतावली में मानों इसी बात के आधार स्वरूप कवि ने चारों भाइयों के मिलकर खेलने तथा भरत के

जीतने और राम के हारने का वर्णन किया है । परन्तु गीतावली के भरत को हारने में जो हर्ष होता है और जीतने पर वे सकुचाकर अपना सिर तथा दृष्टि झुका लेते हैं[1] । राम तथा भरत का शीलाचरण सर्वथा प्रशंसनीय है ।

गीतावली में कवि ने चारों भाइयों के शील सौन्दर्य का वर्णन करते समय भरत के शील एवं स्नेह के विषय में विशेष रूप से कहा है, " जैसे राम लखिन तैसे सोने लखन लाल । तैसेई भरत सील-सुषमा-सनेह-निधि तैसेई सुभग सँग सत्रुहनु ।।"[2]

राम के प्रति भरत के स्नेह की प्रगाढ़ता उनके इस आचरण से भी स्पष्ट है कि शतानन्द के राम विवाह संबंधी जनक की पत्रिका लाने के समाचार को भरत ने बड़े प्रेम तथा उत्साह के साथ कौसल्या तथा अन्य माताओं को जाकर सुनाया । उनका पुलक पल्लवित शरीर तथा सजल नयन उनके राम के प्रति सघन प्रेम को मानों प्रत्यक्ष रूप में बता रहे हैं । राम की प्रशंसा करते भरत थकते नहीं हैं[3] ।

1- राम लखन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
तरजुतीर सम सुखद भूमि बन, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लिए ।।
कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि ठौंकि ठौंकि कये ।
कर-कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझ ये ।।
× × × × × ×
एक ले चढ़त, एक घेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद मये ।
एक कहत भइ हारि राम जू की, एक कहत भइया भरत जये ।।
प्रभु सकसत गय बाँधि बसन मनि, जय धुनि गगन निसान हये ।।
बाह सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुतरे द्वार गए ।।
× × × × × ×
हारे हरष हीस हिय भरतहिं, जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव सील सुकृती तेइ ये रहि रंग रए ।।
गीतावली बालकाण्ड, 43 ।

2- देखिए गीतावली बालकाण्ड, 40 तथा 65 ।

3- सानुज भरत कलन उठि धाए ।
पितु समीप सब समाचार सुनि मुदित मातु पहँ आए ।
सजल नयन, तनु-पुलक, उदर फरकत लखि प्रीति सुहाई ।
कौसल्या लिए लाइ हृदय " बलि" कही केहु है सुधि पाई ।।
सतानन्द उपरोहित अपने सिरसुत साथ पठाए ।
खेम कुसल रघुबीर लखन की लखिबा पत्रिका न्याए ।।
× × × × × ×
यों कहि सिथिल सनेह केहु दोउ अंक भरि लीन्हें ।।
बार बार गुरु-गुन, बारु मनि बसन निछावरि कीन्हें ।।
गीतावली, बालकाण्ड, 100 ।

भरत के हृदय का यही राम-प्रेम अयोध्याकाण्ड में अधिक मुखरित हुआ है। अयोध्या आते ही उन्हें राम वनगमन तथा पिता-मरण की दुःखद घटनाएँ बताई गईं। मूल में कैकेयी ने उनका हित साधन राज्य-प्राप्ति रखा है। इससे बढ़कर दुःख, शोक, कलंक, क्षोभ एवं ग्लानि की और क्या बात हो सकती थी। राम-सा प्रियतम भाई उनके कारण वन को चला गया। भरत ग्लानि से गलने लगे परन्तु उन्हें यह विश्वास है कि राम उनके हृदय की गति को जानते हैं। "प्रीति की प्रतीति" तो इसी कारण निश्चित है कि राम सबके हृदय में। विशेष कर भरत के हृदय में निवास करते हैं।[1] भरत के महानु शील-स्नेह को केवल सीता-राम ही जानते हैं अथवा वे भक्तजन जानते हैं जिनके राम-नाम के प्रति-प्रेम का अविचल रूप से निर्वाह हुआ है।[2] राम के स्वभाव एवं सर्वज्ञता तथा अपने प्रेम के भरोसे ही भरत राम के समीप चित्रकूट जाने का निश्चय कर लेते हैं।[3]

शृंगवेरपुर में राम के वन की कुश-साथरी देखकर भरत अत्यन्त दुःखी हुए। राम के विषय में बातचीत करते हुए ही उनकी वह रात व्यतीत हो गई। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने दूर से अपने दोनों परम प्रिय भाइयों को देखा। उस समय भरत की प्रेम विह्वल दशा का कवि ने बहुत ही सुन्दर चित्र खींचा है - "मन अगहुँड़ तनु पुलक तिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर। मनहुँ गोइ आनौं तरुण-पंकज मँह, बूड़त प्रेम-बल-धीर।"

वे स्पष्ट रूप से राम से अपने हृदय की प्रीति का निवेदन करते हैं,-

"जानत हौं सबही के मन की।
तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सनहुदीन हित जन की॥
ए सेवक सीतल अनन्य अति ज्यों बातकहि एक गति धन की।
यह बिचारि मानहु पुनीतपुर, करहु दुसह आरति परिजन की॥

1- होतो जौ न सुजान-सिरोमनि राम सब के मन माहीं।
तौ तोरी करतूति, मातु! सुनि, प्रीति-प्रतीति कहा हौं॥
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 61।

2- जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है।
के तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम नेम निबहा है।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 64।

3- गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 65।

गीतावली के भरत भी मानस के भरत के समान बड़े धार्मिक हैं। महाराज दशरथ उनको " धर्म धुरीण" कहते हैं[1]। राम उनको " शुचि हृदय" एवं " सुजान" बताते हैं[2]। भरत की धर्मज्ञता की प्रशंसा राम ने इस सीमा तक की है कि यह कह दिया है कि " संसार में धर्म को तो तुम ही अवलंब दिए हो[3]।" यहाँ भी वे "मानस" की भाँति राम के आदेशानुसार अयोध्या को लौट तो आते हैं परन्तु नन्दीग्राम में पर्णकुटी बनाकर फलाहार पर आश्रित रहकर तथा " पादुकाओं" से राज-काज की अनुमति लेकर राज्य संचालन करते हुए " असि-धारा-व्रत" का पालन करते हैं। राम वन के अभावमय जीवन के रूप में कष्ट उठाते हैं परन्तु भरत सम्पूर्ण राज्य-ऐश्वर्यों के समक्ष रहते हुए भी कठिन व्रत-नियम का पालन करते हैं[4]। निश्चय ही उनके जैसा भाई न तो हुआ है और न होगा ही।

- -

1- अवध बिलोकिहौं जीवत रामभद्र बिहीन।
कहा करिहैं आइ सानुज भरत धरम धुरीन॥

गीतावली अयोध्याकाण्ड, 58 ।

2- " तुम्ह सुचि हृदय सुजान काल बिधि,
बहुत कहा कहि कहि समुझायो॥"

गीतावली अयोध्याकाण्ड, 72 ।

3- प्रीति नीति गुन सील धर्म कहँ तुम अवलम्ब दिए हो।

गीतावली अयोध्याकाण्ड, 75 ।

4- " जब हौं चित्रकूट तें आए।
नन्दिग्राम बनि अवनि, डाति कुस, परन कुटी करि छाए॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि लिग दीन्हें।
प्रभु पद-प्रेम नेमव्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें॥

सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे।
प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु त्यों त्यों प्रीति अधिकाई।
अब न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई॥

गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 79 ।

गीतावली में भरत की रामभक्ति की कवि ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ही प्रकार से प्रशंसा की है। भरत राम-संवाद में भरत के मुख से कहाया गया प्रत्येक शब्द आर्त भक्त की दीन पुकार है जो उसने अपने सच्चे प्रभु से की है[1]। प्रभु तो शील-संकोच-स्नेह एवं करुणा का सागर है और भक्त भी बालक के समान प्रेम की अनन्यता पर दृढ़ है। सच्चे उसे स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य है, परन्तु प्रेम की अनन्यता में वह बालक के समान हठी है। उसे विश्वास है कि उसका प्रभु उसके हृदय की गति को, प्रीति को भली प्रकार जानता है।

प्रत्यक्ष रूप में भी भरत की भक्ति की प्रशंसा में कवि ने चार अद्भुत सुन्दर पद लिखे हैं[2]। उसके अनुसार भरत ने भक्ति की भली भाँति रक्षा की है। स्वार्थ एवं परमार्थ के वर्णन भरत का यशोगान सम्पूर्ण विश्व ही कर रहा है। जिस व्रत का आचरण श्रेष्ठ मुनिगण को मानसिक रूप से भी करना कठिन था, उस व्रत का पालन उन्होंने बालक की दृढ़ता के साथ किया है[3]। कवि को भरत का आचरण अच्छा लगता है परन्तु वह उसे कहते नहीं बनता। उनका सजल नेत्रों एवं शिथिल वचनों से प्रभु का गुणानुवाद करना, भोजन-वस्त्र-निवास एवं शयन सम्बन्धी उनका भारी वैराग्य, दिन प्रतिदिन उनका प्रेम के प्रण तथा नियम का निर्बाध रूप से निर्वहन करना, सीता-राम-लक्ष्मण के विरह की पीड़ा को सहना तथा लोक-परलोक के सुखों को त्याग कर केवल राम के चरणों में अनुराग करना, यह सभी कुछ अनिर्वचनीय है[4]। तुलसी के अनुसार केवल चार व्यक्तियों ने ही राम की भक्ति को भलीप्रकार वास्तविक रूप में जान पाया है। ये चार भक्त शंकर, हनुमान, लक्ष्मण तथा भरत हैं। राम की भक्ति कहने में सुगम है, करने में कठिन है और सुनने में मधुर है। चाहते सब हैं परन्तु प्राप्त विरले ही कर पाते

1- देखिए गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 70,71,73,74,76,77,78 ।

2- देखिए गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 79 से 82 तक।

3- राखी भगति भलाई भली भाँति भरत।
स्वारथ परमारथ पथी जय जय जग करत॥
जो व्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत।
सो व्रत सिर बालक ज्यों सुगम पाय हरत॥ गीतावली अयोध्याकाण्ड, 80।

4- मोहि भावति कहि आवति नहीं भरत जू की रहनि।
सजल नयन सिथिल बचन प्रभु-गुन-गन कहनि॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम-गलत-गहनि।
दिन दिन पद प्रेम नेम निरबाधि निरबहनि॥
सीता-रघुनाथ-लखन-बिरह-पीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि॥

गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 81।

हैं ; जिनका यशयुगों युगों तक प्रकाशित रहता है । ये राम-भक्त राम-प्रेम के मार्ग कभी विचलित नहीं होते हैं ।[1]

गीतावली के भरत " मानस" के भरत की अपेक्षा अधिक दीन एवं करुण दिखाई देते हैं । उनके मन में बहुत अधिक ग्लानि है, बिना दोष के ही प्राप्त कलंक से वह भरत हैं । गीतावली में भरत के भाषण दीनता से पूर्ण हैं । उनमें आत्म ग्लानि तथा माता के कुकृत्य पर पश्चाताप भरा हुआ है[2] । उनके इस कथन में जितना हृदय का परिताप है, जितनी विवशता है, -

"अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो ।
जनमि कैकयी-कोखि कृपानिधि । यहौं कछु यपरि कहौंगो ।।
" भरत भूप, तिय राम लखन बन, सुनि सानंद सहौंगो ।
पुरपरिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौंगो ।।
प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो ।

- -

1- जानी है सकल हनुमान लखन भरत-राम-भगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ।।
लहत सबुरा, चहत सकल, जुग-जुग जगमगति ।
राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहीं डगति ।।
उधि, सिधि, बिधि वारि सुगति जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय ठगनि ठगति ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 82 ।

2-(क) भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।
हूबे न सकत साहुहें सकुचत समुझि मातुकृत खोरि ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड 70 ।

(ख) महत-मोह मानहुँ सकुच-पंक महँ कढ़त प्रेम-बल धोर ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 69 ।

(ग) तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सनहु दीनहित जन की ।
× × × × ×
मोकों जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कृपालु तें तनु की ।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 71 ।

(घ) जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति अपराधिनि को जायो ।
प्रनतपाल कोमल-सुभाय सिय जानि सरन तकि आयो ।।
जो मेरे तजि चरन आनगति, कहाँ हृदय बसु राखी ।
तौं परिहरहु दयालु दीनहित प्रभु अंतर-साखी ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 74 ।

आने की विनती तुलसी तब जब फिरि चरन गहौंगो ।।"

मानस के समान ही गीतावली में भी भरत के निर्णय अत्यन्त विवेकपूर्ण हैं । जहाँ माता के कुकृत्य से उत्पन्न संकोच उन्हें हुआ रहा है वहीं विवेक का बौद्धिक दृष्टि-बल से उन्हें पार भी लगा रहा है । "मानस" में भरत के यह निर्णयात्मक अवसर अनेक हैं, परन्तु गीतावली में यह अवसर कम हैं ।

गीतावली के भरत की एक अन्य विशेषता उनका अत्यन्त कोमल तथा मानवीय व्यवहार है । वे कैकेयी से भी बहुत कठोर शब्द नहीं कह पाते हैं । उन्हें इस बात का आश्चर्य है कि कैकेयी का हृदय इतना कठोर कैसे हो गया है कि उसने राम को वन जाने के वर की याचना की । उन्हें इस बात की चिंता भी है कि इस इतने बड़े अपयश को लेकर कैकेयी अपना जीवन कैसे चलायेगी[1] ।

यद्यपि उन्हें कैकेयी के कुकृत्य से घोर ग्लानि है तथा उनका हृदय उसके प्रति घोर क्षोभ एवं रोष से भरा हुआ है परन्तु उनकी मानवता कैकेयी के प्रति अपशब्दों का प्रयोग उनसे नहीं होने देती है । उनका मन उससे इतना क्षुब्ध था कि जीवनपर्यन्त वे कैकेयी से जी खोलकर बात नहीं कर सके[2] ।

भरत के स्वभाव का सच्चा वर्णन तो कवि ने राम के मुख से एक पंक्ति में ही करा दिया है- " प्रीति नीति गुन सील धर्म कहँ तुम अवलंब दिए हो ।"

दोहावली-रचना-काल: | यह ग्रन्थ विभिन्न अवसरों पर लिखे गए दोहों का संकलन है । रचना काल के विषय में कोई ठोस साक्ष्य उपलब्ध नहीं है । कवि ने स्वयं रचना काल का निर्देश नहीं किया है । केवल एकदोहे में रघु बीती का उल्लेख है[3] ।

- -

1- ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री ?
" राम बाहु कानन कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री ।।
दिनकर-कुल, पिता दसरथ से, राम लखन से भाई ।
जननी ! तू जननी ? सो कहा कहौं विधि केहि खोरि न लाई ।।
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वै हैं, छीजै अवध मेरो हरि हैं ।
तुलसीदास मोको बड़ो सोच है तू जनम कीनि विधि भरि है ।।
गीतावली, अयोध्याकाण्ड, 60 ।

2- कैकेयी जो लौं जियत रही ।
सो लौं बात मातु सौं मुँह भरि भरत न भूल कही ।।
गीतावली, उत्तरकाण्ड, 37 ।

3- देखिए दोहावली, 240 ।

डा० माता प्रसाद गुप्त ने तीन ऐसे दोहों का उल्लेख किया है कि जिनमें कवि ने अपनी बड़ा जर्जरित शारीरिक अवस्था की ओर संकेत किया है[1]। जिसके अनुसार उन्होंने रचना सत्रहवीं सदी 1656 से 1676 के मध्य होने का अनुमान किया है। दोहावली की रचना इसी काल में हुई होगी। डा० गुप्त दोहावली का रचना काल सं० 1661 तथा 1680 के बीच मानते हैं तथा उन्होंने इसको भी कवि की अन्तिम तथा अपूर्ण रचनाओं में से एक माना है[2]।

दोहावली में भरत- दोहावली में राम-स्वरूप, राम-भक्ति, दर्शन तथा नीति आदि से सम्बन्धित दोहों का संकलन है। इस ग्रन्थ में अनेक दोहे " मानस" से तथा अनेक " रामाज्ञा-प्रश्न" से संगृहीत हैं। परिणामतः इस ग्रन्थ में रामकथा के क्रमबद्ध रूप से निर्वहन का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। दोहावली के दोहे साहित्यिक दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं।

उपर्युक्त कथन-विषय से स्पष्ट है कि दोहावली में भरत के समग्र स्वरूप-दर्शन की आशा नहीं करनी चाहिए, फिर भी भरत का चरित्र अंकन मुक्तक शैली में दोहावली में यत्किंचित उपलब्ध है। चारों भाइयों की वन्दना में भरत की भी वन्दना की गई है[3]। राम के तीन प्रिय जनों-सीता, लक्ष्मण तथा भरत- में भरत की गणना की गई है जिनके राम-प्रेम, विरह-ताप तथा अविरल सुभाव को श्रीराम भली प्रकार जानते हैं तथा जिनके प्रेम का स्मरण कर उनके नेत्रों में भी प्रेमाश्रु उमड़ आते हैं[4]।

1- रोम निकर तनु जरठपनु तुलसी संग कुरंग।
राम कृपा बै पालिए दीन पालिबे जोग ।। । इत्यादि। ।
दोहावली के दोहे 178, 563 तथा 155 ।

2- देखिए- तुलसीदास पृष्ठ 254 । लेखक डा० माता प्रसाद गुप्त ।

3- राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभ नाम ।
सुमिरत दसरथ, सुवन सब पूजहिं सब मनकाम।। दोहावली 121 ।

4-(क)- हित उदास रघुबर-बिरह, बिबस सकल नर-नारि ।
भरत, लखन-सियगति लखि प्रभु-पद सदा सुबारि ।।201 ।।

(ख)- सीय सुमित्रासुवन-गति, भरत सनेहु सुभाउ ।
कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ ।। 202 ।।

(ग) जानी राम, न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति ।
सो सुनि मुनि सुनसी बसत, छठ लखा की रीति ।। 203 ।।

दोहावली 201, 202, 203 ।

भरत ने अनेक संकटों को सहन कर, सब प्रकार समर्थ होते हुए भी विरह-कष्ट आदि को सहते हुए। कठिन अति धारा व्रत का निर्वहन करते हुए स्वामिधर्म को सब प्रकार से निभाया[1]। स्मरणीय है कि मानस में भरत ने स्पष्ट कहा था कि " स्वामिधर्म स्वारथहिं विरोधू। बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू।" अतएव समस्त स्वार्थों को त्यागकर तथा प्रेम के पवित्र नियम का पालन करके ही स्वामी धर्म का निर्वहन किया जा सकता है। भरत की भक्ति सेवक-सेव्य-भाव की थी, इस बात को कवि ने एक दोहे में ही व्यक्त कर दिया है।

महामहिमाशाली भक्तराज, भरत की महिमा का वर्णन कवि ने दो दोहों में किया है। ये दोनों दोहे रामचरितमानस में भी उपलब्ध हैं। भरत की भक्ति-प्रवणता इतनी उच्चकोटि की है कि इन्द्रिय-संयम, विवेक आदि उसके स्वाभाविक अंग हैं। राम के विरह से दुःखी भरत को जब भरद्वाज मुनि ने अपने तप से ऋषियों तथा सिद्धियों को प्रेरित कर विस्मयशाली वैभवपूर्ण निवास में ठहराया तो भरत ने उस आवास में उसी प्रकार रात्रि व्यतीत की जिस प्रकार कोई पक्षी पिंजरे में रहता है। वह सम्पूर्ण वैभव भरत के लिए नगण्य था, आतिथ्य की औपचारिकता मात्र था। भरत तो राम-प्रेम-पीयूष का पान कर चुके थे। विधि-विस्मय-दायक भवन की सम्पत्ति मानों चकवी थी और भरत चकवा। मुनि की आज्ञा ने दोनों को आश्रम रूपी पिंजड़े में बन्द कर दिया था। परन्तु प्रभु-विरह की उस रात्रि में भरत चकवे ने अपने नियम का पालन करते हुए सम्पत्ति चकवी का स्पर्श नहीं किया। जो राम प्रेम के पीयूष रस का पान कर चुका है उसके लिये विश्व के समस्त वैभव तुच्छ तथा नगण्य हैं। उसकी स्थिति बहुत ऊँची है। भरत प्रेम के जिस परमपद पर आसीन थे उसके समक्ष संसार का कोई भी राज्य, कोई भी वैभव अत्यन्त तुच्छ था। इसीलिए राम ने लक्ष्मण को समझाया था कि भरत को विधि हरि हर का पद प्राप्त करके भी राजमद नहीं हो सकता है। भरत की जिस महिमा का वर्णन राम भी नहीं कर सकते थे उसको कवि ने अति निपुणता से मात्र दो दोहों में व्यक्त कर दिया है।[2]

1- तब बिधि तमरथ तकब कह, सहि सोसति दिन-रात।
कौ निबाहेउ मुनि समुझि स्वामिधर्म तब भाँति ।। 204 ।। दोहावली, 204 ।

2- भरतहिं होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँक काँकी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।। 205 ।।
संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार ।। 206 ।।

दोहावली, 205-206 ।

दोहावली के भरत-स्वरूप चित्रण की विशेषता निम्नलिखित दो दोहे हैं, जिनमें कवि ने भरत को देखकर सुग्रीव तथा विभीषण की मन:स्थिति का सटीक चित्रण किया है । सुग्रीव-विभीषण की घबराहट भरी स्थिति देखिए-

लखन घोर मन मुदित मन धनी गही ज्यों पैंट ।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिं भई भरत की भेंट ।। 207 ।।

घबराहट के पश्चात् घोर ग्लानि हुई । राम द्वारा प्रशंसा किए जाने पर भी और भरत द्वारा राम के समान समझ कर आदरपूर्वक मिलने पर भी सुग्रीव और विभीषण की घबराहट कम नहीं हुई अपितु अपनी करनी की भरत के आचरण से तुलना कर वे दोनों घोर ग्लानि से गलने लगे । मन:स्थिति का वर्णन देखिए:-

राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि ।
तदपि विभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि ।। 208 ।।

चौदह वर्षों तक राज्य को धरोहर के रूप में रखकर उसे भाई राम को सौंपने वाले भरत को देखकर राज्य हेतु भाई का वध कराने वाले विभीषण तथा सुग्रीव का ग्लानि से गलना स्वाभाविक ही है । सामान्यत: सुग्रीव तथा विभीषण राम भक्तों की श्रेणी में अग्रणी समझे जाते हैं अत: उनके प्रति ऐसी उक्तियाँ रामभक्त कवियों ने सामान्यत: नहीं लिखी हैं । इसलिए भी इन दोनों दोहों की विशेषता है ।

एक दोहे में भरत के स्वरूप एवं शील में राम के समान होने की बात कही गयी है :-

" भरत स्यामतन राम सम, सब गुन-रूप-निधान ।
सेवक सुखदायक सुलभ सुमिरत सब कल्यान ।। 208 ।।

विशिष्टता यह है कि भरत सेवक को सुख देने वाले हैं तथा सुलभ भी हैं ।

मानस का एक अन्य भरत सम्बन्धी दोहा भी दोहावली में उपलब्ध है जिसमें भरत ने ग्लानिवश अपने आपको कैकेयी-पुत्र होने के कारण बहुत कठोर बताया है । यह दोहा नीति-विषयक दोहों के साथ कहा गया है । दोहा इस प्रकार है-

" कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ।। 503 ।।

इस प्रकार दोहावली के मात्र ग्यारह दोहों में कवि ने भरत के सौन्दर्य, शील, भ्रातृ-प्रेम, भक्ति की महिमा, सेवक-सेव्य-भाव आदि का वर्णन किया है तथा बड़े सुन्दर ढंग से उनके महनीय चरित्र की प्रशंसा सुग्रीव और विभीषण को सामने प्रस्तुत करके की है ।

बरवै- रामायण

बरवै रामायण बरवै छन्दों में लिखी गई राम कथा है । " तुलसी-ग्रन्थावली" में प्रकाशित बरवै रामायण में मात्र 69 बरवै संकलित हैं । यह सात काण्डों में विभक्त हैं । तुलसी-ग्रन्थावली का प्रकाशन काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया है । बरवै रामायण की प्रतियों का वर्णन उक्त काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में किया गया है उनमें भी पाठ की भिन्नता है। जिन विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन डा0 माता प्रसाद गुप्त ने किया है वे सब सम्भवतः 69 बरवै वाली लघु बरवै रामायण की प्रतियाँ ही रही होंगी । इसीलिए सन् 1946 ई0 में प्रकाशित " तुलसीदास" नामक अपने ग्रन्थ में डा0 गुप्त ने बरवै रामायण के विषय में चर्चा की है कि " इस कृति का सम्पादन सावधानी से किया जाना चाहिए[1] ।"इधर सन् 1967 ई0 में डा0 रामकुमार वर्मा द्वारा सम्पादित" बरवै रामायण" को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने प्रकाशित किया है । इसमें 405 बरवै हैं । इसमें कथावस्तु का क्रम निरन्तरित है जबकि 69 बरवै छंदों में कथा का विकास नहीं हो पाया है । डा0 रामकुमार वर्मा के अनुसार 405 छंदों वाली बरवै रामायण ही तुलसी के ग्रंथों में परिगणित " बरवै रामायण" का वास्तविक रूप है[2] ।

रचना-काल- रचना-काल के विषय में डा0 वर्मा ने डा0 माता प्रसाद द्वारा निर्धारित रचना काल का ही अनुमोदन किया है । डा0 गुप्त बरवै को गोस्वामी जी की अंतिम और अपूर्ण रचनाओं में स्थान देते हैं, जिनका रचना-काल उनके अनुसार सं0 1661 से संवत् 1680 के मध्य है[3] । डा0 गुप्त ने काल-निर्धारण में डा0 वर्मा के मत का भी उल्लेख किया है कि डा0 वर्मा " मूल गोसाईं चरित" के आधार पर इस ग्रन्थ का संकलन-काल सं0 1669 वि0 ही स्वीकार कर लेते हैं । अपने द्वारा सम्पादित " बरवै रामायण" के प्राक्कथन में डा0 वर्मा ने ग्रन्थ का रचना-काल 1679 के आस-पास माना है । उनका कथन इस प्रकार है, " इस दृष्टि से डा0 माता प्रसाद गुप्त

1- देखिए-"तुलसीदास" -पृ0 207 । । ले0 डा0 माता प्रसाद गुप्त । ।

2- देखिए- बरवै रामायण- सम्पादक- डा0 रामकुमार वर्मा/पृ0 7-प्रकाशक -हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

3- डा0 माता प्रसाद गुप्त- तुलसीदास पृ0 247, 254 ।

का यह अनुमान कि " बरवै रामायण" कवि के जीवन की उत्तरकालीन रचना है और अयोध्या की 131 प्रति का रचना-तिथि-संवत् संवत् 1679 समीचीन होता है । मैं स्वयं " बरवै रामायण" का रचना-काल संवत् 1679 के आस-पास मानने के पक्ष में हूँ ।[1] परन्तु डा० गुप्त ने इस कृति का रचनाकाल 1669 माना है न कि 1679 ।

बरवै रामायण की विषय वस्तु रामचरितमानस की रामकथा ही है, परन्तु केवल 405 बरवै छंदों में सम्पूर्ण कथा प्रबंधात्मक ढंग से नहीं लिखी जा सकती है । अतएव सभी प्रसंग अत्यन्त संक्षिप्त है । सुन्दरकाण्ड तथा लंका काण्ड तो अत्यन्त संक्षिप्त हैं । लंका-दहन तथा युद्ध का वर्णन नहीं किया गया है ।

बरवै रामायण में भरत- बालकाण्ड के प्रारम्भ में कवि ने भरत की स्तुति की है । चारों भाइयों के एक साथ विवाह होने का वर्णन बरवै रामायण में है ।

अयोध्याकाण्ड में 225 वें बरवै से 235वें बरवै तक भरत को मामा के घर से बुलाकर दशरथ की अन्त्येष्टि कराने, भरत के चित्रकूट-प्रस्थान, निषाद राज से मिलन, भरद्वाज ऋषि के आश्रम में रात्रि-वास, पुनः राम, लक्ष्मण, सीता का स्मरण करते हुए भरत के पथ पर आगे बढ़ने का उल्लेख है । निषाद ने मंदाकिनी तट पर राम का निवास भरत को दिखाया । देखकर भरत के मन में प्रेम उमड़ पड़ा और राम के चरणों की धूलि को वे नेत्रों से लगाने लगे । प्रेम की इस भाव-विभोरता में तथा निषाद राज को भाव भूल गया । भरत ने दूर से राम को देखकर प्रणाम किया तथा राम ने उठाकर उन्हें हृदय से लगा लिया ।

बरवै के अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट समाजों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । मुनि का रूप देखकर राम ने भरत को अपनी पादुकाएँ दीं जिनको भरत ने प्रेमपूर्वक शिरोधार्य

1- तब निषाद देखरायउ तिन अनूप ।
मंदाकिन तट तहाँ रहत सुर भूप ।। 231 ।।
करत दंडवत भरतहि प्रेम अपार ।
पट रज नैनन्हि लावत बारहिं बार । 232 ।।
रघुवर मिलन सरिस सुख हिय महँ होत ।
तबहि बिसरि गयउ भारत प्रेम निसोत ।। 233 ।।
भरत लये प्रभु सोभिय मुनि के वेष ।
पुलक अंग जल लोचन हरष बिसेष ।। 234 ।।
पाहि पाहि कहि स्वामी महि गह भेट ।
आरत बचन सुना प्रभु बरबस भेट ।। 235 ।।

बरवै रामायण, 2,231-235 ।

किया[1]। राम ने प्रेम सहित सब को चित्रकूट से विदा कर दिया। अयोध्या पहुँचकर भरत ने पादुकाओं को सिंहासनासीन किया तथा स्वयं गुरु से आज्ञा प्राप्त कर नन्दिग्राम में तप करते हुए अवधि की समाप्ति की तथा राम के पुनरागमन की प्रतीक्षा करने लगे। इस काण्ड के अन्तिम तीन दोहों में कवि ने भरत के प्रातःनियम तथा राम भक्ति की प्रशंसा की है[2]।

सुन्दरकाण्ड के भी एक बरवै में भरत का उल्लेख विभीषण द्वारा राम ध्यान एवं दर्शन- कामना के प्रसंग में किया गया है। उत्तरकाण्ड में राम के अयोध्या आने पर भरत उनकी भेंट का उल्लेख भी केवल एक बरवै में किया गया है।

1- मुनि सब लखि प्रभु भरतहिं पाँवरि दीन्ह।
भरत प्रेम परिपूरन सिर धरि लीन्ह ॥ 244 ॥
कहन्ह बहुत बिधि बिनती मन हरषाय।
सुमन बरषि जय गावत सुर समुदाय ॥ 245 ॥

बरवै रामायण, 2,244-45 ।

2- पहुँचे भरत अवध जब तजब निधान।
अवधि आस सब राखहिं आपन प्रान ॥ 249 ॥
चरन-पीठ सिंहासन धरि दिन सोधि।
बैठि मातु पद सेवा कहेउ प्रबोधि ॥ 250 ॥
गुरु अनुसासन लीन्हेउ बिनय सुनाय।
नंदि ग्राम सो महि खनि दर्भ डसाय ॥ 251 ॥
अजिन बसन फल असनहि जटा बनाय।
रहसि अवधि सिय दीन्हे अस प्रभु पाय ॥ 252 ॥

प्रेम नेम ब्रत निरखत मुनिहु लजात।
सिंहासन प्रभु पाँवरि पूजत प्रात ॥

x x x x

ज्यों ज्यों घटत तेज तस प्रीति बढ़ाय।
तुलसी मुख छबि अतुलित कही न जाय ॥ 255 ॥

तुलसी भाइ भरत सम भुवन न कोय।
भए न अहहिं जगत महँ अब नहीं होय ॥ 256 ॥

भरत चरित जे गावहिं निज करि नेम।
रामचरन दृढ़ पावहिं तुलसी प्रेम ॥ 257 ॥

बरवै रामायण 2,249-257 ।

बरवै रामायण में भरत का स्वरूप- बरवै रामायण 405 बरवै छन्दों का छोटा सा ग्रन्थ है अतः इसमें चरित्रांकन की सुविस्तृत सम्भावनाएँ नहीं हैं । फिर भी अयोध्याकाण्ड में भरत का वर्णन कवि ने किया है । यहाँ जो स्वरूप चित्रण किया गया है वह मानस से भिन्न नहीं है । भरत के चरित्र में इस ग्रन्थ में दो बातें विशेष रूप से उभर कर आई हैं- इनमें से प्रथम है वन्दना में " भरत भारती नायक छंद विधान । वाल्मीकि मह धटि रह कर गुन-गान ।" कह कर भरत की वन्दना करना । कवि का यह अडिग विश्वास हो गया है कि कवि हृदय में राम भक्ति की प्रेरणा का स्रोत भरत ही हैं । काव्य रचना छंद-विधान के प्रेरक भी भरत हैं । इस प्रकार सरस्वती तथा वाल्मीकि के साथ उनकी वन्दना बरवै रामायण में ही की गयी है ।

बरवै रामायण के भरत के चरित्र में एक अन्य विशेषता यह है कि बरवै के भरत किसी भी स्थान पर दीनता प्रकट नहीं करते हैं । वह " मानस " के भरत के समान आर्त नहीं हैं । दास्य भक्ति का एक लक्षण दीनता भी है । बरवै के भरत के मन में ग्लानि भी नहीं है । जीवन के अन्तिम चरण में जब इस काव्य की रचना गोस्वामी जी ने की है उस समय वे भक्ति के उस उच्चतम सोपान पर पहुँच गए थे जहाँ दीनता नहीं रहती अपितु उसके स्थान पर शक्ति एवं सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है । सम्भवतः कवि ने अपनी इस आध्यात्मिक स्थिति के अनुसार ही भक्त शिरोमणि भरत में दीन तथा आर्त भाव नहीं दिखाए हैं । बरवै के भरत राम के मार्ग के निवास-स्थलों को देखकर प्रसन्न होते हैं, शोकग्रस्त नहीं होते हैं,- " मिलिह पथिक तेहि पूछहि प्रभु गुन ग्राम । बास निरखि सुख पावहिं मन अभिराम ।"

बरवै के भरत भक्ति के उस उच्चतम आसन पर आसीन हैं जहाँ सुख-दुःखों का समूह अलौकिक आनन्द में विस्मृत हो जाता है । मानस में भी चित्रकूट में राम से मिलते समय भरत की यही स्थिति थी । बरवै में उन्हें राम के दर्शन से हर्षातिरेक हो रहा है, -

भरत लखे प्रभु सोभित मुनि के वेष ।
पुलक अंग जल लोचन हरष विशेष ।।

चित्रकूट से विदा के समय भी भरत हरषित होकर राम से अनेक प्रकार से विनती करते हैं, -

कीन्ह बहुत विधि विनती मन हरषाय ।
सुमन बरषि जस गावत सुर समुदाय ।।

कहीं भी दीनता नहीं है, मन की उच्चतम स्थिति है । प्रेम " मानस" के समान ही प्रगाढ़ है, शरणागति वैसी ही है, त्याग तथा वैराग्य भी वैसा ही है । तपश्चरण भी "मानस" के भरत के समान है । व्रत-उपवास से उनका शरीर तो क्षीण होता जा रहा

है परन्तु प्रेम तथा मुख-छवि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही है ।

ज्यों ज्यों घटत तेज तन प्रीति बढ़ाय ।
तुलसी मुख छवि अतुलित कही न जाय ।।

कवि मानस के समान यहाँ भी भरत की भाव-भक्ति की प्रत्यक्ष पुष्टि करता है, -

" तुलसी भाइ भरत सम भूप न कोय ।
भए न अहहिं जग्ग यह अब नहिं होय ।।"

भरत का चरित्र वरवै में भी निश्चित रूप से राम-भक्ति दायक है, -

भरत चरित जे गावहिं नित करि नेम ।
राम चरन दृढ़ पावहिं तुलसी प्रेम ।।

तुलसी तथा वाल्मीकि के भरत

दोनों ही कवियों ने अयोध्याकाण्ड में भरत के चरित्र को विशेष महत्व दिया है । डा० माता प्रसाद गुप्त का मत है कि " मानस" के अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध में तुलसी ने उन्हें कथा नायक के रूप में चित्रित किया है[1] । रामकथा के मंच पर अयोध्याकाण्ड में भरत का उदय होता है तब वे सब पात्रों में इस प्रकार चमक उठते हैं जैसे तारावली से युक्त गगन मण्डल में चन्द्रमा । उनके यश की धवल चन्द्रिका सब के हृदयों को शीतलता, रस सिक्तता तथा आनन्द प्रदान करती है । भरत के चरित्र को दोनों ही कवियों ने पूर्णरूप से निर्दोष चित्रित किया है । राम के चरित्र में बालि-वध का दोष हो सकता है परन्तु भरत का चरित्र तो सर्वथा निर्दोष है । लक्ष्मण में भी कहीं कहीं उग्रता एवं चपलता देखी जा सकती है परन्तु भरत में तो शीतलता एवं शालीनता ही सर्वत्र दिखाई देती है । डा० राम प्रकाश अग्रवाल के अनुसार भरत के चरित्र-चित्रण में तुलसी ने वाल्मीकि के भरत में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया है, विस्तार और उत्कर्ष अवश्य किया है[2] ।

वाल्मीकीय रामायण में नाना के घर से अयोध्या आने पर भरत ने कैकेयी से सुना कि राम, सीता और लक्ष्मण के सहित दण्डकारण्य को चले गए । सुनते ही उनके

1- " तुलसीदास" पृष्ठ 278- ले० डा० माता प्रसाद गुप्त ।

2- देखिए- वाल्मीकि और तुलसीदास । साहित्यिक मूल्यांकन। पृ० 162 ।
ले०- डा० रामप्रकाश अग्रवाल ।

मन में यह शंका हुई कि राम ने कोई ऐसा पाप तो नहीं किया जिसके दण्ड स्वरूप उनको वन में रहने की आज्ञा हुई। ऐसी शंका का कारण अपने वंश का माहात्म्य था। उन्होंने प्रश्न किया, " माँ। राम ने किसी कारणवश ब्राह्मण का धन तो नहीं हर लिया था? किसी निष्पाप धनी अथवा दरिद्री की हत्या तो नहीं कर डाली थी? राजपुत्र का मन किसी परायी स्त्री की ओर तो नहीं चला गया था? किस अपराध के कारण भैयूया को दण्डकारण्य में जाने के लिए निर्वासित कर दिया गया है?"[2] अपने धर्मशील पिता की सत्यनिष्ठा एवं स्वभाव को भलीभाँति जानने वाले भरत के द्वारा उपर्युक्त पूछा किया जाना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक है तथा यथार्थ के अधिक निकट है, परन्तु राम के महान् गुणों एवं करुणामय स्वभाव को जानने वाले भरत के मन में राम के विषय में क्षण भर के लिए भी ऐसी शंका उत्पन्न होना आदर्श एवं मर्यादा के दृष्टिकोण से उचित नहीं है। यह एक प्रकार से भरत के चरित्र की दुर्बलता समझी जा सकती है। उधर तुलसी की भक्ति का आदर्श भरत हैं, जो राम के अनुज हैं तथा राम के समान ही शील गुणों से विभूषित हैं। ऐसे पात्र के मन में एक क्षण के लिए भी इस प्रकार की राम के चरित्र विषयक शंका का उत्पन्न होना भी तुलसी की दृष्टि में उचित नहीं है। मन में ऐसा विचार आना भी पाप है। परिणामतः तुलसी ने " मानस " के भरत के मन में ऐसी शंका उत्पन्न नहीं की है। तुलसी ने राम परिवार के सभी सदस्यों के चरित्रांकन में इस प्रकार के अनुचित शंकापूर्ण प्रसंगों को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है। तुलसी की कौसल्या भी न तो दशरथ के प्रति ही कोई कटु शब्द कहती हैं और न भरत से ही। वे तो भरत को देखकर ऐसी प्रेम-विह्वल हो जाती है जैसे उनको राम मिल गए हों।

1- सत्पुत्रा भरतस्त्वस्तौ भ्रातुश्चारित्रवत्तया ।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात् प्रष्टुं समुपचक्रमे ।। 43 ।।

वा० रा० 2,72,43 ।

2- कच्चिन्न ब्राह्मणस्वं हृतं रामेण कस्यचित् ।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः ।। 44 ।।
कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते ।
कस्माद् स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः ।। 45 ।।

वा० रा० 2,72,44-45 ।

कैकेयी निन्दा आदि से भरत के उज्ज्वल चरित्र पर हल्का सा धब्बा आदर्श-वादियों तथा यथार्थवादियों को दिखायी दे सकता है । वाल्मीकि रामायण में भरत कैकेयी की भर्त्सना कुछ अधिक कठोर शब्दों में करते हैं । वे उसको "नृशंसा", दुष्टचारिणी, कुलविनाशिनी, वैरिणी, राज्य कामुका, दुर्वृत्ता, पतिघातिनी, कुलदूषणी, राक्षसी, पापनिश्चया, क्रूरा इत्यादि कठोर शब्दों से सम्बोधित करते हैं,[1] जो उस अवसर पर अवसर पर यथार्थ की दृष्टि से स्वाभाविक तो है परन्तु भरत के आभिजात्य के अनुकूल नहीं है । भरत अपनी माता को शापित भी करते हैं[2] तथा अपनी माता से यहाँ तक कह डालते हैं कि " अब तू जलती आग में प्रवेश कर जा या स्वयं दण्डकारण्य में प्रवेश कर जा अथवा गले में रस्सी बाँध कर प्राण दे दे, इसके अतिरिक्त तेरे लिए दूसरी और कोई गति भी नहीं है ।"[3] इस सीमा तक तीक्ष्ण शब्दों का प्रयोग करना भी उनकी सज्जनता के अनुकूल नहीं है । तुलसी ने इस अवसर पर भरत के मुख से ऐसे भीषण कठोर शब्द नहीं कहलाए हैं । इस प्रसंग को उन्होंने संक्षिप्त भी कर दिया है । जहाँ वाल्मीकि ने इस विषय को लेकर दो सर्ग रच डाले हैं वहाँ तुलसी ने मात्र दो दोहों तथा छः चौपाइयों में भरत द्वारा कैकेयी-भर्त्सना को समाप्त कर दिया है । उन्होंने कैकेयी के प्रति पापिनी के अतिरिक्त किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया है । उनके भरत को केवल कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न होने का ही पश्चाताप बार-बार होता है[4] । अन्त में यह कहकर मौन हो जाते हैं कि,-

" राम-विरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह विधि मोहि ।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि "।। 162 ।।

गीतावली में तो भरत को कैकेयी के ग्लानिपूर्ण जीवन के भावी पापन की चिन्ता भी हो जाती है[5] । यह व्यवहार भरत के आभिजात्य एवं सौम्य स्वभाव के अनुकूल है[6] । यही तुलसी द्वारा भरत के चरित्र का उदात्तीकरण है, उसका उत्कर्ष है ।

- -

1- देखिए- वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड, 74, 2-32 ।
2- " " " " 74, 2, 4 तथा 29 ।
3- " " " " 74, 32 ।
4- " रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 161, 162 ।
5- " गीतावली , अयोध्याकाण्ड 60 ।
6- मानसकार ने सौम्य की परिभाषा दी है-
" निज दुख द्रवहि सदा नवनीता । परदुख द्रवहि संत सुपुनीता ।।"
रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनमें कवि ने भरत का दोष दिखाने वाले प्रसंगों को संक्षिप्त कर दिया है अथवा छोड़ ही दिया है। भरत के चरित्र के उदात्तीकरण अथवा उत्कर्ष हेतु तुलसी ने भरत-क्रोध-प्रसंग को संक्षिप्त कर दिया है। भरत का कौसल्या के समक्ष क्रोध कर-कर के अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के प्रसंग को कवि भरत के चरित्र की महानता के अनुरूप संक्षिप्त किया है। वाल्मीकि ने इन क्रोधों का वर्णन 38 श्लोकों में किया है[1] जबकि तुलसी ने केवल एक दोहे तथा छः चौपाइयों में सौमनस्यों के शुष्क वातावरण को समाप्त कर कौसल्या के वात्सल्य की रस-धारा को प्रवाहित कर दिया है।[2] यद्यपि अपनी निर्दोषिता को सिद्ध करने हेतु भरत का क्रोध अथवा सौमनस्य करना नितान्त स्वाभाविक है परन्तु उनके महामहिमाशाली शालीन स्वभाव के यह अनुकूल नहीं है। सम्भवतः इसी कारण मानसकार ने उसे संक्षिप्त कर दिया है।

वाल्मीकि के भरत राम से अयोध्या लौट चलने का बार बार सकरुण अनुरोध करते हैं तथा राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं। राम पिता की आज्ञा पालन पर बल देते हुए भरत के अनुरोध को अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि किसी भी प्रकार राज्य ग्रहण करने हेतु तैयार नहीं हुए तब भरत ने राम के सामने धरना देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने सुमन्त्र से कहा," आप इस वेदी पर कुशा बिछा दीजिए। जब तक आर्य मुझ पर प्रसन्न नहीं होंगे तब तक मैं यहीं इनके सामने धरना दूँगा।[3] भरत के इस हठ से राम घबरा गए। उन्होंने भरत को स्नेहपूर्वक धर्म की व्याख्या देते हुए समझाया। मंत्रियों तथा पुरवासियों ने भी भरत को समझाया। भरत धरना देने से विरत उसी समय हुए जब राम ने यह स्वीकार कर लिया कि चौदह वर्ष के वनवास की अवधि की समाप्ति पर वे अयोध्या आकर राज्य स्वीकार करेंगे।

उपर्युक्त प्रसंग में भरत का हठ उनके गम्भीर शीलाचरण के अनुरूप प्रतीत नहीं होता। इस हठ के लिए भरत की धर्मनिष्ठा, भ्रातृ-प्रेम तथा माता के कुकृत्य से

1- देखिए-वाल्मीकीय रामायण, 2,75,21-58।
2- रामचरितमानस, 2,167-8।
3- इहैव तु स्थण्डिले शीर्ष्यं कुशानास्तर सारये। आर्यं प्रसादयिष्यामि यावन्मे सम्प्रसीदति।। ।। 13 ।।
निराहारो निरालोको दंशमशकवीरणः।
अग्रे पुरस्ताच्छालायां यावन्मां प्रतियास्यति ।।14 ।।
वा० रा० 2,111,13-14।

उत्पन्न ग्लानि मूलक से उत्तरदायी हैं । भरत जैसे गम्भीर एवं शालीन व्यक्तित्व वाले पात्र को किसी भी परिस्थिति में धरना देना और उनके द्वारा राम से अपनी बात मनवा लेने का आग्रह मर्यादा की दृष्टि से उचित नहीं है । तुलसी के भरत एवं राम के सम्मुख इस प्रकार का हठपूर्ण आग्रह नहीं कर सकते थे क्योंकि उनके भरत तो स्पष्ट कहते हैं, " आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा । सो प्रसाद जन पावै देवा ।।" तथा " अब कृपालु जस आयसु होई । करौं सीस धरि सादर सोई ।।"

अर्थ अंकित सभी प्रसंगों में मूल अन्तर दृष्टिकोण का है । वाल्मीकि ने उच्च मानवीय पृष्ठभूमि पर अपने पात्रों की रचना की है । फलस्वरूप उनके पात्रों में कुछ सकारण मानव-सुलभ दुर्बलताएँ दृष्टिगत हुई हैं, जिनके मूल में विषम आधात, विषाद, क्रोध आदि संवेगात्मक कारण हैं । तुलसी का दृष्टिकोण एक भक्त का दृष्टिकोण है जो अपने इष्टदेव का परित्राण कर रहा है । सबसे बड़ी बात यह है कि तुलसी की भक्ति दास्य भाव की है । उनका विश्वास था कि सेवक-सेव्य-भाव के बिना संसार सागर से पार होना कठिन है[1] । इस दृष्टिकोण को अपनाने के पश्चात् भक्त-सेवक अपने स्वामि से कोई दुराग्रह अथवा हठ कैसे कर सकता है । भरत के रूप में तुलसी ने राम के महामहिमाशाली भक्त का चित्रण किया है । भरत की भक्ति तुलसी की भक्ति का आदर्श है । विनयशील भक्त के आचरण में किसी भी कारणवश-पिता की मृत्यु तथा भाई के वनवास पर भी- ऐसी उग्रता नहीं आ सकती कि माता का वध करने का भी विचार करे । तुलसी के भरत में इसीलिए इस सीमा तक उद्वेग उत्पन्न नहीं हुआ है । वे शान्त एवं गम्भीर हैं । कैकेयी की भर्त्सना के समय भी तुलसी के भरत ने शालीनता का परित्याग नहीं किया है । उन्होंने उस समय कैकेयी को जो फटकार सुनाई है, वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं कर पाई है । भरत राम वनगमन का कारण पूछते समय तुलसी के काव्य में राम के कुटाचरण पर शंका करने वाला कोई प्रश्न कैकेयी से नहीं करते हैं । उनके भक्त हृदय में इस प्रकार की शंका उत्पन्न हो ही नहीं सकती थी । इसी प्रकार राम को अयोध्या लौट चलने के लिए वे धरना आदि देने का विचार तुलसी काव्य में कहीं नहीं करते हैं । दास भक्त तो स्वामी की आज्ञा को उनका प्रसाद समझता है । अतः हठ करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार तुलसी के भरत अधिक मर्यादित अधिक शालीन तथा अधिक आज्ञाकारी प्रतीत होते हैं । तुलसी के भरत के चरित्र में मानव सुलभ

1- सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिअ उरगारि ।
भजहु राम-पद-पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि ।।
रामचरितमानस 7.119 ।

दुर्बलताएँ कहीं भी प्रकट नहीं हुई हैं । वे अपने ईश्वर तुल्य अग्रज के अनन्य प्रेमी तथा भावुक भक्त हैं । वाल्मीकीय रामायण में वे धर्मज्ञ एवं कर्तव्यपरायण अनुज हैं ।

एक अन्तर और भी है । तुलसी ने राम को पूर्ण ब्रह्म का अवतार माना है तथा उनके तीनों अनुजों को भी ब्रह्मा का अंशावतार माना है । ऐसी स्थिति में चारों में से किसी के भी चरित्र में कोई मानवीय दुर्बलता हो ही नहीं सकती है । ब्रह्म के इस व्यूह अवतार का उद्देश्य अत्याचारियों एवं दुष्कृतकारियों का विनाश तथा धर्म की संस्थापना है । वे सज्जनों की पीड़ा के निवारणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं । अपने सुयश को मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थ विस्तृत करते हैं । उनके भक्त उनके चरित्र-गान से भवसागर को पार कर लेते हैं[1] । तात्पर्य यह है कि परमात्मा मानव रूप धारण कर ऐसा आदर्श प्रस्तुत करता है जिसके गान तथा अनुकरण से मानव मात्र को आचरण की एक दिशा मिल जाती है । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ब्रह्म के अवतार स्वरूप चारों भाइयों का चरित्र पूर्णतया निर्दोष एवं सर्व गुण सम्पन्न होना ही चाहिये । वाल्मीकीय रामायण के भी बालकाण्ड में राम को विष्णु का अवतार माना गया है । भरत को भी अंशावतार माना गया है । वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में कहा गया है कि कैकेयी से सत्यपराक्रमी भरत का जन्म हुआ, जो साक्षात् विष्णु के चतुर्थांश से उत्पन्न हुए थे । वे समस्त सद्गुणों से सम्पन्न थे[2] । स्मरणीय है कि अधिकांश विद्वान् वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं । वाल्मीकि- रामायण में अयोध्याकाण्ड में प्रस्तुत भरत का चरित्र सर्वथा मानवीय है, अवतारी नहीं, इसीलिए वे मानव सुलभ क्रोध, क्षोभ एवं शोक से अभिभूत होते हैं । मानस के भरत में दैवत्व अधिक है । वे अवतारी पुरुष हैं तथा उनमें किसी भी अवस्था में कोई भी दोष दिखाई नहीं पड़ता ।

1- जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु ।। 121 ।।
सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ।।
रामचरितमानस 1,121-122 ।

2- भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ।।
वा० रा० 1/18/13 ।

दोनों ही ग्रन्थों में भरत में भ्रातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम, धर्मशीलता, अद्वितीय विवेक, करुणा आदि गुण विद्यमान हैं। उनमें विशेष सज्जनता अथवा मानवता निवास करती है। उनका यशोगान दोनों कवियों ने गुरु वशिष्ठ, दशरथ तथा स्वयं राम द्वारा कराया है। वाल्मीकि कथा-विकास के साथ-साथ स्वाभाविक रूप से भरत के आचरण द्वारा उनके गुणों को उद्घाटित करते चलते हैं। स्थान-स्थान पर अन्य पात्र उनकी प्रशंसा करते हैं। इन प्रशंसाओं से भरत का स्वरूप निखरा है तथा कवि का दृष्टिकोण भी परोक्ष रूप से स्पष्ट होता गया है:-

(1) महाराज दशरथ कैकेयी से कहते हैं कि श्रीराम के बिना भरत किसी भी तरह राज्य लेना स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उनकी समझ में धर्म-पालन में भरत राम से भी बढ़कर थे[1]।

(2) श्री राम कौसल्या को समझाते हुए भरत की धर्मशीलता की प्रशंसा करते हैं:-

भरतश्चापि धर्मात्मा तथैव गुरुवृत्तिवान् ।।
भक्तिमानुजो न हि धर्मतः सदा ।।

वा०रा० 2,24,22-23 ।

(3) भरत को लेने सहित आया देख, चित्रकूट में लक्ष्मण उत्तेजित हो जाते हैं तब राम उनको समझाते हैं, कि भ्रातृवत्सल भरत स्नेहाक्रान्त हृदय से हमें लेने आ रहे हैं[2]।

इसके पूर्व अयोध्या से जाते समय नगरवासियों की प्रेमातुर पृच्छाओं का उत्तर देते हुए राम ने भरत की भरपूर प्रशंसा की थी-

स हि कल्याणकारिणः कैकेय्यानन्दवर्धनः ।
करिष्यति यथावद् वः प्रियाणि च हितानि च ।।
ज्ञानवृद्धो वयोबालो मृदुर्वीर्यगुणान्वितः ।
अनुरूपो स वो भर्ता भविष्यति भयापहः ।।
स हि राज्ञोऽनुवृत्तो गुरुराज्ञः समीक्षितः ।
अपि चापि मया क्लिष्टैः कार्यं वो भद्रमस्तु ।।

वा० रा० 2,45,7-9 ।

1- वा०रा० 2,12,61-62 ।

2- वा०रा० 2 ।

राम पुनः उनकी प्रशंसा चित्रकूट सभा में करते हैं । वे भरत की विनयशीलता से विशेष प्रभावित होकर कहते हैं, " तात ! तुम्हें यह जो स्वाभाविक विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है, उसके द्वारा तुम समस्त भूमण्डल की रक्षा करने में पूर्ण रूप से समर्थ हो । ! अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है ?।

।3। गुरु वशिष्ठ ने कैकेयी को राम वनगमन के कठोर हठ से निवृत्त करने हेतु जो उपदेश दिया है उसमें भी भरत की परोक्ष प्रशंसा है[2] ।

।4। चित्रकूट से वापिस आते समय भरत भारद्वाज मुनि से मिलते हुए गए थे । उस समय भरद्वाज मुनि ने भरत की बहुत प्रशंसा की थी । उन्होंने उस समय भरत को सिंह के समान वीर, शील एवं सदाचार के गुणों में श्रेष्ठ तथा सर्वगुणसम्पन्न बताया था[3] ।

गोस्वामी जी ने भी रामचरित मानस में भरत के स्वरूप का वास्तविक दर्शन कराने हेतु एवं इस चरित्र की महानता को प्रकट करने हेतु भरत की प्रशंसा समय समय पर पात्रों से कराई है ।

।।। राजा दशरथ दुःखपूर्वक कैकेयी से कहते हैं, -

।क। " मोरे भरत राम दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकरु साखी ।।"

।ख। " सपत न भरत पुनिहि भारें । विधि कत कुमति चली चियारें ।।"

।ग। " फिर पछितइहसि अंत अभागी । मारसि गाय नहारू लागी ।।"

।2। गुरु वशिष्ठ भरत के शील, धर्मपरायणता तथा भाव-भक्ति की प्रशंसा करते हैं । " भरतु मुनिहि मन भीतर भाए, " उनके गुणों की महिमा अनिर्वचनीय होने के कारण बाह्य रूप से कुछ कहने के लिए गुरु वशिष्ठ के पास कोई शब्द ही नहीं हैं । मन ही मन उनके गुणों की प्रशंसा मुनि करते हैं । उनका मन भरत के भ्रातृ-प्रेम पर मुग्ध है तथा उनकी यह दृढ़-धारणा बन गई है कि भरत की रुचि रखकर जो कुछ भी किया जायेगा, वह शुभ तथा कल्याणमय होगा । भरत की भक्ति के आगे विचार अथवा तर्क निष्फल पड़ गया है[4] ।

1- वा०रा० 2,112,16 ।
2- वा० रा० 2,37,27-32 ।
3- वा० रा० 2,113,16-17 ।
4- रामचरितमानस 2,258 ।

(13) भरत का अलौकिक त्याग देखकर भरद्वाज मुनि भी उस धर्म-शीलता पर मुग्ध हैं। वे भरत के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल तुषार से मण्डित मानते हैं। उनका कथन है कि भरत के विमल यश का गान कर लोक और वेद दोनों बड़ाई पायेंगे[1]। मुनि ने भरत को तब प्रकार से राम के प्रेम में मग्न पाया और प्रशंसा की, " तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू।।

मुनि के अनुसार भरत का यश निष्कलंक चन्द्रमा है जो सदैव ही पूर्ण रहता है। यह क्षीण तो होता ही नहीं है अपितु अनुदिन बढ़ता रहता है। यह यशोचन्द्र अलौकिक है जिसको कैकेयी की करतूति रूपी राहु भी ग्रस नहीं सकेगा। यह राम-प्रेम-पीयूष से परिपूर्ण है[2]। भरद्वाज मुनि का मत है कि समस्त आध्यात्मिक साधनों का फल तो श्री राम का दर्शन है और उनके दर्शनों के अमोघ फल के रूप में भरत का दर्शन है। भरत का दर्शन प्राप्त होना भरद्वाज मुनि तथा प्रयागराज दोनों का सौभाग्य है[3]।

(14) कौसल्या भरत की भूरि-भूरि प्रशंसा करती हैं। नाना के घर से आकर पिता की मृत्यु तथा बड़े भाई के वनगमन समाचार से भरत बहुत शोकातुर हो उठे। तब कौसल्या ने उनको सान्त्वना दी - " राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे। " चित्रकूट में कौसल्या महाराज जनक की पत्नी सुनयना से भरत के की प्रशंसा करती है[4]।

(15) महाराज जनक तो भरत की कर्तव्य-भावना, उनकी धर्मनिष्ठा, शील, गुण तथा विमल ऐश्वर्य से इतने अधिक प्रभावित हैं कि उन्हें भरत का चरित्र गंगा जी से भी पवित्र तथा अमृत से भी मधुर प्रतीत होता है। भरत के गुणों में मग्न जनक अपनी पत्नी से उनकी प्रशंसा करते हैं, -

---

1- तात तुम्हार विमल जसु गाई। पावहिं लोकउ बेदु बड़ाई।।
रामचरितमानस 2,207।

2- रामचरितमानस 2,209।

3- सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा।।
तेहि फलु कर फलु दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।।
भरत धन्य तुम्ह जग जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ।।
रामचरितमानस 2,210।

4- रामचरितमानस 2,203।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू । लोक सुजसु सुधा ससि सारू ।।
मूदे सजल नयन पुलके तनु । सुजस सराहन लगे मुदित मन ।।
" सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव बंध बिमोचनि ।।
धरम राजनय ब्रह्म बिचारू । यहाँ जथामति मोर प्रचारू ।।
सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह छलि छुआ न छाहीं ।।
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद । कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ।।
भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ।।
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू ।।

दो०- निरवधि गुन निरमम पुरुष भरतु भरत सम जानि ।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि ।।

रामचरितमानस 2,288 ।

161 भारत के कथा नायक तथा ब्रह्म के साकार अवतार राम को भरत प्राण-प्रिय हैं । उनकी प्रशंसा वे यथावसर सदैव ही किया करते हैं । भरत के सेना सहित चित्रकूट आने का समाचार सुनकर लक्ष्मण का मन शंकित एवं क्षुब्ध हो उठा । उस समय भरत की प्रशंसा करते हुए राम ने उन्हें समझाया,-

" सुनहु लखन भल भरत सरीसा । बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।।
भरतहिं होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ।। 231 ।।
तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई । गगनु मेघ मेघहिं निगलई ।।
गोपद जल बूड़हिं घट जोनी । सहज छमा बरु छाड़ै छोनी ।।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई । होइ न नृपमदु भरतहि भाई ।।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ।।
सगुन खीरु अवगुन जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ।।
भरत हंस रबिबंस तड़ागा । जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।।
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी । निज जस जगत कीन्ह उजियारी ।।"
कहत भरत गुन सील सुभाऊ । पेम पयोधि मगन रघुराऊ ।।

रामचरितमानस 2,231-32 ।

राम भरत को धर्मधुरंधर समझते थे । चित्रकूट सभा में उन्होंने गुरु वशिष्ठ से भरत की प्रशंसा करते हुए कहा है,-

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरत सम भाई ।।

इसी सभा में अयोध्या की प्रत्यावर्तन सम्बन्धी भरत का अनुरोध सुनने के पश्चात् राम पुनः भरत की प्रशंसा करते हैं, -

तीनि काल तिभुवन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।।

× × × ×

। रामचरित मानस 2,263-264 ।

चित्रकूट की एक अन्य सभा में राम पुनः भरत की प्रशंसा करते हैं, -

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना । लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ।।

करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात ।

गुरु समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात ।। 304 ।।

। रामचरित मानस 2,304 ।

भरत के चित्रकूट से अयोध्या को लौट जाने के पश्चात् राम सीता तथा लक्ष्मण से बहुधा भरत की प्रशंसा करते रहते हैं।

(7) देवताओं,[1] देवगुरु बृहस्पति,[2] शारदा[3] आदि द्वारा भी तुलसी ने भरत की प्रशंसा बार-बार कराई है ।

(8) समस्त अयोध्यावासी, चित्रकूट जाते समय मार्ग के निकटस्थ ग्रामों के वासी स्त्री-पुरुषों के द्वारा भी गोस्वामी जी ने बड़े मार्मिक ढंग से भरत की प्रशंसा कराई है[4] ।

1- जौं न होत जग जनम भरत को । सकल धरमधुर धरनि धरत को ।।
कवि कुल अगम भरत गुन गाथा । को जानहु तुम्ह बिनु रघुनाथा ।।

। रामचरितमानस 2,233 ।

2- भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।।
देखिए रामचरितमानस 2,217 से 220 ।

3- गो तन कहहु भरत मत केरू । लोचन सरस न सूझ सुमेरू ।।
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी । सोउ न भरत मत सकइ निहारी ।।

× × × ×

भरत हृदय सिय राम निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।।

। रामचरितमानस 2,295 ।

4- धन्य भरत जीवनु जग माहीं । सीलु सनेहु सराहत जाहीं ।।

। रामचरितमानस 2,185 ।

देखिए रामचरितमानस 2,202 तथा 221 से 223 ।

कवि ने स्वयं भी स्थान-स्थान पर भरत की प्रशंसा प्रत्यक्ष रूप में की है। इन उक्तियों के माध्यम से तुलसी ने पाठकों को भरत के स्वरूप का दर्शन अपने नेत्रों से कराया है। धर्म प्राण, शीलवान् तथा त्यागमय सरल भक्त का चित्रण कवि ने घटनाक्रम, संवाद-बहुला तथा कवि की सुन्दर उक्तियों के माध्यम से किया है। अयोध्याकाण्ड में गोस्वामी जी ने अनेक स्थलों पर भरत की प्रशंसा की है,-

(11) दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् अयोध्या में आयोजित प्रथम राजसभा में गुरुवशिष्ठ, कौसल्या तथा मंत्रियों ने भरत से राज्य ग्रहण करने का सानुरोध प्रस्ताव किया। उन सब के प्रेमयुक्त वचनों को सुनकर भरत बहुत व्याकुल हो गए। इस समय तुलसी ने भरत का कैसा दयनीय चित्रण किया है -

गुरु के वचन सचिव अभिनन्दनु। सुनि भरतु हिय हित जनु चन्दनु।
सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी॥
सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज सनेह की॥

(रामचरितमानस 2.176)

(12) भरद्वाज आश्रम से चित्रकूट की ओर जाते हुए भरत का वर्णन तुलसी ने भरत की राम-भक्ति एवं उनकी महिमा को प्रकट करते हुए किया है,-

रामबाट कस टीन्हें गातु। जस तप तेज धरें जनु जातु॥
नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदुबानी॥
रामबाट कस बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहीं रोके॥
देखि दसा सुर बरसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥
किए जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहिं जात॥
जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परमपद जोगू। भरतदरस मेटा भव रोगू॥
यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिन्हहिं रामु मन माहीं॥

बारक राम कहत जग जेऊ । होत तरन-तारन नर तेऊ ।।
भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता । कस न होइ अनुमेव बिधाता ।।

। रामचरितमानस 2,216-17 ।

।3। चित्रकूट को देखकर भरत राम के प्रेम में मग्न हो गए । उस समय भरत के प्रेम का वर्णन करना कवि के लिए कठिन है ।

" भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु ।।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु ।।

। रामचरितमानस 2,225 ।

।4। चित्रकूट में राम-भरत की भेंट का वर्णन करते हुए कवि पुनः भरत के राम-प्रेम की प्रशंसा करता है, -

" उमग सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को ।।
सो मैं कुमति कही केहि भाँती । बाच सुराग कि गाँठि तराँती ।।"

।5। चित्रकूट सभा में पुनः तुलसी भरत की प्रशंसा करते हैं, -

" भरत महामहिमा जल राती । मुनि मति ठाढ़ि तीर अकुलाती ।।
गा चह पार जतनु हियँ हेरा । पावति नाव न बोहितु बेरा ।।
औरु करिहि को भरत बड़ाई । सरसी सीप कि सिंधु समाई ।।

। रामचरितमानस 2,257 ।

।6। चित्रकूट की एक अन्य सभा में कवि पुनः भरत की भक्ति को अनिर्वचनीय बताते हुए कहता है, -

भरत प्रीति नत बिनय बड़ाई । सुनत सुखद बरनत कठिनाई ।।
जासु बिलोकि भगति लवलेसू । प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू ।।
महिमा तासु कहै किमि तुलसी । भगति सुभाव सुमति हिय हुलसी ।।

× × ×

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ । लघु मति चापलता कबि छमहूँ ।।
कहत सुनत सतभाउ भरत को । सीय राम पद होइ न रत को ।।

। रामचरितमानस 2,303-304 ।

(7) अयोध्याकाण्ड के अन्त में कवि भरत की प्रशंसा में मग्न हो गया है । मानों वह अयोध्याकाण्ड का सार सत्य प्रस्तुत कर रहा हो, -

परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु मुद मंगल करनू ।।
हरन कठिन कलि कलुष कठेसू । महामोह निसि दलन दिनेसू ।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू । समन सकल संताप समाजू ।।
जन रंजन भंजन भव भारू । राम सनेह सुधा सरि सारू ।।
सियराम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को ।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को ।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को ।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।
भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ते ।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ।।

। रामचरितमानस 2, 326 ।

अन्य अपने ग्रन्थों में भी तुलसी ने स्पष्ट अथवा प्रच्छन्न रूप में भरत की भक्ति एवं राम प्रेम की प्रशंसा की है । डा० रामकुमार अग्रवाल के इस कथन में पर्याप्त सार है कि, " भरत के चरित निरूपण में उनकी । तुलसी की। काव्यकला और धर्म-दृष्टि का अद्भुत सामंजस्य दिखाई पड़ता है । कवि ने अपने हृदय का सम्पूर्ण रस ढाल कर भरत के प्रेम और शील का चित्रण किया है ।"

1- वाल्मीकि और तुलसी- साहित्यिक मूल्यांकन- पृ० 168-9 ।

। डा०रामकुमार अग्रवाल ।

अध्याय- 5

रीतिकालीन राम-काव्य में भरत का स्वरूप- तुलसीदास के पूर्व से रामभक्ति में दो आन्दोलन समान रूप से प्रस्फुटित हुए थे- एक था दास्य भक्ति मर्यादावादी, दूसरा था रसिक भक्ति। मर्यादावादी दास्य भक्ति में विष्णुदास एवं ईश्वरदास प्रमुख कवि थे तथा रसिक भक्ति के सुप्रतिष्ठ कवि स्वामी अग्रदास हुए। तुलसी से पूर्व सूरदास ने भी रामचरित की पदों में रचना की है। सूर साख्य भाव से कृष्ण भक्ति की रचनाएँ करते थे जिनमें रसिकता स्पष्ट झलकती है, परन्तु उनके राम काव्य में मर्यादा का ही निर्वाह हुआ है। केवल एक पद में उन्होंने अयोध्या की युवतियों के मन में राम के प्रति गूढ़ प्रेम व्यक्त किया है। यह पद भी मर्यादित है परन्तु इसमें रसिक काव्य के बीज देखे जा सकते हैं। तुलसी के रामचरितमानस ने राम-भक्ति में दिशा निर्धारण किया। उनका "मानस" उनके जीवनकाल में ही लोकप्रिय एवं लोकप्रिय हो गया था। कालान्तर में यह रामभक्ति का पर्याय बन गया एवं सिद्ध ग्रन्थ माना जाने लगा। मानस में राम के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप की स्थापना है तथा उनको परब्रह्म मानकर दास्य भाव की भक्ति की पुष्टि की गई है। तुलसी से बाद के कवि प्रत्येक दृष्टि से तुलसी काव्य से प्रभावित हुए हैं। परिणामतः राम का मर्यादा पोषक स्वरूप ही ग्राह्य हुआ। रसिक रूप लगभग सौ वर्षों तक दब सा गया। तत्पश्चात् पुनः अपने सम्पूर्ण आकर्षण के साथ प्रकट होकर वेग से बढ़ चला। इन सौ वर्षों में भी कुछ अच्छे राम काव्य लिखे गए। सन् 1650 में केशव ने "रामरक्षा चन्द्रिका" अथवा "रामचन्द्रिका" नामक काव्य लिखा। रामचन्द्रिका भक्ति तथा रीति का मिश्रित ग्रंथ है। कवि ने दो भक्ति भावना से लिखा है। केशव अपने काल के विद्वान् तथा विविध-शास्त्र के ज्ञाता थे। अतः अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के काव्याचार्यों से प्रभावित होकर केशव ने रामचन्द्रिका में अपना काव्याचार्यत्व प्रकट किया है। अतः रामचन्द्रिका भक्ति काव्य होकर भी रीति काव्य के अधिक निकट है।

हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहास में जिन मर्यादावादी राम कवियों का उल्लेख किया गया है उनमें तुलसीदास के पश्चात् केशव, सेनापति[1], कविरत्न रत्नाकर[1], प्राणचंद

1- सेनापति के राम काव्य का उदाहरण:-

राजन को बीर, सेनापति, रघुबीर जू की आयो है सरन, छाड़ि ताहि भट और को।
मिला ही ताको राम कोप के करी है ओप, नाम गौर हुमन दान दीनबन्धु को॥
देवी दानवीरता निदान एक दान ही में, दीन्हें दोउ दान, को बखानै सत्य तेज को॥
सिंधु दानवन्धु को दीन्हीं है विभीषन को, लंका विभीषन की सो दीन्ही दानवेश को॥

[1] कविरत्न रत्नाकर से।

हिन्दी साहित्य का कुछ इतिहास, [1] भाग 51, पृ0 310।

बोहान । रामायण महानाटक। हृदयराम भल्ला । हनुमन्नाटक।, माधवदास चारण । गुप्त राम रासो- सं0 1675 में रचित तथा अध्यात्म रामायण सं0 1681 में रचित । तथा लालदास । अवधविलास। आदि प्रमुख है । रसिक सम्प्रदाय में अग्रदास के पश्चात् नाभादास तथा कान्हरदास आदि ने रामभक्ति सम्बन्धी रचनाएँ की हैं । नाभादास ने भक्तमाल के अतिरिक्त श्री रामचन्द्र के दो अष्टयाम तथा कुछ फुटकर पद[1] लिखे हैं जिनमें भरत-चरित्र की वन्दना व्यर्थ है । भानदास भी शृंगारी भक्त कवियों में हुए हैं परन्तु उनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं । नाभादास ने अपनी कथा श्रव्य एवं दृश्य रामकाव्य प्रणेता के रूप में की है ।

कृष्ण भक्त कवियों में विद्यापति ने कुछ पद राम भक्ति विषयक लिखे हैं परन्तु इनमें से अब कुल चार पद ही उपलब्ध है । सूर के रामकाव्य के विषय में पूर्व ही लिखा जा चुका है । राधा वल्लभी सम्प्रदाय के संस्थापक हित हरिवंश का केवल एक ही राम पद उपलब्ध है ।[2] नन्ददास भी प्रारम्भ में राम भक्त थे । यह तुलसीदास के गुरु भ्राता थे । राम कथा विषयक इनके केवल तीन ही पद उपलब्ध हैं । परशुराम देवाचार्य ने राम की सगुण लीला से सम्बन्धित रघुनाथ-चरित" तथा " दशावतार-चरित" लिखे हैं ।

अर्वाचीन राम भक्ति शाखा में चारण नरहरिदास भी प्रसिद्ध कवि हुए हैं । ये देशनोक जोधपुर के निवासी थे । " हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास"

- -

1- नाभादास के काव्य का उदाहरण-
नैन सैन तौं विनय करि बैठारे रघुनाथ ।
प्रात आरती करि सबै लोचन किए सनाथ ।।
जुगल नाम ते नेम, जपत निस कुंजबिहारी ;
अलोकत रहैं केलि सखी सुख के अधिकारी ।।
गान कला गंधर्व, स्याम स्यामा को तोषैं ।
उरझ भौंर लगाय मोर मरकट सिमि पोषैं ।।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, खण्ड 5, पृ0 329 ।

2- बानी में रघुपति को घेरो ।
बीरा दै रघुनाथ पठायो सोध करन को तेरो ।।
तेरे कारन स्याम घन सुंदर निकसि कियो बन डेरो ।
पद्म अठारह दल बानर मे घालत हैं गढ़ घेरो ।।
अब बनि सोध करै जिय बनी बानि वचन यह मेरो ।
" हितहरिवंश" अनुरक्त मुख ज्यूँ प्रभुहिं लिहै को घेरो ।।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 5, पृ0 333 ।

में इनका कविताकाल संवत् 1707 के आसपास माना गया है । इनका विषय चयन छंद योजना आदि प्रशंसनीय है । इनकी निम्नलिखित रचनाओं का पता चला है-
(1) अवतार चरित्र (2) अहिल्या पूर्व प्रसंग (3) दशम स्कंध भाषा (4) नरसिंह अवतार कथा (5) बानी (6) रामचरित्र कथा । काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद) ।

मर्यादावादी कवियों में दौलतसिंह का नाम भी उल्लेखनीय है । इनका आविर्भाव विक्रम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जाता है । इन्होंने सम्वत् 1750 में 53 सर्गों में विभक्त " रामरसार्णव" काव्य की रचना की । इस काव्य के वर्ण्य विषय रामचरित, दशावतार, मार्कण्डेय चरित्र तथा गाधि-चरित्र आदि हैं, परन्तु प्रमुख रूप से कवि ने रामचरित्र का ही वर्णन किया है । यह ग्रन्थ " मानस" की दोहा चौपाई शैली में लिखा गया है ।

दौलतसिंह के अतिरिक्त ब्रह्मनिधि ने भी राम काव्य की रचनाएँ की हैं । इनका समय विक्रम की 18 वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है । इनकी राम भक्ति विषयक कृतियों में " वाल्मीकि रामायण" तथा " रामायण-सूचनिका" बताई जाती हैं । गोपालचंद्र मिश्र तथा इनके पुत्र माधव ने मिलकर " रामप्रताप" नामक ग्रन्थ की रचना सम्भवतः संवत् 1770 में की थी । "हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास" में लक्ष्य राम के " रघुवंश-दीपक" की बहुत प्रशंसा की गई है । यह प्रबंध काव्य की दृष्टि का महत्वपूर्ण काव्य बताया गया है । लक्ष्य राम ने सम्वत् 1789 में इस ग्रन्थ की रचना की थी । सरयू पंडित ने सम्वत् 1805 विक्रम के आसपास जैमिनि पुराण, सीता त्याग तथा रामाश्वमेध आदि ग्रन्थों की रचना की थी । महाराज मनबोधराय सीची ने "सातों काण्ड रामायण " नामक एक ग्रन्थ सम्भवतः सम्वत् 1817 में रचा था । मधुसूदन दास ने सम्वत् 1839 में " रामाश्वमेध की रचना की जिसके विषय में अगले अध्याय में ~~आगे की रचना की जिसके विषय में अगले अध्याय~~ में आगे वर्णन किया गया है । कवि गणेश के द्वारा भी " वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ प्रकाश" तथा हनुमान पचीसी नामक राम भक्ति के ग्रन्थ लिखे गए थे ।

राम भक्त कवियों में एक रसिक राम भक्ति धारा प्रचलित हुई जिसके विषय में उल्लेख किया जा चुका है कि इसका प्रारम्भ स्वामी अग्रदास से हुआ है । बालानन्द तथा छत्रसाल भी रसिक सम्प्रदाय के रामोपासक थे । ये छत्रसाल महाराज छत्रसाल थे । जनपुर के महन्त रामप्रियाशरण ने विक्रम की 18वीं शताब्दी के अन्त में सीतायन नामक काव्य की रचना की थी । रसिक सम्प्रदाय में रामप्रियाशरण महत्वपूर्ण हैं । जानकी

1- सीता सम्बन्ध से मध्यासी । मेघनाथ बुराच प्रणयी ।।

रघुवंशदीपक ।

रसिकशरण रसमाल, लाल रामगुपन्ना मथुराचार्य, सूर किशोर, प्रयागदास, रामकवि, प्रेमसखी हयाचार्य, कृपानिवास आदि रसिक कवियों ने अपने -अपने ढंग से रामचरित का गायन किया है । परन्तु इनके काव्य शृंगार प्रधान होने के कारण भरत के स्वरूप का वर्णन नहीं करते हैं । महाराज विश्वनाथ सिंह को भी हिन्दी साहित्य के बृहद् इतिहास में रसिक सम्प्रदाय का कवि माना गया है । इनका समय संवत् 1843 से 1911 के मध्य स्वीकार किया गया है । इनके विषय में युगलप्रिया ने लिखा है -

" उत्तम पंथ शृंगारभक्ति दसथा के भेदी ,
पंडित कला प्रवीन रसिक रस ग्रंथ निवेदी ।।

इनके द्वारा अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं जिनका वर्णन इसी अध्याय में आगे किया जायेगा है । नवलसिंह प्रधान जो महाराज हिंदूपति के राजकवि थे, ने सम्वत् 1890 में कुछ काव्य ग्रंथ लिखे थे जिनमें से 'रामचन्द्र-विलास', 'अध्यात्म-रामायण', 'लव-रामायण' तथा रामायण सुमरिनी आदि राम विषयक ग्रंथ हैं । रामचंद्रविलास सुविस्तृत ग्रंथ है जो 33 खण्डों में विभक्त है । इसके तीसरे खण्ड के " रामरास-रमनी" विनोद शीर्षक (नवम् अध्याय)पर रसिक संप्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है । इनके अतिरिक्त भी कुछ रसिक कवि हुए हैं जिनका नामोल्लेख यहाँ अपेक्षित नहीं है ।

अन्य मतावलंबी अनेक कवियों ने राम को अवतार मानते हुए अष्टयामिक राम-चरित्र का गान किया है । इन कवियों का काव्य समन्वयवाद की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । सिक्खों के दशम गुरु गोविंद सिंह नैरामावतार का वर्णन करते हुए गोविंद रामायण की रचना विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में की थी । यह ग्रंथ वीर रस पूर्ण है तथा इसमें कवि ने कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं । गुलाब सिंह का राम भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थ अध्यात्म रामायण संवत् 1839 में लिखा गया था । इस श्रेणी के अन्य कवि रत्नहरि । समय 19 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बहुत प्रशंसा की है । इनकी रचनाओं में राम रहस्य, रामलला गीत, दाशरथि दोहावली, कोशल-कविता-वली तथा रघुराम नाम सहस्र आदि राम-भक्ति से सम्बन्धित हैं । इनके अतिरिक्त कीरत सिंह तथा निहाल सिंह भी राम-काव्य के प्रतिष्ठित प्रणेता हुए हैं ।

रीतिकालीन राम-काव्य की विशेषताएँ तथा प्रभाव-

रीतिकाल का राम काव्य अनेक दृष्टिकोणों से अति विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है । इस प्रसंग में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर स्पष्ट रूप से इंगित किया जा सकता है-

(1) समन्वयवादी दृष्टिकोण- राम भक्त कवि रीति काल में भी तुलसी के समान सम्प्रदायों

एवं विविध धाराओं में समन्वय स्थापित करते रहे हैं। सिक्ख तथा अन्यान्य मतों के भक्त एवं कवि भी राम के लोकोत्तर चरित्रों से आकृष्ट होकर राम काव्य रचना की ओर उन्मुख हुए जिसके कारण विविध मतों में समन्वय स्थापन का स्तुत्य प्रयास हुआ। गुरु गोविंद सिंह, गुलाब सिंह, रत्नहरि, कीरतसिंह, निहाल सिंह, लछराम, महाराज विश्वनाथ सिंह, पुरुषानन्दशरण आदि के प्रयास इस दिशा में सराहनीय है।

(2) इस युग के रामकाव्य ने यह भी सिद्ध कर दिया कि " तथा कथित रीति युग रूपेण का विलास और चाटुकारिता का ही काव्य नहीं है, जहाँ गृहहीन पार्थिवों के सौमनस्य के लिए नायिका-भेद वर्णन करते हुए कवि अपने को धन्यार्ह समझते थे, परन्तु यहाँ धारावरण परिपाटि है।[1]" राजा तथा नवाब इन राम-भक्त कवियों के कृपा कटाक्ष के लिए उत्सुक रहते थे।

(3) इस युग के अनेक कवियों ने प्रबन्ध काव्य रचना का सफल प्रयास किया। रामचन्द्रिका, रघुवंशदीपक आदि उच्च कोटि के प्रबन्ध काव्य इसके उदाहरण हैं।

(4) रीतिकाल के रामभक्त कवियों ने राम के त्याग और बलिदान के अतिरिक्त जीवन के नितांत मधुर प्रसंगों को काव्य भाषा में पिरोकर उसके सौरभ को मानव-मात्र के हृदय तक पहुँचाया है। निर्गुण संत जिस प्रकार उच्च कोटि की साधना में आत्मा को प्रभु की प्रिया मानते हैं उसी प्रकार सगुण भक्ति के मधुरोपासक भी आत्मा को प्रभु की प्रिया के रूप में मानकर प्रियतम प्रभु के मिलन के लिए उत्कण्ठित हैं। भक्ति की यह विह्वलता अनेक मधुरोपासकों में देखी जा सकती है।

(5) राम भक्ति काव्य के अधिकांश कवियों ने पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर किया है। " गुरु गोविंदसिंह की सूर्पणखा-प्रसंग की उपेक्षा, लछराम की सीता की सूर्पणखा के प्रति सहानुभूति, प्राणनाथ के राम का लक्ष्मण के शक्ति लगने पर हनुमान के प्रति आक्रोश, प्रेम कवि की उर्मिला की कुटिलता से तब तक न उदित होने की मनुहार जब तक हनुमान बूटी लेकर लंका न पहुँच जाय, मधुसूदन के लक्ष्मीनिधि का रघुकुल की करतूतों का विवरण आदि प्रसंग इसके उदाहरण हैं।[2]"

1- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 7, पृ0 315।

2- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग 7, पृ0 315।

(6) इस काल के राम काव्य में सम्बन्ध भावना की उच्चता को महत्ता दी गई है। साले-बहनोई, सलहज-नंदोई तथा जीजा-साली के मधुर सम्बन्धों की भी उपेक्षा नहीं की गई है।

(7) भाषा तथा शैली की विविधता परिष्कृत साहित्यिक रूप में प्रस्तुत की गई।

(8) इन कवियों ने तुलसी साहित्य का न केवल अध्ययन एवं अनुशीलन किया अपितु उसका प्रचार और प्रसार भी किया।

(9) संस्कृत राम काव्य के भी अनुवाद तथा छायानुवाद प्रस्तुत किए।

इस अध्याय में रीतिकाल के कुछ प्रमुख कवियों के काव्य में भरत के स्वरूप की चर्चा की जायेगी। इन कवियों में केशव, नाभादास, चारण नरहरिदास, मोहनदास, मधुसूदन, महाराज विश्वनाथ सिंह, पद्माकर तथा ध्रुवदास आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त कवियों में से केशव को छोड़कर अन्य सभी रीति मुक्त कवि हैं। ये भक्ति काल में न होते हुए भी भक्त हैं। इनमें से अधिकांश को हम राम के मर्यादावादी स्वरूप को महत्व देते हुए भी रसिक उपासना के निकट ही पाते हैं।

रामचन्द्रिका

हिन्दी राम काव्य में केशवदास की रामचन्द्रिका भी महत्वपूर्ण है। कालक्रमानुसार इसकी गणना भक्ति काव्यों में की जा सकती है, परन्तु पुस्तक में प्रदर्शित पाण्डित्य एवं पिंगल शास्त्र की जानकारी के आधार पर इसको रीति काव्य समझा जाना चाहिए। रामचंद्रिका में कथा की अपेक्षा छन्द तथा अलंकार अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। शीघ्रतापूर्वक छन्दों के परिवर्तन के कारण स्थान स्थान पर रस प्रवाह तथा कथा प्रवाह दोनों ही अवरुद्ध हुए हैं, फिर भी सब कुछ मिलाकर रामचन्द्रिका को भक्तिपूर्ण सरस काव्य रचना ही कहा जायेगा। सम्पूर्ण काव्य में अनेक स्थलों पर कविता बहुत सुन्दर तथा मधुर बन पड़ी है।

रामचन्द्रिका का रचना-काल- इस काव्य की रचना आचार्य केशव ने संवत् 1650 में मानस के ठीक सत्ताईस वर्ष पश्चात् प्रारम्भ की थी। बाबा बेनी माधव के अनुसार केशव ने इस

काव्य को एक रात्रि में ही रच डाला था[1] परन्तु यह बात तथ्य प्रतीत नहीं होती। इतने बड़े तथा विद्वतापूर्ण काव्य की रचना मात्र एक रात्रि में नहीं की जा सकती है। कुछ भी हो, इतना तो मानना ही होगा कि रामचन्द्रिका की रचना में कवि ने अधिक समय नहीं लगाया होगा।

केशवदास ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने रामचन्द्र चन्द्रिका का संवत् 1658 के कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में शुक्रवार के दिन लिखी थी अथवा लिखना प्रारम्भ की थी[2]। इस प्रकार " रामचंद्रिका" " रामचरितमानस" का परवर्ती काव्य है।

रामचन्द्रिका की रामकथा- रामचन्द्रिका में राम कथा लगभग परम्परागत ही है। कथा में दो चार परिवर्तन पाये जाते हैं जैसे प्रसन्न राघव नाटक के आधार पर सीता स्वयंवर के अवसर पर बाणासुर-रावण संवाद, रावण-वध के पश्चात् अयोध्या को लौट कर राम की विरक्ति जिसका आधार सम्भवतः योगवासिष्ठ[1], अंगद का राम से वैर-जिसका आधार

1- कवि केशवदास बड़े रसिया। घनश्याम सुकुल नभ के बसिया ॥
कवि जान के दरसन हेतु भए। रहि बाहिर सूचन भेव दिए ॥
सुनिके जु मुनाई कहे छलनी। कवि प्राकृत केसव आपन दौ ॥
फिरिगे छट केसव तो सुनिके। निज तुच्छता आपुहु ते गुनिकै ॥
वय तेवक टेरेउ मे कहिके। हौं मेटिहौं कालिह तिमय गहिके ॥
घनश्याम रहे घातिराम रहे। कमठु रहे विश्राम लहे ॥
रवि राम सुचंद्रिका रातहि में। पुरे केसव जू अति घाटहि में।
सतसंग जयी रस रंग भयी। दोऊ प्राकृत दिव्य विभूति विभूति कयी।

बाबा बेनीमाधवदास-मूल गोसाईं चरित, 58 ॥

1 गोस्वामी तुलसीदास- ले० श्याम सुंदर दास एवं पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल- के परिशिष्ट 2 के पृष्ठ 211 से उद्धृत।।

2- अपजो तिनके मंदमति तुम कवि केशवदास।
रामचंद्र की चंद्रिका भाषा करी प्रकास ॥ 5 ॥
तीरथ ते अहलावना कातिक सुदि सुक्रवार।
रामचंद्र की चंद्रिका तब लीनी अवतार ॥ 6 ॥

रामचंद्रचंद्रिका, प्रकाश 1,5-6 ।

लघुमन्नाटक है तथा सीता-त्याग, लवकुश का जन्म आदि सम्भवतः पद्मपुराण अथवा उत्तर-रामचरित के आधार पर है । शेष कथा वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही है ।

रामर्षिका में भरत- कवि ने भरत का उल्लेख सर्व-प्रथम प्रकाश में कथा प्रारम्भ करते ही दशरथ के पुत्रों के परिचय के रूप में किया है । उनके चार पुत्र थे जो चतुर, चित्त को सुन्दर लगने वाले एवं सुन्दर बुद्धि वाले थे । उनमें से रामचन्द्र तो पृथ्वी के चंद्रमा ही थे । भरत भारतभूमि के भूषण थे[1] । तत्पश्चात् कवि विश्वामित्र-आगमन, राम द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, अहिल्योद्धार तथा राम लक्ष्मण के जनकपुर में पहुँचने का वर्णन करता है । तत्पश्चात् चारों भाइयों के विवाह का वर्णन किया गया है ।

जब बारात वापिस चली तो मार्ग में परशुराम मिले । परशुराम को देखकर श्रीराम भरत का हाथ पकड़ कर रथ से नीचे उतरे । जब परशुराम क्रोध से अभिभूत होकर राम से अति कटु वचन कहने लगे, तब भरत ने उनको समुचित उत्तर दिया[2] । तत्पश्चात् राम परशुराम को शान्त करने हेतु विनय करते रहे और भृगु जी उत्तेजित ही होते गए । अन्त में भगवान शंकर प्रकट होकर विवाद को शांत करा देते हैं । अयोध्या पहुँचकर विवाह के अनुरूप ही महान् महोत्सव हुए ।

कुछ समय पश्चात् राम और लक्ष्मण तो घर पर रहे और भरत तथा शत्रुघ्न को राजा दशरथ ने ननसाल भेज दिया[3] । राजा दशरथ ने राम के अभिषेक का मुहूर्त साधा और कैकेयी ने अपने दो प्रसिद्ध वरदान लिए । यह सब कथा अत्यन्त संक्षेप में कही गई है । विदा लेते समय राम और कौसल्या का संवाद कुछ विस्तार में है । राम वनगमन के इस मार्मिक वृत्तान्त को संक्षिप्त कर कवि ने काव्य की सरसता कुंठित

1- सुत सुरज-कुल-कंज नृपति दसरथ भए भूपति ।
तिनके सुत सुनि चारि चतुर चित्तहर छाछपति ।
रामचंद्र भुवचंद्र भरत भारत-भुव-भूषन ।
लछिमन अरु सत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषन ।।

2- भरत- बोलत कौने , भृगुपति सुनिये, तो कहिये तन-मन धनि आये ।
आदि बड़े हो, ब्राह्मन राजो जातैं सब जगजन सुख पावैं ।
बैठन हूँ मैं अति तन परसे, जागि उठे यह सुनि सब लीये ।
हेरय मारे, नृपति संघारे, यह जस ले फिर जुग जुग जीये ।। 22 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, सप्तम प्रकाश, 22 ।।

3- रामचंद्र लछिमन सहित घर राखे दसरथ ।
बिदा किये ननसार कौं संग सत्रुघ्न भरथ ।। 1111XX
रामचंद्रचंद्रिका- नवम प्रकाश, 1 ।।

कर दी है । राम वन को सीता और लक्ष्मण सहित चले गए और इस समाचार को सुनकर राजा दशरथ ने ब्रह्मरंध्र से यौगिक क्रिया द्वारा प्राण त्याग दिए ।

उधर तो राम चित्रकूट पहुँचे और इधर भरत ने अयोध्या में प्रवेश किया । भरत ने शोकयुक्त नगर तथा सूनी एवं निस्तब्ध राजसभा को देखा । इस सब को देखकर भरत ऐसे व्याकुल हुए कि जल तक नहीं पिया । कैकेयी की भर्त्सना करते हुए भरत ने कहा कि," तू पति और पुत्र से द्वेष करने वाली तथा सब को ही दुःख देने वाली है ।"[1] तत्पश्चात् भरत कौसल्या के समीप गए । कौसल्या ने भरत को हृदय से लगाया और कहा कि , " पुत्र तुम्हारे बिना ही यह समस्त प्रतिकूल बातें हुई हैं ।" भरत ने शपथ-पूर्वक कौसल्या को विश्वास दिलाना चाहा कि उनको इस सब की कोई जानकारी नहीं थी । कौसल्या ने कहा " शपथ मत करो, तुम्हारे सदाचरण को मैं जानती हूँ ।" तुम मेरे लिए राम के समान ही हो ।"[2]

भरत ने पिता की क्रिया की । तत्पश्चात् जटा वल्कल धारण कर मुद्रा को साथ लेकर राम से मिलने चित्रकूट पहुँचे ।[3] उनकी विशाल वाहिनी को देखकर पशु पक्षी डर गए । राम श्री सीता और लक्ष्मण के साथ पर्वत की चोटी पर चढ़ गए ।[4] लक्ष्मण ने रोष में भरकर भरत के विरुद्ध बहुत कुछ कह डाला ।[5] सेना को पर्वत के नीचे रोक कर मुनियों के साथ भरत राम के दर्शनार्थ उनके निकट पहुँचे । भरत ने प्रणाम किया और राम ने उन्हें गले से लगा लिया ।[6] राम माताओं से मिले । पिता का निधन सुनकर उन्हें शोक हुआ और उन्होंने पिता का तर्पण किया ।

- -

1-भर्ता-सुत-विद्वेषिनी सब ही कों दुखदाइ । यह कहि दैवे भरत तब कौसल्या के पाइ ।।

रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 5 ।।

2- कौसल्या- जनि सौंहैं करो तुम पुत्र सयाने । अति साधु चरित्र तुम्हैं हम जाने ।
सबकों सब काल सदा सुखदाई । जिय जानत हौं सुत ज्यों रघुराई ।।9 ।।

रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 9 ।।

3- पहिरे बलला जुटा धरि कै । निज पाहन पंथ चले अरिकै ।
सरि गैम गए मुख तीन लिये । चित्रकूट चितौत छाँड़ि दिए ।।

रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 13 ।।

4- देखिए रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 15 ।।

5- देखिए " " 16 से 20 तथा 25,26 ।

6- सब सब सेना यहि थल राखी । मुनिगन लीने संग अभिलाखी ।
रघुपति के चरनन सिर नाये । उनि हँसि के गहि कंठ लगाए ।। 27 ।।

रामचंद्रचंद्रिका, दशमप्रकाश, 27 ।।

भरत ने श्रीराम से अयोध्या को लौट चलने का आग्रह किया।[1] राम ने पिता की आज्ञा को सर्वोपरि बताकर उसी के पालन हेतु भरत से अनुरोध किया।[2] भरत ने पुनः निवेदन किया, " स्त्री के वश में रहने वाले तथा गुरुजनों की बात न मानने से कोई पाप नहीं होता है। यह बात ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने कही है। अतः यदि आप नहीं लौटेंगे तो मैं मन्दाकिनी के तट पर प्राण त्याग दूँगा।"[3] यह कह भरत ने मौन धारण कर लिया तब गंगा ने उन्हें समझाते हुए कहा कि राम साक्षात् ब्रह्म हैं अतः उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। गंगा की बात भरत ने स्वीकार की तथा राम की पादुकाएँ लेकर वे अयोध्या पुरी को लौटे। नन्दिग्राम में निवास करने लगे तथा अयोध्यावासी भी घर पर ही वन के समान सम्पूर्ण भोगों को त्याग कर रहने लगे।[4] इस प्रकार सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड की कथा कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त कर दी है।

इसके पश्चात् कवि ने बीसवें प्रकाश तक राम के वन चरित तथा रावण-वध आदि की कथा कही है, जिसमें भरत का उल्लेख किसी स्थल पर नहीं हुआ है। बीसवें प्रकाश के अन्त में लंका से आते हुए राम भरद्वाज ऋषि से भरत तथा शत्रुघ्न की कुशल पूछते हैं।[5] फिर इक्कीसवें प्रकाश में वे हनुमान को अपने आगमन की सूचना देने हेतु भरत के पास प्रेषित करते हैं।[6] हनुमान ने शरीर पर वल्कल एवं सिर पर जटायें धारण किए भरत को देखा। अपने सब सुखों को भुलाकर वे मंत्रियों के साथ राजकाज में लगे थे। श्रीराम की पादुकाओं को राम समझ कर हाथ जोड़कर उनकी सेवा करते थे।[7] हनुमान ने विजयी राम के आगमन का समाचार सुनाया जिसको सुनकर भरत सुख समुद्र में मग्न हो गए।[8]

- -

1- भरत:-

घर कौं चलिए अब ही रघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई।
यह बात कही जल सौं गल भीनो। उठि सोदर पाँय परे सब तीनौं ।।

रामचंद्रचंद्रिका दशम प्रकाश 33 ।।

2- देखिए " " 34-35 ।।

3- देखिए " " " 36-38 ।।

4- देखिए " " " 43-45 ।।

5- देखिए " त्रिंश:प्रकाश:, 53 ।।

6- देखिए " एकविंश प्रकाश, 21 ।

7- हनुमंत कितौके भरत सतौके अंग सकल मल धारी।
बलका पहिरे तन सीस जटाजल हैं फल-मूल-अहारी।
बहु मंत्रिनन में राजकाज में सब सुख सौं हित तोरे।
रघुनाथ पादुकानि, मन बच प्रभु मानि सेवत अँजुलि जोरे ।। 22 ।।

रामचंद्रचंद्रिका, इक्कीसवाँ प्रकाश, 22 ।

8- देखिए रामचंद्रचंद्रिका, इक्कीसवाँ प्रकाश, 24-25 ।

भरत समस्त साज समाज के साथ राम का स्वागत करने चले । राम ने जब भरत को आते देखा तो विमान को पृथ्वी पर उतार लिया[1] । दोनों भाई राम के चरणों पर गिर पड़े । राम ने उठाकर मुख चूम कर हृदय से लगा लिया । राम ने फिर नंदिग्राम में भरत का आसन देखा । वहीं पर स्नानादि कर राजसी वेशभूषा में सज्जित हुए । भरत ने राम की पादुकाओं को उनके चरणों में पहिना दिया[2] । जब श्रीराम रथ पर बैठकर अयोध्या को चले तो भरत उनके रथ के सारथी बनकर रथ चलाने लगे[3] । राम ने महल में प्रवेश किया मित्रों को निवास हेतु उत्तम स्थान दिलाये । परन्तु स्वयं राज्य ग्रहण नहीं किया । तब समस्त ऋषि एक साथ राम के पास आए तथा राम से राज्य ग्रहण करने हेतु कहा । राम के मन में राज्य से विरक्ति हो गई थी जो उन्होंने व्यक्त कर दी । वशिष्ठ द्वारा उपदेश किए जाने के पश्चात् राम राज्य भार वहन करने के लिए तैयार हो गए । तत्पश्चात् राज्याभिषेक तथा राम-राज्य का वर्णन किया गया है ।

तैंतीसवें प्रकाश में सीता परित्याग की कथा है । राम दूत के मुख से सीता परिवाद सुनकर सीता के त्याग का निश्चय कर लेते हैं । प्रातःकाल ही तीनों भाई राम के समीप पहुँच कर उनकी म्लानता का कारण पूछते हैं । उत्तर में श्री राम सीता त्याग सम्बन्धी अपने निश्चय को प्रकट करते हैं । भरत को राम का निश्चय अग्राह्य एवं अनुचित लगता है । वे राम को समझाना चाहते हैं कि सीता परम पवित्र हैं, लंका में अग्नि प्रवेश द्वारा अपनी शुद्धता का साक्ष्य दे चुकी हैं । सीता को त्यागना विमान के समान अनिष्ट है । कैकेयी सीता को त्यागना पेट-विकट है[4] । राम ने भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मण तीनों की विनय अनसुनी कर दी । लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आये । वाल्मीकि-आश्रम में सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया । ऋषि ने उन्हें शिक्षित किया ।

1- आवत बिलोकि रघुबीर सचिव व्योमगति भूतल बिमान तब आइयो ।
रामपदपद्म तुलसीदास कहै बंधु जुग दौरि तब पदपद समान सुख पाइयो ।
भूमि मुख चूमि सिर अंक रघुनाथ धरि अंबुज लोचननि देखि उर लाइयो ।
देव मुनि पुष्ट परतिष्ट तब सिष्ट जन हर्षि तन पुष्प-बरषानि बरषाइयो ।। 30 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, इकतीसवाँ प्रकाश, 30 ।

2- सिर सौं पावन पादुका लै कर भरत विचित्र ।
चरनकमल-तरहरि धरीं हँसि पहिरी जगमित्र ।। 58 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, इकतीसवाँ प्रकाश, 58 ।

3- औधपुरी कहँ राम को जब । औरहिं ओर चिराणा है तब ।
भर्त भए सुत सारथि लौंमन । धौरि धरे रघुनंदन चिभीषन ।। । ।।
रामचंद्रचंद्रिका, बाइसवाँ प्रकाश, 1-[illegible] ।।

4- देखिए रामचंद्रचंद्रिका तैंतीसवाँ प्रकाश, 30-35 ।

राम ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । दिग्विजयी अश्व को लव ने पकड़ लिया । लव-कुश ने राम की विश्वविजयिनी सेना को परास्त कर दिया । लक्ष्मण और शत्रुघ्न के पराजित हो जाने पर राम ने भरत को युद्ध के लिए भेजा परन्तु भरत का मन उत्साहित न था । उनका विश्वास था कि निर्दोष सीता के परित्याग का ही यह परिणाम है कि दो ऋषि कुमार सम्पूर्ण सेना को नष्ट किए डाल रहे हैं अन्यथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न के सामने रण में कौन ठहर सकता था । रण में उन्होंने राम से कहा कि " आपके वानर, रीछ, राक्षसों और रघुवंशियों को बड़ा घमण्ड हो गया था इसीलिए अब आप उनका गर्व नष्ट करा रहे हैं[1] । युद्ध में लक्ष्मण को पराजित देखकर हनुमान से भरत पुनः कहते हैं कि, " हनुमान् । पहिले तो तुम सागर लाँघ गए थे, अब युद्ध की नदी को पार क्यों नहीं कर लेते ।" हनुमान् ने उत्तर दिया, " उस समय सीता जी के चरणों के सम्मुख था और अब विमुख हूँ[2] ।" फिर भरत बालकों से युद्ध करने लगे और लवकुश ने उन्हें मोहनास्त्र से मोहित कर दिया । अब राम युद्ध हेतु गए । लव-कुश को देखकर और उन्हें सीता पुत्र जानकर राम अंगद को युद्ध करने की आज्ञा देकर स्वयं रथ में लौ गए । अंगद पराजित हो गए । विजयी लव कुश बँधे हुए हनुमान् को लेकर सीता के सामने उपस्थित हुए । लव-कुश के द्वारा सम्पूर्ण रघुवंश का विनाश देखकर सीता को अपार दुख हुआ । सीता ने अपने तप के प्रभाव से समस्त राम सेना को जीवित कर दिया तथा सीता राम का पुनर्मिलन हो गया ।

राम ने राज्य को आठ भागों में विभक्त कर अपने तथा भाइयों के पुत्रों को दे दिया तथा उनको राजनीति की शिक्षा दी ।

<u>भरत का स्वरूप-</u> केशव और कहा गया है कि केशव ने राम-वन-गमन की हृदयस्पर्शी कथा को अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है । सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड की कथा मात्र 91 पदों (छंदों) में कह दी गई है । अतः इस स्थल की मार्मिक कथा से सौभाग्य रसोद्रेक नहीं हो पाया है । भरत के स्वरूप के विकास का भी मुख्य स्थल यहाँ संभव था, परन्तु संक्षिप्तता के कारण इसका विकास नहीं हो सका है ।

1- देखिए रामचंद्रिका छत्तीसवाँ प्रकाश, 29-34 ।

2- हनुमान्- सीतापद सन्मुख हुो, गहौं सिंधु के पार ।
विमुख भए क्यों बाहुँ तरि, सुनौ भरत यहि बार ।। 6 ।।

रामचंद्रिका, सैंतीसवाँ प्रकाश, 6 ।

रामचन्द्रिका में कवि ने राम के हृदय में वन जाते समय भरत के प्रति शंका दर्शायी है[1]। भरत अवध के राज समाज सहित जब राम से मिलने चित्रकूट जाते हैं तब लक्ष्मण भी उनके प्रति दुशंका से भर जाते हैं[2]। सीता का मन भी संशय ग्रसित है[3]। लक्ष्मण तो क्रोध में भरकर अनेक रोषयुक्त वचन कह डालते हैं। भरत से रुष्ट कर उन्हें प्रेतपुर का राज्य देने तक की बात वे कह देते हैं[4]। परन्तु यहाँ पर भी इन सब कुशंकाओं का निदान भरत का अप्रतिम शीलाचरण कर देता है। भरत श्री राम से चित्रकूट पहुँच कर कहते हैं, " श्री राम। अब घर चलिए। आप सदैव सुखदायक राजा हैं और मैं आपका सेवक हूँ।" यह कहते कहते उनका कंठ आँसुओं से अवरुद्ध हो गया तथा तीनों ही भाई राम के चरणों में गिर पड़े[5]। इसे भरत का राम के प्रति प्रेम तथा धर्म के प्रति सहज आकर्षण ही समझना चाहिए।

रामचन्द्रिका में भरत स्पष्टवादी तथा विवेकी राजकुमार के रूप में दर्शाये गए हैं। यह विवेकता रामचन्द्रिका के भरत में ही है। वे सत्यसन्धा, धर्मनिष्ठ एवं निर्भय हैं। रामचरितमानस के भरत के समान संकोचशील भक्त नहीं हैं। वे अन्याय, अधर्म अथवा अनीति को देखकर उसे चुपचाप नहीं सह लेते हैं अपितु स्पष्ट शब्दों में बता देते हैं कि यह अनीति है तथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। अनीतिकर्ता भले ही उनका गुरु, पिता, माता अथवा भाई ही क्यों न हो वे उसको यह अवश्य बता देते हैं कि यह अधर्म है अतः नहीं किया जाना चाहिए। इस बात के उदाहरण हमें अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं।

सर्व प्रथम बारात की वापिसी पर पिनाकभंजन से रुष्ट परशुराम मार्ग में जब राम से अशोभनीय बातें कहते हैं तब भरत का धर्मनिष्ठ हृदय उसको सहन नहीं कर पाता है[2]। वे तुरंत ही भृगुनन्दन से कह उठे, " हे भृगुपति। आप क्यों बोल रहे हैं। यही कहिए जो तन और मन से करना सम्भव हो। आप जन्म से ब्राह्मण होने के नाते बड़े हैं, अतः अपना बड़प्पन बनाये रखिए। यदि अधिक संघर्ष किया जाता है तो चंदन से भी आग उत्पन्न हो जाती है।" इस पर परशुराम ने भरत को रुष्ट के लिए ललकारा तो भरत ने भी धनुष उठा

1- आइ भरथ कहा धौं करै जिय धाइ सुनी। जौं दुख देहैं तो मैं उरगी यह सीख सुनी ।।27।।
रामचंद्रचंद्रिका, नवम प्रकाश, 27 ।

2- देखहु भरथ धनु लषि आए। बानि अछल हमकौं उठि धाए।। हीसत हय बहु बारन गाजैं। दीरघ जहँ तहँ दुन्दभि बाजै ।। 16 ।। रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 16 ।

3- सीता- देखि भरथ की चकचकाइ धूरनि मैं सुख देति।
जुष्ट जुरन कौं मनहुँ प्रतिजोधनि बोलि लेति ।।24 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 24 ।

4- देखिए रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश 16 से 20 तथा 25-26 ।

5- भरत- घर कौं चलिए अब श्री रघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई।
यह बात कही जल लौं मन भीनो। उठि सोदर पाँय परे तब तीनौं ।। 33 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, दशम प्रकाश, 33 ।

लिया ।[1]

दूसरी बार भरत की विवेकशीलता एवं धर्मज्ञता के दर्शन हमें उस समय होते हैं जब भरत ननिहाल से लौट कर अयोध्या में प्रवेश करते हैं । कैकेयी उन्हें पिता की मृत्यु, रामवनगमन तथा उनकी राज्य प्राप्ति का समाचार सुनाती है[2] । इसे सुनकर वे तुरन्त उसे धिक्कारते हैं और स्वयं कौसल्या के पास चले जाते हैं[3] । पिता की क्रिया करके भरत अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेते हैं तथा वल्कल वस्त्र धारण कर राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं । उनके विवेकी एवं धर्मज्ञ मन ने राज्य के लोभ का संवरण एक क्षण के लिए भी नहीं किया ।

तीसरी बार उनकी निर्भयता एवं धर्मज्ञता का उदाहरण हमें चित्रकूट में प्राप्त होता है । उन्होंने राम से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया[4] और राम ने उसे अस्वीकार करते हुए कहा कि राजा के और पिता के आदेश की अवहेलना नहीं की जा सकती है[5] । परन्तु भरत का विवेकी मन पिता और राजा की भी अन्यायपूर्ण आज्ञा को मानने को तैयार नहीं हुआ[6] । इतना ही नहीं उन्होंने गंगा तट पर जाकर प्रायोपवेशन का संकल्प किया । भागीरथी के रहस्योपदेश से ही वे अपने निश्चय से विरत हुए[7] । धर्मज्ञ भरत ने राम को राज्य सौंप दिया तथा स्वयं सेवक के रूप में उस का पालन करते रहे ।

चौथी बार पुनः भरत की धर्मज्ञ विवेकशीलता एवं निर्भयता राम के लोकापवाद के भय से सीता परित्याग के निश्चय के समय प्रकट होती है । वे राम से स्पष्ट रूप से कहते हैं कि आपका यह निश्चय न्यायसंगत नहीं है- " जानकी सदा शुद्ध हैं । दुष्ट लोग वैसे ही उनकी निन्दा करते हैं जैसे पाखण्डी वेद की निन्दा किया करते हैं । लोकापवाद के भय से यदि आप सीता को त्यागना चाहते हैं तो आपका यह सीता-त्याग, सांसारिक विषयों से सम्पृक्त योगी के जितेन्द्रियता त्याग के समान होगा । अथवा यह भ्रान्तिजन्य

- -

1- देखिए रामचन्द्रचन्द्रिका, सप्तम प्रकाश, 22-24 ।
2- " " दशम " 4 ।
3- " " दशम " 5 ।
4- " " " " 33 ।
5- " " " " 35 ।
6- " " " " 36-37 ।
7- " " " " 38-43 ।

पाप होगा। । आपने सीता की अग्नि परीक्षा लेकर, उन्हें पवित्र समझ कर स्वीकार किया था । जिस सीता की शुद्धता के साक्षी ब्रह्मा, शिव, धर्मराज तथा स्वयं पिता दशरथ हैं, उस सीता को वैसा निन्दक के कहने से आप कैसे निकाल देंगे ।[1]" इत्यादि । आगे भी कहा कि सीता त्याग आपके लिए स्वयं ही विष पीने के समान है । अत्यन्त पवित्र, प्रियभाषिणी सीता को गर्भावस्था में त्यागना वेद-विरुद्ध कार्य है[2] । भरत जैसे सच्चे एवं निर्भय मानव के अतिरिक्त यह बात महाराज राम के सम्मुख कौन कह सकता था ।

लव-कुश के साथ युद्ध के समय भरत की यह निर्भय न्यायप्रियता एवं धर्म-भावना पुनः सामने आती है । इस समय उनका मन कातर होकर हुँकारहट से भर उठा है । युद्ध भूमि में लव-कुश द्वारा राम की सेना कर्णधार तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न जैसे योद्धाओं की पराजय देखकर भरत कह उठते हैं कि यह सब सीता त्याग रूपी पाप का परिणाम ही है । युद्ध में शत्रुघ्न को कौन जीत सकता था और लक्ष्मण के बल को कौन रोक सकता है ? जब से लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आए हैं तब से रघुवंशी अपयश के भाजन हो गए हैं । । इस पाप-कर्म के पश्चात् ही से। तब से ही लक्ष्मण अपना शरीर छोड़ना चाहते थे । अब यह युद्ध-निमित्त पाकर उन्होंने अपना मन पवित्र कर लिया । हे राम । आपने सीता को जिस पाप के कारण त्याग दिया ? संसार तो उनके पातिव्रत्य के यशोगान को सुनकर पवित्र हो रहा है ।

- -

1- सदा सुद्ध अति जानकी, निंदत यौं खलजाल ।
जैसे हुतिहि सुभावहीं, पाखंडी तब काल ।। 30 ।।
अब अपवादन तें तज्यो, यौं चाहत सीतहि ।
ज्यौं जग के संजोग तें, जोगीजन समताहि ।। 31 ।।
मन मानिबे अति सुद्ध सीतहिं आनियो निज धाम ।
अघनीकि पावक-अंक ज्यौं रविअंक पंकजदाम ।
केहि भाँति ताहि निकारिहौ अपवाद-बादि बखानि ।
सिव ब्रह्म धर्म समेत श्रीपितु साखि बोल्यो आनि ।। 32 ।।
रामचंद्रचंद्रिका, तैंतीसवाँ प्रकाश, 30-32 ।

2- देखिए रामचंद्रचंद्रिका, तैंतीसवाँ प्रकाश 33-35 ।

3- बालक राम के न सहायक । ना लवनातुर के हित लायक ।
हैं निज पातक पुंज के फल । मोहत हैं रघुवंसिन के बल ।
छत्तीसवाँ
रामचंद्रचंद्रिका/प्रकाश , 29 ।

हे प्रभु ! जो निर्दोष को दोष लगाता है उसे ऐसा । विनाशकारी। पाप क्यों न प्राप्त होगा । मैं भी अब इसी रघुवीर में जाकर मर जाऊँगा और आपकी संगति से उत्पन्न समस्त दोषों।पापों। को नष्ट कर डालूँगा । आपके इन समस्त रीछ, वानरों और राक्षसों को बहुत कष्ट हो गया था । इसीलिए आप यह सब कुछ कहा रहे हैं क्योंकि आप कष्टहारी हैं ।[1] कुष्ट भूमि में पहुँचकर भरतपुनः हनुमान से कहते हैं, " हे हनुमन् इस कुष्टरूपी कठिन नदी को अब पार करो और रामानुजों को जीवित करने की अभिलाषा करो । पहिले तुम समुद्र पार कर गए थे, अब इसनदी को पार क्यों नहीं करते, क्या डर गए हो ?[2]" भरत ने उचित एवं न्यायसंगत बात सदैव कही । उन्होंने सदैव निर्भयतापूर्वक धर्म का पक्ष लिया । इसको पवित्र मैत्री का सर्वोत्तम गुण भी कहा जा सकता है ।

भरत के केवल गुण जो वाल्मीकीय रामायण आदि में हैं रामचन्द्रिका में भी विचार गए हैं परन्तु उनका पूर्ण विकास इस ग्रन्थ के कवि ने नहीं किया है । सम्भवतः कवि का अभीष्ट अपने काव्य में कुछ मौलिकता एवं नवीनता लाना भी रहा है अतः उसने भरत के चरित्र में न्याय का पक्ष लेने तथा निर्भीक मन्त्रणा देने के गुणों को समाविष्ट कर दिया है ।

1- भरत- जीतहि को रनमाँझ रिपुघ्नहिं । को कर लछिमन के बल छिन्नहिं ।
लछिमन सीय सखी जब हैं बन । लोक अलोकन पूरि रहे तन ।। 30 ।।
छोड़ोइ पावस ते सब ते सन । पाइ निमित्त कह्यो मन पावन ।
आइ सह्यो तन लोटत लावनि । पूत भये सबि पाप सुहावनि ।।
पातक कौन सखी तुम सीता । पावन होत सुने जन गीता ।
दोषविहीनहिं दोष लगावै । सो प्रभु यह फल काहे न पावै ।।
हौं तेहि तीरथ आइ मरौंगो । संगति दोष-अशेष हरौंगो ।
बानर रक्ष रिछ सिधारे । भये बहु रघुवंशहिं भारे ।
ता लगि है यह बात बिचारी । हो प्रभु तैसा कष्टहारी ।। 33 ।।

रामचन्द्रिका, सत्तरहवाँ प्रकाश, 30-33 ।

2- भरत- हनुमंत दुरंत नदी अब नाखौ । रघुनाथ सहोदर की अभिलाखौ ।
सब तो तुम सिंधुहि नाँघि गये थू । अब नाघहु काहे न, भीत भए थू ।। 5 ।।

रामचन्द्रिका, तीसवाँ प्रकाश, 5 ।

रघुनाथ-चरित । परशुराम ।

परशुराम का पूरा नाम परशुराम देवाचार्य था । यह निम्बार्क सम्प्रदाय के बड़े वीतराग महात्मा थे तथा राजस्थान में भक्ति का प्रचार करते रहे । इनकी आस्था सगुण तथा निर्गुण दोनों ही रूपों के प्रति थी तथा राम का गुणगान इन्होंने इन दोनों ही रूपों में किया । राम की सगुण लीला से सम्बन्धित इनके दो ग्रन्थ हैं- रघुनाथ-चरित तथा दशावतार चरित । " रघुनाथ चरित" का वर्ण्य विषय पूर्णतः रामकथा ही है। दशावतार-चरित में राम-कथा अन्य नौ अवतारों के साथ वर्णित है । राम भक्ति सम्बन्धी कुछ फुटकर पदों की रचना भी इन्होंने की थी । " हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास" के अनुसार इनका रचना-काल सं0 1677 है । रामविषयक इनका एक पद नीचे प्रस्तुत है-

" जो जन हरि सुमिरण प्रतधारी ।
सो क्यों मरै दास दुविधा तैं जाके राम महाबल भारी ।।
रावण रंक कियो जिन छिन में अनुज सहित सब सैन सँघारी ।
परशुराम प्रभु थापि विभीषन निर्भै लंक दिवारी ।।

पदावली, छंद 2 ।

पुस्तकालय

अवतार चरित्र एवं रामचरित्र कथा

। चारहट नरहरिदास ।

चारहट नरहरिदास टेला ग्राम जोधपुर के निवासी थे । हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में इनका कवितकाल संवत् 1707 के आसपास बताया गया है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के संग्रहालय में हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची में रचनाकाल विक्रम संवत् 1700 बताया गया है । इस प्रति का लिपिकाल संवत् 1922 है । ग्रन्थ की भाषा अवधी है । ग्रन्थ में विषय चयन तथा छन्द योजना प्रशंसनीय है । " हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास" में चारहट नरहरिदास द्वारा विरचित ग्रन्थ " अवतार चरित," अहिल्यापूर्व प्रसंग, " दशम स्कंध भाषा; नरहरि अवतार कथा", "बानी" तथा " रामचरित कथा" बताए गए हैं परन्तु जो हस्तलिखित प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन में उपलब्ध है उसके अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि " अहिल्या पूर्व प्रसंग," " नरसिंह अवतार कथा," तथा " रामचरित कथा" " अवतार-चरित्र के ही अंग हैं ।

रामचरित कथा जो रामावतार के नाम से वर्णित है केवल अरण्यकाण्ड के प्रारम्भ तक ही उपलब्ध है । काव्य की भाषा एवं छंद योजना इतनी सुन्दर है कि इस सम्पूर्ण काव्य की खोज किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है ।

कवि ने अवतार चरित में भगवान् के चौबीस अवतारों का वर्णन करना चाहा है । कृष्ण के अवतार तो श्रीमद्भागवत के समान है परन्तु क्रम भिन्न है । सर्व प्रथम वराह अवतार का वर्णन किया गया है । रामावतार का वर्णन व्यास के अवतार के भी बाद कियागया है जिसका उद्देश्य रामावतार को बहुत विस्तार के साथ लिखना प्रतीत होता है । इस कथा के श्रोता, वक्ता भरद्वाज तथा याज्ञवल्क्य हैं । राम जन्म के कारणों में मनु शतरूपा प्रसंग तथा प्रताप भानु कथा वर्णित है । अवतार का कारण रावण के अत्याचारों से व्यथित पृथ्वी को त्राण देना है । श्रृंग-वध, कश्यप द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ आदि अवान्तर कथाएँ सविस्तार वर्णित हैं । यहाँ भी राम परब्रह्म के अवतार हैं । कवि ने जन्म के समय तथा अनेक अन्य प्रसंगों में विष्णु अथवा विराट स्वरूप के दर्शन कराए हैं[1] । जन्म के समय ही राम के आगे में शंखादि विष्णु के दर्शन कर कौसल्या ने जो स्तुति की है उसमें तुलसी के विराट राम-रक्षितकोटिब्रह्माण्ड, आदि का प्रभाव दृष्टिगत है । इसके पश्चात् के सभी प्रसंग संक्षिप्त हैं तथा तुलसी के मानस पर आधारित हैं । धनुषयज्ञ के समय बाण-रावण संवाद " रामचन्द्रिका" पर आधारित प्रतीत होता है । राम विवाह के पश्चात् परशुराम मिलन प्रसंग वाल्मीकि की कथा के समान है । यहाँ परशुराम और लक्ष्मण का विवाद होते समय भरत भी परशुराम के प्रति अपना क्रोध व्यक्त करते हैं[2] । शंभु की मध्यस्थता तथा राम द्वारा विष्णु-धनुष चढ़ाने का उल्लेख है ।

इस कथा की एक विशेषता यह भी है कि अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में ही नारद राम को ब्रह्मा का संदेश देते हैं कि राम को रावण-वध एवं भूभार हरण की अपनी प्रतिज्ञा स्मरण करनी चाहिए और उत्तर में राम उन्हें रावण-वध के विषय में आश्वस्त करते हैं[3] ।

- -

1-" परमात्माजु अनादियो सुख सच्चिदानंदानंदं ।
नीलोत्पल दल स्याम सुन्दर पीत वासन धारनं ।।"

2- " किहि कारन कौसिल्या को कौसल प्रगट जन्यहिं पाइ ।
विस्तार तामा विश्व वैभव मेव तारिक भाइ ।
तुम आपने मुख कहत मुनि मैं हयो है हय राज ।
जा तुम्ह ताको कीजो जुग कर जा भरत विनु काज ।।"

3- अवतारचरित अयोध्याकाण्ड प्रथम सर्ग ।

यहाँ पर नारद द्वारा की गई स्तुति सीता तथा राम की महामहिमा को व्यक्त करती है[1]। इसके पश्चात् भरत के ननिहाल जाने तथा रामवनवास का प्रसंग है। राज्याभिषेक से पूर्वसन्ध्या में वसिष्ठ भी राम को स्मरण कराते हैं, " परमात्मा तुम पुरुषपुरण स्वयं सिद्धि तुम्ह, साधु हित सुर काज साधन नर रघुकुल भूप ।।" वे रावण वध सम्बन्धी विधाता को दिए गए वरदान का भी राम को स्मरण कराते हैं[2]। कैकेयी को पूर्वकाल में सुरी संगति से अमर प्राप्ति का वरदान मिला था। इसीलिए मंथरा की कुमंत्रणा उस पर फलीभूत हुई। वनवास का शेष प्रसंग मानस के समान है। एक अन्तर यह है कि इस ग्रन्थ में कौसल्या राम को राजा की बात न मानकर हठपूर्वक राज्य लेने का आदेश देती है[3]। राम के भी मन में उस समय शंका प्रतीत होती है जब वे लक्ष्मण को समझाते हैं, " भरत जो करहिं कछु कैस भाव । सुख जनमि सेंग अन्यथ जाउ ।। पितु तेव यतन करिबी प्रमान । मम विरह पिता हिं अवसान ।।" लक्ष्मण प्रचंड रूप से क्रोधित हो भरत, दशरथ तथा सभी बाधाओं का अन्त कर राम को राज्याभिषिक्त करने की बात कहते हैं। राम विषय की नश्वरता बताकर आत्मज्ञान के द्वारा उन्हें शांत करते हैं। इसके पश्चात् मानस के समान ही राम वन को चले जाते हैं। यहाँ फिर राम के वियोग से दुःखी प्रजा को सान्त्वना उपदेश देते हैं कि " यह आदि पुरुष अव्यय अनन्त । जानकी प्रिया लक्ष्मी जयन्त ।। ये लक्ष्मण अहि सेषावतार । भव भूप भरत ये अखिल भार ।।" कवि यहाँ राम के पूर्व के अवतारों का भी वर्णन करता है। केवट प्रसंग मानस के समान है। राम ने चित्रकूट पर वास किया। यहीं पर जयंत (काक) कथा का भी वर्णन कर दिया गया है।

महाराज दशरथ के स्वर्गवास के पश्चात् ननिहाल से आए हुए भरत तथा कैकेयी

1- जय जननी आविर्भूता अजेय । समाया तव मूलनी स्त्रेय ।।
× × × ×
सत्यात् सर्वकारण तुमेव । दुष्कृत नी जय दीन्ह देव ।।
× × × ×
भव सौत रज्जु ज्यूँ अर्जन भाइ ।

2- परमात्मा तुम पुरुष पुरण स्वयं सिद्धि तुम्ह ।
साध हित सुरकाज साधन नर रघुकुल भूप ।।

3- कौसल्या बालुल कुटट काल । अनतीय वचन कुटे सुजाल ।।
हठि लेहु राज निस्संक होइ । करिये विचार इहि बल न कोइ ।।

अवतारचरित अयोध्याकाण्ड पृ० 103 ।।

के वातावरण पर कैकेयी की रामचन्द्रिका का प्रभाव दृष्टव्य है।[1] अपने लिए राज्य का वरदान ही राम वनवास का मूल कारण समझ कर बौखलाए भरत कैकेयी की कटु आलोचना करते हैं[2] परन्तु यह आलोचना वाल्मीकि तथा तुलसी दोनों की अपेक्षा कटुता में स्वल्प है। भरत जब कौसल्या के पास पहुँचे तो कौसल्या ने उन्हें उपालम्भ नहीं दिये। कौसल्या का भाव भरत के प्रति वात्सल्य के समान ही प्रेमपूर्ण है।[3] दशरथ की अन्त्येष्टि के पश्चात् वसिष्ठ तथा कौसल्या ने भरत से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। भरत रघुराज राम का राज्य लेने के लिए किसी प्रकार तैयार नहीं हैं।[4] उनका निर्णय राम के पास चल जाने का है।

अवधेश वनिता में भी केवल भरत की विशाल वाहिनी को देखकर उन पर शंका करता है, परन्तु आगे चल भरत के सात्विक वेष को देखकर भरत का शान्तिपूर्ण उद्देश्य समझ लेते हैं। आरण्ट जी ने भरताग्रज वनि से भरत के मिलने का प्रसंग नहीं दिया है।

1- भरत- रानी जिहि मंदिर आय राउ। सुधि लेऊ पठइ दासी सुभाउ॥
कैकेयी- मम उत्तर दीनी फेरि भाइ। सुरलोक गिरा भावुक सिधाइ॥
भरत- अपजसु उन्हें कहि कवनु रोइ।
कैकेयी- तुव पुत्र पिरत सब राजी देइ॥
भरत- तौ पुत्र कौन कारन सुनाइ।
कैकेयी- टेकानिवास रागहिं दियाइ॥ आदि

2- पापिनी कहाँ ते पारि पारि। मारयो नरेस अब मोहि मारि॥
मम काज राज माँग्यो जु मात। तिहि कह्यो यही पल भरे तात॥
वनवास राम लहन सियौन। अवधेस और यौ अपौन॥
कारन जिहि कीन्हो कुल अकाज। राजसी फेरि तुव रीस राज॥

3- तुम साधु सुभाव सुभ, वनिता वचन विकार।
पुत्र करौ जिनि सपनेहु पल, सब जानहु संसार॥
सुख सोक सकल हु, अवलम्बन तुम आइ। अवधेश वनिता अयोध्याकाण्ड।

4- कैकेयी उदय जब भेल, तहाँ रोम उभारल।
विसल भरत कहिं केल, काय न यौं कहु राज कहु॥
ज्यों अकाज अकाज, अपजसु कैकेयी उदर, पाछा ज्यों सुकाज, दुष्ट मोहिं अब राज है॥
यह मो ते नहिं होय, राज लेहि रघुराम कों। मैं मानी सिर सोय, कोउ का अपजस कहौ।

* * * *

रघुवीर राम राजाधिराज। उनकी यह सौंपति सुख समाज॥
अब तो मोहि कुछ उपाय रुच। सचि और बात यह ऊपर टेक॥
गुरु देव चलो ले सब निमि। गहि बाँह राम आनो अमि॥
अवधेश वनिता, अयोध्याकाण्ड।

भरत के आगमन की सूचना राम को किरातों ने दी । यहाँ लक्ष्मण के क्रोध का वर्णन मानस के समान है । जब लक्ष्मण कुपित होकर कटु वचन कह रहे थे उसी समय मातृ-सेवाधारी भरत आ पहुँचे[1] । राम की दृष्टि जैसे ही भरत पर पड़ी राम के चित्त का प्रेम सागर प्रकट हुआ और उन्होंने दंडवत् करते हुए भरत को हृदय से लगा लिया[2] । यह प्रीति रस अनकहा है । भरत ने राम को अयोध्या ले चलने हेतु अनेक प्रयत्न किए, स्वयं वन में रहने का प्रस्ताव भी किया । राम द्वारा इन प्रस्तावों के अस्वीकृत कर दिए जाने पर वाल्मीकि रामायण के समान यहाँ भरत धरना देने बैठते हैं । तब शरीर धारिणी गंगा भरत को रामाधिकार का प्रयोजन समझाती हैं और उन्हें आश्वस्त करती हैं कि वन अवधि पूर्ण कर राम राज्य करेंगे । गंगाजी की अनुसार से भरत अपना हठ त्याग देते हैं । अध्यात्म चरित्र में महाराज कलश के विभीषण आगमन का भी उल्लेख किया गया है । वन प्रसंग के अंत में पुनः वसिष्ठ ने भरत को समझाया कि " राम की आज्ञा भंग मत कीजिए क्योंकि राम रावण का वध करने के लिए जा रहे हैं । इस दैव कार्य में विघ्न उचित नहीं है ।"[3] अंततः भरत ने अयोध्या लौट जाने सम्बन्धी आज्ञा को यह कहकर शिरोधार्य किया, " प्रभु आज्ञा तुम्हारा तले मैं आन्य नहीं सिर ।" उन्होंने अकण्टक राज राम की पादुकाओं की स्थापना की परन्तु यह शर्त भी लगा दी कि यदि अवधि समाप्त होने पर प्रथम दिन ही राम अयोध्या नहीं लौटे तो भरत अग्नि में प्रवेश करेंगे[4] । यहाँ कैकेयी भी राम से क्षमा याचना करती है । भरत सम्पूर्ण राज समाज के साथ अयोध्या को लौट गए । राम की पादुकाओं को सिंहासन पर ये नंदीग्राम में तपस्यारत हुए । यह प्रसंग मानस के समान ही है ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में उपलब्ध अध्यात्म चरित की प्रति अपूर्ण है तथा वह अरण्यकाण्ड के मध्य तक ही है ।

1- जटा मुकुट सिरजटा, कल तर रचना बिराजिता ।
कंध अंगिन कट टेक, रेम रंचित तनु राजित ।
लाँसे भाव अनुसार, अपर चिरित चिचरजीय । राम सेव आचरीय लंग मुनि वर गुरु
करि चित्त चरन रघुनाथ के, प्रेम चिक्ष हठ अविचान । तज्जिय ।।
भयो अलातिरीमनि भरथ कौं, यारही समय जु आगमन ।

2- राम दृष्टिपथ भरत, भई दौड़ आई । मगन लाँसे रस माँझ, लाय मुनि कूँट लगाई ।।
चित्त प्रेम कहि रामचन्द्र पर आतुर धाए ।। प्रनिपात दंड ज्यों परे, भरथ ले कंठ लगाए ।।
तहाँ लक्ष्य नेम रीमाँथि रस कोउ न उर अंतर करत । अनकथ प्रीति रस तारिस मह,
आता एम कै भरथ ।।

3- गुरु वसिष्ठ भरथ सों कहु काम । नहीं वचन कौं करिए निदान ।
रावन वध कारन जात राम । करिये न विघ्न यहाँ दैव काम ।।

4- दैव अवधि यह प्रथम दिन नाघाउँ अवधि परेस । करुनानिधि सो भरत कौं, सुनिहौं अग्नि
प्रवेस ।।

अवध-विलास

अवध विलास अवधी भाषा में रचित राम-कथा पर आधारित काव्यग्रन्थ है। इस काव्य में प्रमुख रूप से दोहा, चौपाई, छंदों का प्रयोग किया गया है। यद्यपि इस काव्य की गणना भक्ति-काल में की जाती है परन्तु इसमें रीति काव्य की भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। ग्रन्थ के रचयिता श्री लालदास हैं। काव्य की विषय वस्तु के विषय में स्वयं कवि का कथन है कि जिस प्रकार कृष्ण ब्रज में विहार करते रहते हैं उसी प्रकार अवध में सीता-राम का विलास आरम्भ है[1]। कवि के अनुसार अवध विलास में नव रस मण्डित रामकथा तो है साथ ही अन्य जानने योग्य ज्ञान भण्डार भी है। इसमें स्वार्थ और परमार्थ के सभी तत्व विद्यमान हैं। ऐसी अवर्णनीय कोन सी बात होगी जो अवध-विलास में नहीं कही गई है[3]। सम्पूर्ण ग्रन्थ में गीत विराम हैं।

रचना-काल:- ग्रन्थ में जयदेव, तुलसी, सूर, केशव तथा चिन्तामणि आदि भक्त एवं रसिक कवियों का उल्लेख किया गया है। अतः स्पष्ट है कि इस काव्य की रचना तुलसी और केशव के काव्यों के ख्याति प्राप्त कर लेने के पश्चात् हुई है[4]। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना अयोध्या में रहकर संवत् 1732 में की थी[5]।

1- अद्भुत अवध विलास इह, अलस कथाभति लाल।
जायहिं सीता राम की, सुंदर कथा रसाल ॥ 6 ॥
श्री अवध विलास, 1,6 ।

2- कृष्ण जथा ब्रज मंहि सदा, करत विहार प्रकास।
तिमि सीताराम को, निरखो अवध विलास ॥ 5 ॥
श्री अवध विलास, 1,5 ।

3- स्वारथ परमारथ सबै, बानी लाल प्रकास।
सो ये बातें कौन हैं, जो नहिं अवध विलास ॥ 27 ॥
श्री अवध विलास, 1,27 ।

4- गुरु काव्य जयदेव कवि, तुलसी सूर बखान।
केसव चिन्तामनि सिष्ट, लाल सरस मनमान ॥ 36 ॥
श्री अवध विलास, 1,36 ।

5- संवत सत्रह सय बरिस, सुदि बैसाख सुकाल।
लाल अवध मधि रहि रच्यो, अवध विलास रसाल ॥ 45 ॥
श्री अवध विलास, 1,45 ।

अवध-विलास की रामकथा- प्रथम विश्राम में ग्रन्थ परिचय, दशावतार वर्णन, नवधा भक्ति तथा संत जन के गुणों का वर्णन किया है । द्वितीय विश्राम में अयोध्या एवं सरयू वर्णन है । तृतीय विश्राम में रावण जन्म तथा उसकी विजय, चतुर्थ में जालंधर-वध, पंचम में महाराज दशरथ का लोमपाद से समागम वर्णित है । सप्तम विश्राम में श्रृंगी ऋषि तथा लोमपाद का सम्पर्क, अष्टम में ऋष्य श्रृंग का अवध आगमन, नवम में पुत्र काम्य यज्ञ तथा दशम में राम जन्म का वर्णन किया गया है । राम परब्रह्म पूर्ण परमात्मा हैं जिन्होंने लीला विस्तार तथा रावण-वध हेतु मनुष्य जन्म धारण किया है[1] । कौसल्या ने राम को तथा कैकेयी ने भरत को जन्म दिया[2] । जो विश्व का भरण पोषण करता है उसी का नाम भरत है । अवतार परिपाटी में भरत विष्णु के शंख के अवतार हैं[3] । यहाँ कौसल्या तथा दशरथ को राम ने अपने विराट रूप के दर्शन कराये हैं । चारों पुत्र मिलकर एक विराट-पुरुष में परिणत हो गए[4] । अन्य ग्रन्थों में केवल कौसल्या को ही चतुर्भुज विष्णु के दर्शन राम के जन्म के समय हुए हैं परन्तु यहाँ विराट रूप के दर्शन माता तथा पिता दोनों को हुए । राजा दशरथ ने प्रभु की स्तुति की । प्रभु पुनः चार-पुत्रों में परिणत हो गए । सम्पूर्ण अयोध्या उत्सव से आनन्दित हो उठी ।

द्वादश विश्राम में रोते हुए राम को दशरथ वामनावतार की कथा सुनाते हैं तब राम हँस कर कहते हैं कि " वह ब्राह्मण मैं ही तो हूँ" और पुनः दशरथ को अपना विश्वरूप दर्शन कराते हैं[5] । दुर्वासा मुनि भी रामावतार के विषय में दशरथ को ज्ञानोपदेश करते हैं ।

1- जाके उदर मध्य ब्रह्मण्डा । सात स्वर्ग पृथ्वी नवखण्डा ।
रूप अनन्त अपार बखाने । आप भक्त वस गर्भ समाने ।।
अवध-विलास, 10, पृ0 243। हस्तलिखित पूर्ण प्रति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

2- कैके उदर लीन्ह अवतारा । भरत सुहावन नाम पुकारा ।।
पोषण भरण करे जो कोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।
अवध विलास, 10, पृ0 262 ।

3- नारायण सोइ राम कहाए । लक्ष्मण शेष रूप ह्वै आये ।।
संख भरत हैं चक्र शत्रुघ्न । लक्ष्मी आय धरो सीता तन ।।
अवध विलास, 10, पृ0 262 ।

4- पुनि भे चार एक ही देहा । पारा फूटि मिलत है जैहाँ ।।
× × × ×
जब विराट ह्वै दर्शन दीन्हा । राजा तब अस्तुत फिर कीन्हा ।।
अवध विलास, 10, पृ0 262 ।

5- अवध विलास, 12, पृ0 299-304 ।

तेरहवाँ विश्राम में चारों पुत्रों के सुविकसित होते हुए आ का वर्णन है। राम पतले हैं परन्तु भरत मोटे हैं। राम तथा भरत लम्बे हैं परन्तु लक्ष्मण -शत्रुघ्न उतने लम्बे नहीं हैं। राम कुछ चंचल हैं परन्तु भरत कुछ शिथिल तथा गंभीर हैं। राम को पीत वस्त्र रुचिकर है परन्तु भरत को श्वेत। भरत तथा लक्ष्मण राम का अदब करते हैं, परन्तु वाम शत्रुघ्न बराबरी करते हैं[1]। चारों भाई साथ साथ खेलते हैं। राम का निर्देश तीनों भाइयों पर है[2]। एक दिन राजा दशरथ ने भरत तथा शत्रुघ्न को बुलाकर ननिहाल भेज दिया। वहाँ से वे पंडित कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर तथा चौदहों विद्याओं को पढ़कर लौटे। चौदहवें सर्ग में चारों कुमारों की बाल सुलभ क्रीड़ाओं का ही वर्णन है।

पन्द्रहवें विश्राम में राम के वैराग्य उत्पन्न होने का वर्णन है, जिस पर स्पष्टतः योग वासिष्ठ का प्रभाव दृष्टव्य है। इस विश्राम में योगवासिष्ठ अष्ट सिद्धियों का वर्णन है। सोलह सर्ग में वास्तव सौवाद सरल भाषा में है।

सत्रहवें विश्राम में राम-लक्ष्मण के कौशिक के साथ यज्ञरक्षार्थ जाने का तथा ताड़का-वध, यज्ञ-रक्षा, अहिल्या उद्धार तथा जनकपुर जाने का वर्णन है। इसी विश्राम में उपवन में सीता-रामकिल तथा धनुर्भंग का वर्णन है। अठारहवें विश्राम में राम-सीता के विवाह का वर्णन है। यहीं पर अन्य भ्राताओं के विवाह का भी उल्लेख है। आश्चर्य का विषय यह है कि यहाँ भरत का विवाह श्रुतकीर्ति से माण्डवी का विवाह शत्रुघ्न से दिखाया गया है[3]। हो सकता है यह लिपिकार की त्रुटि हो।

1- पातरे राम मनोहर अंगा। मोटे बहुरि एक लछिमन संगा।
अरिसूदन बहु रामहिं लोई। भरथ बहुत मोरे मन सोई॥
राम भरथ बहु लागत ओ। x x
राम चपल बहु एक सो धीरा। भरथ सिथिल गति बहुत गंभीरा॥
रामहिं पीत वसन रुचिकारी। x x x
भरथहिं सेत सुभाउ सोहावा। x x x
लछिमन भरथ अदब बहु माने। नेहु न सकै सत्रुहन माने॥

अवध-विलास, 13, पृ0 358।

2- अवध-विलास, 13, पृ0 360।

3- राम विवाहे जानकी, लखन उर्मिला दीन्ह।
सुतीकीरति भरतह दई, रिपुहन मंडवी लीन्ह।

अवध-विलास 18, पृ0 512।

उन्नीसवाँ विश्राम में मौरध्वज तथा विधि के आख्यान हैं। नारद ने आकर राम की स्तुति की तथा असुरों के वध हेतु स्मरण कराया। एक दिन राम ने विचार किया कि वन जिन राक्षसों का संहार करने हो? उसी समय कैकेयी आकुलित होकर वहाँ आ गई। राम ने कैकेयी से अपने वन-गमन, कैकेयी को अयश प्राप्त होने, राजा के मरण तथा भरत के चौदह वर्षों तक राज्यभार रखने आदि विषय में बातें की[1]। कैकेयी तब कुछ सहम कर राम की सहायतार्थ उन्हें वन भेजने हेतु तैयार हो गई। तत्पश्चात् राम वन-गमन की कथा है जो परम्पराप्राप्त रूप में ही है, परन्तु वनवास बारह वर्ष का ही बताया है[2]। राम-सीता-लक्ष्मण सहित वन को चले गए। अयोध्या विरह में व्याकुल हो गई।

पाँच दिनों में राम चित्रकूट पहुँचे। मार्ग में भरद्वाज तथा गुह से मिले थे। राम को मनाने भरत वन को गए। राम ने उन्हें अनेक प्रकार से समझा कर अयोध्या भेज दिया[3]। राम-लक्ष्मण-सीता वन में सौभाग्यवान हैं। राम ने बाली तथा रावण का वध किया। इस कथा को सभी जानते हैं अतः लाल कवि ने नहीं कही। किसी को मार कर और किसी को तार कर, किसी पर कृपा की वर्षा कर तथा किसी को मुक्त करके प्रभु के अवध विलास को वशिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, शुक, शेष तथा महेश आदि ने गाया है।

भरत-चरित के वर्णन न करने का कारण कवि के शब्दों में ही इस प्रकार है-

रावण-मरन भरत की बातें।
कहिन उदास होत मन पाते।

रामायण-।चिन्तामणि त्रिपाठी।

महाकवि चिन्तामणि त्रिपाठी रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र तथा महाकवि भूषण तथा मतिराम के भाई थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म संवत् 1666 विक्रम के आसपास तथा कविता काल संवत् 1700 के आसपास माना है। "छन्द"-विचार," "काव्य विवेक", "कविकुल-कल्पतरु", "काव्य-प्रकाश" तथा "रामायण"- ये पाँच ग्रन्थ इनकी रचनाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये ब्रजभाषा के उत्कृष्ट कवि हैं। बहुत प्रयास करने पर भी इनकी रामायण उपलब्ध न हो सकी।

1- अवध-विलास, 19, पृ० 541-544।
2- अस कहि रामहिं लीन्ह बोलाई। बारह वर्ष रहहु वन जाही।
अवध-विलास, 19, पृ० 551।
3- बहुत भाँति भरतहिं समुझाये। करिय राज अवध मन भाये।
और सभी रहे देउ जेते। करि सनमान बिदा किये तेते।।
अवध-विलास, 20, पृ० 563।

रामाश्वमेध

। मोहनदास ।

कविवर मोहनदास ने रामाश्वमेध काव्य की रचना पद्मपुराण के पाताल खण्ड के आधार पर की है । अनुमान है कि श्री मोहनदास रीवाखण्ड, मध्यप्रदेश के निवासी थे । कवि ने अपने काव्य के प्रारम्भ अथवा अन्त में अपना कोई परिचय नहीं दिया है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन की हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची में ग्रन्थ का लिपिकाल संवत् 1924 का केवल मात्र उल्लेख किया है । ग्रन्थ का रचनाकाल ज्ञात नहीं है । इस ग्रन्थ में कुल 7 सर्ग हैं जिनमें राम द्वारा किये गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है । यह सलकादि-व्यास संवाद के रूप में है । दोहा, चौपाई, छन्दों का प्रयोग किया गया है । इसमें श्रोता वक्ताओं के अनेक युग्म हैं- उमामहेश्वर, भरद्वाज याज्ञवल्क्य आदि । वाल्मीकि ने इस आख्यान की रचना की थी तथा नारद ने भी इसका गान किया ।

प्रारम्भ में कवि ने रघुवंश का खाका दिया है । कथा का आरम्भ राम के राज्याभिषेक से होता है । वसिष्ठ, कुम्भज तथा विश्वामित्र राम के समीप जाकर उनकी स्तुति के व्याज से सभा में रामचरित सुनाते हैं तथा राज्याभिषेक हेतु प्रार्थना करते हैं । इसके भरत माताओं के पास जाते हैं तथा राज्याभिषेक की तैयारियाँ करवाते हैं । राज्याभिषेक के पश्चात् एक हजार वर्ष तक राम ने सुख विलास करने के बाद रजक द्वारा सीतापवाद के कारण सीता निर्वासन का निश्चय कर लक्ष्मण को उन्हें वन ले जाने के आदेश दिए । अन्य ग्रन्थों के समान यहाँ पर राम भरत तथा शत्रुघ्न से परामर्श नहीं करते हैं । लक्ष्मण से राम का सीता निर्वासन विषयक निर्णय भरत को ज्ञात हुआ और उन्होंने राम के समीप जाकर सीता की पवित्रता के विषय में उनको समझाया । राम ने भरत की बात अनसुनी कर दी तथा लक्ष्मण सीता को वन में छोड़ आए । वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में ले गए ।

अगस्त्य ऋषि ने राम को अश्वमेध यज्ञ करने की प्रेरणा दी । अश्व के रक्षार्थ शत्रुघ्न के साथ भरत के पुत्र पुष्कल गए । राजाओं को जीतते हुए शत्रुघ्न आरण्यक ऋषि के आश्रम पहुँचे

।- नाथ जनकजा परम पुनीता । जा कहु विधिन भाखता गीता ।।
तुम सबहि चराचर स्वामी । उचित विनोद करिय मम स्वामी ।।
कर जोरि भरत विनीत बोले, देव सीता सुचि सदा ।
बानी भवानी उमा रानी सहत जिह सम सम्पदा ।।
मन्दारका सुर दारका सुख अमल गति सुख दान की ।
नाथ अबला परम पावित पूरन सक्ति, जानहुँ जानकी ।।
देव दोस कैसेहु के जाय जाति मम जाय ।
महाराज रघुवंश मणि तव गति विकल लखाय ।।
रामाश्वमेध ।

जहाँ कवि ने उन्हें रामकथा अति संक्षिप्त में सुनाई। कवि ने बताया कि विवाह के समय सीता छः वर्ष की थीं तथा राम पन्द्रह वर्ष के। विवाहोपरान्त 12 वर्ष तक सुख विलास करते वे वन को गए थे। वनवास के प्रसंग में भरत का उल्लेख तक नहीं किया है। संक्षिप्त में रावण-वध तक की कथाएँ वर्णित हैं। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें राम के जीवन की घटनाओं की तिथियाँ अंकित की गई हैं जो अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हैं। इसके अनुसार 42 वर्ष की अवस्था में राम का राज्याभिषेक हुआ। इस रामकथा को सुनकर शत्रुघ्न दिग्विजय करते हुए वाल्मीकि आश्रम पहुँचे जहाँ अश्व के लव द्वारा पकड़े जाने के कारण लव-कुश से युद्ध हुआ। शत्रुघ्न तथा उनकी सम्पूर्ण सेना लव कुश से पराजित हुई। विशिष्ट बात यह है कि यहाँ भरत तथा लक्ष्मण युद्ध करने नहीं जाते हैं। सीता ने शत्रुघ्न सहित सेना को जीवित किया। फिर राम सीता का मिलन दिखाया है। यज्ञ पूर्ण हुआ। अन्त में राम के विराट रूप का वर्णन है।

इस काव्य में भरत का स्पष्ट चित्रण नहीं किया गया है। केवल सीता-निर्वासन प्रसंग में भरत सीता निर्वासन को अनुचित बताते हैं तथा राम से ऐसा न करने की प्रार्थना करते हैं जिससे उनकी विवेक-बुद्धि, सज्जनता तथा धर्मशीलता का परिचय मिलता है।

रामाश्वमेध

(मधुसूदन दास)

रामाश्वमेध की रचना माघ शुक्ल दशमी के दिन विक्रम सम्वत् 1839 में मधुसूदन दास कवि के द्वारा की गई है।

कवि परिचय- मधुसूदनदास माथुर चौबे ब्राह्मण थे। रामाश्वमेध- उन्होंने गोविन्ददास की प्रेरणा से लिखा था। यह शैली में रामचरितमानस का अनुसरण करता है। रामाश्वमेध में कुल 68 अध्याय हैं। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने रचनाकाल एवं अपने नाम का उल्लेख किया है। यह शेष एवं वाल्मीकि संवाद के रूप में लिखा गया है तथा पद्मपुराण के पातालखण्ड का अनुवाद है। रचना दोहा चौपाइयों में की गई है। काव्य की कथा का प्रारम्भ राम के लंका विजयोपरान्त अयोध्या प्रत्यागमन से हुआ है। पुष्पक विमान से आते हुए राम सीता को मार्ग के विभिन्न स्थलों का दर्शन कराते हुए अयोध्या के निकट पहुँच कर नंदीग्राम का परिचय देते हुए सीता से कहते हैं कि," अवध के निकट यह नंदीग्राम है, जहाँ मूर्तिमान तप के समान भरत निवास करते हैं। भरत निरन्तर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हैं। भरत

~~भरत निरन्तर धर्मानुकूल प्रजा का पालन करते हैं~~ । उनके हृदय को मेरा विरह सालता रहता है । ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए, जटाधारण किए निरन्तर कुशासन पर बैठे रहते हैं । मन में अत्यन्त दुःख होने के कारण उनका शरीर दुबला हो गया है ।" इत्यादि । यह कहते हुए राम हनुमान् को भरत के समीप अपने आगमन की सूचना देने भेजते हैं । इस समाचार को सुनकर भरत हर्षित होते हैं तथा मंत्रियों एवं गुरु वसिष्ठ के सहित राम के स्वागतार्थ जाते हैं । राम और भरत का मिलन दो अभिन्न हृदय प्रेमी भ्रातृजों का मिलन था । फिर राम के स्वागतार्थ नगर सजाया गया । भरत ने राम का राज्य पुरानी रखी हुई धरोहर के समान उनको ही सौंप दिया । शुभ घड़ी में बड़े समारोह के साथ राम का राज्याभिषेक हुआ । पहिले से चौथे अध्याय तक उपरिलिखित कथा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । पाँचवें अध्याय में राम राज्य का वर्णन एवं अगस्त्यागमन का उल्लेख है । इसके पश्चात् राक्षस की उत्पत्ति, तपस्या, वर प्राप्ति, अत्याचार आदि का वर्णन किया गया है । अगस्त्य द्वारा राम को रावण-वध के प्रायश्चित्त स्वरूप अश्वमेध यज्ञ करने की मंत्रणा दी जाती है । यज्ञ की तैयारी हुई । शत्रुघ्न के संरक्षण में अश्वमेध का अश्व राम की जयघोषणा करता हुआ धरतीतल के विभिन्न देशों में विचरण करने चल पड़ा । ग्यारहवें अध्याय से तिरेपनवें अध्याय तक विभिन्न देशों में अश्व के भ्रमण तथा राम की सेना के अश्व को पकड़ने वाले राजाओं से युद्ध आदि का वर्णन है ।

विभिन्न देशों के राजाओं से युद्ध में राम की सेना विजयी रही । सभी ने विविध भेंटोपहार देकर राम की सत्ता को स्वीकार किया । इसी क्रम में घोड़ा चलते चलते वाल्मीकि आश्रम में पहुँचा । वहाँ सन्ध्या के लिए जाते हुए लव ने उस अश्व को देखा उसके भाल पर लिखा उस स्वर्ण-पत्रक को पढ़ा तथा घोड़े को पकड़ कर बाँध लिया । यहीं पर अन्तरकथा के रूप में सीता परित्याग की कथा कवि ने विस्तारपूर्वक पाँच अध्यायों में कही है । तत्पश्चात् राम की सेना का लवकुश के साथ युद्ध, हनुमान् पुष्कल तथा शत्रुघ्नादि की पराजय एवं मूर्च्छित होना, सीता द्वारा पातिव्रत्य शक्ति से समस्त सेना को जीवित करना, राम द्वारा लवकुश से रामायण का गान सुनना, सीता को अयोध्या में बुलाना, सीता का सादर ग्रहण, यज्ञ समाप्ति आदि का वर्णन ग्रन्थ के अन्त अर्थात् 68 वें अध्याय तक किया गया है । लवकुश द्वारा रामायणगान के प्रसंग में सम्पूर्ण रामायण की कथा अति संक्षेप में कह दी गई है ।

1-देखिए रामाश्वमेध । मधुसूदनकृत । 1, दोहा 9 से 12 तक ।

यद्यपि इस काव्य की रामायणी कथावस्तु अन्य काव्यों से भिन्न है, फिर भी इसमें मौलिकता का अभाव है। वस्तुतः अनुवाद में किसी मौलिकता की अपेक्षा की भी नहीं जा सकती है। काव्य की भाषा अवधी है तथा इस पर रामचरितमानस की शैली का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास में इस काव्य की आलोचना इस प्रकार की गई है, "प्रबंध पाटव, अभिव्यञ्जनाकौशल, भावाभिव्यक्ति तथा संवाद-सुसंयुक्त, वीरसमुद्र हुंकार, वीभत्स, भयानक, रौद्र आदि रसों से सांगोपांग यह प्रबंध "मानस" का परिशेष है, यद्यपि अवांतर कथाओं एवं धार्मिक उपदेशों के कारण प्रबंधात्मकता को धक्का लगा है। "आगे प्रबंध के कुछ दोष भी बताए गए हैं।[1]

रामाश्वमेध में भरत चरित :- रामाश्वमेध में भरत का स्वरूप पद्मपुराण के भरत से अभिन्न है। भरत भ्रातृवत्सल हैं। नन्दीग्राम में धर्म एवं सत्य के मूर्तिमान स्वरूप भरत कठिन व्रतोपवास करते हुए, जटा-वल्कल धारण किए फिर भी राज्य का पूर्ण मनोयोग से पालन करते हुए, भ्रातृ-वियोग में व्याकुल उत्कण्ठापूर्वक राम के प्रत्यागमन की बाट जोह रहे हैं। हनुमान द्वारा राम के आगमन के समाचार से उनको अपार हर्ष होता है। राम भी अपने भाई के इस अलौकिक स्नेह को भलीभाँति जानते हैं। वे सीता से कहते हैं कि "भरत के हृदय को मेरा विरह निरन्तर सालता रहता है,[2]" तथा मन में अति दुःख होने के कारण भरत का शरीर दुबला हो गया है।[3] भरत को इस बात का असह्य दुःख है कि जगत्पूज्य श्री राम उनके कारण ही वन को गए हैं।[4] कवि ने अनेक स्थलों पर भरत को रघुवरवल्लभ कहा है।

पद्मपुराण की ही भाँति रामाश्वमेध में भी भरत का सदय हृदय सुकुमारी सीता

- -

1- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 7, पृष्ठ 301-302।

2- धर्म सेतु प्रवर्तहिं नीति पाला। बंधु वियोग हृदय अति साला।

× × × ×

3- सुख सरीर दुख अति मनमाहीं। बल्कल वसन अंग जनु नाहीं॥
रामाश्वमेध 1.10।

4- जगत्पूज्य रघुवर मम हेतू। वन कहँ गए धर्म सुति सेतू॥
रामाश्वमेध 1.11।

के वनगमन से अत्यन्त दुःखी है । पुष्य नेत्रों पर क्रमन करने वाली सीता वनों में भटक रही है । राजाओं को भी जिस सीता के दर्शन दुर्लभ थे वही अब काल के समान भयंकर भीलों द्वारा देखी जाती है । मधुर अन्न भी जिसे सुहाता न था वह अब सूखों से फल मांगती है[1] । इन बातों को सोचकर भरत अत्यन्त दुःखी होते थे ।

इधर भरत राम से मिलने के लिए उत्कण्ठित हैं और उधर राम भरत से मिलने के लिए अति आतुर हैं । भरत के निवास स्थान को देखते ही श्रीराम पुलकित हो गए तथा प्रेम के कारण उनका शरीर शिथिल होने लगा । गद्गद् वाणी में उन्होंने हनुमान को बताया कि " अग्नि के समान मेरे वियोगजन्य दुःख में भरत अपने शरीर को जला रहे हैं[2] । भरत की इस दुखित अवस्था के कारण ही राम हनुमान के द्वारा भरत को अपने आगमन का संदेश प्रेषित करते हैं, वाल्मीकीय रामायण के समान भरत के मनोभावों को जानने के लिए नहीं ।

राम ने भरत को " सत्यव्रत" देखा[3] तथा हनुमान ने उन्हें मूर्तिमान धर्म एवं मूर्तिमती विश्वशांति के रूप में देखा[4] । शांत, गम्भीर, धर्मपरायण भरत की यह पूर्णता कुछ अधिक नहीं है ।

पद्मपुराण के भरत के समान रामाश्वमेध के भरत भी विवेकी पुरुष हैं । वे राम के सीता परित्याग विषयक निर्णय का विरोध करते हैं तथा राम को अनेक प्रकार से समझाते हैं[5] । राम की इस कठोर आज्ञा को सुनकर वे व्यथित हो जाते हैं परन्तु उनके साथ सहमत नहीं होते[6] ।

1- तुम्हहिउ नहीं सियहिं सुहाई । आतप देखि पिअल हुते जाई ।।
तो सिय मम हित लागि तिनेता । घोर घनमि मंह कीन्ह प्रवेसा ।।
जो सिय राजकुंद नहिं देखी । कानन भील सोइ पेखी ।।
मधुर अन्न हित करहि न जोई । कंद मूल फल जाचत सोई ।। रामाश्वमेध 1, ।। ।

2- मम वियोग दुःख अनल तमाना । दहहि सरीर तुम्हहुँ हनुमाना ।।
रामाश्वमेध, 2, 2 ।।

3- तिहिं तट नन्दीग्राम अनूपा । बसहिं भरत जिहिं बल तपसा ।।
रामाश्वमेध 1, 10 ।

4- करि प्रनाम कपि भरतहिं देखा । मूरतिमंत धरम जनु पेखा ।।
बहुरि बिलोकि भरत कपि केसी । बिस्वसांति तनु धरि जनु बैसी ।। रामाश्वमेध 2, 4 ।

5- जनक बिलाप सुनहु हे प्रभु सीता । भई अनाथ परम पुनीता ।।
पुनि प्रभ्यादि देव रन आई । कही जानकी सुध्द बनाई ।।
दसरथ आनि कही फिर सोई । पावन सिया जान सब कोई ।।
प्रभु तुम्हारि कीरत बिमल ब्रह्मादिक कर गान ।
कहो रावन के बधन कर सो किमि होहि मलान ।। रामाश्वमेध 56, ।। ।

6- दे0 रामाश्वमेध- 56, 12 ।

पद्म पुराण में भरत की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुए कवि कह उठता है कि भरत को विधाता ने केवल सतोगुण से ही बनाया है अर्थात् तमस् एवं रजस् के गुण उनके चरित्र को कहीं भी स्पर्श नहीं कर सके हैं। तपस्या, धर्म एवं सात्विक मानवता का भरत तो गढ़ स्थल हैं। रामाश्वमेध के भरत भी तप, धर्म एवं विश्वशांति के मूर्तिमान स्थल हैं। यद्यपि रामाश्वमेध को पद्मपुराण के पातालखण्ड का सफल छायानुवाद कहा जा सकता है परन्तु उसमें भरत के स्वरूप को उभारने में वह भाव सौन्दर्य एवं मार्मिकता नहीं प्रकट हो सकी है जो पद्मपुराण में है।

रामविनोद। चंददास रामायण।

महाकवि चन्द रीतिकाल में भक्ति विवेक रचना करने वाले प्रकाण्ड विद्वान एवं कवि थे। इनका निवास स्थान हँसपुरी अथवा हरचा। फतेहपुर। में था। कवि ने स्वयं अपने निवास के विषय में संकेत किया है[1]। इनके पिता का नाम ताहब राय तथा पितामह का नाम बसंत राय था। यह सहगल जाति के थे[2]। डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित के अनुसार पृथ्वीराजरासो के रचयिता चंदबरदाई तथा रामविनोद रामायण के रचनाकार कवि चंद एक ही व्यक्ति थे[3]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा तत्कालीन एवं परवर्ती लेखक-समालोचक रासो के रचयिता महाकवि चंदबरदाई को ग्यारहवीं शताब्दी का कवि मानते आये हैं। रासो तथा रामविनोद की भाषा इत्यादि में आकाश पाताल का अन्तर है, इस कारण दोनों ग्रन्थों के रचनाकारों को एक ही मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता। यह निर्विवाद सत्य है कि रामविनोद के रचयिता चंददास प्रकाण्ड विद्वान् एवं काव्यकला से मर्मज्ञ महाकवि थे परन्तु इस बात को अन्तिम रूप से स्वीकार करने के लिए कि चंदबरदाई एवं चंददास एक ही व्यक्ति थे अभी और अधिक खोज की आवश्यकता है। वस्तुतः कवि चन्द ने रामविनोद के अन्त में अपना उपर्युक्त परिचय मात्र ही दिया है।

1- हँसपुरी अस्थान स्थान रहँ हरि को कीन्हौं।
स्याम सिला रतबीज बीज को बारन लीन्हौं॥
संजम नेम सुधार प्रान पै पान सोटीन्हौं।
सुरसरि बहुत भक्ष बास अति उत्तम कीन्हौं॥
कवी बरन विवेक देह धरि भक्ति बढ़ाई।
रघुवर सुजस विनोद चंद कब कीरति गाई॥ 7 ॥

2- बसंतराय मम पितामह, पिता सो ताहब राय।
सहगल कवी कौ मैं अस सरीर सुख पाय॥ 3510 ॥ रामविनोद, उत्तरकाण्ड, अध्याय 14, 3510 ।

3- देखिए डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित द्वारा सम्पादित चंददास रामायण-रामविनोद। भूमिका। पृष्ठ 1 से 5 ।

कवि ने रामविनोद रामायण का रचनाकाल विक्रम संवत् 1804 बताया है[1]। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त कृष्ण -विनोद, भक्त विहार, शृंगार सागर, शिवसिद्ध तारंगी, रामगाला तथा चन्द्रदास पदावली आदि ग्रन्थ भी महाकवि चन्द द्वारा रचित बताए जाते हैं।

डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित के शब्दों में, " रामविनोद" मानसोत्तर रामकाव्य का प्रतिनिधि महाकाव्य है जो महाकाव्य के तत्वों की दृष्टि से भी महाकैसा के गौरव तथा गरिमा से युक्त है।" रामविनोद की कथा वस्तु का आधार प्रचलित रामकथा के अतिरिक्त पौराणिक तात्विक कथा तथा तत्कालीन ऐतिहासिक कथा भी है[2]। मुख्यतः रामविनोद " रामचरितमानस" पर आधारित प्रतीत होता है। दो चार स्थलों पर जहाँ भिन्नता लक्षित होती है कवि ने वाल्मीकीय रामायण का आश्रय लिया है। कुछ स्थलों पर अन्य रामायणों का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

काव्य शैली की दृष्टि से रामविनोद अन्य रामकाव्यों में अपनी विशिष्टता रखता है। अपनी रचना मुख्यतः ओजपूर्ण कवित्तों तथा नाटक छन्दों में की गई है। गीतिका तथा कुण्डलिया जैसे मधुर छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। विभिन्न छन्दों का प्रयोग करने पर भी कवि ने वेग के समान छन्दों में शीघ्र परिवर्तन नहीं किया है अतः काव्य रस सदा प्रवाहित होता रहा है तथा रामचन्द्रिका में स्थान स्थान पर दृष्टिगत होने वाला रसावरोध यहाँ दिखाई नहीं देता है।

रामविनोद में भरत का उल्लेख

ग्रन्थ में कथा का क्रम मुख्यतः मानस के समान है तथा भरत का उल्लेख भी उसी प्रकार हुआ है। जिन स्थलों पर वाल्मीकीय रामायण के प्रभाव से अथवा अन्य किसी प्रभाव से भरत विषयक उल्लेखों में कुछ अन्तर दिखाई देता है उनका विवरण निम्नवत् है:-

(1) बारात की वापिसी के समय क्रोधित परशुराम द्वारा मार्ग में राम को ललकारना

1- तिथि अठारह से चारि अरु बार बरषान।
माघ सुक्ल तिथि अष्टमी बरनेउ चंद पुरान ॥ 3512 ॥

रामविनोद, उत्तरकाण्ड, अध्याय 14, 3512।

2- देखिए डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित द्वारा सम्पादित
चंददास रामायण- रामविनोद। भूमिका। पृष्ठ- 28।

तथा भरत का उत्तेजित परशुराम को उत्तर देना । यहाँ पर रामचन्द्रिका का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है ।

(12) जब भरत राम से अयोध्या को लौट चलने के लिए अधिक आग्रह एवं हठ करने लगे तब श्रीराम ने उनको अपने चरणुकों का दर्शन कराये और भरत ने भी राम को ब्रह्म मानते हुए उनके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया । उनके हृदय में अखण्ड भक्ति का विकास हुआ । चरणुकों का दर्शन कराने की उद्भावना कवि की मौलिक कल्पना का परिणाम है ।

(13) महाराज जनक का राज्याभिषेक विस्तृत नहीं आया और न जनक को भरत के गुणानुवाद का सुअवसर ही प्राप्त हो पाया ।

(14) सीता परित्याग के प्रसंग में राम भरत से मंत्रणा न कर सीधे लक्ष्मण को ही सीता को वन में छोड़ आने का आदेश देते हैं ।

(15) लवकुश से युद्ध के समय भरत लव की मूर्च्छित करने में सफल हो जाते हैं परन्तु कुश से पराजित हो जाते हैं । अर्जुन एवं लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक बलशाली प्रतीत होते हैं ।

(16) राम के परमधाम को जाते समय भरत भी उनके साथ जाने का अनुरोध करते हैं तथा कुश को राज्य देने के लिए कहते हैं ।

उपर्युक्त के अतिरिक्त रामकथा में सुलोचना का सती होना, महिरावण-वध आदि कथाएँ भी समाविष्ट की गयी हैं ।

भरत के स्वरूप का विकास

रामविलोट का कवि " मानस" के कवि के समान ही राम को ब्रह्म का अवतार मानता है । कश्यप मनु तथा अदिति को दिए गए वरदान के परिणामस्वरूप ब्रह्म

1- भरत- लव क्रोध युद्ध महाहव को गहि भारथ चाप अरोपन कीन्हौं ।
तीखन नैन कहे मुख बैन नहिं रघुवंश कुल को तुम चीन्हौं ।
आयु प्रचार इनौ रन में कर सों फरसा अबहीं गहि छीनौं ।
ब्राह्मन देखि दया उपजै तुम स्यानि तुर्वंश अमारग लीन्हौं ।। 387 ।।
रामविलोट चैटदास रामायण, बालकाण्ड, 13, 387 ।।

2- राम विलोक सलोक तेहि उर हठ पेम विचार । सजल सरीर निमु सुंदर दिव्य उदार ।
तथा- रघ ध्यान समाधि सलीनुमने तन में छवि मूरत सैय लहैं । 828 ।
चैट सुधारत भक्ति अखण्डित सो उर पाय अघाय रही ।।830 ।।
रामविलोट चैटदास रामायण अयोध्याकाण्ड, 12, 828 एवं 830 ।

3- रामविलोट चैटदास रामायण उत्तरकाण्ड, 310 से 316 ।

ब्रह्म स्वयं की धार रूपों में विभक्त कर अवतरित होता है[1]। दिव्य पावस का विभाजन भी इस भाव का द्योतक है। इस प्रकार भरत भी ब्रह्म के अंशावतार हैं।

रामविनोद के भरत महान् भक्त एवं साधक हैं। साधक की विशिष्टता इसी बात में है कि वह साध्य के साथ तन्मय हो जाये और साधना इतनी ऊँची उठे कि साधक और साध्य में कोई अन्तर ही न रहे। यह स्थिति पूर्ण आत्म-समर्पण के पश्चात् ही प्राप्त हो पाती है। भरत की साधना भी इसी उत्कृष्ट श्रेणी की साधना है। इस साधनामय भक्ति के दर्शन भरत में उनके बाल्यकाल से ही कवि ने कराये हैं[2]। यह साधना उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है तथा इसका चरम उत्कर्ष राम के वन चले जाने पर हुआ है। इष्ट भक्त के कारण संकट में पड़कर कष्ट झेले, भक्त के लिए इससे बढ़कर दुःखदायी और क्या हो सकता है। इसलिए राम वनगमन का कारण सुनाने वाली माँ कैकेयी की वाणी भरत को बाण के समान तीक्ष्ण लगी[3]। भक्त का इष्ट से वियोग असहनीय था। कौसल्या भरत की इस मार्मिक व्यथा को जानती थीं[4]। भरत भलीप्रकार जानते थे कि उनके हृदय का ताप तब ही दूर हो पायेगा जब श्रीराम के दर्शन होंगे, अतः उन्होंने शत्रुघ्न के साथ वन जाने की तैयारी की[5]। भरत की साधना अपने उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई। उन्होंने मंत्रियों और गुरु वसिष्ठ के समक्ष निश्चय प्रकट किया कि जिस प्रकार वन में राम रहते हैं उसी प्रकार योग धारण कर मैं भी रहूँगा। मैं अपने इस शरीर द्वारा दृढ़ भाव के साथ नियम, तप योग करूँगा। समस्त माया मोह, गृह एवं पत्नी को भी

1- देखिए- रामविनोद चंददास रामायण, बालकाण्ड, 1,22-23।

2- भरत राम के चिरसहचर, अनुगामी और सेवक हैं।
" लछन भारथ पावन तो पद पावत प्रेम हिये अधिकारी।
चंद अनन्त अनोपर ये नर देस सनेह कला बिस्तारी ॥ 80 ॥
रामविनोद चंददास रामायण, बालकाण्ड, अध्याय 3,80।

3- लगे अंग मे बान से बैन लागे। लटा प्रान ते भान रघुनाथ जागे।
छी भान बानी छटी लाय काया। चले नीर दृग तो बरै कोटि माया ॥ 709 ॥
रामविनोद चंददास रामायण,
अयोध्याकाण्ड, अध्याय 10,709।

4- भारथ पुत्र वियोग लख कौसल्या बिलाय।
रामचन्द्र ते अधिक तिन लीन्हें हृदय लगाय ॥ 720 ॥
रामविनोद चंददास रामायण, अयोध्याकाण्ड, 10,
720।

5- देखिए रामविनोद चंददास रामायण अयोध्याकाण्ड 10, 739।

ध्यान कर, जटाएँ धारण कर कंद मूल का आहार करेंगा[1]। इस प्रकार राम के समान योग धारण कर भरत राम से मिलने चित्रकूट गए। हृदय के अगाध अनुराग ने राम से अयोध्या का राज्य स्वीकार करने तथा लौट चलने का बार बार आग्रह किया। साधक की साधना तभी पूर्ण हो पाती है जब वह प्राणों की बाजी लगा देता है। " शीश उतार कर धरती पर रखने के पश्चात् ही प्रेम के घर में साधक प्रवेश पाता है।" भरत की साधना भी इसी लक्ष्य की उपलब्धि करती प्रतीत होती है। जब राम उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं करते हैं तब भरत भी अपने शरीर को त्यागने के लिए उद्यत हो जाते हैं[2]। भरत के इस आत्मोत्सर्ग के आगे जिस हठ को देखकर परमात्मा रामको अपना चतुर्भुज रूप धारण कर भरत को दर्शन देना पड़ा। इष्ट देव का वह दिव्य स्वरूप देखकर भरत ने पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। उस दिव्य छवि को अपने ध्यान में स्थिर कर अपने मन को प्रभु के चरणों में सौंप दिया। सम्पूर्ण लोक संकोच त्यागकर अपनी आत्मा ईश्वर को अर्पित कर दी तथा अखण्ड भक्ति के अमृतरस का छक कर पान किया[4]। स्वामी की इच्छा के समक्ष अपनी समस्त इच्छाएँ त्याग देना साधक की सच्ची साधना का द्योतक है। भरत ने भी प्रभु की इच्छा के आगे

- -

1- किएउ नेम तिहु ध्यान तब जोग जोगा।
रघौ नेम नारौं हिएँ लोह लागा।
जटा सीस धारी तजौं देह नारी।
करौं कंद आहार बिछहार धारी ॥ 746 ॥
करी जोग की रीति रघुनाथ केरी।
चलौं राज की लाज मैं नाथ तेरी।
चलौ बेग मम संग मुरदेव ग्यानी।
जहाँ राम अभिराम सुख सिद्ध दानी ॥ 747 ॥

रामचरितमानस तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड अध्याय 10, 746-47 ।

2- कहि बचन दुह प्रतापीर। मैं चलौं गृह रघुबीर।
जो बचन नाथ न देइ। तौ प्रानहिं निज देह ॥ 827 ॥

रामचरितमानस तुलसीदास रामायण, अयोध्याकाण्ड/12, 827 ।

3- राम बिलोकि ससोक तेहि उर हठ बेध बिचार।
सासन देइ सरीर निजु सुंदर दिव्य उदार ॥ 828 ॥

4- रघ ध्यान समाध सही मुन मैं, मन मैं छबि मूरत सेय लई।
मन सौंपि दयेउ प्रभु पावन मैं दृग के रस भाव सुहाई।
सोच सकोच बिमोच सबै निजु आरत अर्थ समर्थ दई।
छँट सुधारस भोजन अर्पित सो उर पाय अघाय रही ॥

रामचरितमानस तुलसीदास रामायण, अयोध्याकाण्ड, 12, 830 ॥

केवल यह ही कहा-

" बीते चौदह वर्ष प्रभु जो नहिं ऐहौ ऐह ।
तौ मैं ज्वाँ अनन्तपुर त्याग राम निजु देह ।।" 83 ।।

एक अन्य विशिष्ट गुण जो रामविनोद के भरत में दृष्टिगत होता है, वह है उनकी न्यायप्रियता । राम का वनवास उनके दृष्टिकोण से अन्यायपूर्ण था । राज्य राम का है, उसे ग्रहण करना, यह उनके विचार में अनीति थी[1] । एक अन्य विशेषता यह है कि रामविनोद के भरत को इस बात का स्मरण सदैव ही रहता है कि रामब्रह्म हैं । "मानस" के समान ही यहाँ भी भरत की भक्ति सेवक सेव्य भाव की है[2] । अन्य गुणों के परिप्रेक्ष्य में मानस के भरत से राम विनोद के भरत अभिन्न प्रतीत होते हैं ।

राम-रसायन । पद्माकर ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पद्माकर भट्ट का विस्तृत वर्णन किया है । उनके अनुसार रीतिकाल के कवियों में इनका अति श्रेष्ठ स्थान है । ये बाँदा में आकर बस गए थे । इनके पिता मोहनलाल भट्ट तैलंग ब्राह्मण थे तथा अच्छे कवि थे । पद्माकर का जन्म सं० 1810 तथा मृत्यु सं० 1990 विक्रम माना जाता है । "हिम्मतबहादुर-विरुदावली", " जगविनोद", " पाबुकाश", " प्रतापसिंह-पंचाशिका", तथा " गंगालहरी" आदि पुस्तकों की इन्होंने रचना की थी । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि, " राम-रसायन" नामक वाल्मीकीय रामायण का आधार लेकर लिखा हुआ एकचरित-काव्य भी इनका दोहे चौपाइयों में है पर उसमें इन्हें काव्य-संबंधी सफलता नहीं हुई है । सम्भव है यह इनका न हो ।" जो भी हो यह एक पृथक शोध का विषय हो सकता है कि " राम-रसायन" के रचयिता पद्माकर क्या सुप्रसिद्ध पद्माकर कवि से भिन्न कोई व्यक्ति थे ।

1- सुन क्रमन बानी लाज आनी भरत मुनि सिकुरी परे ।
येहु प्रगल कर्म अधर्म पूरन पाप तो केहि विधि टरै ।।
अलोक अपजस लोक पूजी विमल टारन को हरै ।
अब लोक भूप नरेस रघुवर छत्र लोई सिर धरै ।। 744 ।।

रामविनोद चंददास रामायण, अयोध्याकाण्ड 10,744 ।

2- मैं सेवक रघुवीर, सीहिं राज सौं क्या ।
भोग पाप सरीर, निजु जननी के हेतु प्रभु ।। 755 ।।

रामविनोद चंददास रामायण अयोध्याकाण्ड, 10,755 ।।

3- हिन्दी साहित्य का इतिहास, रीतिकाल, पृ0 295 - लेo आचार्य रामचंद्र शुक्ल ।

जैसा आर कहा गया है राम-रसायन वाल्मीकि- रामायण के आधार पर लिखा गया काव्य ग्रन्थ है जो बहुत कुछ अनुवाद सा प्रतीत होता है । राम कथा वाल्मीकि के अनुसार ही है । भरत-चरित का उद्घाटन मुख्यतः अयोध्याकाण्ड में ही हुआ है, अतः यहाँ राम रसायन के अयोध्याकाण्ड के आधार पर ही भरत का स्वरूप निरूपण प्रस्तुत है ।

राम-रसायन में भरत का स्वरूप:- इस काव्य में भी परम्परागत रूप में विवाह के उपरान्त भरत शत्रुघ्न सहित अपनी ननिहाल चले गए हैं । राजा दशरथ राम के अलौकिक गुणों से प्रसन्न हैं और उनका राज्याभिषेक करना चाहते हैं । कुछ अनहुन भी राजा को उनकी मृत्यु की सूचना दी देते हैं । अतः राजा राम को राज्याभिषेक कर निश्चिंत होना चाहते हैं । मंत्रि-सभा ने दशरथ के प्रस्ताव से सहमति व्यक्त की और राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं । यहाँ भी महाराज दशरथ के मन में चिंता है कि भरत के आने से पूर्व ही राम का राज्याभिषेक कर दिया जाय । वे इस चिंता को राम के सम्मुख इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

" जब लगि भरत न अयधहिं आवै । तब लगि यह कारज हवै जावै ।।
जदपि भरत है सेवी नाहीं । तदपि मनुज गति चंचल माहीं ।।

प्रथम पाद्य शंका उत्पन्न करता है, परन्तु द्वितीय पाद्य उस शंका का कारण भरत के चरित्र पर आरोपित नहीं करता है । शंका केवल मानव स्वभाव की संभाव्य दुर्बलता पर आधारित है ।

उधर परम्परागत रूप से ही मंथरा कैकेयी के कान भरती है तथा ईर्ष्यापीड़ित कैकेयी राम को चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के लिए राज्याभिषेक सम्बन्धी भीषण वरदान राजा से प्राप्त कर लेती है जो सीघ्रतम विरह-विषाद तथा घोर शोक का कारण बने । कैकेयी के वरदानों से क्षुब्ध दशरथ यहाँ भी कहते हैं कि यदि भरत को राम-वन-गमन अच्छा लगे तो वह मेरी प्रेतक्रिया न करे[1] ।

राम को वनवास की आज्ञासुनकर विषाद नहीं हुआ । किसी प्रकार उन्होंने अपनी माता को समझाया तथा उग्र रूप भावोद्वेलित लक्ष्मण को शान्त किया । राम सीता तथा लक्ष्मण के साथ वन को चले ।

1- रामगमन वन चित अति कीन्हो । भावहि भरत सिर्यो जो लीन्हो ।।
तो मम प्रेत क्रिया मत कीनो । करहिं जु कहुँ तो पाप न दीनो ।।

रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 12, पृ0 25 तथा सर्ग 14, पृ0 28 ।

अयोध्या से राम की विदा का वर्णन पूर्णतः वाल्मीकि रामायण के समान है। अनुगमन करती हुई प्रजा को राम ने समझाया कि जो प्रेम मेरे लिए है वह भाई भरत के लिए सुरक्षित रखें। भरत मेरा आज्ञाकारी है। वह तुम्हारा प्रेम पूर्वक पालन करेगा[1]। राम को भरत पर अगाध विश्वास है वे लक्ष्मण के साथ वन पथ पर लक्ष्मण से कहते हैं, "मुझे एक ही बात कुछ भ्रान्ति देती है कि भाई भरत अयोध्या में आकर माता-पिता को संतुष्ट करेंगे। वह धर्माचरण का त्याग नहीं करेंगे। भरत सब प्रकार से योग्य तथा सुखदायक है[2]। यह राम के भरत के प्रति उदार प्रेम का परिचायक भी है। राम शृंगवेरपुर पहुँचे। केवट प्रसंग बहुत कुछ मानस के समान है। संवादों की भाषा वाल्मीकि अथवा तुलसी के समान सुन्दर एवं सुसंस्कृत नहीं है। राम भरद्वाज ऋषि के आदेशानुसार चित्रकूट में निवास करने लगे। दशरथ ने राम के विरह में प्राण-त्याग दिए।

सारथि ने भरत को बुलाने हेतु दूत भेजे जो सात दिनों में केकय पहुँचे। दूतों के पहुँचने के पूर्व रात्रि में भरत ने दुःस्वप्न देखे थे जिससे वे चिन्तित एवं दुःखित थे। नानी, नाना आदि से विदा ले भरत सुरम्य वन दिए। उत्सव-शून्य अयोध्या में प्रवेश करते ही भरत पुनः व्याकुल होने लगे। कैकेयी के भवन में पहुँच कर पिता के निधन की सूचना से भरत अत्यन्त शोकाकुल हो उठे। अब तो राम ही उनके आश्रय हैं। माता सेराम के वन-गमन का समाचार सुन भरत ने पूछा कि राम ने धर्म-विरुद्ध क्या किया था जो उन्हें दण्डकारण्य हेतु निर्वासित किया गया। कुटिल कैकेयी ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सब करनी सुना दी, जिसको सुनकर भरत को अपार दुःख हुआ तथा उन्होंने कैकेयी की घोर भर्त्सना की। यह भर्त्सना वाल्मीकि रामायण की कैकेयी-भर्त्सना का ही कुछ संक्षिप्त रूप है[3]। दयालु भरत का मन कौसल्या के पुत्र-वियोग की कल्पना से कराह उठा। उन्होंने पुनः कैकेयी की कटु भर्त्सना की[4]। अब भरत कौसल्या के पास गए।

1- भरत भ्रात मम आज्ञाकारी। करिहहि तुम पर प्रीति तुम्हारी॥
भरत तु अब जुवराज तिहारे। तिनहिं मनहुँ मम मान हमारे॥
रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 45, पृ0 90।

2- एकहि चोच अब मम मन माहीं। देहहि भ्रात भरत तिहि ठाहीं॥
तुमहिं मातु सम्बोधन करिहै। कबहुँ न धरम तुमर परिहरिहै॥
तुमरय भ्रात भरत सब लायक। है सब कहँ सब विधि सुखदायक॥
रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 46, पृ0 92।

3- " " सर्ग 73, पृ0 142।

4- " " सर्ग 75, पृ0 146-47।

वे स्वयं ही भरत का आगमन सुनकर भरत से मिलने आ रही थीं। भरत माता के चरणों पर गिर कर रोने लगे। उन्होंने अत्यधिक अपनी कुटिलता तथा निर्दयता खेद करना चाही[1]। कौशल्या ने उनको धैर्य बँधाते हुए उनकी सरलता, निश्छलता तथा राम-प्रेम की प्रशंसा की[2]। इसी प्रकार क्रन्दन-रत रात्रि व्यतीत हो गई।

प्रातःकाल आकर वसिष्ठ ने समझाया। भरत ने पिता का भूतल-संस्कार विधिवत् किया। कुटिल कुबरी के छलों का प्रसंग वाल्मीकीय रामायण के समान ही है[3]। फिर राज-सभा का आयोजन हुआ। गुरु वसिष्ठ तथा राम-माता ने भरत से सिंहासनासीन होकर राज्य-संचालन का अनुरोध किया जिसे भरत ने अस्वीकार कर राम को लौटा लाने हेतु वन जाने का निश्चय किया[4]। मार्ग-शोधकों ने मार्ग प्रशस्त किया। सभा पुनः बुलाई गई। भरत से अनुरोध किया गया कि वे राज्य स्वीकार करें जो उन्हें पिता की आज्ञा से धर्मानुसार प्राप्त हुआ[5]। भरत तो राम के सेवक हैं। "रघुकुल में बड़े भाई को ही राज्य दिए जाने की परिपाटी है। भरत की दृष्टि में राज्य राम का है। भरत को राम बहुत प्रिय हैं। वे राम को लौटाने वन को जाना चाहते हैं और भी जो लोग उनके साथ जाना चाहें चलें।"[6] भरत के निश्चय से सभा में हर्ष के साथ जय-घोष होने लगा।

भरत ने सेना, सेवक, गुरु तथा नागरिकों सहित वन को प्रयाण किया। शृंगवेरपुर पहुँचने पर गुह ने सेना सहित भरत को शंकित दृष्टि से देखा तथा भरत से दल-बल सहित चित्रकूट जाने का कारण पूछा। भरत से यह सुनकर कि प्रभु राम को अयोध्या लौटा लाने तथा राज्य देने जा रहे हैं, केवट भाव-विभोर हो अचेतन हो गया। उसने भरत की

1- राम-रसायन, अयोध्याकाण्ड सर्ग 75, पृष्ठ 146-47।

2- " सत्य धरमधर तू न तज्याहीं। हक रामहिं सब भाँति भज्याहीं॥
तोर न अब कछु लाग्यहुँ माहीं। × × × ×
राम-रसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 75, पृ0 147।

3- राम-रसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 78, पृ0 152।

4- " " सर्ग 79, पृ0 153।

5- " " सर्ग 82, पृ0 156।

6- " " सर्ग 82, पृ0 158।

बहुत प्रशंसा की[1]। उसने भरत को उस रात्रि लक्ष्मण द्वारा की गई सेवा एवं जागरण का वृत्तान्त सुनाया तथा भरत के अनुरोध पर उस रात्रि की सम्पूर्ण कथा सुनाकर सिंगुपा शिंशपा के वृक्ष के नीचे राम का विश्राम-स्थल भरत को दिखाया, जिसे देखकर आर्त भरत प्रणाम कर रोने लगे। उन्होंने कौसल्या को भी वह तृण-तल्पिका दिखायी जिस पर उस रात्रि सीता-राम सोये थे। भरत की दशा दुःखित हो उठी है[2]। उन्होंने निश्चय किया कि वे भी वीर, जटा तथा वल्कल धारण कर भूमि पर कुशासन बिछा कर सोयेंगे तथा पैदल चलेंगे[3]।

प्रातःकाल गुह ने सब को गंगा पार कर दिया। भरत प्रयाग पहुँचे। भरद्वाज ऋषि से मिले। भरद्वाज ने उनसे यहाँ शंकापूर्ण प्रश्न किया कि," क्या बड़ा सैन्य-बल लेकर तथा राम को मारकर अकंटक राज्य करना चाहते हो"? भरत को यह सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। अज्ञानी केवट की शंका तो सहन हो सकती थी परन्तु महाज्ञानी ऋषि के भ्रम ने तो हृदय को झकझोर दिया। कातर भरत ने राम को अयोध्या लौटा ले चलने विषयक अपना उद्देश्य मुनि को बताया जिसे सुनकर वे भरत के प्रति श्रद्धानत हो उनकी प्रशंसा करने लगे। समस्त पुण्यों का फल तो सीता-राम-लक्ष्मण का दर्शन था और उस पुण्य का फल अब धन्यात्मा भरत का दर्शन है[4]। ऋषि ने ससैन्य भरत का आतिथ्य किया।

1- धन्य भरत तुम हहु बड़ भागू। लहउ जु अस प्रभु पद अनुरागू ॥
यहहि धन्य जगजीवन पाई। जाहि सराहहि रघुपति नेकाई ॥
क्यों न होहु तुम रामहिं प्यारे। प्रभु पद-प्रेम सुलक्ष सनवारे ॥
अतिबड़ समुझि सुप्रभु सिखकाई। तुम तुम लखियहु अवध रजाई ॥

रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 85, पृ0 162।

2- लखहु जनकि छत्र सिय रघुराई। मैं सोवा महि दरभ बिछाई ॥
× × × ×
जनक-सुता दसरथ सुत जाया। तिहिं महि सयन लहउ मृदुकाया।
× × × ×
तब सुख जीव जु जनकदुलारी। तो मम अध दुख देखा भारी।

रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 88, पृ0 166।

3- अब मुहि उचित तुमनि परबोई। बीर जय बल्कल धरबोई ॥
हौं अब सुपिनु बचन पालहुँगो। लह अनुपम पगनि चालहुँगो ॥

रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 88, पृ0 167।

4- रामदरस फल को फल पैही। देखहु तुमहिं जु रामसनेही ॥

रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 90, पृ0 170।

कोट्टि-सिद्धि द्वारा प्रस्तुत भोगों का विस्तृत वर्णन किया गया है । प्रातःकाल शौच से निवृत्त होकर भरत ने चित्रकूट को प्रस्थान किया ।

भरत की सेना चित्रकूट के निकट पहुँची । सेना के कोलाहल, भागते हुए वन्य पशुओं तथा उठती हुई धूलि को देखकर राम ने लक्ष्मण को कारण जानने का आदेश दिया । वृक्ष पर चढ़कर लक्ष्मण ने भरत की सेना को देखा और भरत के विषय में शंका प्रकट करते हुए लक्ष्मण ने अपना क्रोध व्यक्त कर दिया । राम का विश्वास भरत की सज्जनता पर अडिग है । उन्होंने कहा कि " भरत को न तो राज्यमद ही सताता है और न वह हमें मारने ही आ सकता है । भरत हमें मनाने आ रहा है । वह मेरे कहने से तुमको राज्य दे देगा"[1]। राम की बात सुनकर लक्ष्मण लज्जित हो गए ।

उधर भरत सेना को राम-धाम से 6: कोस दूर रखकर शत्रुघ्न, सुमंत्र तथा गुरु के साथ पैदल ही राम की खोजने चल पड़े । उनका मन राम से मिलने के लिए अकुलाता था । कभी कभी शंका भी उत्पन्न हो जाती कि " मेरा नाम सुनकर राम कहीं उत्पन्न न हो जाँय ।" कैकेयी के दुष्कृत्य अनिष्ट आशंकायें उनके मन को चैन नहीं लेने देती । राम की कुशल एवं सकुशलता में उनका विश्वास दृढ़ था । वे जीजी चले जा रहे थे । राम के आश्रम को देखकर उन्हें अपार हर्ष हुआ । राम के चरण-चिन्ह देखकर चरण-धूलि को मस्तक से लगाया[2] । राम को कलपाती लता देखकर भरत को बहुत दुःख हुआ । आँसुओं से कण्ठ-अवरुद्ध हो गया । वे राम के कलपाती जीवन के कष्टों को देखकर कसम-

---

1- भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही ।।
तिहुँ लोकन की लहि ठकुराई । उपजहिं भरत न करतहिं काई ।।
× × × ×
सुनि निज जानि कठोर कुठाहू । दसरथ पुत्र नाथ निज नाहू ।।
तुमहिं तुमहिं मिलने यहँ आयी । जाइहैं राजतिलक नहीं आयी ।।
× × × ×
सुनि मम वचन भरत रहहिं । राजतिलक तुमहीं यहँ रहहिं ।।

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 97, पृ0 187-88 ।

2- प्रभु पदचिन्ह भरत पुनि देखे । जनम सफल सुफल करि लेखे ।।
ते रज लाइ माथ जी सिर धारी । भूमि पटहिं निज पलकन भारी ।।

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 99, पृ0 191 ।

विलाप करने लगे[1]। उनके चरणों पर भरत तथा शत्रुघ्न दण्डवत् गिर पड़े। उन्होंने उनके चरणों को आँसुओं से धो डाला। सुमंत्र और गुह भी सप्रेम राम से मिले। वह प्रेमाश्रु निर्जल जन-जातियों में भी प्रेम उत्पन्न कर देने वाला था[2]। प्रभु ने भरत को हृदय से लगाकर उनके आँसुओं को अपने हाथ से पोंछ डाला। कुशल प्रश्न के बहाने राम ने भरत को राजनीति का विशद उपदेश दिया[3]। भरत ने पिता के मरण तथा अनाथ अयोध्या की दुर्दशा सुनाकर राम से अयोध्या लौट चलने तथा राज्य स्वीकार करने की प्रार्थना की[4]। सत्यव्रत राम ने पिता की दिए हुए वचनों पर दृढ़ रहते हुए वन में ही रहने के अपने संकल्प को व्यक्त किया। भरत को भी पिता के वचनों का पालन करते हुए अयोध्या में राज्य करना चाहिये[5]। भरत ने कहा कि " यह रघु के कुल का सनातन धर्म है कि बड़े भाई के रहते छोटा भाई राज-शासन नहीं करता है[6]।" फिर उन्होंने पिता की मृत्यु की घटना सुनाई जिसे सुनकर राम शोकमग्न हो गए। पिता का पिण्डदान कर वे माताओं तथा गुरु वशिष्ठ से मिले। चित्रकूट में राजसभा का आयोजन हुआ। उपस्थित नेत्रों ने भरत की ओर देखा। भरत ने राम से पुनः राज्य-ग्रहण करने की प्रार्थना की[7]। राम ने अनेक तर्क देकर भरत को समझाया कि

1- भरत निरखि रघुबर बेषू। भयउ दसा सम दुसह बिसेषू॥
मो सकि कंठ नयन भरि आये। धरि धीरज बहु पुनि अस गाये॥
हैं बिधि सेवा सचिव सभा मैं। तिन सुमुखहिं किय बिलहामैं॥
हैं पंडित मैं बहुत बिचारा। तै औदुहिं अब इक मुखाला॥
जिन सिर सुरपहु मुकुटमनि पूरी। तिन अब धरयहु जटन की जूरी॥
× × × ×
धिक मो कहँ धिक जीवन मेरो। मो कारन प्रभु दुखित घनेरो॥

राम रसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 99, पृ0 191-92।

2- रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 99, पृ0 192।
3- " " सर्ग 100, पृ0 193-200।
4- " " सर्ग 101, पृ0 200।
5- " " सर्ग 101, पृ0 201।
6- कुल सनातन धर्म यह हैं समुझत रघुराज। बड़ो लघु सु बहु भाई अजस करत न कबहूँ राज॥
रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 102, पृ0 202।
7- या बिधि सबन सुख होतहीं सब भरत बोले राम सों।
दिय राज तुम कम मातु को निज पितु बचन इक काम सों॥
सो राज अब मैं तुमहिं कों सुख मानि सौंपत हों यहीं।
यह राज को जो भार बहु कल सबा औरन सों नहीं॥

अयोध्याकाण्ड, सर्ग 105, पृ0 206।

कि राम का वन में रहना तथा भरत का राज्य करना उचित है,[1] परन्तु भरत ने पुनः धर्म-व्यवस्था के तर्कों के आधार पर राम से अयोध्या लौट चलने हेतु आग्रह किया। प्रजा का भी यही आग्रह था।[2] परन्तु दृढ़व्रती राम वनवास हेतु ही दृढ़ रहे। पिता की आज्ञा के पालन को ही उन्होंने सब से बड़ा धर्म समझा। वशिष्ठ के समझाने पर भी राम ने पिता की आज्ञा पालन को ही सर्वोपरि समझा। भरत को बहुत निराशा हुई तथा उन्होंने दर्भ बिछाकर धरना प्रारम्भ कर दिया।[3] किसी प्रकार राम के समझाने पर भरत धरना से उठे। राम ने आश्वासन दिया कि वनवास के चौदह वर्ष पूर्ण हो जाने पर राम अयोध्या में आकर राज्य करेंगे। वशिष्ठ ने भरत को समझाया कि राम को वन में रहकर पिता की कैकेयी के ऋण से उऋण होने दें। विरह के दुःख से भरत के अंग शिथिल होने लगे। राम ने उन्हें सस्नेह समझाया। भरत राम की पादुकाओं को उनसे प्राप्त कर उनको हाथी पर रखकर राम से विदा लेकर अपनी सेना सहित अयोध्या को चल दिए। उन्होंने भी वल्कल धारण कर फलाहार करते हुए तपस्वी के व्रत-नियमों को धारण किया तथा नन्दिग्राम में निवास किया।

सम्पूर्ण काव्य में भरत का राम-प्रेम, भ्रातृ-भक्ति, धर्मपरायणता, त्याग तथा तपस्या वाल्मीकि रामायण की भाँति ही वर्णित है।

आनन्द रघुनन्दन- महाराजा विश्वनाथ सिंह

वीर नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जी का जन्म सन् 1789 ई० में हुआ था तथा यह सन् 1854 ई० में परलोकगामी हुए। इनके पिता महाराज जयसिंह भी साहित्यानुरागी थे तथा उन्होंने संस्कृत के पुराणों को हिन्दी में कथानक काव्यों के रूप में प्रस्तुत किया था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित 32 ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनमें हिन्दी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में लिखे ग्रन्थ सम्मिलित हैं। "आनन्द-रघुनन्दन" की भूमिका में इनके द्वारा विरचित हिन्दी तथा संस्कृत ग्रन्थों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। हिन्दी में इनकी राम-भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ हैं,- आनन्द-रघुनन्दन, संगीत-रघुनन्दन, गीत-रघुनन्दन, अयोध्या महारम्य तथा अवध नगर का वर्णन आदि। आचार्य शुक्ल ने इनकी रचनाओं में "गीता-रघुनन्दन-वार्तिका, "रामायण", "आनन्द-रामायण", "विनय-पत्रिका की टीका" तथा "रामचन्द्र कीर्तनावली आदि का भी उल्लेख किया है।

1- रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, सर्ग 105, पृ० 207-10 ।
2- " " सर्ग 106, पृ० 211-12 ।
3- " " सर्ग 111, पृ० 221 ।

आनन्द रघुनन्दन हिन्दी का प्रथम नाटक माना गया है । कवि ने ग्रन्थ में रचना-काल का उल्लेख नहीं किया है । सम्भवतः इस ग्रन्थ की रचना सन् 1845 से सन् 1856 के मध्य किसी समय हुई है । इससे पूर्व ब्रजभाषा में नाटक-रचना नहीं हुई थी । यह ब्रजभाषा में रचित हिन्दी का प्रथम गद्य-पद्यमय नाटक है । इसमें संस्कृत की भारतीय परम्परा का पुनरुत्थान-प्रयत्न स्पष्ट है ।

आनन्द-रघुनन्दन की कथावस्तु वाल्मीकीय रामायण पर आधारित है । नान्दी-पाठ तथा विष्कम्भकादि का आयोजन नाटक के प्रारम्भ की भारतीय परम्परागत ही होता है । कथा प्रारम्भ राम-जन्म से है । नाटक में प्रतिष्ठ पात्रों के नाम-परिवर्तन इस प्रकार हैं- राम-हितकारी, भरत-सकल जगकारी, लक्ष्मण-शील धराधर, शत्रुघ्न-रिपुमीदर, दशरथ-दिनुमान, सीता-सहिजा, कौसल्या- कुशला, कैकेयी-काननोरी मंथरा-कुटिला आदि । प्रथम अंक में ही पात्रों के विवाह होने की सूचना है तथा विश्वामित्र (मुनिवर) के आगमन एवं उनके साथ राम (हितकारी) तथा लक्ष्मण (शील धराधर) के यज्ञरक्षार्थ जाने का वर्णन है । ताड़का-वध तथा सैन्य सुबाहु का संहार कर राम-लक्ष्मण ने यज्ञ की रक्षा की । तत्पश्चात् धनुर्भंग तथा राम आदि का विवाह दिखाया गया है । विवाहोपरान्त वापिस जाती हुई बारात को परशुराम मार्ग में मिलते हैं तथा चारों भाइयों से उनका विवाद होता है । राम की विनयशीलता एवं कविता से प्रभावित होकर वे राम को अवतारी पुरुष मान लेते हैं तथा उनकी स्तुति करते हैं ।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में देवकार्य हेतु सरस्वती द्वारा मंथरा (कुटिला) की बुद्धि फेरकर कैकेयी (काननोरी) को प्रभावित कर भरत (सकल जगकारी) को राज्य तथा राम (हितकारी) को राज्य के स्थान पर वनवास दिलाने की सूचना है । सीता-लक्ष्मण सहित राम के वन को प्रस्थान तथा वाल्मीकि आश्रम पहुँचने की सूचना भी दी गई है । राजा दशरथ के मरण की सूचना भी दी गई है । भरत के अयोध्या-आगमन की सूचना राम को वाल्मीकि-आश्रम में ही वाल्मीकि द्वारा दे दी गई है ।

इसके पश्चात् कैकेयी तथा भरत का मिलन दिखाया गया है । कैकेयी भरत से कहती है कि " पुत्र तिहारो काज संवार राख्यो हौं ।[2] भरत लाज्यौं पूछो हौं " कौसल्या कार्य ? कैकेयी समस्त कुटिल वृत्तान्त सुनाती है । भरत का मन अति क्षुब्ध हो जाता है

1- जे पुरुष परैता जातु निहिता, रवि ससि उदुगन पवन पानी ।
तब देउ उपकारी, जे हितकारी, परम पुरुष वेहि जग अवनी ।
तुमहीं हे देवन, तुमही के तन, हौं केहि बल हौं जुट्ट करौं ।
अपराध महाना, मो अजाना, परम छमहुँ प्रभु पाँय परौं ।
आनन्दरघुनन्दन, प्रथम अंक, पृ० 30 ।

2- आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ० 44 ।

और वे कैकेयी की कटु भर्त्सना करते हैं[1]। यहाँ भी भरत शत्रुघ्न (विभीषण) द्वारा प्रताड़ित मंथरा की यह कह कर रक्षा करते हैं कि, " नारी वध किमि मोकहँ बिधाता। बिधि बिधि मोकहँ दीन्ह बिधाता। सत्यवाणु दोनों भाई कौसल्या के पास जाते हैं। भरत कौसल्या को विश्वास दिलाते हैं कि इस षड्यन्त्र में उनकी सम्मति नहीं थी तथा राम के बिना उनका जीवित रहना कठिन है। वाल्मीकि आकर भरत को समझाते हैं तब भरत पुनः अपना शोक, दुःख तथा ग्लानि व्यक्त करते हैं[2]। वे गुरु से कहते हैं, " गुरु। बिलाहारी पद दरसाइये। पाहि मैं मेरी प्राण रहेगो।[3]" चित्र चित्रकूट में जाने प्रसंग की चर्चा है। उसी समय वन्य जीवों की भागते देखकर लक्ष्मण वृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना को देखकर उत्तेजित हो युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं[4]। राम ने लक्ष्मण को शांत कर कहा कि, " तुम्हारी सी प्रीति मो पर उनहुँ की है। सहज जनकारी लेवाइये के हेतु आयत आँहिने।" इसी समय गुरु, मंत्रि तथा भाई सेवाय भरत आ पहुँचे। दण्डवत् प्रणाम करते हुए भरत को हृदय से लगा कर राम ने गुरु को प्रणाम किया। गुरु ने राम को आदेश दिया कि पिता की विष्टदानादि कर माताओं से मिलें। सत्यवाणु उन्होंने राम को समझाया तथा भरत की विनय सुनने हेतु अनुरोध किया। राम ने जब पिता की आज्ञा पालन का अपना निश्चय प्रकट किया तब भरत कुशा बिछाकर धरना करने बैठ गए[5]। राम उनको धरना से उठाते हैं और आग्रहपूर्वक करते हैं कि जो कुछ भरत कहेंगे राम उसको करेंगे। भरत कहते हैं कि " तोहक प्रभु की आदेश केहि दे सकता है, और यदि प्रभु घर नहीं चलेंगे तो मेरे प्राण आकुल होंगे

1-"अरी। मेरी जीभ मैं काहि कारती। माता भई, कहा करौं?
आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 44 ।

2- हाय हाँ केहुँ काम न आयो।
बिलाहारी हि कुल बधु बधूता यह कैसे बिसरायो।
जो कौसल्या संगहिं बन आती, पीठि बिहाइ चलीती।
हा। हा। विधनाथ बिलाहारी, कहहु पूछि तिथीती।
आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 46 ।

3- आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 46 ।

4- सहज जनकारी करी जहाँ बिराजहिं आय।
जो टिकिहैं रन छनक हाँ, देहौं सब समुदाय।
आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 49 ।

5- । सहज जनकारी कुशासनरूप धरना अनकहँ माटयति । ।
आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय सर्ग, पृ0 50 ।

लगते हैं। अब आपकी मेरे लिए कोई अवलंब आवश्यक है। राम ने कहा कि " ये पादुका ले जाउ उनमें हमारी प्रमुख तुमको बनी रहेगी।" भरत ने पादुकाओं को शिरोधार्य कर कहा कि " अवधि बिताय जो आय हैं, तो जीवत नहीं पाय हैं। यहाँ पर राम का निष्ठुरत्व तथा भरत का उनका ऐसा होना संकेतित है।

भरत को विदा कर राम अत्रि और अनसूया से मिलकर दण्डकारण्य को चले गए। वहाँ दस वर्षों तक वे मुनियों से मिलते रहे। मैत्रायणि ने मिलकर उन्होंने पंचवटी में निवास बनाया। वहाँ तीनों। जटायु। से उनका परिचय हुआ। वहीं कौसल्या का भेजा हुआ दूत गुह उनसे मिला। राम के पूछने पर उसने भरत की कुशलता का समाचार दिया कि भरत राम के ध्यान में निरत अयोध्या के निकट के एक गाँव में व्यवस्थित हैं। पादुकाओं को सिंहासनस्थ कर वे शासन-प्रबन्ध करते हैं। शरीर-क्षीण, वेश-प्रवृद्ध तथा जटाओं में श्री वेश धीनता को प्राप्त हुए हैं[2]। अपना कुशल समाचार देकर राम ने दूत को लौटा दिया।

आगे पश्चात् शूर्पणखा विलापकरण-प्रसंग तथा खर-दूषण वध विजय का पथ दिखाया गया है। यहाँ मैत्रायणि राम की स्तुति करते हैं जिससे राम का ईश्वरत्व प्रकट होता है। वे राम को पूर्णावतार मानते हैं[3]।

शूर्पणखा ने रोकर रावण को समस्त समाचार सुनाया। रावण ने विचार किया कि खर-दूषण को मारने वाला जनस्थानेश्वर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है। अब तो शिव का उपाय उनसे वैर कर उनके हाथों मारा जाना ही है[4]। अपने मंत्री दीर्घजिह्व की सम्मति से उसने सीता-हरण का दृढ़ विचार बना लिया। मारीच। मारीच। को स्वर्णमृग बन कर राम को दूर ले जाने का आदेश उसने दिया और सीता हरण की तैयारी स्वयं की। लक्ष्मण जब मृगया हेतु गए तब राम ने सीता को अग्नि में निवास करने का तथा छाया-सीता को कुटिया में रखने का आदेश दिया। सीता-हरण की कथा "मानस" के समान ही है।

1- आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 51 ।

2- नगर निकट एक गाँव बास करि, करत तुरत प्रभु ध्यान लगाए।
   वेश दिखा कहि करत काम कछु, आए पादुकन भूम बनाए।
   विरहनाथ प्रति वेष काय यक लट अन्धि वेश पीनता पाए।

   आनन्दरघुनन्दन, तृतीय अंक, पृ0 57 ।

3- आनन्द रघुनन्दन, तृतीय अंक, पृ0 63 ।

4- आनन्द-रघुनन्दन, तृतीय अंक, पृ0 65 ।

पंख कटे हुए गुणसम्पन्न जटायु ने राम को बताया कि रावण सीता को चुराकर लंका ले गया है। यह चोरी उसने बिन्दु मुहूर्त में की है जिसका परिणाम उसकी मृत्यु तथा सीता का राम से विछोह है। यह कहते-कहते जटायु [सौपर्णि] ने प्राण-त्याग दिए। राम ने उसका विधिवत् मृतक-संस्कार किया। कबन्धी-प्रसंग अति रुचिर है। कबन्धी ने राम को सुग्रीव का पता बताकर योगाग्नि में अपने शरीर को दग्ध कर परमगति प्राप्त कर लिया।

चतुर्थ अंक में राम तथा सुग्रीव की मैत्री हुई। सुग्रीव ने राम को सीता के आकाश से गिरे हुए आभूषण दिखाए। दूसरे दृश्य में बाली तथा उसके मंत्री तार की वार्ता हो रही है। बालि रावण का पत्र पढ़ता है जिसमें रावण ने बालि से फूहड़ राजकुमारों को पकड़ कर रावण के पास भेजने की प्रार्थना की है। इसी समय सुग्रीव सहित राम-लक्ष्मण आते हैं। बालि राम से युद्ध करने की इच्छा प्रकट करता है। दोनों में युद्ध होता है और बालि मारा जाता है। राम सुग्रीव को वानरों का राजा तथा अंगद को युवराज बना देते हैं[1]। इस परिस्थिति के द्वारा राम के चरित्र पर लिप्त कर बालि-वध करने के कलंक को कवि ने अधिक स्वाभाविक क्या प्रवाह से धो डाला है।

यहाँ समाप्त हो गई। अंक का आगमन हुआ। राम अधीर हो उठे। सुग्रीव अपने राग-रंग में राम का कार्य भूल गया। हनुमान ने सुग्रीव को राम कार्य का स्मरण कराया। उधर क्रोधित लक्ष्मण सुग्रीव के पास पहुँचे। उन्हें शान्त कर सुग्रीव उनके साथ राम के पास आया। सुग्रीव ने वानरों के समूह सीता की खोज में भेजे। राम ने हनुमान [जैसा मत्व] को अपनी मुद्रिका सहदानी रूप में दी[2]। पर्याप्त समय व्यतीत हो जाने पर भी अंगद के दल के न लौटने से सुग्रीव चिन्तित है। उसी समय स्वयंप्रभा तथा सम्पाति गिद्ध ने आकर वानरों के समुद्र-तट पर स्थित होने तथा हनुमान के लंका जाने का समाचार राम को दिया।

पंचम अंक में सुन्दरकाण्ड की कथा है। रावण अपनी राजसभा में बैठा हुआ मंत्री को अपने दुःस्वप्न की बात सुना रहा है जिसमें उसने सीता की खबर लेने को आए हुए वानर को देखा था। आगे पर रात में ही रावण ने जाकर सीता को भयभीत किया। इसी बातों के बीच त्रिजटा ने आकर वानर द्वारा मुद्रिका-प्रहार कर लंका में प्रवेश करने का समाचार दिया। वाटिका पाल ने भी इसी समय आकर हनुमान द्वारा वाटिका

1- आनन्द-रघुनन्दन चतुर्थ अंक, पृ0 75-77 ।

2- " " " पृ0 81 ।

विभीषण का समाचार दिया । हनुमान ने रावण द्वारा प्रेषित अक्षकुमार का सेना सहित वध कर दिया परन्तु मेघनाद के ब्रह्मास्त्र की शक्ति का सम्मान करते हुए हनुमान गिर गए और राक्षस उनको बाँध कर रावण की सभा में ले गया । हनुमान रावण के तेज को देखकर विस्मित हैं । उन्होंने रावण को सुग्रीव का संदेश दिया कि " राम । शिकारी। की पत्नी की लौटा दो । राम के क्रोध की रक्षा विष्णु भी नहीं कर सकते हैं ।" कपि के कटु भाषण पर क्रुद्ध रावण ने उसकी मार डालने का आदेश दिया परन्तु विभीषण (भ्रातृ) की सहायता पर वह दण्ड पूँछ को जला डालने मात्र में परिणत कर दिया । हनुमान ने लंका को जला डाला । त्राहि-त्राहि मच गई ।

कौशलता सुनकर सीता हनुमान के प्रति विस्मित हैं । अपने में पूँछ कुचाकर हनुमान ने आकर उनको प्रणाम किया । सीता ने उन्हें सहदानी रूप में मुद्रामणि दी । हनुमान ने राम को सीता का समाचार सुनाकर प्रभु का भी समाचार सुनाया । राम ने सैन्य लंका विजय हेतु प्रस्थान किया । समुद्र तट पर सेना रुकी । शरणार्थी विभीषण आया । राम ने उसे अभयदान ही नहीं दिया अपितु लंका के राज्यपट पर अभिषिक्त कर दिया । सेतुबन्ध, सागर निग्रह, सेतुबन्ध तथा शिविर का स्थापन किया गया ।

छठें अंक में वीर रावण की वानर सेना की अजेयता बताया है । रावण नृत्य देखने चला गया । अपने पराक्रम तुलित अंक पर राम के पौराणिकोक्त बाला मानस का प्रसंग है । राम के अद्भुत शर से रावण का छत्र, मुकुट तथा आभूषण कट कर गिर गए जिसको राक्षसों ने अपशकुन माना । रावण की अभीप्सा सभा में अंगद सुग्रीव के दूत के रूप में प्रवेश करते हैं । अंगद का दौत्य रामचरितमानस के समान ही है । फिर युद्ध युद्ध छिड़ गया । लक्ष्मण के शक्ति लगकर मूर्छित होने पर संजीवनी लेने हेतु जाते हुए हनुमान से राम अयोध्या के समाचार लाने को भी कहते हैं । हनुमान पर्वत सहित औषधि ले आए । उससे वानरों की सेना तथा लक्ष्मण भी उठे । हनुमान ने अयोध्या के द्वार से उड़ते समय भरत के बाण से आहत हो गिरने तक वसिष्ठ द्वारा संजीवनी के प्रयोग से स्वस्थ हो पर्वत सहित आने की घटना सुनाई ।

युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है । हुंकार, मेघनाद तथा राम-रावण का वर्णन लगभग "मानस" के समान ही है । लक्ष्मण ने विभीषण का राजतिलक किया तथा हनुमान ने सीता का समाचार राम को सुनाया । विभीषण से आज्ञा प्राप्त कर हनुमान के साथ लक्ष्मण सीता को अशोक वाटिका से लेकर आए । छाया के स्थान पर वास्तविक सीता को प्रकट करने के लिए सीता की अग्नि परीक्षा हुई । अवधि समाप्ति के दो दिन शेष हैं ।

राम भरत से मिलन हेतु चिन्तित हैं।[1] विभीषण ने पुष्पक प्रस्तुत किया। राम ने सीता, लक्ष्मण, विभीषणादि के साथ अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। हनुमान को भरत के पास आगमन की सूचना देने हेतु भेजा।

सप्तम अंक में भरत राम की प्रतीक्षा में उत्कंठित हैं। वसिष्ठ उनको राम का शीघ्र आगमन शकुनों के आधार पर बता कर धैर्य देते हैं। भरत को राम-विरह असह्य है। अवधि की समाप्ति पर भी राम के न आने पर उनका शरीर त्याग निश्चित है। इतने में हनुमान पहुँचे। भरत की शोचनीय दशा देखकर[2] उन्हें तुरन्त राम के आगमन का समाचार दिया। भरत बार बार राम आगमन का समाचार सुनते हैं। हनुमान को वे सब कुछ दे डालना चाहते हैं, परन्तु हनुमान को तो भरत की कृपा ही चाहिए। शत्रुघ्न को स्वागत की तैयारी सौंप कर भरत सूर्योदय की प्रतीक्षा में हैं। प्रातःकाल सेना तथा गुरु वसिष्ठ सहित शत्रुघ्न स्वागतार्थ उपस्थित हैं। राम के विमान को देखकर भरत अति प्रसन्न हैं। दोनों भाइयों का मिलन वर्णनातीत है। गुरु ने राज्याभिषेक हेतु आदेश दिया। राम का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। सब को पुरस्कार मिले। तत्पश्चात् अप्सराओं का नृत्य हुआ तथा संसार के विभिन्न देशों के भक्तों ने अंग्रेजी, अरबी, तुर्की आदि भाषाओं में राम का यशोगान किया। राम ने भरत को शासन-प्रबन्ध, लक्ष्मण को राज्य-कोष का प्रबन्ध तथा शत्रुघ्न को सैन्य प्रबन्ध सौंप दिया तथा स्वयं वनों में विहार करने का निश्चय किया। अन्त में सूत्रधार परमाकूर्ण भक्ति की याचना करता है तथा श्री रघुनन्दन " तथास्तु" कह देते हैं। यही भरत-वाक्य है।

<u>आनन्दन-रघुनन्दन में भरत का चरित्र:-</u> नाटक में भरत का नाम हहह जयकारी रखा गया है जो कि विष्णु के ॐकाराकार रूप में भरत के शिव भरण-पोषण तथा विश्व को हरा-

---

1-दै दिन रहे अवधि के बाँकी पुर पहुँचन नहिं जात निहारी।
दिन पहुँचे हहह-जयकारी तन तजि हैं उर यह दुःख भारी।

आनन्दरघुनन्दन, षष्ठ अंक, पृष्ठ 132।

2- तन महँ रह्यो न पल कछु बाकी, परत पवन धाँ नभ उड़िहैं।
तिरछा नैन आतुनि तागर, धाँ महि ओतर यहि बुड़िहैं।
स्वाँस कलापत धाँकि ज्वलित अति, वे उर आगहिं में जरिहैं।
विश्वनाथ सुमिरत हितकारी, हितकारी तनु धाँ धरि हैं।

आनन्दरघुनन्दन, सप्तम अंक, पृष्ठ 133।

भरा बनाये रखने की ओर संकेत करता है । कवि का राम के पुनर्अवतार होने में पूर्ण विश्वास है । अनेक बार राम की परमात्मा अथवा अवतारी पुरुष के रूप में स्तुति की गई है । अतः भरत भी विष्णु के विश्वपालक अंश के अवतार हैं ।

सम्पूर्ण नाटक में भरत का उल्लेख केवल चार स्थलों पर है, इनमें से तीन स्थलों पर उनके दर्शन होते हैं । पहिला प्रसंग भरत के ननिहाल से लौट कर पितृ-शोक एवं भ्रातृ-वियोग से व्याकुल हो कैकेयी की भर्त्सना करने से सम्बन्धित है ; दूसरा चित्रकूट में राम से मिलने का तथा तीसरा राम के अयोध्या लौटने की प्रतीक्षा में उत्कंठित भरत का । संजीवनी लेकर लंका में उपस्थित हनुमान भी भरत की चर्चा करते हैं । ये सभी प्रसंग भरत के परम्परागत पारिवारिक गुणों का उद्घाटन करते हैं ।

यहाँ भरत का व्यक्तित्व " मानस" तथा वाल्मीकीय रामायण दोनों पर ही आधारित है । इस नाटक के भरत " मानस" के समान ही राम के विरह से व्याकुल होकर कैकेयी की कटु भर्त्सना करते हैं । मंथरा नारी है इसलिए उसको शत्रुघ्न के कठोर प्रताड़न से बचा कर कहते हैं, " नारी-वध बिए मोंहिं हितकारी ।राम। की भय लगै है ।"[1] यहाँ भी भरत का राम से दृढ़ प्रेम है । राम के विरह में उनको प्राण-धारण करना भी कठिन है । वे वशिष्ठ से स्पष्टतः कहते हैं, " गुरो । हितकारी-पट दरसाइये । याही में मेरो प्राण रहैगो ।"[2] चित्रकूट में राम को अयोध्या लौटने के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देने पर भरत अत्यन्त व्याकुल हो उठे । कातरता इतनी बढ़ गई कि अब उनसे कुछ कहते नहीं बनता है ।[3] कितना करुण-चित्र है ।

आनन्दरघुनन्दन के भरत भी वाल्मीकीय रामायण के भरत की भाँति राम के अयोध्या चलने हेतु तैयार न होने पर धरना देते हैं परन्तु राम के कहने पर ही जल का त्याग कर धरना तोड़ भी देते हैं । " अवधि बिताय जो आय हैं तो जीवित नाहिं पाय हैं ।" यह वाक्य भी उनकी हठी प्रवृत्ति का द्योतक है, यद्यपि इस कथन के द्वारा उनकी राम के

- -

1- आनन्द-रघुनन्दन, द्वितीय अंक, पृ0 45 ।

2- " " " " पृ0 46 ।

3- इहइहजगकारी- मोंतों अब न कछु कहि जाई ।
जो यह कहौं करिय प्रभु ऐसे, तेपक रीति नसाई ।
जो फिरि चलत न आय ऐसको, प्राण कठुन अकुलाई ।
विश्वनाथ अवलंब दास हित, आपुहिं सकल बताई ।

आनन्दरघुनन्दन, द्वितीय अंक पृ0 51 ।

प्रति परम भक्ति तथा अगाध अनुराग भी परिलक्षित होता है । राम तथा भरत का चित्रकूट में तथा नन्दिग्राम में मिलन उनके राम प्रेम की परम परिणति को प्रकट कर ही देता है:-

लखि विमान सहसह जयकारी, प्रेम उमँगि अति छायो ।
तजत जाय परत पनस सरिस तन, सब जग विघन बनायो ।
अद्भुत मिलन बन्धु दोऊ की यह, पुजन प्रभोद महाई ।
विश्वनाथ भरि नैन निरखहु, बैनानि बरनि न जाई ।

रामायणेश । दूध्दास।

ग्रंथ के प्रारम्भ में लिखा है " श्री परमहंसाग्रज्य श्री बाबा दूध्दास ने रामरसिक पुरुषों के अवलोकनार्थ भक्ति पूर्वक बड़े परिश्रम से संस्कृत से भाषा छंद ग्रंथ में निर्मित किया । " रचना का समय अंकित नहीं किया गया है । ग्रन्थ के अन्त में मात्र इतना ही कहा गया है-

" माधहिं मास अनूप शुक्ल पक्ष तिथि दुज शुभ ।
कही है मति अनूप लघुज्ञ कथा विधिन अति ।।

ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण सन् 1900 में प्रकाशित हुआ है । सम्भवतः यह ईस्वी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना है ।

सम्पूर्ण रचना दोहा चौपाई में अवधी भाषा में शिव-पार्वती-संवाद के रूप में की गई है । वन जाते समय सीता ने राम से वरदान माँगा था कि वे फिर वन में आयें[1] । राम ने उस समय सीता को आश्वस्त किया था कि वे सीता की कामना पूर्ण करेंगे[2] । राम से वरदान प्राप्त कर सीता प्रसन्न हो गईं । कैकेयी की आज्ञा से जब राम राजा बने तब एक दिन ब्रह्मा ने उन्हें कहा कि उनका अवतार प्रयोजन पूर्ण हुआ अब उन्हें अपने

1- तदपि नाथ ऐसो वर पावौं । बहुरि नाथ यहि कानन आवौं ।।
रामायणेश- पृष्ठ 4 ।

2- एवमस्तु कह रघुकुलराया । दीन्ह तुम्हहर तिय मन भाया ।।
अब जाय जब अवधि सिराई । तुम्हहिं विपिन तेंग लक्ष पठाई ।।
विधिवत पूज्यो तुरमुनि पाऊ । रहे न फिर कछु मन पछिताऊ ।।
जब लग नाथ कहयो वनवासू । होहिहै तब विधि तुम्हहि सुपासू ।।
रामायणेश, पृ0 4-5 ।

लोक चलना चाहिए । राम ने उन्हें जो उत्तर दिया उसे कोई नहीं जान सका ।

एक दिन राज सभा में आकर एक चर ने सीता-विषयक धोबी का निन्दापूर्ण कथन सुनाया । राम ने इस अपवाद को सुनकर सीता निर्वासन का निश्चय कर लिया और भरत को बुलाकर सीता विषयक अपवाद की चर्चा करते हुए उनके निर्वासन सम्बन्धी अपना निश्चय व्यक्त किया । कलाप्रिय भरत को इस निर्णय से महान दुःख हुआ । उनके नेत्रों से अश्रुधारा होने लगी । फिर भी उन्होंने धैर्य धारण कर राम से कहा कि,"सीता का इसमें क्या दोष है जो प्रभु ने ऐसा प्रण कर डाला ? मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सीता को वन में तो पहुँचा दूँगा परन्तु फिर अयोध्या में कभी प्रवेश नहीं करूँगा ।"

क्योंकि उनके इस कथन को सुनकर राम ने शत्रुघ्न को बुलाया । वे तो इस आदेश को सुनकर मूर्छित ही हो गए । तब लक्ष्मण राम की आज्ञा को शिरोधार्य कर सीता को वन में छोड़ आए । सीता परित्याग का वास्तविक कारण राम द्वारा दशरथ की आयु के अवशेष एक सहस्र वर्षों तक राज्य करने का विचार था ।

विलाप करती हुई एकाकी सीता को वाल्मीकि अपने आश्रम में ले गए । कुछ दिनों के पश्चात् सीता ने दो अति सुन्दर शिशुओं को जन्म दिया । सर्व संस्कारों से सम्पन्न दोनों पुत्र क्रमः क्रमः कैशोर्य को प्राप्त हुए । दोनों धनुर्वेद में पारंगत थे । सीता अपने पुत्रों के साथ प्रसन्न थीं । राम ने अश्वमेध की तैयारी की तथा सैन्य शत्रुघ्न की सेवा में यज्ञ का अश्व छोड़ दिया । वह घोड़ा समस्त देशों का भ्रमण करता हुआ वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँच गया । लव ने कौतूहलवश उसे पकड़ लिया । तत्पश्चात् उसके माथे पर लिखा स्वर्णपट्ट पढ़कर उसको रोष उत्पन्न हो गया । घोड़े को लेने के लिए सेना सहित शत्रुघ्न का लव से युद्ध हुआ । सेना का संहार करता हुआ लव आहत होकर मूर्छित हो गया । शत्रुघ्न उसको लेकर अयोध्या के लिए चले । उधर तापस-कुमारों से लव का समाचार सुनकर सीता व्याकुल होकर विलाप करने लगीं । इतने में कुश आ गए । कुश ने संग्राम में सेना सहित शत्रुघ्न को पराजित कर दिया । तब भरत आये ।

1- सुनि प्रभु बचन भरत रनधीरा । भयो विकल लोचन बह नीरा ।।
सूटपत्रोक मुख आव न बानी । समय देख बहु कहयो भवानी ।।
धरि धीरज बोले भरत सुनहु भानुकुल चन्द ।
प्रति उत्तर नहीं दे सकों विनय करों रघुनन्द ।।
सिय को कहा दोष प्रभु ताकें । जो अस पन करि मोहिं सुनावें ।।
आयसु मानि करों सिर राखी । फिर न अवध आयों अस भाखी ।।
कहकर जोरि चरन प्रभु तोरी । मैं नहीं आउब अवध बहोरी ।

रामाश्वमेध, पृ० 8 ।

कवि ने भरत की वीरता तथा राम-भक्ति की प्रशंसा की है । भरत भी युद्ध में आता हुए । तत्पश्चात् लक्ष्मण और अन्त में राम आए । राम ने कई दिनों तक युद्ध किया, फिर थक कर रथ में सो गए । तब कुश उनका मुकुट, हार, मुद्रिका आदि लेकर तथा हनुमान को बाँध कर सीता के पास ले गए । राम की मुद्रिका को देखकर सीता ने बहुत विलाप किया । हनुमान ने उन्हें धैर्य बँधाया । उसी समय वहाँ के यज्ञ से वाल्मीकि लौट कर आए । उन्होंने सोते हुए राम को जगाया तथा अमृत की वर्षा से समस्त सेना को जीवित कर दिया । राम तीनों भाइयों, सीता तथा अपने पुत्रों सहित अयोध्या को आए । अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ । भरतादि तीनों भ्राताओं की पत्नियों ने भी पुत्रों को जन्म दिया । जब सभी कुमार बड़े हुए तब उनके विवाह सम्पन्न हुए तथा राम ने समग्र देश को आठ भागों में विभाजित कर आठों पुत्रों को राज्य दे दिया । इस प्रकार रामाश्वमेध सुखान्त काव्य है ।

<u>रामाश्वमेध में भरत-</u> इस काव्य में भरत का उल्लेख दो स्थलों पर किया गया है - प्रथम तो सीता-निर्वासन की मंत्रणा के समय तथा दूसरी बार लव-कुश से युद्ध के समय । भरत अत्यंत कलामय, विवेकी, न्यायप्रिय एवं दृढ़निश्चय हैं । उनके अनुसार सीता-निर्वासन सम्बन्धी राम की आज्ञा उचित नहीं है क्योंकि यह अनुचित निर्दोष है । उन्होंने राम से स्पष्ट कह दिया कि इस अनुचित आदेश का यदि उनके साथ सीता को वन भेजकर पालन कराया गया तो वे अयोध्या को कभी नहीं लौटेंगे ।[1] अतः राम को उसके ~~[illegible]~~ आज्ञा का कार्यान्वयन लक्ष्मण को करना पड़ा ।

अश्वमेध के अश्व को लव-कुश के बन्धन से छुड़ाने के लिए, शत्रुघ्न के आहत होने के पश्चात् भरत को जाना पड़ा । कवि ने यहाँ सैनिकों के मुख से भरत के बल, वीरता, भक्ति, कला तथा क्षमा आदि गुणों का वर्णन कराया है ।[2] सैनिकों ने भरत

1- रामाश्वमेध, पृ० 8 ।

2- एक बीर पुनि भरत दुहू शोभा शील नदीश ।
बहुरि अनुज रघुकुलमणि जिन मारयो दससीस ।।

× × × ×
भारत, कोटि कोटि अहराई । महिमा भरत बहुत तहुयाई ।
अति कोमलाधिप भरत नरेसू । कहँ क्षमा लखि कुँवर अवेसू ।।
रिपुसूदन को वेर बिसारी । फिरि अवध ते बाजि सुवारी ।

× × × ×
भरत समान वीर बल माहीं । नाहिं देवा कहुँ सुनियत नाहीं ।।
सन्मुख बाहु काल सिरनाई । तासि समर जीतब तुम भाई ।

रामाश्वमेध, पृ० 31 - 32 ।

की धनुर्धरीमता की भी पुष्टि की[1]। लव-कुश से भरत का भीषण संग्राम हुआ। भरत की सेना मारी गई तथा भरत भी घायल होकर अचेत हो गए। भरत की पराजय भगवद् लीला थी। जब से राम रावण पर विजय प्राप्त कर अयोध्या लौटे थे तब से तीनों अनुजों के मन में वीरता का गर्व हो गया था। उसी के निवारणार्थ प्रभु ने इस संग्राम की कौतुकमयी लीला रची[2]।

अवध विलास । अनूठी रामायण।

। संत धनीदासकृत ।

संत धनीदास ने " अवध विलास" की रचना सन् 1858 ई0 में की थी। मूल रूप में ग्रन्थ की रचना अवधी भाषा में फारसी लिपि में की गई थी। बाद में संत धनीदास के पौत्र श्री श्याम नारायण सक्सेना ने उसका हिन्दी में रूपान्तर कराकर इसे सन् 1974-75 में प्रकाशित कराया। इस ग्रन्थ में दो हजार छः सौ उन्तीस चौपाइयाँ, सात सौ तीस सोरठे, सात सौ छब्बीस दोहे तथा तीस छंद हैं। " अवध विलास " का आधार तुलसीदास का रामचरितमानस है। तुलसी ने राम को परब्रह्म मानते हुए भी उनके पारिवारिक आदर्श को महत्व दिया है परन्तु संत धनीदास ने उनके लीला स्वरूप के माधुर्य व्यक्त कर अपनी लेखनी को धन्य समझा है। यह रसिक सम्प्रदाय का ग्रन्थ कहा जा सकता है। डा0 रामकुमार वर्मा ने इसे । भक्ति तथा रसिक। दोनों दृष्टिकोणों के मध्य की कुछ अलग-सृष्टि बताया है[3]। कथा शिव-पार्वती, कृष्ण-नारद, हनुमान-कुम्भज के मध्य संवाद के रूप में कही गई है।

प्रथम खंड " बाल-विलास" में राम जन्म के सभी कारणों का उल्लेख करते हुए राम को परब्रह्म अथवा विष्णु के अवतार रूप में स्वीकार किया गया है। जन्म के अनन्तर सारस्त बाल-संस्कारों का वर्णन है। जन्म-प्राशन, नामकरण, विद्या ग्रहण आदि

1-त्यागहु हठ हरषा अभिमाना। भरत धनुर्धर भट बलवाना ।।
रामाश्वमेध पृ0 32 ।

2- बनहिं जीति लेहिं रण आये पुर श्री राम ।
गर्व बढ़्यो तब अनुज के कहि विधि मे निज धाम ।।
रचहि कारण कौतुक किनो कृपासिंधु रघुराज ।
गर्व निवारयो अनुज तब सुन ऋषि भारद्वाज ।।
रामाश्वमेध, पृ0 55 ।

3- अवध-विलास । भूमिका। पृ0 47 ।

लीलाओं का विस्तृत निरूपण किया गया है । दशरथ के भाई वीरसेन का पुत्रेष्टि यज्ञ है । धाय के द्वारा बालक राम को अपने पास ले ले जाने के कारण वीरसेन को दुःख हुआ । वशिष्ठ की सम्मति से उन्होंने नैमिषारण्य में जाकर दशाक्षर मंत्र का जप किया, जिसके फलस्वरूप अपर में वे नन्द-यशोदा हुए । इसके पश्चात् अनेक लीलाओं का वर्णन है जिसमें श्री रामभरत रारि लीला भी है । यज्ञ-रक्षा, पुष्प-वाटिका लीला, धनुष तथा राम विवाह आदि भी इसी प्रथम सुपास मंजरी है ।

ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध "विशेष-विलास" है । इसमें वन-लीला, न्याय-लीला, दशरथ शाप वर्णन, वन-गमन लीला, दशरथ-स्वर्ग गमन प्रसंग आदि हैं । इसके पश्चात् " वनवास की विविध लीलाएँ" श्रीधर के अनुसार वनवास की सम्पूर्ण कथा इसी खण्ड में कही गई है । फिर रावण-संहार-लीला, भरत-मिलन, राज्याभिषेक तथा राम-राज्य-लीला का वर्णन किया गया है । ग्रन्थ में अक्षयवट-लीला, हिण्डोलखेल-लीला तथा महारास लीला रसिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है । ग्रन्थ में रासकथा की समाप्ति भी महारास लीला में ही हुई है । यद्यपि महारास लीला के पश्चात् कवि ने पौष-परिचय एवं श्री रामराज्य वर्णन, भक्ति माण उपदेश लीला तथा वैकुण्ठधाम परदाम लीला का वर्णन भी किया है । ग्रन्थ विलास, मधुरीभावना तथा साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की रचना है ।

भरत का स्वरूप:- ग्रन्थ विलास के भरत विष्णु के व्यूह अवतार में चतुर्व्यूह के एक भाग हैं । राम का चतुर्व्यूह राम- भरतादि चारों भाइयों के रूप में है[1] । भरत का नामकरण करते समय गुरु वशिष्ठ ने भरत के अनुपम महिमाशाली गुणों का वर्णन इस प्रकार किया:-

कैकइ सुत कर नाम बखानहुँ । प्रेम सेम कर सदन दिखानहुँ ।।
करहि जगत पोषन दिन राता । भरत नाम सब जग विख्याता ।।
महिमा जाकी कहि नहि जाई । प्रेम भगति की नींव दृढ़ाई ।।
जाके को तौल दुइ न्याना । भरत शिरोमणि सो जग जाना ।।

1- पुनि सिसुरूप भो सुखदाई । गोद लिये कौसिल्या माई ।।
बहुरिहुँ भरत कैकई जाये । रानि सुमित्रा दुख सुख पाये ।।
चतुर्व्यूह प्रगटे भगवाना । यूं निज जनम धन्य करि जाना ।।

श्री रामकथा लीला, दोहा 80 ।

कवि ने चारों भाइयों की बाल लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया है परन्तु इन लीलाओं के द्वारा भरत के स्वभाव-चित्रण में कोई सहायता नहीं मिलती है। श्री राम भरत लीला में भी स्वभाव चित्रण का कोई संकेत नहीं है। केवल अवश्य सिद्ध हो जाता है कि कैकेयी को राम तथा कौसल्या को भरत अधिक प्रिय हैं। यज्ञोपवीत लीला के अन्त में कैकेयी राजा दशरथ से कहती है कि राम तो मेरे नैनों के तारे हैं और भरत का पालन-पोषण मैं भरत को राम का दास समझ कर करती हूँ। भरत के हृदय में भी यह भाव घर कर गया। पुरन्त ही भरत ने चरण छुआ कर राम को सादर बनाया[1]। व्याह लीला के प्रसंग में कवि ने भरत के राम प्रेम का परिचय बड़े सरस ढंग से दिया है। विवाहोत्सव के साथ यह राम तथा लक्ष्मण के विवाह से वंचित भरत ने बड़ा दिल राम के लौटने की प्रतीक्षा में मलिन ही नहीं किया। वे उदास बैठे थे। उसी समय मिथिला से जनक के दूत विवाह के समाचार की पत्रिका लेकर अयोध्या पहुँचे। कैकेयी ने उन्हें सुनाया कि राम का पत्र आया है। भरत का उत्तर अति प्रेमपूर्ण था कि "यदि पत्रिका आई है तो राम ने मेरा सुधार किया है। यदि आज पत्रिका नहीं आती तो विरह से छाती फट जाती[2]।" भरत को उस पत्रिका द्वारा राम का संदेश पाकर ऐसा ही सुख प्राप्त हुआ जैसा योगी को परमार्थ तथा कृषक को जीवन प्राप्त कर होता है। भरत ने विवाह वीथिका सुनकर राजा दशरथ से कहा कि वह बारात की अगवानी हेतु राजा जनक आदि आयें तो राम लक्ष्मण को भी ले आयें क्योंकि बिना दूल्हे की बारात उपहास का विषय ही होगी। भरत की सूझ पर सभी उनके राम-प्रेम पर दशरथ रीझ गए[3]।

1- जैसें जाति नैन के तारे। हैं रघुबीर मोहि अति प्यारे॥
भरतहिं दास राम कर जानी। मैं प्रतिपालउँ यह जिय आनी॥
सुनत सभा उमगे मुद राई। भरत काम यह भाव सुहाई॥
पुलकहि अंग चरन सिर नाये। चरन-रेनु रघुबीर जनाये।

अवध-विलास, यज्ञोपवीत लीला, 169।

2- जौ यदि आज पत्रिका आई। मोर सुधार कीन्ह रघुराई॥
मैं सेवक स्वामी प्रभु मेरे। जोर के उपहास्य अति हेरे॥
जौ नहिं आइ आपनी पाती। राम विरह छाती फटि जाती॥

अवध-विलास, व्याहलीला, 269।

3- दो०- सिखि पन कौसिक सुनिहि भरत कहा सुखिया।
सुनत सराहत भरत कहँ, जानि राम सँग हेत॥

व्याह लीला, 275।

भारत के मिथिला पहुँचने के पूर्व ही राम लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ भारत से मिले। उस समय राम तथा भरत का अपार प्रेम एवं मिलन दर्शनीय था[1]। चारों भाइयों का विवाह साथ-साथ हुआ।

विवाह विलास के प्रारम्भ में वन लीला का वर्णन किया गया है। चारों भाई एवं चारों वधुएँ सखियाँ तथा सखाओं सहित होली खेलते हैं। धार्मिक-चित्रण की दृष्टि से कोई विशेषता उल्लेखनीय नहीं है। फिर भी यहाँ यह बात कुछ कुछ स्पष्ट हो जाती है कि उत्सवादि में बहुत सा प्रबन्ध विशेष कर अन्तःपुर अथवा पुरस्कारादि का लेखा भरत के ही हाथ में रहता था[2]।

कवि ने अयोध्याकाण्ड की सम्पूर्ण कथा दशरथ वन गमन से प्रारम्भ कर भरत मिलाप तक समाप्त कर दी है अर्थात् दोहा सं० 403 से लेकर दोहा सं० 537 तक अयोध्याकाण्ड की कथा का वर्णन है। भरत का स्वरूप चित्रण यहाँ रामचरितमानस के समान ही है। कैकेयी के मुख से भरत को राज्य तथा अपने लिए चौदह वर्ष के वनवास का आदेशसुनकर राम अत्यन्त भाव से कैसे युक्त रहे। " भरत तो राम के प्राण हैं, उन्हें अन्याय राज्य दिया जाय।" राम के इस भाव से कैकेयी लज्जित हो उठी[3]। राम भरत की प्रशंसा कर कौशल्या को भी कहते हैं[4]।

नन्दिग्राम से आकर भरत ने जब पिता का निधन तथा राम वनगमन का समाचार माता के मुख से एक साथ सुना तो राम के वियोग के दुःख में उन्हें पिता के

1- पहुँचे जाय भरत प्रभु पासा। सुनिय दरस पावन की आसा॥
मन पर बड़े गाँठि हुत साथा। तौ लछिमन रघुबर नाथा॥
उतरि अवध तौ कीन्ह प्रनामा। निरखा उतरे लछिमन रामा॥
भरत भए प्रभु पंथ पयादा। बिरह बिकल दुख दुख हरषा॥
ज्यों त्यों करि प्रभु अनुज उठाये। कन्ठ लगाइ नेम जल छाये॥

अवध विलास, ब्याह लीला, 279।

2- अवध-विलास फाग लीला, 372।

3- भरत प्रान मम प्रान, ताकहुँ दीन्ह राज नृप।
कैसा तुमि उत्पाति, कौ लगाई कौ कला॥

अवध-विलास, वनगमन लीला, सोरठा 440।

4- भरत सुनिय सुजान, राजनीति नीके हैं निपुन।
तिन राम उठर न आन, सकल पुरवा सुख पावहीं॥

अवध-विलास, वनगमन लीला, सो० 441 तथा दोहा 436।

भरत का दुःख विस्मृत हो गया[1]। यहाँ भी कौसल्या माता के समान ही भरत के प्रति पारस्परिक सहानुभूति करती है। परिणामतः वाल्मीकि-रामायण के समान उन्हें कौसल्या के साथ अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए आप नहीं करनी पड़ती है।

कौसल्या, वशिष्ठ तथा सुमन्त्र के समझाने पर भरत को कुछ धैर्य होता। इसी समय कैकेयी ने आकर पुनः भरत से राज्य ग्रहण करने हेतु अनुरोध किया। भरत व्याकुल हो उठे और उन्होंने कैकेयी की बहुत भर्त्सना की[2]। वे उसको मारने तक को उद्यत हो जाते हैं, परन्तु कौसल्या उनका हाथ पकड़ लेती हैं[3]। भरत अपनी माता को "नागिन" तथा "मृत्यु समान" कह कर निन्दित करते हैं। वहाँ वे दया-विधान नहीं हैं। कैकेयी पर वे स्पष्ट आक्रोश करते हैं क्षुब्ध नहीं[4]। इस प्रकार अध्यात्म विकास के भरत उस कालीनता से परिपूर्ण नहीं हैं जितनी "मानस" के भरत पूर्ण हैं। यहाँ वे अधिक मुग्ध तथा प्रौढ़ हैं। कवि ने इस प्रकार उनका राम-प्रेम तथा धार्मिक न्याय भावना दर्शाने का प्रयास किया है। "जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिय ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही" के

1- सुनी भरत कैकेयी की बानी। बिनु दावानल उर आइ समानी॥
बिथा बढ़त राम बन बरना। भूमि भरत बिलाप करुना॥
x x x x
राम सीय गवनु बिपिन, भौ जहँ कारन आन।
उन बिन जो तन राखहुँ, अधम न कोउहिं समान॥
हाय हाय करि हाय, राम सीय की सुरति करि।
भरत गिरे मुरझाय, मानहु नागिन के डसे॥
अध्या-विलास, दशरथ स्वर्गारोहण, दो० 475 तथा दो० 481।

2- अध्या विलास, दशरथ स्वर्ग गमन, दोहा 477 से 479 तक।

3- देख सम्मुख तें नाहिं डोलति। भरतहिं बिलोकति नैन ओलति॥
उठे भरत धाइहिं लिए धाता। कर पकरे कौसिल्या माता॥
अध्या विलास, दशरथ स्वर्गारोहण, दो० 479।

4- तो नहिं कहुँ अघ की भारी। आइ कैकेयी भरत पिआरी॥
पुरवासि उठे सुनी इह बाता। परी छानि व्याकुल बिलखाता॥
दुसह बाता जारि तिय फोरा। बहुरि कैकेयी कर मुख हेरा॥
अध्या विलास, दशरथ स्वर्गारोहण, दो० 478।

आधार पर ही यहाँ भरत कैकेयी से स्पष्टतः कह देते हैं कि " तव सुत कहुँ न कलंक भारी[1]।" राम के विरह में व्याकुल भरत जाते समय राम के समीप वन जाने का निर्णय कर लेते हैं परन्तु सबके समझाने पर अपना प्रस्थान पिता की "क्रिया" तक स्थगित कर देते हैं।

पिता का अन्तिम संस्कार पूर्ण कर चुकने पर भरत राजसभा में अयोध्या के राज्य को अस्वीकार करते हैं। यहाँ उनकी कर्म भावना मुखर है। उनके अनुसार जो तिलक स्वामी का पट्ट ले लिया है, वह नरक का भागी होता है[2]। राम तथा सीता का वन के कष्टों की उत्तेजना उनके हृदय में करुणा उत्पन्न करता है[3]। उनके हृदय में राम के प्रति तिलक-नैतिक भावनुसा भक्ति है। " स्वामी के होते हुये तिलक को राज्य देने से घोर अनीति एवं अधर्म होगा[4]।" भरत की यह धारणा उनकी धार्मिकता तथा तिलक-नैतिक-भाव-भक्ति का ही परिणाम है। भरत की एक बात बनी तो राम हैं आः वे राम को लाने अवश्य जायेंगे।

राम के प्रति भरत की अगाध निष्ठा है। उनके राम अकारण-करुण, पतित-पावन, दुःख-मोचन, आरति-हरण, सुखदाता तथा कृपा-रूप-रैन हैं[5]। ऐसे प्रभु के कष्ट का कारण बन जाने के कारण भरत के मन में घोर दुःख तथा आत्मग्लानि है[6]। यह क्षोभ, दुःख तथा ग्लानि चित्रकूट में राम की कुश-शैया देखकर तीव्रतर रूप में प्रकट होती है[7]। प्रयाग में माघ के

1- अयो-निर्वाण, दोहा स्वर्गारोहण, दो० 494।

2- अजा नरक कर जोग, स्वामी पट्ट तिलक लहइ।
कहा तो तव संजोग मोहिं नरक विधिना दयउ॥
अयो-निर्वाण, भरत विलाप गान। सोरठा-497। ।

3- अलप काल तपि भीम निवासा। सहत विपिन दुख पै सुखरासा॥
अति कोमल सीता रघुराई। सहिहि विपिन की सब कठिनाई॥
विरह नाथ मम हित दुख भीना। तथा सुहृद हित सहत विपीना॥
भरत विलाप गान, दो० 492 ।

4- अयो-निर्वाण, भरत विलाप गान, दो० 493।

5- " " " " छंद- 22 ।

6- निन्ह और कीन्ह विचार बहु विधि लैन नाथ निवाइय।
करि मान आन सनेह आदर बहुत मन हुलराइय॥
तो फिरहिं विपिन अनाथ पुनिवर लैन पै कारन कहा।
धिक मातु मम, धिक कलह मम जो राम बिनु जीवित रहाँ।
भरत विलाप गान, छंद- 22 ।

7- भरत कर सिर, लखि आतप रघुवीर कर।
रज भरि सिर पर लेत, सीतल भाँति सुख लाभ करि॥
भरत विलाप गान, दो० 504 ।

मन्दिर में आत्मग्लानि से व्याकुल भरत निष्कलंक होने का वरदान मांगते हैं तब मन्दिर से वाणी आती है कि " हे तात ! भरत ! तुम निर्दोष हो । ग्लानि मत करो । तुम्हें राम मिलेंगे ।"[1] राम से मिलने आते हुए भरत की दशा प्रभु की पर्णकुटी के निकट तीव्र " मातृ" के समान ही हो जाती है । राम भी भरत को देखकर वैसे ही उठे जैसे गाय अपने बछड़े को देखकर तथा माता अपने पुत्र को देखकर उठती है[2] ।

भरत यहाँ भी राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह करते हैं । किन्तु भरत की भक्ति देखकर कायरता है कि कहीं भरत-भक्ति के वश में राम अयोध्या को लौट न जायें । अतः नारद के साथ देवगण आकर भरत से याचना करते हैं कि वे देव-कार्य हेतु राम को वन में ही रहने दें[3] । देवताओं के कार्य हेतु भरत ने भी राम-वियोग के घोर दुःख को सहन करना स्वीकार कर लिया । राम की पादुकायें देकर भरत को अयोध्या जाने की आज्ञा दी[4] । पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर भरत ने अयोध्या का राज्य प्रबन्ध शत्रुघ्न को सौंप कर नन्दिग्राम में तपस्या की ।

अब विचार है भरत के स्वभाव चित्रण में तुलसी बड़ी विलक्षणता यह है कि उन्हें यह पूर्ण ज्ञान है कि राम परब्रह्म के अवतार हैं तथा सीता उनकी परमशक्ति हैं जो संसार का निर्माण तथा पालन करती हैं । अतः यहाँ प्रभु-भक्ति गौण है और परमतत्व श्री राम की भक्ति ही प्रमुख है[5] ।

1- अयो-विचार, भरत मिलाप प्रसंग, दो० 496 ।
2- " " " " " दो० 515 ।
3- " " " " " दो० 515-517 तक ।
4- " " " " " दो० 522-524 ।

5- राम कथा गिरिजा मैं बरनी । पुरुष प्रकृति मिलन कर रचनी ।।
प्रकृति राम अरु प्रकृतानी । पुरुष एक हैं वेद बखानी ।।
जो यह कारन ब्रह्मधारी । कथा मातु तोहि कहब पुकारी ।।
अब प्रकट होउ जग माहा । यह अवधपुरी अरु वेद पुराना ।।
तिन्ह का कारन यह तब कीन्हा । तब पुत्र रचनि मन मन कीन्हा ।।
अयो विचार, भरत मिलाप प्रसंग, दो० 482 ।

तथा- मातु पिता स्वामी सखा, सुत बन्धु कलत्र ।
परमारथ अरथ अरु, व्यापक प्रभु अनन्त ।।
मैं बहु जीव अनाथ, मैं कहता सब कथा है ।
कहि हौं यह धरि माथ, करि किन्हीं भरत कथा ।।
अयो-विचार, भरत मिलाप प्रसंग, दो० 511, दो० 527 ।

भरत की प्रभु-भक्ति तथा शृंगार का श्रेष्ठतम रूप बताया गया है-

तुम्ह सरीसुन सासुरि, पुनि अवध सिंगार ।
भरत न दीखि भरत सम, साधु यहि संसार ।।

भरत के विषय में यह ग्रन्थ मात्र भी उल्लेखनीय है । राम की त्रिविध लीलाओं में प्रधानतया: सदा तथा सर्वत्र साथ रहते हैं, भरतादि भ्राता नहीं । महारास लीला में तीनों भ्राता पर पर ही रहते हैं रथारूढ़ पद तथा अश्वन की नहीं जाते हैं । सम्भवा: अनुजों की मर्यादा पालन हेतु ऐसा दिखाया गया है ।

रामचरित्र- इसके लेखक श्री गुरुलीधर मिश्र हैं । यह आगरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे । इन्होंने नखशिख में अपना विस्तृत परिचय दिया है । इनके पिता का नाम दिनमणि था । दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के यहाँ नौकरी का उल्लेख इन्होंने किया है । इनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हैं- नखशिख, रामचरित्र । कवि के अनुसार राम-चरित्र का रचना काल कार्तिक शुक्ल 11, सं० 1818 है । राम-चरित्र छन्दबद्ध में लिखा गया है । काव्य कला की दृष्टि से इसमें रस-भाव पूर्ण वैविध्य है । आलंकारिक छटा अनायास नहीं है जिस पर महाकवि केशव का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है । इस काव्य में लवकुश के जन्म तक की राम कथा प्रस्तुत की गई है । कवि की उक्ति " रस सिंगार मे हास्यरस, करुना-रस रौद्रहू" के अनुसार अपने लीला-निबन्धन के कलापूर्ण प्रसंग का वर्णन नहीं किया है । इनके काव्य का एक उदाहरण निम्नवत् है-

सोवति सही पलकी चली वन, तीरथ आदि अन्हान किये हैं ।
साथ सबै विरहानल के जल हेरन भीजन आँखि दिये हैं ।
औधि बिताय की आसा नहीं, गुरुलीधर ध्यान ही बास लिये हैं ।
सीता सिवौन औ रघुनाथ के, नैनन बीच की सेज लिये हैं ।

(हिन्दी साहित्य का कृत्यु इतिहास, भाग 7, पृ० 301)

1- सिंधु माथुर मैं बरदाय पुनहूँ आय ।
पिता दिनमणि पहुँ जोतिस औ ज्योतिसराय ।
पुत्र भी पढ़ी कविता अरु रघुबरदास ।
नाम गुरुलीधर दियो उन अरु वन्ध प्रकास ।

(हिन्दी साहित्य का कृत्यु इतिहास, भाग 7, पृ० 300)

राम-रहस्य । कनकदास।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरण-सूची के अनुसार रामरहस्य का रचनाकाल सं० 1911 वि० है तथा रचना स्थान ग्रन्थ की पुष्पिका के अनुसार तैलिहरगंज, प्रयाग है । इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें राम के जीवन वृत्त को उनकी आज्ञानुसार प्रस्तुत किया है । ग्रन्थ में राम भक्ति की महिमा और भक्ति से सम्बन्धित व्रत उपवास आदि की विधि और फल का वर्णन किया गया है । कवि ने ग्रन्थ-रचना में दोहा, चौपाई और सोरठा छंदों का प्रयोग किया है । ग्रन्थ छः अध्यायों में है- 1। अवतार वर्णन 2। राम लालिमी वर्णन 3। राम अज्ञा को मानकर व्रत वर्णन 4। सीता नगर वर्णन 5। सप्त ग्राम लीला वर्णन 6। यज्ञ वर्णन । अन्त के सवैया-दोहा वशिष्ठ तथा हनुमान हैं ।

राम के परमधाम को चले जाने के पश्चात् साहुनगर हनुमान वशिष्ठ ऋषि के पास गए । कवि ने वशिष्ठ तथा हनुमान की वार्ता के माध्यम से रामावतार की महिमा गाई है । द्वितीय अध्याय में संक्षिप्त राम-चरित राम की अवस्था का उल्लेख करते हुए वर्णित है । विवाह के समय सीता की आयु छः वर्ष तथा राम की पन्द्रह वर्ष थी । बारह वर्ष अयोध्या सुख करने के बाद वे वन को गए । भरत का उल्लेख चित्रकूट में राम मिलन प्रसंग में केवल इतना ही है- " तहाँ भरत गुरु लखि प्रजाकुल रामहिं भेंटे ।
बन मंदी पुर वास पादुका अवधि हुव मेटे ।।"

। रामरहस्य 2, 11 ।

छठे अध्याय के अन्त में चारों भ्राताओं के पारस्परिक प्रेम की सराहना की गई है:- "यहुँ भाइन की प्रीति जस केहु पारि न पावौ ।" 2, 39 ।
सीता निर्वासन की कथा भी है परन्तु उसमें भरत का कोई उल्लेख नहीं है । इसे संक्षिप्त कथा को " राम-लालिमी" कहा गया है ।

तृतीय अध्याय में राम की बाल-लीला का भी वर्णन है । महाराज दशरथ की गोद में राम तथा भरत क्रीडारत हैं । यहाँ कवि यह कल्पना करते हैं कि राम पूर्ण ब्रह्म का अवतार हैं । इसी अध्याय में वीरसिंह वीरवनी के राम के प्रति शुद्ध वात्सल्य का वर्णन है ग्रन्थ में राम के अतिरिक्त उत्पन्न सखियों की रास लीला का भी वर्णन है । गुरुत्व, मान, रास आदि प्रसंगों में भरतादि भ्राता भाव नहीं मिले हैं- " भरत, लखन सुकुल गंभीरा । नाहि पर मिल मिलवहिं रघुवीरा ।"

राम रहस्य में भरत का स्वरूपांकन नहीं किया गया है । जो भी वर्णन है उसी का निष्कर्ष निकाला सकते हैं कि भरत सुन्दर थे । राजा उनको राम के समान ही महत्व

1- [illegible] । [illegible] । [illegible] । रामरहस्य 5.7 ।

होती थे - एक गोद में राम और दूसरी में भरत बैठते थे- " दक्षिण गोद राम बैठाये । भरत बाम अंग अति छवि छाये ।" भरत का राम के प्रति प्रेम वर्णनातीत था- " राम के वियोग में उन्होंने चौदह वर्षों तक नन्दिग्राम में तपस्या की । उनके जीवन का अवलम्बन राम की पादुकाएँ थीं । वे गंभीर स्वभाव के होने के कारण अथवा मर्यादावश नृत्य एवं रास लीलाओं में भाग नहीं लेते थे । वस्तुतः राम रहस्य भक्ति सिद्धान्त निरूपण तथा मधुरा भक्ति के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है ।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि रीतिकाल के अधिकांश राम-काव्य-प्रणेता रीतिमुक्त थे । इनमें से अनेक को रीति ग्रन्थों एवं पिंगल शास्त्र का अच्छा ज्ञान था परन्तु राम-भक्ति के रस में प्रवाहमान् काव्य में कला की अपेक्षा भाव-पक्ष की ही प्रधानता रही । मर्यादावादी रामकाव्य मैथिल भक्ति-धारा दास्य भक्ति के रूप में मर्यादित है तथा इसमें " राम तें अधिक राम कर दासा " वाली धारणा से पूर्ण कवियों की वाणी ने राम के अतिरिक्त उनके परम भक्तों- सीता, भरत, लक्ष्मण तथा हनुमान आदि का चरित्र-वर्णन भी अच्छा सम्यक्तया सौष्ठव सुविस्तृत रूप से किया है । मधुरोपासकों ने मधुरा भक्ति के कारण युगल स्वरूप के ऊल्लास, रास लीला तथा उत्सवादि का वर्णन किया है जिसमें शृंगारी भावना की प्रधानता है । इन रसिक कवियों का काव्य भी बहुत सुन्दर है परन्तु उसमें भरत का स्वरूपांकन नहीं किया गया है । इसका प्रमुख कारण है कि इन रसिक कवियों ने लोक प्रचलित श्रुति-मर्यादा का भरतादि आदर्श भक्तों के विषय में पालन किया है । अतएव रास लीला तथा नृत्यादि में भक्तों ने भाग नहीं लिया है । उनके वर्णन के प्रसंग भी बहुत कम ही आ पाये हैं ।

इस युग में विषय-वस्तु की प्रबंधात्मकता की दृष्टि से भी दो प्रकार की रचनाएँ हुई हैं- एक तो राम के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को वाल्मीकि अथवा तुलसी के समान क्रम से प्रस्तुत करने वाली विभिन्न रामायणें और दूसरे जीवन के एक अंग अथवा अंश पर आधारित काव्य जैसे रामचन्द्रिका, राम स्वयंवर, अवध विलास तथा राम रहस्य आदि । उपर्युक्त दोनों प्रकार के ग्रन्थों में से रामायणों अथवा वाल्मीकि रामायण के अनुवादों आदि में भरत का चरित्र-चित्रण भी समग्रता अथवा सम्पूर्णता के साथ हुआ है, किन्तु प्रकार के काव्यों में भरत का चित्रण भी एकांगी ही रहा है । रीति-काल के पश्चात् के युग में, जिसे हम आधुनिक युग का प्रारम्भ कह सकते हैं, राम काव्य रचना के क्षेत्र में भी यथोचित परिवर्तन हुआ, जिसे हम नवयुग की साहित्यिक श्रीवृद्धि ही समझें ।

तृतीय-भाग

आधुनिक रामकाव्य में भरत

षष्ठ अध्याय - छायावादपूर्व हिन्दी रामकाव्य में भरत-

(1) विश्राम सागर में भरत

(2) रामस्वयंवर में भरत

(3) रामचरित चन्द्रिका में भरत

सप्तम अध्याय - छायावादयुगीन हिन्दी रामकाव्य में भरत-
रामचरित चिन्तामणि, कौशल किशोर,
साकेत, भरत भक्ति तथा रामचन्द्रोदय आदि
काव्य ग्रंथों में भरत का स्वरूप ।

अष्टम अध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी रामकाव्य में भरत-
वैदेही वनवास, जानकी जीवन, साकेत संत,
कैकेयी (श्री केदारनाथ मिश्र),
रामराज्य (डा० हरिशंकर शर्मा), विदेह,
माण्डवी, रामराज्य (डा० बलदेव प्रसाद
मिश्र), भूमिजा, कैकेयी (चाँदमल अग्रवाल),
भगवानराम, उत्तरायण, अरुण रामायण,
राममहाकाव्य आदि में भरत का स्वरूप ।

नवम अध्याय - भरत की भक्ति भावना-

(1) रामकाव्य में प्रतिपादित भक्ति भावना

(2) हिन्दी रामकाव्यों में भरत की भक्ति
भावना ।

(3) भरत के व्यक्तित्व के आधार स्तम्भ-
सेवक-धर्म, त्याग, शील, विनय,
राजनैतिक आदर्श, गृहस्थ जीवन,
विवेकशीलता तथा निर्मल चरित्र ।

दशम अध्याय - आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में भरत-चरित
की उपादेयता ।

उपसंहार -

परिशिष्ट - (क) उपजीव्य ग्रंथ (ख) संदर्भ ग्रंथ - पत्रिकाएँ

आधुनिक रामकाव्य
पञ्च अध्याय
छायावाद- पूर्व हिन्दी रामकाव्य में भक्ति
(सन् 1843 से सन् 1917 तक)

रीतिकाल विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त होते समाप्त हो गया । परन्तु थोड़ी बहुत रीति रचनाएँ बाद में भी होती रहीं । रीतिकाव्य का विशेष सम्बन्ध कृष्ण काव्य से था । राम का स्वरूप मर्यादावादी होने के कारण रीतिकालीन कवियों ने राम की अपेक्षा राधा कृष्ण को ही अपने काव्य के नायकत्व पद पर प्रतिष्ठित किया । फिर भी जैसा कि अनुशोध में कहा गया है रीतिकाल के रीति मुक्त कवियों ने राम की भक्ति से प्रेरित होकर अनेक सुन्दर काव्य रचे जिनमें राम-भक्ति अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रही । रीति युग के समाप्त हो जाने पर रीतिकाव्य रचना तो समाप्तप्राय ही नहीं परन्तु रीति मुक्त भक्ति काव्य का सृजन अबाधित रूप से चलता रहा । भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग के पूर्व इस प्रकार की रचनाएँ पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं । इन रचनाओं की विशेषता भक्ति का परम्परागत सरल प्रवाह ही है । इस युग में राम काव्य धारा भी अपने अनुरूप रूप में प्रवाहित हुई है । सामान्य विवेचना की सुविधा के लिए इस युग का समय सं0 1900 से सं0 1975 तक माना जा सकता है परन्तु साहित्यिक रचनाओं की रचयिता के आधार पर इस प्रकार का काल-निर्धारण किसी प्रकार की " सुदृढ़ रेखा" नहीं माना जा सकता है ।

राम काव्य रचना के सृजन-क्षेत्र में इस युग के कवि भी पुराण-साहित्य से प्रभावित रहे हैं । बाबा रघुनाथ दास " राम सनेही" के काव्य में यह पुराण-प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है । इस युग में राम कथा से सम्बन्धित ऐसी अनेकों अन्तरकथाएँ भी प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ जो पूर्व साहित्य में लगभग अनुपलब्ध रही थीं । इस प्रकार की रचना का उदाहरण वाल्मीकि की अद्भुत रामायण है । राम-काव्य में नवीनता लाने के लिए किसी किसी कवि ने प्रबन्ध की इतिवृत्तात्मकता को त्याग कर मुक्तक शैली में भी राम कथा को लिखा है, इस प्रकार की रचना का उदाहरण पं0 राम कुमार त्रिवेदी की "कवित्तरामायण" में देखा जा सकता है । कवि ने इस ग्रन्थ में रामकथा के केवल उन स्थलों का ही विस्तार सहित वर्णन किया जो उसको प्रिय एवं हृदयग्राही प्रतीत हुए । कथा की कड़ियों को जोड़ने के लिए संकेत मात्र कर दिए गए हैं । इस युग में राम के हास-विलास, उत्सवों तथा विविध क्रिया-कलापों के चित्रणों से पूर्ण ग्रन्थ भी रचे गए । महाराज रघुराज सिंह के " रामरसोदय" तथा विहार-शतक" ग्रन्थ इसी कोटि के हैं । इसी शैली में कुछ काव्य भी लिखे गए, जैसे राजा रवेश सिंह का "रामविलास"

इस ग्रन्थ में मात्र ग्यारह पदों में सीता-वियोग से दुःखी राम ने विलाप किया है। उनके गुणों का चित्रण भी परम्परागत रूप में किया गया है। रसिक धारा के काव्यों में सीता अथवा के चित्र की आवश्यकता नहीं समझी गई।

इस युग के अन्त में खड़ी बोली की काव्य-रचना भी होने लगी थी। पं० रामचरित उपाध्याय की "रामचरित चन्द्रिका" भी लिखी गई। काव्य की लोकप्रियता के कारण इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। कवि की दृष्टि विशेष रूप से रामायण के पात्रों के चरित्र चित्रण पर रही है। इसमें कथा पर कवि की दृष्टि नहीं है, केवल चरित्र-चित्रण ही काव्य का विषय है। देश-प्रेम भी इस काव्य की विशेषता है। 'रामचरित-चन्द्रिका' ने रामकाव्य को नई दिशा की ओर मोड़ा है। विषय-वस्तु, शैली तथा छंदों सभी कुछ नया है। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्दिष्ट दिशा में यह काव्य एक सोपान है। इसी को नवीन युग की नवीन विचार-धारा एवं नवीन काव्य-शैली का भी संकेत समझना चाहिए।

कवितत रामायण : पं० रामकुमार द्विवेदी

पं० रामकुमार द्विवेदी का जीवनकाल सं० 1930 एवं 1978 विक्रम के मध्य था। निवास स्थान मिर्जापुर था। रामकथा-गायन इनका प्रमुख कार्य था इनका सम्पर्क प्रसिद्ध कवि महाराज विश्वनाथ सिंह जी से भी रहा। प्रस्तुत काव्य की रचना द्विवेदी जी ने अनुमानतः विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में की होगी। सैट मोहन, पूर्वार्ध-रामायण, जिनकवित्त तथा किष्किंधाकाण्ड भी इनके द्वारा रचित ग्रन्थ बताये जाते हैं। कवितत रामायण कवि की प्रौढ़, सुन्दर एवं सरस रचना है। यह सात काण्डों तथा 219 कवित्तादि छंदों में लिखी रामकथा है।

कवि ने कथा प्रारम्भ बाल लीला से किया है। जो मनहि सुन्दर राम हैं जो की सुखदा निधान भरत हैं। जेठो हुए चारों कुमारों की छवि को मनहरणी अपना काम छोड़

1- जो श्याम सलोने मनहि राम,
जोहैं भरत प्रभु सुखद की जानि हैं।
गोरे गात लखन लखन अति प्यारे लगैं,
तिन रिपुसूदन लखन प्रभु पानि हैं॥

कवितारामायण 1, 6 ।

कर देती लगती हैं। वे उन्हें परम कृतार्थ के धारण कर लगती हैं। धारण सुन्दर कुमार सुकुमार अवतार हैं। इनके पवनसुत ही उपमा मूर्ति में सीता राम के पूर्ण प्रेम का वर्णन किया है। तत्पश्चात् विवाह दीक्षा कर दिया गया है।

अयोध्याकाण्ड का पथ पर जाते हुए तीनों पथिकों के सुन्दर दृश्य से प्रारम्भ किया है। इनके पूर्व की कथा नहीं दी गई है। वाल्मीकि से चित्रकूट राम ने चित्रकूट पर निवास किया। लक्ष्मि से राम के न लौटने का समाचार पाकर राजा दशरथ ने प्राण त्याग दिए। कैकेयी भरतादि मूर्ति आदि का कवि ने वर्णन नहीं किया है। भरत के चित्रकूट आगमन के समाचार से शुभ्र एवं उत्तेजित लक्ष्मण को राम ने समझाया। भरत के शीलपरक एवं धर्म-पालन पर राम का दृढ़ विश्वास है। भरत की करुण पुकार " पाहि रामचन्द्र, पाहि रामभद्र" सुनकर रघुनाथ जी भरत को हृदय से लगाने के लिए उठे। भरत नैराश्य से अनुनय विनय की, स्पष्ट रूप से कहा कि जैसे मीन जल के बिना तथा फणि मणि के बिना जीवित नहीं रह सकते हैं उसी प्रकार उनका जीवन भी राम के आश्रित है। राम भरत को समझाकर वापिस भेज दिया। अरण्यकाण्ड से लंका काण्ड तक भरत का उल्लेख नहीं है- रामोपासना मूर्ति में भी नहीं। उत्तरकाण्ड में भरत मिलाप न दिखाकर कवि ने

1- केहू अवध पर बीचिन्ह बिलोकि बाल,
पुरनर नारि निज काज को बिसारहीं।
लाँघरे गोरे सरीर, करन्ह धनुष तीर,
उपमा अनूप कवि कुन्द हिय हारहीं॥
कीधौं चारि देव किधौं चारि वेद केधौं,
कीधौं कन चारि चारी मुक्ति कैधौं चारहीं।
कीधौं चारि सत्य, चारि धर्म के कुमारराम,
कुमति कुमार चारि चारु निरधारहीं॥ कवितावली रामायण, 1, 7 ।

2- होंगे वा अवध कालि मृदु छवा को लखि, अहह मैं अकाज किधौं किधौं राम कैकेयी।
सकोरपाट सिंधु गोपद अनाथ छुटे, मेरु को मसक लेइ फूँकी केइ तिनका पर॥
लखन निवास, रिपुसाल कालहूट ह्वै, तिनका सनेह केइया पुत्र हूँ किरात कर।
बड़ा कुलाम राम बंधु तौं बड़ा राम, रावरो भरोसो न होय पद पाय हर॥
कवितावली रामायण 2, 33 ।

3- तुम मम गुरु पितु मातु बंधु हित तथा तनेही, तारिय तमेव सरनागत अनुकूल न केही॥
जीव जीवनधन मुदितमति कुशल जानकी। मीन नीर आधीन कुमुद विकसत मयंक लखि॥
जल बिनु न जियत मणि बिनु फणिक, तिमि दासहि आसा आपनी।
कर जोरि भरत करि तौं कहत, दीजै छमा प्रताप की॥
कवितावली रामायण, 2, 35 ।

वैसा राज्याभिषेक का वर्णन किया है । फिर राम राज्य वर्णन सुविस्तृत है । अन्त में कवि ने विनय के अनेक पद लिखे हैं । इन पदों में से एक में भरत को भी राम का प्रमुख अधिकारी " भायु बड़े" कहा गया है ।[1]

उपर्युक्त संक्षिप्त राम कथा तथा अति संक्षिप्त भरत के उल्लेख में भरत की आदिम धर्म-आत्मा, भ्रातृ-प्रेम, त्याग, तप तथा प्रबन्ध कुशलता का उल्लेख कवि ने किया है । राम कथा की प्रौढ़ एवं प्रांजल रचना होने पर भी यह काव्य भरत के स्वरूपांकन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं है । शिवप्रसाद के निशाण में यह बहुत कुछ तुलसी की कवितावली के समान है ।

अद्भुत रामायण । लालमणि।

कवि लालमणि हमीरपुर के निवासी थे । कवि ने अपना परिचय पन्ना के पराधाम दिया है[2] । पुस्तक का रचनाकाल सं0 1931 का अषाढ़ मास है । इस बात का उल्लेख स्वयं कवि ने किया है[3] । कथा के वक्ता वाल्मीकि तथा श्रोता भरद्वाज हैं । इसमें राम, सीता तथा रावण के जन्म के कारण तथा यदि रावण कुम्भ आदि का वर्णन है । भरत का उल्लेख नहीं है ।

1- कवितावली रामायण, 7, 148 ।

2- जन्म भूमि मम हेरागाऊँ । परगन बीड़ा नाम जाऊँ ।।
पितिमा हमीरपुर छ ग्रामा । पछुवा निकट उत्तर तरि श्यामा ।।
पराशरेश्वर धाम सुहावन । तटा सुखद अद्भुत भावन ।।
× × × ×
केनवती तरि दक्षिण जाई । निधि पूर्व पछुवाहिं समुहाई ।। पृष्ठ 10 ।

3- सम्वत् उन्नीस सै इकतीसा । सुमिरि गणेश गुरु गौरि गिरीसा ।।
मास अषाढ़ सुदि सुभ, तिथि पूनो शशि वार ।
सिद्ध करि रच यह श्रीपतिहिं, दीन्ह कथा परचार ।।

पृ0 12 ।

विश्राम-सागर- बाबा रघुनाथदास " रामरसिक"

बाबा रघुनाथ दास रामानुज सम्प्रदाय के संत थे। इनके गुरु का नाम देवीदास था।[1] यह अयोध्या के साधु थे तथा अपने समय के बड़े भारी महात्मा माने जाते थे। इन्होंने संवत् 1911 में विश्राम-सागर की रचना की।[2] भक्त समाज में इस ग्रंथ का बड़ा आदर है। " इष्ट हमारो राम सिय राम नाम प्रिय भाख " कहकर कवि ने अपने रामोपासक होने की घोषणा की है।

विश्राम सागर " मानस" की दोहा-चौपाई शैली में अवधी भाषा में लिखा गया है। कथा-वस्तु का आधार पुराण साहित्य है। जिस पुराण से जो कथा ली गई है, उसका अध्याय के प्रारम्भ में संकेत कर दिया गया है। चौपाई के अन्तपद पर "मानस" का स्पष्ट प्रभाव द्रष्टव्य है। संपूर्ण ग्रन्थ तीन कण्डों में विभाजित है। ये कण्ड विषयवस्तु की भिन्नता पर आधारित है। प्रथम इतिहास कण्ड है। इसमें राम नाम महिमा, भगवद् भक्ति का माहात्म्य, धर्म-विचार तथा तीर्थ एवं व्रत आदि के माहात्म्य का वर्णन है। द्वितीय कण्ड में श्री कृष्ण चरित तथा तृतीय कण्ड में रामचरित है।

विश्राम सागर की रामकथा की विशेषता यह है कि कवि ने विभिन्न पुराणों तथा रामायणों के उपजीव्य के आधार पर अपने काव्य की रचना की है। रामचरित वर्णन संक्षिप्त ही है। अधिकांशतः कथावस्तु " मानस" पर आधारित है।

विश्राम-सागर में भरत का स्वरूप:- ग्रन्थ " मानस" तथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित है, अतएव भरत का स्वरूप भी महानतम ही है। भरत का जन्म राम-जन्म के एक दिन पश्चात् पौष शुक्ल दशमी को हुआ। विश्राम का भरत-चरित्र एवं भरतमिलन

1- श्री रामानुज सम्प्रदाय भरत अनुदास जू के
तहाँ के महन्त के गोविन्दराम जानिए।
तिन्हीं के शिष्य सन्तदास सत्य सुखराम,
सुखराम जू के रामचरण पिछानिए।
रामचरण जू के रामसन्त सत्य सान्हर भे।
सान्हर के शिष्य हरिराम को बखानिए।
हरिराम जू के देवीदास रामनाम भाख,
देवीदास जू के रघुनाथ मोंहि जानिए।। विश्रामसागर 7,30,पृ0 606।

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 554 । ले0 पं0 रामचन्द्र शुक्ल।

करने के कारण गुरु ने उनका नाम भरत रखा[1]। लक्ष्मण का राम के प्रति तथा शत्रुघ्न का भरत के प्रति सेव्य-सेवक भाव था[2]। राम का भरत के प्रति विशेष उदार भाव था। यह स्नेह भक्ति/उदारता की हद में दिखाई देती थी। धनुष्यज्ञ में भरत के साथ बाजी लगने पर राम अपने घोड़े को साथ को रखते हैं, जिससे भरत जीत जाते और राम हार जाते हैं[3]। तुलसी के " मैं निज नाथ कृपा बिस भोरी। होइहैं सब बिधि गोपद थोरी " ।। का ही यह विस्तार प्रतीत होता है। खेलने, अध्ययन करने, मृगया करने तथा राजकार्य में तल्लीन होते हुए चारों भाइयों का बचपन वैभव में परिणत हो गया। राम-लक्ष्मण यज्ञरक्षार्थ ऋषि विश्वामित्र के साथ वन गए भरत उनके लौटने की प्रतीक्षा में उत्कण्ठित रहे। राम विवाह की सूचनादायिका पत्रिका के प्रति भरत का औत्सुक्य उनके राम-प्रेम का परिचायक है[4]। चारों भाइयों का एक साथ विवाह हुआ। कवि ने इस अवसर पर कहा है " जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित निवासही।" इसकी व्याख्या तो करते हुए कहा गया है कि सुतीक्ष्णादि जाग्रत अवस्था है जिसके स्वामी शत्रुघ्न हैं, माण्डवी स्वप्नावस्था हैं जिसके स्वामी सेव्य भरत हैं, उर्मिला उदिता हैं, जिसके स्वामी सुबुद्धि लक्ष्मण हैं तथा सीता सुषुप्तावस्था हैं, जिसके स्वामी दिव्यशरीरी, अन्तर्यामी श्री राम हैं[5]।

1- विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।
जेहि सुमिरत रिपु होइ हत नाम सत्रुहन तासु।। विनयपत्रिका पृ0 402 ।

2- भरतहिं परिमृत्य ज्यों रामलखन कै प्रीति।
भरत सत्रुहन की रहत तैसि तरह की रीति।। विनयपत्रिका पृ0 403 ।

3- भरत संग जब बाजी लागे। तब प्रभु कहे रहहुँ निज आगे।।
कहहिं सकल हारे रघुराई। जीते भरत भानजे भाई।। विनयपत्रिका, पृ0 411 ।

4- सुनत भरत रिपुदमन टोरि आए तहाँ। पूछत पिय टोऊ कहुँ कुसगुन हैं कहाँ।।
तब भूपति पत्रिका दई लै बाँचि। भए प्रफुल्लित गात अधिक सुखाँचि।।
विनयपत्रिका पृ0 449 ।

5- बसुधि बिताप बिधिन भवि जीव अवध अवधेस।
जाग्रतअवस्था सुति सुपन बिभु बिबकरिपुदेस।।
बिभुबिबक रिपुदेस स्वप्न माण्डवी बिगमगति।
बिभु सेवक सो भरत उरमिला उदित सुबोधति।।
उदितसुबोधति देर बिभु प्रानेसे लछिमन अनुज।
सुरी सिया बिभु राम सो अन्तरयामी दिबिजुध।।

विनयपत्रिका पृ0 455 ।

अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष भी परमपुरुषार्थ भी यही चारों हैं।[1]

अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में अजुध नामक राक्षस ने केकय देश के नाश हेतु नाना के ननिहाल पर भरत तथा शत्रुघ्न केकय देश को चले गए। वहाँ उन्होंने अजुध को पराजित कर केकय देश को भयमुक्त कर दिया। माता ने स्नेहवश उन्हें वहीं रोक लिया।

राम-वन-गमन तथा उनके वियोग में महाराज दशरथ के स्वर्गारोहण के पश्चात् गुरु वशिष्ठ के आदेश से भरत को ननिहाल से बुलाया गया। विषादयुक्त नगरी एवं शोकपूर्ण राजमहल में प्रवेश करने पर उन्हें पिता के निधन का तथा राम के वन जाने का हृदय-विदारक समाचार मिला, जिसे सुन कर वे मूर्छित हो गए।[2] चेतना प्राप्त होने पर उन्होंने कैकेयी की भर्त्सना की। कैकेयी भर्त्सना प्रकरण वाल्मीकि रामायण के समान कठोर न होकर "मानस" के समान कुछ कम कटु है।[3] कुटुम्ब द्वारा मंथरा को पीटने तथा दयानिधि भरत द्वारा उसे छुड़ा देने का प्रसंग यहाँ "मानस" के समान ही है।

शोकाकुल भरत माता कौसल्या के पास गए। पति एवं पुत्र के वियोग से पीड़ित कौसल्या ने करुण विलाप किया।[4] भरत ने अनेक प्रकारों द्वारा अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। यह प्रसंग भी "मानस" के समान है। कौसल्या ने उनके तथा राम के पारस्परिक प्रेम की प्रशंसा करके भरत के हृदय के दुःख एवं ग्लानि को शान्त करने का प्रयास किया।[5] गुरु वशिष्ठ के समझाने पर भरत ने पिता का दशगात्रविधान किया।

एक पक्ष दिन राम तथा बीते। गुरु वशिष्ठ ने नाना युक्तियों से समझा कर भरत को राज्याभिषिक्त करना चाहा। कौसल्या ने भी गुरु की बात का समर्थन किया। परन्तु

1- सुतिकीरति विपुल जग भरत भाण्डली काम।
धर्म धरणिधर उरबिला मोक्ष बानकी राम॥ विनय पत्रिका पृ० 455।

2- विनय पत्रिका, अयोध्याकाण्ड, पृ० 489-89।
3- " " " पृ० 489।
4- " " " पृ० 489-90।

5- मातु भरत के वचन सुनि कौसी सुचि सुख धाम।
रामहिं प्रिय तुम प्राण सम तुम्हहिं प्राण सम राम॥
तात मातु यह मोहि, तुम्हहिं कहौं मतिमन्द है।
सुगति लहैगो मोहि, अस कहि लिए लगाय उर।

विनय पत्रिका, अयोध्याकाण्ड, पृ० 490।

भरत किसी भी प्रकार राज्य ग्रहण करने को तैयार नहीं हुए । उनके मन में एक ही शूल था कि उनके ही कारण राम वनवास के कष्टों को भोग रहे हैं । उनकी दृष्टि में राज्य राम का है । भरत का सुख राम की चरण सेवा है । वे राम के दर्शनार्थ वन जाने की अनुमति चाहते हैं । उनका यह निर्णय सब के लिए आदर्शप्रद है । सब ने उनके साथ वन जाने की तैयारी की ।

वन के लिए प्रस्थान हुआ । यहाँ भी "वनवास" के समान केवट भरत के प्रति सशंक है । उनकी सुदृढ़ सन्नद्धता, शंकर के पाशुपतास्त्र-उपहार आदि लेकर उनका भरत से मिलना आदि "वनवास" के समान ही है । विश्राम तालाब में भरत भी राम सखा को देखकर रथ रुकवा कर बड़े स्नेह से उससे मिलते हैं । भरत ने केवट के साथ वह स्थान देखा जहाँ राम ने उस रात्रि निवास किया था । राम की कुश-साथरी देखकर उन्हें महान् कष्ट हुआ । साशुनयन भरत ने कहा, " हाय ! मेरे ही कारण राम, सीता तथा लक्ष्मण वन में रहकर कष्ट उठा रहे हैं । सुकुमारी जनक राज पुत्रि सास, ससुर एवं पति की प्राणाधिक प्रिय हैं । सुन्दर लक्ष्मण के समान पवित्र भाई संसार में न तो हुआ है और न होगा ही । स्वयं श्री राम भी कोमलांग एवं सुकुमार हैं । वे तीनों ही वन में कुशा बिछा कर सोते हैं । जिन राम की रक्षा माता-पिता प्राणों के समान किया करते थे वे ही अब वनों में नंगे पाँव चलते हैं तथा फल-मूल आदि भोजन करते हैं । मेरा हृदय यह सब देखकर विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता है । मुझे बार बार धिक्कार है । हे पिता ! आप ही धन्य हैं, आपने अपने प्रेम-व्रत का पूर्णरूपेण निर्वाह किया । तब निषाद ने उन्हें समझाया, " विषाद त्यागिए । आप श्री राम को परमप्रिय हैं, उस रात्रि वे आप की प्रशंसा करते रहे थे ।"[2] यहाँ भरत का भ्रातृ-प्रेम सम्पूर्ण महत्ता के साथ व्यक्त हुआ है ।

इस ग्रन्थ में भी भरत आदर्श भक्त हैं । उनकी राम-भक्ति बालक के समान अनन्य है । वे चित्रकूट में राम-भक्ति का वरदान माँगते हैं[3] और चित्रकूट भी उन्हें वरदान देती हैं कि " तुम राम को प्राणों के समान प्रिय हो ।" भरत अवधपुरी से

1- धूम धूम धूम मोहिं बारहिं बारा । धन्य तात पुण्य आ पुनिवारा ।।
विनयपत्रिका, अयोध्याकाण्ड, पृ० 493-94 ।

2- नाथ आप प्रिय रामहि भारी । करत रहे आदर्श तुम्हारी ।।
विनयपत्रिका, अयोध्याकाण्ड, पृ० 494 ।

3- जहाँ न सुमति न सुमति सुख कीरति विभूति नहिं केहु ।
सहज रामपद प्रीति निति यही दान म्यहि देहु ।।
जाचि पाइए जन मोर मनु पूरन प्रगट प्रभु रीति । बालक स्वारथी है अधिक माँगे
भरत वचन सुनि तात अब निकेतनी मे निरा । राम पद प्रीति ।।
तात तात्तु दुनियार तुम रामहि प्रिय प्राण सम ।।
विनयपत्रिका, अयोध्याकाण्ड, पृ० 494 ।

मिले । उन्होंने भरत के समस्त पाप एवं कलंक को मिटाने वाले, रामस्नेह से पूर्ण आचरण की मुक्त कंठ से प्रशंसा की तथा आश्वस्त किया कि राम को उनके समान अन्य कोई भी प्रिय नहीं है । यमुना तट पर पहुँच कर तथा यमुना का राम के समान श्यामल जल देखकर भरत के मन में अनिर्वचनीय भाव उत्पन्न हुए[1] । कवि का कथन है कि मार्ग में जिन लोगों ने भरत के दर्शन कर लिए उनके समस्त भव-रोग मिट गए[2] । यह भरत की राम-भक्ति का ही प्रभाव है । यहाँ भी भरत के प्रेमवश राम के अयोध्या की प्रत्याशा की शंका से भयभीत देवों को उनके गुरु बृहस्पति ने समझाया है । राम-जल को देखकर तो भरत की प्रेम-निर्झरिणी बहुत वेग से बह चली ।

सैन्य भरत को आगे देखकर शंकित लक्ष्मण के उत्तेजित होने का प्रसंग यहाँ भी है । राम ने उनको समझाया कि भरत के समान पवित्र भाई तो तीनों लोकों में सम्भाव्य नहीं है । कोई भी असम्भव घटना घट जाये परन्तु भरत को राजमद नहीं हो सकता है[2] । भरत वह राजर्षि हैं जिसने गुण-अवगुणों से परिपूर्ण संसार में केवल गुणों को ही ग्रहण किया है । भरत की राम द्वारा समय-समय पर प्रशंसा वाल्मीकि तथा तुलसी ने भी कराई है ।

प्रेम-विह्वल भरत चित्रकूट पहुँचे । उन्हें राम के स्नेहिल स्वभाव में अटूट विश्वास था । उनके पहुँचते ही राम भी प्रेम-अधीर होकर उठे ; कहाँ धनुष गिरा और कहाँ तूणीर । भरत तथा राम का प्रेम अनिर्वचनीय है । विश्राम सागर के कवि ने "मानस" के आधार पर जनक का चित्रकूट आगमन दिखाया है । जनक की रानियों के कौसल्यादि से मिलने का प्रसंग भी " मानस" के समान है । यहाँ कौसल्या द्वारा भरत की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है ।

- -

1- भरतहिं जिन देखे मग लोगा । तिनके सकल मिटे भव रोगा ।।
विश्रामसागर अयोध्याकाण्ड, पृ0 496 ।

2- भरत सरिस शुचि बन्धु बखाना । भयो न अहै तात तव आना ।।
गहुहिं बहु अहि गहि जायँ । गोपद बुद्धि अवध बस जायँ ।
भरतहिं होय न राजमद भाई । बिनय कि पयनिधि उथल कराई ।।
विश्रामसागर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 498 ।

3- गुरु सनेह भरत कर देखी । यही एक भयहिं सोच विशेषी ।।
तिहिं देखि कोउ नृप पाहीं । बहुरि सकल भरत लग जाहीं ।।
भरत शील गुण प्रेम बड़ाई । कहि कैय पर सहँ न जाई ।।
जब तब मोहि कहँ महीपा । भरत भये हमरे कुलदीपा ।।
विश्रामसागर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 202 ।

सीता की माता सुनयना ने जब पतिव्रतोपाख्यान जनक को सुनाया तो वे पुलकित हो उठे। दम्पति ने रात्रि भर भरत की प्रशंसा में ही व्यतीत कर दी। जनक के अनुसार भरत की महिमा अनिर्वचनीय है। उसे केवल राम जानते हैं परन्तु उसका वर्णन वे भी नहीं कर पाते हैं।[1]

विशुद्ध में राज समाज की बैठक हुई। राम ने भरत की प्रशंसा पुनः की- " मैं अत्यन्त कहता हूँ कि भरत के समान पवित्र भाई न तो हुआ है और न होगा ही। x x x x। जो व्यक्ति भरत की निन्दा करता है, वह महामूर्ख एवं पापी है। लोगों में मुझे भरत की माता तथा भाइयों में भरत सर्वाधिक प्रिय हैं। मैं भगवान शंकर की सौगन्ध कर कहता हूँ कि जो कुछ भरत कहेंगे मैं वही करूँगा।"[2] इस कथन के पश्चात् तैलक स्वामी की संतोष में डोल लगता है। राम के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए भरत ने कहा कि जो भी राम की आज्ञा होगी वही शिरोधार्य की जायेगी।[3] राम ने भरत को पिता की आज्ञा को पालन करने का आदेश दिया। भरत ने अवधि पार करने के लिए अग्रसर जाता और राम ने अपनी पादुकायें उनको दीं।[4] अयोध्या पहुँचकर भरत ने पादुकाओं को सिंहासनस्थ किया तथा स्वयं नन्दिग्राम में तपस्या में निरत हो गए।

अरण्य एवं किष्किंधा काण्डों में भरत का उल्लेख नहीं है। सुन्दरकाण्ड में अशोक वन में सीता को अपने राजदूत होने का विश्वास दिलाते हुए हनुमान ने उनको बताया कि राम का लक्ष्मण की अपेक्षा भरत के प्रति प्रेम अधिक है। यह बात राम तथा भरत के दृढ़ प्रेम को सिद्ध करती है। लंका काण्ड में हनुमान द्वारा संजीवनी लाने का प्रसंग " मानस" के समान ही है। कवि ने इस बात को स्वीकार भी किया है।[6] अन्तर केवल इतना है कि विश्राम सागर के हनुमान भरत का बल-परीक्षण देने के लिए उनके बाण पर बैठ जाते हैं और

1- भरत भाग्य गुण शील विचारा। कब कहँ पर कहँ न पारा॥
महिमा भरत केरि सुनु प्यारी। जानै राम न सकै उचारी॥
विश्रामसागर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 503।

2- विश्रामसागर, अयोध्याकाण्ड, पृ0 504।

3- " " पृ0 505। 4- विश्रामसागर, अयोध्याकाण्ड पृ0 506।

5- तैं सुमिरा सुजन हैं अधिक भरत में प्रीति।
लहुक बार मोसे कहिनि कुटिल काल की रीति॥
विश्रामसागर, सुन्दरकाण्ड, पृ0 543।

6- सुमिरि राम सिय लंक गुरु मनमहिरा सुखदानि।
बरणौं मानस का बहुक कोविद बहनि बखानि॥
विश्रामसागर, लंकाकाण्ड, पृ0 572।

जब भरत उनके भावयुक्त बाण को पुष्प के समान सरलता से उठा लेते हैं तब हनुमान उस बाण से उतर जाते हैं। " मानस" के हनुमान के मन में केवल यह गर्व उत्पन्न होता है कि मेरे भार से बाण हलेगा और राम का स्मरण करते ही उनका गर्व शमित हो जाता है, परन्तु विश्राम सागर के हनुमान तो भरत की परीक्षा में ही लगे हैं।[1] इस प्रसंग में भरत एक अस्वाभाविक कार्य करते हैं। वे हनुमान से अनुरोध करते हैं कि वे अवध में जाकर माताओं को समझा दें। जहाँ लक्ष्मण के प्राणों पर संकट तो वहाँ हनुमान को इस प्रकार विलम्ब कराना किसी भरत की विवेकशीलता के प्रतिकूल है।

रावण-वध तथा सीता प्राप्ति के पश्चात् राम भरत से मिलने के लिए आतुर हैं। पुष्पक द्वारा उन्होंने अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। भरद्वाज पहुँच कर वे अपने आने की सूचना देने तथा भरत का रहस्य जानकर लौट आने की आज्ञा हनुमान को देते हैं।[2] यहाँ " रहस्य" शब्द राम के हृदय में भरत के प्रति शंकायुक्त है।

उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ में विश्रामसागर के भरत भी " मानस" के समान ही राम के आगमन की प्रतीक्षा में उत्कंठित हैं। हनुमान ने राम आगमन का संदेश उन्हें दिया। हर्ष विभोर भरत प्रिय संदेशवाहक हनुमान के चिर ऋणी बन गए।[4] इस प्रसंग की कथा ही नहीं अपितु

1- विश्राम सागर, लंका काण्ड, पृ0 576-78 ।

2- कह प्रभु लौटहिं महरु लिखेहु । मम मन है भरतहि कब देखौं ।।
विश्राम सागर, लंकाकाण्ड, 595 ।

3- जाइ अवध भरतहिं सुधि देहू । तिन के रहनि कहेउ ग्यहिं तेहू ।
विश्रामसागर, लंकाकाण्ड, पृ0 596 ।

4- रहा एक दिन अवधि कर भरत सहुहि मन माहिं ।
लागे शीघ्र विरह बस धीरज आवत नाहिं ।।
तेहि अवसर हनुमान तहिं आये विप्र स्वरूप ।
रहस नाम अवलोकि के बोले वचन अनूप ।।
आतु विरह शीघ्रा जहाँ आवत तो समरत्थ ।
लक्ष्मण जानकी सहित सुनि प्रमुदित भिलो भरत्थ ।।
तास बधुपो संदेश अब रहा कछु नहिं जो देहुँ ।
ताते कृपया आप कर हौं मैं उऋण न होहुँ ।।

विश्रामसागर, उत्तरकाण्ड, पृ0 597 ।

पटाक्षरी तथा शब्द क्रम भी "मानस" का ही है । अयोध्या में भरत तथा राम का मिलन प्रेम-परिपूर्ण है[1] ।

विश्राम सागर में राम के अयोध्या आने पर भरत राम से राज्य ग्रहण करने हेतु अनुरोध नहीं करते हैं, अपितु गुरु वशिष्ठ यह अनुरोध करते हैं । राम पितृ-वचन की अनिवार्यता के कारण राज्यारोहण अस्वीकार करते हैं । अन्त में वशिष्ठ के समझाने पर उसको स्वीकार करते हैं । यहाँ उत्सव के साथ राज्याभिषेक होता है । राम-राज्य का वर्णन कवि ने अति संक्षेप में किया है । अन्त में गुरु-परम्परा, ग्रंथ-महिमा, ग्रन्थ के छंदों की संख्या तथा फलश्रुति का वर्णन किया गया है ।

इस ग्रन्थ में भरत का चरित्रांकन "मानस" के समान ही किया गया है परन्तु संक्षेप में है । भरत की भक्ति दर्शायी गई है परन्तु उसमें वह सरसता एवं प्रभावकता विद्यमान नहीं है जो "मानस" में है । भरत की राम भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, दया, त्याग, उदारता तथा सज्जनता के गुण विश्रामसागर के भरत में भी भरपूर हैं ।

रामरसपंचर - । महाराज रघुराज सिंह ।

रीवाँ के महाराज विश्वनाथ सिंह के पुत्र महाराज रघुराज सिंह ने राम रसपंचर की रचना संवत् 1934 के वैशाख मास में दो वर्ष के परिश्रम के पश्चात् पूर्ण की है[2] । राम रसपंचर में कवि ने अपनी अन्य रचनाओं का - भाषा भागवत, रामरसिकावली, रघुवंश अंक विचार, रुक्मिणी-परिणय, गंगाष्टक, सुन्दरष्टक, अंक जगदीश, भक्ति विलास, विनयशतक, पटाक्षरी, धर्म विलास, संगीतक एवं राजरंजन का भी उल्लेख किया है[3] । राम रसपंचर में कुल तेईस प्रबन्ध अथवा सर्ग हैं जिनमें से 22 में बालकाण्ड की ही कथा का

1- भरतहिं आवत देखि प्रभु रहेउ गिरान ।
सम्मुख चले सनेहबस पंथ कछु नहिं पानु ।।
प्रथम मिले गुरु तिन्ह पुनि गहे भरत प्रभु पाय ।
कह करि तुरत उठाय हरि भेटे हृदय लगाय ।
विश्रामसागर, उत्तरकाण्ड, पृ0 589 ।

2- वर्ष सुरक कीन्हों निरमाना । पूरन कियो कृपा भगवाना ।।
तीसा अनहत से चौतीसा । शुक्ल राखि राजा दिन ईसा ।।
माधव मास महातुवराती । दिवस अमृत गुरु पूरनकाजी ।।
पूरन ग्रन्थ भयो सुख सागर । रामरसपंचर नाम उजागर ।।
रामरसपंचर, 23 वाँ प्रबन्ध ।

3- रामरसपंचर, 1, पृ0 4 ।

लगी है । पहले प्रबन्ध के अन्त में चार चार पृष्ठों में अयोध्याकाण्ड की सम्पूर्ण कथा का उल्लेख कर दिया गया है । अरण्य तथा किष्किंधा काण्डों की कथा केवल तीन पृष्ठों में, सुन्दरकाण्ड की कथा बीस पृष्ठों में तथा लंकाकाण्ड 138 पृष्ठों में वर्णित है । शेष अठहत्तर पृष्ठों में अवध-विलाप, राज्याभिषेक, रामराज्य वर्णन एवं उपसंहार आदि हैं । रामकथा की कथा की विशेष संक्षिप्त करने का कारण कवि ने अपने बहुरोगात्मक होने के कारण प्रभु के विपिन गमन एवं सीता-वियोग आदि मार्मिक कथाओं के वर्णन में कवि का उपाय अपाया है[1] ।

काण्डों की कथा का विस्तार राजर्षियों, देवादि तथा उनकी आदि के विस्तृत वर्णनों के द्वारा किया गया है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार " वर्णनों में इन्होंने वस्तुओं की गिनती । रानियों अठ्ठाइस, घोड़े हाथियों के भेद आदि। गिनाने वाली प्रणाली का कुछ अवलंबन किया है[2] ।" फिर भी कवि का भक्त हृदय प्रभु के सौन्दर्य का मधुर वर्णन यत्र-तत्र कराता रहा है । सम्पूर्ण काव्य अभिनय शैली में लिखा गया है । डा० रामकुमार पाण्डेय का मत है कि इस " ग्रन्थ में काव्यगत का उद्रेक अधिक नहीं होता जितना भक्ति का । प्रबन्ध को बड़े कौशल से निभाया गया है, भाषा बड़ी साफ है और काव्य रीति अभिधात्मक[3] ।" डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक " आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति-तत्व" में " राम अवतार" को कवि की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना माना है[4] ।

1- जो भायुर्ग भाव लहि राजु सो दुख बरिस न भाषौ ।
देखयौहि आयुर्ग भेट यह टोउ एक लंग न भाषौ ।
जौ अमर्ष नाथ दुख गाया । वाकन मैं सब भाँती ।
जिरह विभीषण व्यथा वर्णन मैं राखा रहि रहि जाती ।।
यद्यपि सेतुबन्ध लंकायति विजय विदित सिंधु लोका ।
विपिन गमन दशरथ कुमार को उपजावत अति शोका ।।
अवनि आतरन भार को, हरि लीन्हयौ अवतार ।
पै न कहा वर्णन विपिन, पद गमन सुकुमार ।। रामअवतार, 1. पृ0 5 ।

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 47 । ले0 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल । ।

3- तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य, पृ0 47 ।

4- आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति तत्व, पृ0 96 ।

राम स्वभाव में भरत का स्थलांकन:- वर्णनात्मक काव्य होने के कारण इस ग्रन्थ में उपमाओं एवं वस्तुओं का तो सुरुचिपूर्ण वर्णन उपलब्ध है परन्तु पात्रों के चरित्र-उत्कर्ष एवं स्थल दर्शन की सम्भावनाएँ कम रही हैं। रामराज्य तथा मानस के चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कथा तथा अयोध्याकाण्ड की कवि ने पूर्णतोष उपेक्षा की है। उसके कोमल भावा मन को प्रभु के सुकुमार पाद पद्मों का विपिन के कंटकाकीर्ण पथ पर चलना सह्य नहीं है। इस कामना मात्र से ही कवि की वाणी का स्फुरण रुक जाता है। परिणामतः भरत के त्याग, वैराग्य, भक्ति तथा अनुपम मानस भाव से परिपूर्ण चरित्र के विकास के सम्पूर्ण प्रसंग अछूते ही रह गए हैं।

कवि ने रामावतार के कारणों का वर्णन किया है। प्रमुख कारण रावण के अत्याचारों से पीड़ित देवों की रक्षा करना है। सम्पूर्ण विश्व के स्वामी ने प्रकट होकर देवताओं को आश्वस्त किया कि वे स्वयं मनुष्य रूप में अवतरित होकर रावण का नाश करेंगे। राम जन्म के समय कौसल्या को चतुर्भुज विष्णु के दर्शन[2] तथा रंगनाथ पूजा के समय राम के रूप में विराट पुरुष के दर्शन[3] राम के ब्रह्म का अवतार होने के प्रमाण हैं। कवि के अनुसार राम विष्णु अ, लक्ष्मण शेषांश, भरत प्रद्युम्न तथा शत्रुघ्न अनिरुद्ध हैं[4]।

चैत्र शुक्ल नवमी को राम जन्म हुआ तथा दशमी मंगलवार को पुष्य नक्षत्र में भरत का कैकेयी के गर्भ से अवतार हुआ। इस प्रकार दीनबन्धु चार बन्धुओं के रूप में अवतरित हुए। जन्म एवं तत्सम्बन्धी सभी उत्सवों का कवि ने बड़े मनोयोग से सविस्तार वर्णन किया है। भविष्य में भारतवासियों की मनोकामना पूर्ण करेगा इस कारण विष्णु का नाम भरत पड़ा[5]। गुरु वशिष्ठ ने चारों भाइयों की जन्म पत्रिकायें रचीं। भरत की जन्म पत्री के अनुसार गुरु नेत्रहीन धर्म-धुरन्धर, वीरमणि, शुभ्र की प्राणों से भी प्यारा, ज्येष्ठ भ्राता को इष्टदेव मानने वाला, नियमों का निर्वाह करने वाला, सुन्दर शील स्वभाव वाला, ज्येष्ठ भ्राता के अनुरूप शरीर वाला, बुद्धिमान, शुभार्थी तथा इन्द्र के समान पराक्रमी बताया।

1- रामचरितमानस, 2, पृ0 24-36 एवं 39-41 ।
2- " 3, पृ0 73-74 । 3- रामचरितमानस, 6, पृ0 146 ।

4- वासुदेव राम श्रीरघुराई । लछिमन सेषी दिय पाई ।।
भरत सत्रु प्रद्युम्न समाना । रिपुहन ताहि अनिरुद्ध बखाना ।।
रामचरितमानस, 20, पृ0 558 ।

5- भरतहिं धारिन सकल, भरिहै सब मन काम ।
ताते यह कहियाहहै, नाम भरत अस नाम ।।
रामचरितमानस, 5, पृ0 92 ।

यह भी बताया कि दूसरे का किया कुछ कर्म उसको लगेगा, जिसके प्रतिकार में वह मुनिवेष धारण कर घोर तपस्या करेगा। यह अनुपम भ्रातृ प्रेमी होगा परन्तु भाई का भीषण वियोग भी होगा।[1] इस भविष्य वाणी का फल भरत के सम्पूर्ण जीवन पर घटित होता जा सकता है। कवि ने इस प्रकार भरत के चरित्र विकास तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का पूर्वाभास करा दिया है।

बाल संस्कारों से सम्बन्धित रस्मों का वर्णन सोल्लास किया गया है। राम को कैकेयी तथा भरत को कौसल्या अपना अधिक स्नेह करती थीं कि ऐसा लगता था मानो राम को कैकेयी ने तथा भरत को कौसल्या ने जन्म दिया हो।[2] कवि ने चारों भाइयों की बाल क्रीड़ाओं, शिक्षा तथा कुमारादि का वर्णन बड़ा विशद एवं रोचकमय किया है। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् चारों कुमारों ने विद्याध्ययन प्रारम्भ किया। वे शीघ्र ही समस्त शास्त्रों, विद्याओं एवं कलाओं में निपुण हो गए। धनुर्वेद में चारों ने विशेष दक्षता प्राप्त की तथा अश्वारोहण एवं गजारोहण की कला भी निपुणता से सीखी। चारों कुमारों के विवाह उत्सव का वर्णन कवि ने सुविस्तृत एवं सुन्दर किया है। चारों कुमारों के शीलाचरण का वर्णन कवि ने सुस्पष्ट रूप से किया है।[3] महाराज दशरथ के चारों पुत्र नीति निपुण, विवेकी, ज्ञानी, गुणी-धीर, विद्यावान, दीर्घदर्शी, गुणी तथा सबके हितकारी थे।[4]

1-राम स्वयंवर, 5, पृ0 94-95 ।

2- रामहिं भरत पियारे कैकयी कौसल्या त्यों भरतहिं ।
राम कैकयी भरत कौसल्या मानहु जन्मे उदर तें ।। रामस्वयंवर, 6, पृ0 112 ।

3- चारों बन्धु सुधर्म पुनीत परम चारु चारु ।
चारु मेरु जनक सँवारे अपारे अपारे ।।
खंड खंड दण्डनि खंड नीके खंड श्रुति खंड ।
को छल मोह निर्ख छले छेद छेद पर्छे ।।
सुधिताई गुनताई ताई है न रहे उधिताई ।
ताई नहिं प्रभुताई के महि जन जाहिर सुधिताई ।।
रामस्वयंवर, 6, 156 ।

4- नहिं अनीति छल, नहिं कुलकूल नहिं अधर्म प्रतिकारी ।
सदा दीर्घदर्शी गुणवन्त पितु-पद वन्दनकारी ।।
दीपित दीप शिखा सी दीपति अनीपति सुखारी ।
निज प्रताप ओज माधुर्य महा सौन्दर्य विचारी ।।
रामस्वयंवर 6, पृ0 161 ।

भरत के वैशिष्ट्य सुलभ लज्जा, शील एवं संकोच की एक झाँकी कवि ने विवाह का प्रसंग चलने पर प्रस्तुत की है। चारों सर्व गुण सम्पन्न कुमारों को देखकर गुरु वशिष्ठ ने महाराज दशरथ से पूर्व के सामने ही कहा, " हे राजन् अब आपके पुत्र ब्याहने योग्य हो गए हैं।" इस बात से लजा कर भरत ने पिता से कहा, " भोजन तैयार है, मेरी माता बुला रही है। चलिए।"[1]

राम तथा भरत में अतिशय प्रेम है। वह सर्वथा वर्णनातीत है।[2] इस स्नेह की एक झाँकी राम के विवाहोत्सव के साथ जाते समय दिखाई देती है। भरत तथा शत्रुघ्न भी राम के साथ जाना चाहते हैं परन्तु राम उनके द्वारा यह इच्छा प्रकट किए जाने के पूर्व ही अपनी आज्ञा दिला कर भाइयों को सेवा में नियोजित कर देते हैं। दोनों अत्यन्त उदास हो जाते हैं परन्तु कुछ कह नहीं पाते हैं। राम बार बार भरत को हृदय से लगा कर विदा होते हैं। यह प्रसंग बड़ा भावपूर्ण है।[3] महाराज जनक की पत्रिका प्राप्त होने का प्रसंग भी राम के प्रति भरत के अगाध स्नेह का व्यंजक है। तुलसी ने इस प्रसंग का अति संक्षिप्त वर्णन किया है परन्तु वहाँ उसको किंचित् विस्तृत कर दिया गया है।[4]

बारात के वर्णन में भरत एवं शत्रुघ्न के उत्साह, पूर्व-यौवन तथा सुकुमारोचित एवं अश्वारोहण में निपुणता का वर्णन किया है। इस अवसर पर गजेन्द्र आरूढ़ भरत ने तथा अश्वेन्द्र का शत्रुघ्न ने किया। शत्रुघ्न के रथ पर राजकुमार अतिबला विराजते थे। मार्ग में स्त्रियाँ भरत-शत्रुघ्न को ही देख सकर परस्पर उनके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करती हैं। सुकुमारोही भरत का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।[5]

भरत-शत्रुघ्न आचरण की रीति-नीति के पोषक हैं। महाराज जनक से मिलने पर वे दोनों उनको प्रणाम कर उनके पुरोहित शतानन्द ऐसरों की वन्दना करते हैं। शिक्षाचार का निर्वहन पूर्णरूपेण प्रत्येक स्थल पर किया गया है। जनकपुर में भरत के

1-गुरु के वचन सुनत सकुचे सब भरत कहयो कर जोरी।
कै तयार जेवँनार अब महँ मातु बुलायो मोरी। रामचरितमानस, 6, पृ0 161।

2- राम भरत के अस सनेह सब कवि न सकत कहि पारा।
प्रीति रीति चारहुँ भाइन की मैं किमि करौं उचारा॥ रामचरितमानस, 6, पृ0 160।

3- रामचरितमानस, 8, पृ0 184। 4- रामचरितमानस, 20, पृ0 456।

5- सुंदर सोनहु गजराज मधि मैं भ्राजत भारी।
राजकुमार तयार भरत तिहि राजत कमल हारी॥
पुलकित जनु मयंक उदित उदयाचल कर पतराई।
सकल सैल हुँत पर सोहत सारागम सहुदाई॥ रामचरितमानस, 20, पृ0 467।

राम से मिलते समय परम प्रेम होते हुए भी यह शिष्टाचार एवं उनकी औपचारिकता दर्शनीय है । पारस्परिक नमन एवं वन्दन के पश्चात् सब मित्रों ने भरत को आगे कर राम से सब वृत्तान्त पूछे । इस प्रकार राम और भरत की मित्रता को दर्शाया गया है ।

विश्वामित्र के अनुरोध पर तीनों भाइयों के विवाह भी निश्चित कर दिए गए । राम एवं भरत तथा लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के सम्बन्ध पर जनकपुर की महिलाएँ चकित हैं । विवाह के समय भरत के मामा कैकय-नरेश-कुमार युधाजित भी आ पहुँचे । समस्त परम्पराओं, विभिन्न औपचारिकताओं, उत्सवों एवं उत्साह उमंगों के साथ चारों भाइयों का विवाह सम्पन्न हुआ । वधुओं-युक्त चारों वरों की कवि ने वासुदेव के चतुर्व्यूहाकार के चतुष्टय के समान बताया है[2] । कुशध्वज ने कन्यादान कर माण्डवी भरत को सौंप दी । जिस उत्साह रीतियों एवं कुल-परम्पराओं से राम का विवाह किया गया, उन सब का निर्वाह अन्य तीनों भाइयों के विवाह में भी किया गया । महाराज रघुराज सिंह ने विवाह के उत्सव, उत्साह, प्रचुर वैभव का जो उनकी कल्पना में सम्भव था विशद रूप से वर्णन किया है । स्वयं राजा होने के कारण उन्होंने इस अवसर पर राजाओं की कुल-परम्पराओं के अनुसार विवाह के विभिन्न उत्सवों एवं रीतियों तथा पारस्परिक शिष्टाचार का सुन्दर वर्णन किया है । प्रत्येक अवसर पर शिष्टाचार का बहुत ध्यान रखा गया है । चारों भाइयों की दिनचर्या में इस बात को देखा जा सकता है ।

वाल्मीकि रामायण के समान परशुराम प्रसंग बारात की वापिसी के अवसर पर है । क्रोधित परशुराम ने दशरथ की विनय, वशिष्ठ का अनुरोध तथा राम की क्षमानुकूल

1- रामस्वयंवर, 20, पृ0 478 ।

2- वासुदेव राम की रघुराई । संकर्षण लक्ष्मीदिय गाई ।।
भरत सम प्रद्युम्न समाना । रिपुहन तहँ अनिरुद्ध बखाना ।।
सिंहली लक्ष्मी मन भाई । संकर्षण श्रीय सरस्वति गाई ।।
सो उर्मिला सम मन भायो । रति को सम माण्डवी गायो ।।
श्रुति कीरति तहँ कीरति रचना । तहँ श्रुति जनु धारि अनूपा ।।
विश्वसेन गरुड़ श्रुति पावन । भौमी पुष्प तुमंग सुहावन ।।
पंचजन्य सम शंख तहँ, तापक सरित सुनाम ।
सम सारंग सरासनी, कटि श्रुति नन्दक आम ।।
कौमोदी की गदा सरित, हुआ प्रकाश महान ।
राम ब्याह मण्डप तहाँ, भयो विष्णु समान ।।

रामस्वयंवर, 20, पृ0 558 ।

विनय नहीं सुनी । लक्ष्मण को क्रोध आया, शत्रुघ्न धनुष चढ़ा कर बढ़े, तब धीरज एवं विवेकी भरत ने उन्हें शान्त करना चाहा । यहाँ भरत की वाणी से उनकी सौम्यता, धीरोदात्तता तथा दैन्य एक साथ ही प्रकट हुए हैं[1] । परशुराम शांत नहीं हुए । वे वैष्णव धनुष देकर राम से युद्ध करने के लिए उद्यत हुए तब भरत ने आगे बढ़कर युद्ध का प्रस्ताव किया[2] । अन्त में राम ने वैष्णव धनुष चढ़ा लिया । परशुराम राम की स्तुति कर महेन्द्र पर्वत को चले गए ।

बारात ने सोल्लास अवध में प्रवेश किया । माताओं ने वरों एवं वधुओं का परछन किया । पुत्रों तथा वधुओं का लाड़ दुलार भी भरपूर किया गया । कवि को दास भक्त होने के कारण शृंगारादि तथा रास विलास गाने का अधिकार नहीं है[3] । उसने "रसिकों के

1- विप्रन को दान दीनो पदरज लीनो शिर, क्षत्रिय को धर्म ठेट कहत छलनोई है ।
तातें जीत कहाँ सेवकाई करैं रावरे की, आपहू छमा के आहु तुमपै बड़ोई है ।।
छमा अधर्म पथ कबहूँ न रघुराज, टोऊ विधि हानि ही हमारी परै जोई है ।
हारे अकीरति हमोर हठि पाप लागी, आहु राम छुट्ट को करैया नहिं कोई है ।।
× × × ×
रघुराज हमहूँ हमारे पिता दास रे, विप्र इष्टदेव मोहिं धर्म की दुहाई है ।।

रामरसायन, 22, पृ0 665 ।

2- भरत दरस रट कीन त्यों करत हट, बोल्यो भृगुनाथ माँ न सेतो होन पावैगो ।
राम धनु ऊँचे तीन बाँधुरे लगाए गाढ़े, युद्ध के उछाह बाढ़े जातो छल भावैगो ।।
तातें युद्ध कीजै निज बल दिखराय दीजै, लीजै लीज भानि रघुवीर हेतु आवैगो ।
जिया हमारे तीनो भाइन के रघुराज, राम ही की तीर कौन राम तोहि जावैगो ।।

रामरसायन, 22, पृ0 665 ।

3- हुयाँ माँ मेरी भाखना है आगे नहिं जानो बहु, ठाढ़ो रहौं हरी लीन्हें रोज राम द्वार में ।
विविध विलास रास-हास रनिवास मेरो ,
माँहि न हुलास इतिहास के उचारे में ।।
रघुराज दास्यभाव मेरे गुरु दीन्हें मोहिं ,
तातें कौन काम रास लीला के निहारे में ।
स्वामिनी विदेह लली स्वामी कौसलेश लाल,
पाऊँ सदैव सुख बारू बारि डारे में ।।

रामरसायन, 23, पृ0 727 ।

लिए शिकार का लघु वर्णन किया है । " परन्तु शिकार का यह लघु वर्णन अनेक पृष्ठों में है तथा " रघुपति झाक शिकार" नाम से वर्णित है । तो ऊँटों का यह शिकार झाक राम रामचरित्र के अन्तर्गत ही है ।[1]

भरत युधाजित के साथ कश्मीर । केकय देश। चले गए । शत्रुघ्न भी पिता से यह अनुरोध करके कि शरीर के बिना उसकी छाया नहीं रह सकती है, भरत के साथ ही चले गए । वर्ष की छहों ऋतुएँ आईं और चली गईं । श्री राम जानकी अवध में सुखपूर्वक निवास कर रहे हैं ।[2] राम का अपार प्रेम तथा सेवा देखकर कैकेयी अपने पुत्र को भूल गईं । उधर भरत भी नानी का दुलार पाकर अवध को भूल ही गए । उधर देवगण रावण के अत्याचारों से पीड़ित हो सोच रहे थे कि राम कब रावण का वध करेंगे । यदि भरत अयोध्या वापिस आगए तो राम को वन नहीं जाने देंगे । यह विचार कर देवताओं ने माँ शारदा से प्रार्थना की तथा शारदा ने दशरथ की बुद्धि फेर दी । दशरथ ने सुमंत्र से कहा, " भरत को लाने में विलम्ब करो । जब राम युवराज हो जायेंगे तब भरत तथा जनक इस हर्षयुक्त समाचार को सुनकर आयेंगे तथा केकय नरेश भी अविलम्ब ही आ जायेंगे ।[3]" राज सभा में राजाओं तथा मंत्रियों की सम्मति लेकर, गुरु वशिष्ठ के अनुमोदन से महाराज ने राम के राज्याभिषेक का निश्चय कर लिया ।[4] दुस्वप्नों तथा अपशकुनों के कारण दशरथ को विश्वास होता जा रहा था कि उनकी मृत्यु निकट ही है ।[5] उनके मन में भरत के प्रति शंका उत्पन्न हो गई थी, जिसे व्यक्त करते हुए उन्होंने राम से कहा, " जब तक भरत विदेश में हैं मैं तुम्हारा अभिषेक कर देना चाहता हूँ । यद्यपि भरत सद्बुद्धि, सज्जन, जितेन्द्रिय, धर्मरत एवं दयावान हैं तथा तुम पर विशेष प्रेम करते हैं, फिर भी मन की गति चंचल होती है ।[6]"

- -

1- रामचरितमानस, 23, पृ0 695-727 । 2- रामचरितमानस 23, पृ0 737-38 ।

3- रामचरितमानस, 23, पृ0 743 ।

4- " 23, पृ0 744-48 ।

5- " 23, पृ0 761 ।

6- जहाँहिं विदेश भरत जनकाई । जब लगि मैं अभिषेक उदाई ।।
होय तुपट युवराज तुम्हारा । यही काल अस मानो हमारा ।।

दो0- यद्यपि भरत सज्जन सुमति, सेवक सदा तुम्हार ।
इन्द्रियजित नित धर्मरत, दयावान सनियार ।।
तदपि मनोगति चंचल होई । अस अस फिरत न जानत कोई ।।
सौंपि धरित के बहु भागी । कबहुँ कबहुँ ते होत सरागी ।।

रामचरितमानस, 23, पृ0 762 ।

ऐसा कहकर महाराज ने राम को भवन में जाने का आदेश दे दिया । राम की गए और इस विष बीज का समाधान नहीं हुआ ।

अयोध्या में अभिषेक की तैयारी में आनन्द, उमंग और उत्साह फैला था । लोग उत्कंठा से राम के राज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे थे । उधर ईर्ष्या एवं डाह से भरी हुई मंथरा कैकेयी के कान भर रही थी । मंथरा के परामर्श से कैकेयी कोप भवन में चली गई तथा उसने भरत की धरोहर देकर राम के लिए वन और भरत के लिए राज्य माँग लिया । राजा व्याकुल हो उठे । राम को बुला कर वन जाने का निर्देश दिया । हर्ष-विषाद-शून्य राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन को चले गए । हुंगेरपुर में निषाद-राज से मिलकर गंगा पार कर प्रयाग में भरद्वाज से मिले । वाल्मीकि के परामर्श से चित्रकूट पर्वत पर पर्णकुटी देखकर निवास किया ।

राजा ने राम के विरह में शरीर त्याग दिया । गुरु वशिष्ठ ने केकय देश से भरत को बुलवाया । राज्य करने का अनुरोध किया परन्तु भरत ने उसे अस्वीकार कर दिया । माताओं सहित भरत राम को मनाने चित्रकूट गए । राम-प्रेम में तन्मय वे पैदल ही जा रहे थे । वे हुंगेरपुर एवं प्रयाग होते हुए चित्रकूट पहुँचे । राम से लौटने के लिए बहुत विनय की । महाराज जनक ने भी राम को समझाया, परन्तु वे नहीं लौटे । उन्हें पिता का पुत्र पूर्ण करना तथा देव-कार्य करना था । अपनी पादुकाएँ देकर उन्होंने भरत को विदा किया । भरत ने आकर मुनि वेष धारण कर नंदिग्राम में निवास किया । राम स्वर्गेश में अयोध्याकाण्ड की कथा अति संक्षिप्त है ।

अरण्यकाण्ड एवं किष्किंधा काण्ड की अति संक्षिप्त कथा भी तोमरों प्रबन्ध के अन्तर्गत है । सुन्दर तथा लंका काण्ड की कथा किंचित् विस्तार के साथ इसी प्रबन्ध में है । लक्ष्मण-मूर्छा प्रसंग में संजीवनी लाने के लिए हनुमान द्रोणगिरी को दो बार लाते हैं परन्तु भरत से उनके मिलने का उल्लेख नहीं है । यहाँ पर कथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित है । रावण-वध के पश्चात् राम को देखने दशरथ स्वर्ग से आते हैं । कवि ने यहाँ एक नई उद्भावना की है । उसके अनुसार राम ने दशरथ से कैकेयी एवं भरत को

1- रामचरितमानस, 23, पृ0 771-72 ।

भाषमुक्त करने की प्रार्थना की है[1]।

भरत की याद करके राम विभीषण के अनुरोध पर भी स्नान एवं श्रृंगार के लिए सहमत नहीं हुए। उन्होंने उलटे विमान लाने का अनुरोध किया क्योंकि अवधि बीत जाने पर भरत को जीवित पाना असम्भव था[2]। भरत के स्नेह का राम ने बार बार स्मरण किया। उन्हें भरत के समान कोई भी प्रिय नहीं है। भरत के प्रेम की प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं, " कहँ लगि कहौं न कहे सिराई, भरत विभीषण नेह बड़ाई।" विभीषण विमान ले आए तथा राम सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं विभीषणादि के साथ अवध के लिए चल पड़े। प्रयाग पहुँच कर उन्होंने भरद्वाज मुनि से भरतादि का कुशल समाचार ज्ञात किया। मुनि ने भरत की विरह दशा एवं नन्दिग्राम में तपस्या करने की बात सुनाई। परन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि राम के हृदय में भरत के प्रति इतना प्रेम दिखाने तथा भरद्वाज द्वारा भरत की इस विरह दशा के विषय के पश्चात् भी रामने भरत पर शंका की है। इतने स्नेह-प्रदर्शन के पश्चात् यह शंका बड़ी अस्वाभाविक एवं अनुचित प्रतीत होती है। भरद्वाज मुनि से यह निर्देश पाकर कि राम भरत को अपने आने का समाचार तुरन्त प्रेषित करें, राम ने हनुमान से कहा, " तुम भरत के पास जाओ। वहाँ तुम भरत की बातों को सुनना, उनके व्यवहार को देखना तथा उनकी अभिलाषा को भलीप्रकार समझना। यदि भरत के मन

- -

1- पिता वचन तुमि मोट भरि, कहयो जोरि कर राम।
देहु मोहि वरदान एक, करौं होय जो काम ॥
मम वनवास गवन के काला। कहयो कैकई को महिपाला ॥
करहुँ तोर सुत तौल त्यागा। रघुकुल विपिन दवारि अभागा ॥
यह तुम माय कैकई काहीं। भरत सहित लागे अब नाहीं ॥
भरतो जननि सहित महाराजा। करहु अनुग्रह देव दराजा ॥

रामचरितमानस, 23, पृ० 919 ।

2- मैं नहिं मन्यहुँ तेर तुमु कारन। कीन्हेंहु भरत मोर प्रन धारन ॥
राजकुमार बड़ो सुकुमारा। तजा भरत मुहिं प्रान पियारा ॥
तिहि बिनु मज्जन किमि करौं, परहुँ पान निज ऐंव।
किमि भूषन पहिरौं। तजा, तजि न तजौं तिहि तैंव ॥
जेहीं अवध पु अवधि बिताई। मिली न जिया प्रान प्रिय भाई ॥
सीता लखन सकल परिवारा। मोहिं भरत सम नाहिं पियारा ॥

रामचरितमानस, 23, पृ० 923 ।

में राज्य का लोभ हो तो तुम उनसे मेरे आने की बात मत कहना । भरत के स्नेह का त्याग मैं नहीं करूँगा अपितु अन्यत्र जाकर राज्य करूँगा । यद्यपि भरत का और मेरा स्नेह अगम है परन्तु पिता का राज्य पाकर किसको गर्व नहीं हो जायेगा । तुम मुझे भरत का समाचार तुरन्त लाकर दो ।" विष्णु के अवतार तथा लोकोत्तर चरित्र वाले पुरुषोत्तम के मन में भरद्वाज से भरत की विरह दशा सुनने के पश्चात् भी इस प्रकार की शंका उठना उचित प्रतीत नहीं होता है । मानसकार ने ऐसी शंका नहीं उठाई है । वाल्मीकि के बहुत कुछ मानव राम का इस प्रकार की शंका करना स्वाभाविक है ।

हनुमान नंदिग्राम पहुँचे । वहाँ वे भरत से मिले । यहाँ पर कवि ने राम-प्रेम-मग्न तपस्वी भरत का सुन्दरतम चित्र अंकित किया । उसने भरत को धर्म का स्तम्भ माना है।[2]

- -

1- सुन्यो चरन तुम भरत के, देख्यो सब व्यवहार ।
ताको मन अभिलाष मुनि, पैख्यो सकल प्रकार ।।
पूँछिहउ कुसलाँतिहि बानी । ताकी रुख लीन्ह्यो पहिचानी ।।
होय राज्य लोभी यदि भ्राता । तौ न कह्यो मम आवनि बाता ।।
आवहिं आय अवध मुनि देहू । मैं नहिं तजिहौं भरत सनेहू ।।
करिहौं और ठौरि को राजू । होय भरत कौसल महराजू ।।
यद्यपि भरत मम अगम सनेहू । केवर होय पितरस न मेहू ।।
तदपि पिताम्ह पितु कीराजू । पाय काहि नहीं गर्व टराजू ।।
भरत सरिस मैं कहहु सुजाना । जब लगि करौं न दुखिपयाना ।।

रामचरितमानस, 23, पृ० 934 ।

2- लख्यो दूर तें रघुपति भ्राता । राम प्रेम मूरति जनु जाता ।।
x x x x
जब तें गवने राम बन, तब तें छुटी जटाय ।
बढ्यो भरत अति नेम तें, मनहुँ धर्म बपु आय ।।
राम राम मुख कहत निरन्तर । बिलग होत कबहूँ नहिं औसर ।।
रहत सदा सरयू अवगाही । तापस बेष धर्म बपुधारी ।।
x x x x
प्रभु पादुका पूजि सुख दीन्हा । बाढ़त धरनि सरसु दीन्हा ।।
प्रेम नेम कीन्हें मन माहीं । दै अवधि रहि है तनु नाहीं ।।
स्वाति बूँद जिमि चातक पपीहा । रहैं नाम लगी रट लीहा ।।
धारिहु धर्म भूमिल भाता । लख्यो पवनसुत रघुपति भ्राता ।।
रघुपति तेज धर्म रखवार । मानहुँ धरनि धीर धर धूरा ।।

रामचरितमानस, 23, पृ० 936 ।

राम के आगमन का समाचार सुनकर भरत अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। हर्षातिरेक से वे अपनी सुध भूल गए[1]। वे हनुमान के प्रति अति कृतज्ञ हुए, उनके चिर ऋणी रहे[2]। फिर शत्रुघ्न को राम के स्वागत की तैयारियाँ करने का आदेश दिया। उनके इस कथन में कितनी उत्कंठा और चाह भरी है," हनुमान्! अब जल कर हमारे कष्ट देव को दिया दो। बीसवर्ष जैसे दिन गिन गिन कर व्यतीत किए हैं। कृपानिधान, सुजान राम ने मेरे जाते हुए प्राणों को रोक लिया है।"[3] हनुमान का उत्तर भी भरत के राम प्रेम की द्योतक है। उन्होंने भरत को राम प्रेम की साक्षात् मूर्ति बताया[4]। भरत राम के स्वागतार्थ को। दूर से पुष्पक विमान को देखकर ही भरत ने राम का पूजन किया। विमान नीचे उतरा। भरत ने राम के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। वे अपने शरीर की दशा भूल गए थे। राम ने उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया। राम भी उस समय परम प्रेम मग्न थे। सब कुछ भूलकर दोनों भाई बड़े प्रेम से एक दूसरे से मिले। एक मुहूर्त पश्चात् गुरु ने दोनों को पृथक किया। राम तथा भरत के मिलन का वर्णन कवि ने विस्तार सहित अनेक पृष्ठों में किया है[5]।

भरत ने राम के चरणों में पादुकाएँ पहिना दीं। सब और भरत के राम-प्रेम की

1- छाना सुना भरत तेहि काला। भयो महासुद मगन बिसाला॥
गिरयो भूमि सुध देह बिसारी। दंड देक भ्रमी सुधि अंगा॥
लेंभरि नयन दारुन अकुलारा। रोमांचित तनु राजकुमारा॥
गद्गद-कंठ बोलि नहिं आवा। हनुमत वचन सत्य उर लावा॥
का सत के अस वचन सुनाये। को ही तात कहाँ ते आये॥
रामचरितमानस, 23, पृ0 938।

2- रामचरितमानस, 23, पृ0 938।
3- " 23, पृ0 945।
4- सब सहयो पवन सुत पूछा दुतीय तुम सम कौन।
प्रभु प्रेम नेम निबाहिहैं सब सहा श्रीसद मौन॥
अकथ सुन्यो सुति रामप्रेम न लखी मुरत तास।
सब कर लखि प्रभु प्रेम कम भयो विशेष विश्वास॥
रामचरितमानस, 23, पृ0 945।

5- पुनि पुनि मिला राम लघु भाई। सकै कौन उपमा कवि गाई॥
मनहुँ पुरातन बाय कहु, तापस रस लपटाय।
वात्सल्य रस दारुण दोउ, निकसि भुवनि बहाय॥
प्रेम पवन प्रेरित उछिमाना। मानहुँ मिला पुनल का प्रमाना॥
पुलकित पुलक दोउ उरलाई। प्रेम नेम करि नेह निबाहे॥
भरतहिं प्रभु अंकहिं बैठावा। सुंदर शीश चौल नहिं आवा॥
रामचरितमानस, 23, पृ0 951 तथा रामचरितमानस, 23, पृ0 951 से 58 तक।

प्रकट होने लगी[1]। भरत ने विनम्रपूर्वक राज्य राम को लौटा दिया। उनके चौदह वर्ष वनवास में समस्त वैभव तथा कोष क्षय मुने हो गए थे। राम भरतादि सहित नन्दिग्राम पहुँचे। भरत ने पुनः अनेक युक्तियाँ देकर राम से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया[2]। राम ने प्रकट करते हुए उनका अनुरोध स्वीकार किया। राज्याभिषेक बड़े उत्सव एवं आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ। राम ने लक्ष्मण को युवराजत्व देना चाहा किंतु उन्होंने विनम्रपूर्वक अस्वीकार कर दिया। राम ने स्वयं दिलाकर भरत को युवराज बना दिया। लक्ष्मण को सेना सौंपी गई तथा शत्रुघ्न को धन-धाम। श्री राम सीता सहित अशोक वन में विहार करने लगे। भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के प्रबन्ध में प्रजा सानन्द रहने लगी। किसी को शोक-दुःख नहीं था। समस्त वसुधा धन-धान्य से पूर्ण हो गई। श्री राम ने अनेक राजसूय एवं वाजिमेध यज्ञ किए। प्रजा तथा माताओं को बहुत सुख दिया[3]।

रामचरितमानस महाकाव्य में भरत के स्वरूप में उनका राम-प्रेम बड़े ही सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया गया है। यह केवल अनुज और अग्रज का प्रेम नहीं है अपितु ईश और ईशी का प्रेम है। इसमें विरह अनुपम है। विवाहादि के साथ राम के आने पर भरत का विरह वेदना से पीड़ित है। राम वन गमन के समय पुनः यह विरह प्रकट है। राम को मनाने भरत चित्रकूट गए तथा उनके न लौटने पर स्वयं चौदह वर्षों तक नन्दिग्राम में तपस्या करते रहे। भरत के राम-प्रेम का अधिक मार्मिक चित्रण कवि ने राम के वन से लौट कर भरत से मिलने के समय किया है। राम ने विभीषण से भरत के अपार स्नेह की प्रशंसा की। उन्हें सीता और लक्ष्मण से भी पियारा बताया। " तव भरत मोहिं प्राण पियारा " कहकर उन्होंने भरत के प्रति अपने स्नेह को व्यक्त किया था। राम के आगमन के सूचनादाता हनुमान ने भरत को राम प्रेम की अवतार मूर्ति के रूप में देखा। उन्होंने भरत से स्पष्ट रूप में कहा था कि " अब तक राम-प्रेम के विषय में मैं सुना करता था, उसके दर्शन मुझ को नहीं हुए थे, परन्तु आज आपके रूप में वह प्रेम मूर्ति देखकर मुझे राम-प्रेम के स्वरूप का ज्ञान तथा उसमें विशेष विश्वास हो गया। आप सर्वथा अद्वितीय रूप से पवित्र हैं प्रभु के

1- जय कोसलपति प्रीतिरस, भरत सरिस कोउ नाहिं।
   राम प्रेम को नियम करि, दीन्ह्यो नेह निबाहि॥
   रामचरितमानस, 23, पृ० 959।
2- रामचरितमानस, 23, पृ० 962।
3- " 23, पृ० 987-88।

प्रेम के निर्वहण हेतु पुरुषार्थ कठिन तपस्या कर रहे हैं।" अनुराग द्वारा शिक्षा महाप्रेम रसमय ही भरत का सच्चा स्वरूप है; धर्मनिष्ठा, वीरता, पुरुष-बहुता आदि गुण तो गौण हैं तथा ये सभी प्रेम रस के साधक मात्र हैं। प्रेम की साधारु कृतियाँ भरत भक्तों के हृदयों में राम-प्रेम के प्रति विश्वास का उदय कराने वाले हैं।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि रीतिकाल के अन्त में तथा आधुनिक काल की खड़ी बोली की काव्य रचना के पूर्व पुराण साहित्य एवं रामायण तथा रामचरितमानस पर आधारित राम काव्य रचना अविच्छिन्न रूप से होती रही। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर झुकाव इस युग की काव्य रचना में देखा जा सकता है। यह प्रवृत्ति रघुनाथ दास रामसनेही तथा महाराज रघुराज सिंह दोनों की काव्य रचना में द्रष्टव्य है। खड़ी बोली के काव्य में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कुशल हुआ है।

इस युग में संस्कृत के राम काव्यों के हिन्दी अनुवाद किए गए। इस दिशा में कविवर लाला सीताराम का नाम उल्लेखनीय है। ये अयोध्या निवासी थे तथा "भूप" उपनाम से कविता करते थे। इन्होंने कालिदास की अनेक कृतियों का हिन्दी कविता में अनुवाद किया। इनके द्वारा किया गया रघुवंश महाकाव्य का अनुवाद जो संवत् १९५७ में प्रकाशित हुआ था बहुत सुन्दर है। इनके अतिरिक्त महावीर चरित तथा उत्तररामचरित नाटकों के अनुवाद भी इन्होंने किए थे जो प्रकाशित भी हुए। साहित्य सहायिनी सभा प्रयाग द्वारा भी कुछ काव्यों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराये गए जिनमें वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी अनुवाद भी है। इसका प्रकाशन प्रथम बार सन् १८९१ में हुआ था। इस युग में पुराने हिन्दी काव्यों का टीका सहित प्रकाशन भी हुआ है। इस दिशा में श्री केशवराम भट्ट का नाम स्मरणीय है जिन्होंने छप्पय रामायण आदि तुलसीदास के नाम पर रचे गए ग्रन्थों का टीका सहित प्रकाशन कराया। इस युग में या तो परम्परागत रूप में राम काव्य रचे गए थे अथवा संस्कृत राम काव्यों के हिन्दी अनुवाद किए गए जिनके कारण भरत-चरित्र की दृष्टि से इस युग के काव्य में कोई नवीनता उद्भावित नहीं हुई।

सप्तम-अध्याय

छायावाद युगीन रचनाओं में भाव

(सन् 1918 से सन् 1936 तक)

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तथा द्वितीय विश्व महायुद्ध के प्रारम्भ के मध्य का समय सम्पूर्ण विश्व में नव-चेतना का समय था। भारत में इस काल में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना का उदय हुआ तथा राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में गांधी जी के नेतृत्व में उनके सिद्धान्तों से प्रभावित हुए। दूसरे शब्दों में यह राष्ट्रीय नव जागरण एवं क्रियाशीलता का युग सिद्ध हुआ। इसे पुनरुत्थान का युग भी कहा जा सकता है क्योंकि पुनरुत्थान की भावना ने एक ओर प्राचीन गौरव की ओर ध्यान आकृष्ट किया और दूसरी ओर समाज तथा धर्म की तत्कालीन दयनीय अवस्था की ओर। नारी जागरण की दिशा में भी सफल प्रयास हुए। नवयुग के चेतनाओं ने भारतीय वाङ्मय के विशाल भण्डार से ऐसे ग्रन्थों को निकाल कर प्रस्तुत किया जो सुधारवादी दृष्टि से परिमार्जित का परिचायक कर नवीन राष्ट्रीयता के पोषक थे। साहित्य तथा कला के क्षेत्र में भी इस युग में क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगत हुए। इस युग के साहित्यकार अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए भी मातृभाषा, राष्ट्र एवं समाज के प्रति अपने कर्तव्य पालन तथा मानवतावादी आदर्शों के प्रति जागरूक थे। परिणामस्वरूप इस युग के हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक चेतना, मानवतावादी मूल्य, राष्ट्रीयता, लोकतांत्रिक विचारधारा, सामाजिक समता, बुद्धिवाद, नारी के प्रति उदारता दृष्टिकोण, उपयोगितावाद, आदर्शवाद, विश्वबंधुत्व, निःस्वार्थ सेवा तथा रहस्यवाद आदि समेत रूप से अभिव्यक्ति पा सके।

इस युग में छायावादी एवं रहस्यवादी दोनों की प्रकार के काव्य की रचना हुई। इस काव्य पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव था तथा उपनिषदों के ब्रह्मवाद, अतीन्द्रियता, आध्यात्मिक अभिलाषा का प्रभाव भी देखा जा सकता है। देश भक्ति का स्वर भी ऊँचा रहा। श्री मैथिलीशरण गुप्त, "नीरज", "प्रसाद" तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि के काव्य इसके उदाहरण हैं। सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, उदात्त कल्पना, नाटकीय अभिव्यक्ति आदि ने काव्य को नयी दिशा प्रदान की। इस युग का काव्य मानवता के उद्धार के लिए आतुर है। छायावादी काव्य की प्रचुर रूप से रचना होने के कारण यह युग साहित्य कला में छायावादी युग कहलाया।

छायावाद की परिभाषा दो प्रकार से की गई है- व्युत्पत्तिपरक तथा प्रवृत्तिपरक। व्युत्पत्तिपरक परिभाषा कविवर "प्रसाद" द्वारा निम्नवत रूप में इस प्रकार की गई,
" छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। स्वप्नशीलता, भावप्रवणता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा अपरोक्ष-सत्ता के साथ रागात्मक

की विभूति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह "आंतरस्पर्श करके भाव समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है।" अर्थात् " वह काव्य जो केवल बाह्य सौन्दर्य का वर्णन न करके एक विशेष भंगिमा और वक्रता से आंतर सौन्दर्य का उद्घाटन करे वही आंतरस्पर्शी रम्यछाया का अभिव्यन्जक काव्य छायावाद है।" महादेवी वर्मा ने छायावाद में एक " नव रहस्यवाद" की अनुभूति की। उनके अनुसार " उसने परावियों से अपार्थिवता ली, वेदांत के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सब को कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य भाव-सूत्र में बांध कर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय तथा हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।" परन्तु छायावादी संपूर्ण काव्य के परिवेदय में अपार्थिवता और अलौकिकता प्रधानतीत नहीं हैं। डा० नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह बताया। उनके अनुसार " स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप रंग, रूढ़ि आदि सन्निविष्ट हैं और इसके प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वातंत्र्य का विद्रोह और काव्य में बंधनों के प्रति स्वच्छंद कल्पना का विद्रोह।" डा० नगेन्द्र के द्वारा दी गई यह छायावाद की परिभाषा अधिक स्पष्ट एवं ग्राह्य प्रतीत होती है।

प्रवृत्तिपरक दृष्टिकोण से छायावाद को व्यापक काव्य प्रवृत्ति माना जा सकता है। छायावाद काव्य शैली विशेष से कुछ अधिक है। पंत जी के अनुसार छायावाद " मूल्य केन्द्रिक" काव्य है। विभिन्न विद्वानों ने छायावाद में स्वातंत्र्य अथवा कवि स्वातंत्र्य, स्वानुभूति की विभूति, कल्पनाशीलता, वेदना की विभूति, प्रेमानुभूति, सौंदर्यबोध, प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, राष्ट्रीय भावना, लोकमंगल एवं मानव कल्याण, विश्वमानवतावाद, सांस्कृतिक गरिमा, अभिव्यन्जनाकौशल तथा भाषा का लाक्षणिक प्रयोग आदि प्रवृत्तियों को स्वीकार किया है। इनमें से अधिकांश प्रवृत्तियाँ, प्रसाद, पंत, निराला, मनेही तथा महादेवी वर्मा आदि उस युग के प्रतिनिधि कवियों की काव्य कृतियों में देखी जा सकती हैं

इस युग में रामकाव्य की स्वतन्त्र भी वर्णनात्मक प्रबंध, महाकाव्य, खण्डकाव्य, काव्यनाटक अथवा नाट्य प्रबन्ध, पर्यायबंध काव्य, आख्यानक निबन्ध काव्य, पत्रकाव्य, प्रबंध मुक्तक तथा गीत-प्रगीति आदि अनेक प्रकार के काव्यों का सृजन इस काल में हुआ। वर्णनात्मक प्रबंध का उदाहरण श्री सीताराम सहकार कृत " श्री सीता रामचरितायन" है जो सन् 1925 ई० में ब्रजभाषा में रचा गया। इसमें सात काण्ड हैं। रामकथा को कुछ

संक्षिप्त करते हुए कवि ने सीता-राम का चरित्र प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया है। महाकवि जी की यह कृति अपनी भावमयी मौलिकता, सरलता तथा भाषा सौन्दर्य के कारण बिहार प्रान्त में विशेष रूप से समादृत रही। इस युग का एक अन्य कलात्मक पूर्ण काव्य श्री बिहारी लाल चिरकाँ कृत श्री कोकेन्द्र कौतुक" है। इसकी रचना सन् 1936 ई० में ब्रजभाषा में "रामचरितमानस" के अनुकरण पर की गई है। इसमें धार्मिक दृष्टिकोण की प्रमुखता है। विशेष मौलिकता न होने पर भी यहाँ-वहाँ संवाद योजना सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण है।

राम काव्य में इस युग का प्रथम महाकाव्य श्री रामचरित उपाध्याय की कृति रामचरितचिन्तामणि है। इसकी रचना सन् 1920 में हुई थी। इसके पूर्व उपाध्याय जी रामचरितचन्द्रिका की रचना कर चुके थे। पश्चात सर्गों में बद्ध रामचरितचिन्तामणि अपने समय के परिवेश से पुर्णरचित है। आदर्श निर्धारण अति स्पष्ट है। घटनाक्रम का संयोजन व्यवस्थित है तथा वातावरण का सजग चित्रण किया गया है। इस युग का दूसरा उल्लेखनीय तथा सर्वाधिक लोकप्रिय महाकाव्य "साकेत" है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने इसकी रचना सन् 1931 ई० में की थी। साकेत में रामकथा बारह सर्गों में समस्त काव्य सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत की गई है। गुप्त जी की साकेत रचना के प्रेरणा स्रोत आचार्य द्विवेदी हैं। रामकथा की "उपेक्षित पात्र" उर्मिला के चरित्र उत्कर्ष पर विशेष बल दिया गया है। इस काव्य में कथा संयोजन विशिष्ट रूप से मौलिक है। "हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास" के अनुसार, "सरसता भावव्यन्जना में मौलिकता, पात्रों के सहज मनोविज्ञान, शिल्प सम्बन्धी नए नए प्रयोगों आदि की दृष्टि से गुप्त जी की रचनाओं में इसका अन्यतम स्थान है।" इस युग का एक अन्य विशिष्ट महाकाव्य पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" कृत "उर्मिला" है। "हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास" के अनुसार इसकी रचना सन् 1930-34 में हुई, परन्तु इसका प्रकाशन सन् 1957 ई० में हुआ। अनेक इतिहासकार ने इसे छायावाद-युगीन काव्य ही माना है। "उर्मिला" पर द्विवेदी युगीन नीतिवाद तथा आदर्शवाद का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। कवि ने काव्य की वस्तुयोजना में छायावाद के स्वच्छंदतावादी तत्वों को ग्रहण किया है। इस काव्य की विशेषता लक्षण एवं उर्मिला के चरित्र की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। अभिव्यन्जना के क्षेत्र में सर्वत्र विभाषा कालुयोग की इसकी विशिष्टता है। डा० सत्येन्द्र प्रसाद मिश्र ने सन् 1934 ई० में "कौशल किशोर" की रचना की। इसकी कथावस्तु "मानस" के बालकाण्ड पर आधारित है परन्तु इस पर समसामयिक शिल्प पद्धति का प्रभाव भी द्रष्टव्य है। इसमें

भक्ति भावना के साथ ही घटनाओं के वैज्ञानिक औचित्य, पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों के सम्प्रेषण तथा रसनाभिव्यक्ति के औदात्य की ओर भी कवि की दृष्टि रही है। इस युग का रामकथा विषयक एक अन्य महाकाव्य रामनाथ " कीर्ति" का " श्रीराम-चन्द्रोदय काव्य" है जिसकी रचना सन् 1937 ई० में हुई थी। इस काव्य में रामकथा का विस्तार तो राम जन्मान्त तक ही है परन्तु वानप्रस्थ धर्म, विविध युद्धों, विभिन्न-आपद्धर्म आदि नाना के विषयों का आदर्शवादी प्रतिपादन भी किया गया है। संवादकला वैसे तो बहुत निम्न है तथा छंद वैविध्य दृष्टव्य है। भाषा लिष्ट है।

इस युग में रामकथा के विभिन्न अंगों पर खण्डकाव्यों की रचना भी हुई। "विष्णु" कवि ने सती सुलोचना की रचना सन् 1922 में की परन्तु इसका प्रकाशन सन् 1931 में हुआ। इसमें " मेघनाद वध पर उसकी पत्नी सुलोचना की प्रतिक्रियाओं का मार्मिक चित्रण किया गया है। सन् 1924 में काशी प्रसाद मिश्र की " वियोगिनी सीता" वाल्मीकि आश्रम में सीतानिवास की कथा को लेकर लिखी गई। सन् 1928 में श्याम-नारायण पाण्डेय का " मेवाड़ के दो वीर" खण्डकाव्य रचा गया। यह लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध को लेकर लिखा गया है। कवि ने लक्ष्मण का चरित्र अपनी ओजपूर्ण वाणी में चित्रित किया है। सन् 1931 में कुंजदास राय ने ब्रजभाषा में " चित्रकूट" लिखा। इस खण्डकाव्य में राम के चित्रकूट निवास का वर्णन है जिसमें प्रकृति चित्रण सुन्दर है। छन्दों विधान। सन् 1932 में विश्वनाथ शुक्ल " तिरस" का काव्य " भरत-भक्ति" ब्रजभाषा में रचा गया। यह विलाप काव्य है जो बाईस सर्गों में विभक्त है। इसकी वर्णनात्मकता ही इसकी विशिष्टता है। काव्य से कवि की बहुज्ञता प्रकट होती है। गणेश मिश्र के " झरी" खण्ड काव्य की रचना सन् 1936 में हुई। यह भी ब्रजभाषा में है। इसकी भाषा मधुर एवं काव्य सरस है।

निराला के " परिमल" में संकलित " पंचवटी प्रसंग" कुछ अंशों में लघु काव्य नाटक कहा जा सकता है। आख्यानक निबन्ध काव्य के अन्तर्गत कुछ साहित्य इतिहासकार ने रामविलास " रामराज्य" की गणना की है। यह ब्रजभाषा में 1933 ई० में रचित भक्तिभावपूर्ण आख्यान काव्य है। इसमें रामकथा के मुख्य प्रसंगों के माध्यम से जीवनादर्शों को प्रस्तुत किया गया है। छायावाद का प्रभाव इस पर नहीं है। राय सत्यिदास बहादुर ने " रामायण" की रचना भी इसी वर्ष की है जिसमें मुख्य कथा प्रसंगों तथा नदियों निर्झरों की सजीव सहायता दिया है। पूर्वार्ध मुक्तक विधा के अन्तर्गत सन् 1910 में रची गयी " रामायण दिग्विजय कवितावली" को रखा जा सकता है। इसके रचयिता श्री रामाधीनदास हैं तथा इस पर तुलसी की कवितावली का प्रभाव दृष्टव्य है। यह ब्रजभाषा में है तथा सात काण्डों में विभक्त है। कवित्व गुण सामान्य कोटि का है।

" हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहास" में रामचरित उपाध्याय की रामचरितचन्द्रिका की गणना भी इसी श्रेणी में की गई है । रामचरितचन्द्रिका की रचना सन् 1919 ई० में की गई थी । इसमें रामायण के प्रमुख पच्चीस पात्रों " का चरित्र वर्णन किया गया है । इसमें कथाक्रम का निर्वहन नहीं है, मुक्तक शैली में केवल चरित्र-चित्रण किया गया है । काव्य शैली की दृष्टि से नवीन है तथा राम काव्य जगत् में चिन्तन के रूप में नवीन युग का उद्घोष करता है । सन् 1924 में अनूपलाल माथुर द्वारा प्रणीत में रचित "श्रीमद्रामरसामृत" भी पूर्वी मुक्तक शैली की श्रेणी का काव्य है । इसमें रामकथा का सातकाण्डों में निर्वाह हुआ है । इस युग में मुक्तक शैली में प्रणीत में श्री रामावतार दास रामायणी " रामसखी" द्वारा विरचित " श्रीरामावतार भजन तरंगिणी," "रामसखी सतक," आदि काव्य रसिक रामभक्ति पर आश्रित हैं । अनुवाद के रूप में माहेश्वर मधुसूदनदास कृत " मेवाड़ वध काव्य" । बंगला काव्य का कविवर मैथिलीशरण गुप्त द्वारा " मेघनाद-वध" नाम से किया गया काव्यानुवाद प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ । इसकी रचना सन् 1927 में हुई थी । इसमें कवि प्रकृति का ओज बनाये रखने में सफल रहा है । इस युग में सत्यनारायण के रूप में भी कुछ कविताओं की रचना हुई । तब कुछ निश्चय कहा जा सकता है कि इस युग/रामकाव्य सृजन भी उत्कर्ष पर रहा है ।

छायावाद-युगीन रामकाव्य यद्यपि भक्ति प्रेरित हृदय की रचना है परन्तु इसमें नवयुग की नवचिन्तन धारा का प्रस्फुटन स्पष्टतः से झलक उठा है । इस युग के काव्य में कवियों की दृष्टि नवीनता की ओर आकृष्ट हुई है । रामकथा के चिर पुरातन पात्रों को नवयुग के नव परिवेश में देखा गया है । इस दृष्टिकोण से रामचरित उपाध्याय की " रामचरित चन्द्रिका" का उल्लेख विशेष रूप से किया जाना चाहिए । इस काव्य में कवि ने कथाक्रम एवं कथाक्रम का विस्तरीकरण न करके पात्रों का चरित्र चित्रण किया है । यह चरित्रचित्रण भी परम्परागत दृष्टिकोण से भिन्न है । इसमें कवि ने दशरथ एवं विभीषण के चरित्र का उत्कर्ष किया है तथा कैकेयी, भरत आदि के चरित्र का उत्कर्ष किया है । भाषा में उर्दू का ही प्रयोग अधिकांशतः किया गया है । इस युग के रामकाव्य रचयिताओं में भी कवि स्वातंत्र्य स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है । छायावादी काव्य की यह प्रवृत्ति इस युग के लगभग सभी कवियों में देखी जा सकती है । रामचरित उपाध्याय द्वारा विरचित " रामचरित चिन्तामणि" में भी यह प्रवृत्ति दृष्टव्य है । इसको हम मूल्यकेन्द्रित काव्य कह सकते हैं । युगानुरूप आदर्श स्थापन की दिशा में कवि सफल है । राष्ट्रीय भावना एवं देश प्रेम का अनेक प्रभावशाली है । इस युग की सर्वाधिक

लोक प्रिय रचना कवियत्री महादेवी वर्मा की "साधना" है। इसकी विषय-वस्तु, योजना कवि ने ऊर्मिला को केन्द्र में रखकर की है जिसमें पुरानी परम्परा से भिन्नता एवं मौलिकता है। चरित्र-चित्रण पर बल भावपूर्ण संवाद, प्रकृति चित्रण, मौलिक कल्पना का सौन्दर्य एवं सुन्दर शब्द चयन आदि ऐसी छायावादी प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्होंने इस अभिनवरस काव्य को अपनी रम्यछाया से अति सुन्दर बना दिया है। चित्र श्री रूपा चयन, उपेक्षित पात्रों को उठाने की दिशा आदि में कवि निश्चित रूप से पुरोधा है। कवि की राष्ट्रीय भावना तथा भावपूर्ण सरस भक्ति भावना वन्दनीय है। पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" की "उर्मिला" में भी कथा का नवीन संयोजन, स्वच्छंद-कल्पना, आदर्श-प्रेम, राष्ट्रीय-भावना तथा युगानुरूप आदर्शों आदि की स्थापना काव्य पर छायावादी प्रभाव की ओर संकेत करती हैं। इसी प्रकार इस युग में रचित "कौरव विजय" काव्य। पं० गयाप्रसाद मिश्र द्वारा रचित। में भी कुछ छायावादी तत्वों जैसे विषयवस्तु की नवीन संयोजना, स्वाभाविक कल्पना का विकास, भावुकतापूर्ण संवाद, युगानुरूप आदर्श आदि का सौन्दर्य द्रष्टव्य है। इस प्रकार छायावाद-युग में रचित रामकाव्य पर छायावादी तत्वों की छाया देखी जा सकती है परन्तु इनमें छायावाद के सम्पूर्ण लक्षण विशेषकर अप्रस्तुत योजना। अलंकार विधान, शब्दों का लाक्षणिक प्रयोग, प्रतीकात्मकता आदि विशिष्ट रूप से प्रयुक्त नहीं हुए हैं, स्वाभाविक रूप से यहाँ यहाँ अवश्य दृष्टिगत हो जाते हैं। विशेष बात यह है कि छायावादी युग में पूर्णतया छायावादी काव्य कोई नहीं रचा गया परन्तु छायावाद की झलक लगभग सभी उच्च कोटि काव्यों में देखी जा सकती है। हाँ छायावाद युग के पश्चात् लिखा गया दिनकर जी का काव्य "उर्वशी" लगभग सभी अंशों में छायावादी काव्य कहा जा सकता है। इस काव्य के विषय में आठवें अध्याय में चर्चा की जायेगी।

भरत-चरित्र की दृष्टि से इस युग के काव्य महत्वपूर्ण हैं, विशेषकर "साकेत"। "साकेत" में कवि ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कैकेयी तथा भरत के चरित्र का उत्कर्ष एवं उसे अति सुन्दर एवं कल्याण भावों से परिपूर्ण बना दिया है। जहाँ "साकेत" में भरत के चरित्र का मनुष्य के परिप्रेक्ष्य में विकास किया गया है वहाँ "भरत-भक्ति" काव्य में उनके परम्परागत लोक्य भरत स्वरूप देखने कराने पर हैं। गुप्त जी के भरत पर अध्या-त्म से उद्भूत मानसिक प्रतिक्रियाओं का प्रभाव प्रशंसनीय रूप में प्रदर्शित किया गया है। "तिलक" के भरत में परम्परागत स्वरूप, त्यागमय तथा भक्ति का उद्रेक प्रशंसनीय है। इस युग के शेष काव्यों में भरत का चरित्र गौण रूप से अंकित है। इस अध्याय में इस युग के कुछ प्रतिनिधि रामकाव्यों के विषय में भरत-चरित्र के परिप्रेक्ष्य में चर्चा की जायेगी।

रामचरित-चन्द्रिका

इस काव्य के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1923 में हुआ है। ग्रन्थ अभी कुछ वर्ष पूर्व ही लिखा गया होगा। इसके कवि पं० रामचरित उपाध्याय हैं। इस 88 पृष्ठों के छोटे से काव्य में कवि ने अपने मन की भावनाओं के अनुकूल कुछ पात्रों के चरित्र का उत्कर्ष किया है, जैसे कैकेयी, बाली, रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद आदि का तथा कुछ अपकर्ष किया है जैसे दशरथ, सुग्रीव तथा विभीषण का। राम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा हनुमान के चरित्र परम्परानुसार अथवा रामायण के अनुसार ही चित्रित किए हैं। कवि ने यह पुस्तक "रामचरित-चिन्तामणि" की रचना से पूर्व ही रची थी। रामचरित चिन्तामणि में कवि का दृष्टिकोण अधिक उदार है। हेय-प्रेय दोनों ही कार्यों में है।

कवि ने भरत का चरित्र-चित्रण अठारह छंदों में किया है। उसने भरत के चरित्र में उन्हीं गुणों की ओर संकेत किया है जिनकी झाँकी हम वाल्मीकीय रामायण में पाते हैं। कर्त्तव्यपरायणता में भरत राम से भी बढ़-चढ़ कर थे। वे धर्म के सिन्धु तथा दया के सूर्य थे।[1]

भरत का दुर्भाग्य यह था कि वे जितने निर्दोष थे उतने ही अधिक दोषारोपण उन पर किए गए। पिता यह कह कर मरे कि "भरत मेरी अन्त्येष्टि न करें।"[2]

1- धर्म धर्म में राम भरत। जो थे सुखसार, उतनी उनको धर्म आज भी थे बढ़ चढ़कर।
× × × × ×
रहे धर्म के सिन्धु, दया के दिनकर पूरे, पर तो भी हुए भरत! भाग्य के रहे अधूरे।
। रामचरित-चन्द्रिका, भरत। सर्ग 2 ।
जो शिव को देकर अन्न जन्मदीन शिवरात्रि हुआ, वह दूध रोटी का कलेवा अवधपति के घर हुआ ।।48 ।।
× × × × ×
दशरथ पुत्र वियोग जीन है भाग्यवाला? विधु बन जिसके श्रीनाथ है पैर छुआ।
प्रभुवर ।। अनुकम्पा की थिती के लिए जो, तम तुकलायिनी तो छवी भाँति की हो ।। 51 ।।
रामचरितचिन्तामणि सर्ग 1, 47 से 51 ।

2- "भरत न मम अन्त्येष्टि करें" यह कारण कहकर,
मरे आपके पिता, दुःख दारुण को सहकर।
रामचरितचन्द्रिका, भरत 2 ।

भरत जब राम को मनाने चित्रकूट गए तब लक्ष्मण तथा लक्ष्मण दोनों ने ही उन पर सन्देह किया[1]। यहाँ तक कि स्वयं राम ने सीता को समझाया था राज्य पाकर व्यक्ति मदमुक्त हो जाते हैं। अतः जब तक भरत यहाँ रहें तब तक तुम मेरी प्रतीक्षा मत करना[2]। भरद्वाज मुनि ने भी भरत से पूछ ही लिया, " निरपराध हैं राम सीता हो क्यों उनको ? और निरपराध भरत को यह समस्त दोषारोपण क्योंकर सहन करने पड़े, यद्यपि भरत के कार्यों ने बाद में इन समस्त शंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया। इस प्रकार भरत कला के रूप तथा साधुओं के शिरोमणि रहे हैं[3]।

कवि के अनुसार भरत सत्यव्रत, कलाशील, दयालु, समदर्शी, निरहंकार, निष्काम, निर्लोभ तथा क्रोध रहित थे। वे प्रभु-भक्त हैं। राम को मनाने में चित्रकूट गए, राज्य का परित्याग कर दिया[4] तथा राम के बिना अयोध्या में प्रवेश नहीं किया। चौदह वर्ष कठिन तपस्या में व्यतीत किए। पशुओं-पक्षी के समान निर्लिप्त रहकर राम की राज्य-लक्ष्मी की सुरक्षा करते रहे। भरत अद्वितीय त्यागी हैं। सब से प्रेम करनेवाले भरत अजातशत्रु हैं। वे योगियों के नायक हैं। बड़े भाई के साथ किस प्रकार का आचरण करना चाहिए यह बात कला ने भरत से ही सीखी है। भरत ने लोक को शिक्षा दी कि अपयश के साथ मिला हुआ स्वर्ग का सुख भी त्याज्य है। भरत की दया का उदाहरण मंथरा को क्षमा से जाना है। पाप तो भरत के समीप फटक नहीं सकता है। वे वीर हैं। उनके बाण वज्र से भी कठोर हुआ करते थे, परन्तु भरत सदैव नम्र ही बने रहे[5]। कवि की दृष्टि में भरत का चरित्र रामचन्द्र से भी अधिक पवित्र है,-

" भरत आप का चरित काव्य निर्मल है मेरा,
रामचरित भी कभी नहीं हो सकता मेरा।"

1- "यद्यपि थे निर्दोष भरत ! पर तो भी तुम पर, दोषारोपण किया अनेकों ने क्यों चिढ़कर ?
निरुत्तरा के साथ राम को गए मनाने, लक्ष्मण तुमको देख लगे तब धनुष चढ़ाने।
रामचरित चन्द्रिका, भरत, 3 ।
तथा- केवट को भी तुम्हें देखकर रोष हुआ था ; पर जब तुम से मिला तो तब तोष हुआ था।
रामचरित-चन्द्रिका, भरत, 5 ।

2- सीता को भी यहाँ राम ने- था समझाया ; यह होगा मदमुक्त राज्य को जिसने पाया।
मेरे मुख या भरत-दोष को तुम मत कहना, जानकि ! जब तक रहें भरत तब तक तुम रहना।"
रामचरित-चन्द्रिका, भरत 4 ।

3- हे सत्यव्रत भरत ! कला के रूप रहे तुम, ज्ञान-मेरु थे, साधुओं के शूर रहे तुम।
रामचरित-चन्द्रिका, भरत 6 ।

4- रामराज्य दो भरत ! सँभाला तुमने दोनों, जल से सीकर किन्तु कभी हो जल में खोनी।
रामचरित-चन्द्रिका, भरत 9 ।

5- वज्र से भी कठोर आप के पर सायक थे,
सदा राम के आप को तो भी पायक थे।
रामचरित-चन्द्रिका, भरत 12 ।

रामचरित-चिन्तामणि- एक रामचरित उपाध्याय

रामचरित चिन्तामणि की भूमिका में श्री रामदहिन मिश्र ने लिखा है," समय का प्रवाह कुछ ऐसा बह आया है कि सभी दिशाओं में नयी कल्पनाएँ - नयी भावनाएँ - सब को पसन्द आने लगी हैं और उनमें एक नए भाव का संचार होने लगा है । इस अवस्था में इस नवाभ्युत्थान के भावावेशकाल में यह आवश्यक था कि हम अपने पूज्य पुरातन रामायण को नये रंगढ़ंग में पढ़ें, नयी रचना में उसका आनन्द लूटें और उसके नये भावों से दीक्षित हों । बड़े आनन्द की बात है कि इस उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ " रामचरित-चिन्तामणि महाकाव्य प्रस्तुत हुआ ।"[1]

रामचरित-चिन्तामणि की रचना श्री रामचरित उपाध्याय ने मुख्यतः से वाल्मीकि रामायण के आधार पर की है परन्तु यह क्या संक्षिप्त है । उनकी शैली सुन्दर तथा कहीं कहीं हृदय को मुग्ध करने वाली है । कवि ने प्रथम सर्ग में मुख्यतः अयोध्या नगरी के विस्तार, सौन्दर्य एवं वैभव का वर्णन किया है । राजा दशरथ के द्वारा हयमेध - यज्ञ किया गया परिणामस्वरूप उनको चार पुत्रों की उपलब्धि हुई । सर्ग के अन्त में राम के पराक्रम का अवतार होने की बात कवि ने स्पष्ट कर दी है[2] । द्वितीय सर्ग में बाल-लीलाओं का वर्णन है । राम को बनाने के लिए कौसल्या जो गान गाती हैं उनमें देश-प्रेम का उद्घोषण है । वे राम से देश की रक्षा करने को कहती हैं तथा राम को स्वदेश सेवा का स्पष्ट आदेश देती हैं[3] । तृतीयान्त विश्वामित्र के साथ राम के जाने का प्रसंग है । विश्वामित्र

1- देखिए रामचरितचिन्तामणि की प्रस्तावना पृष्ठ- 1 ।

2- चित्रधामसुन्दर राम को मन हित होते मोद में,
यह है भक्त कर रो रहा चिरपेक्ष दशरथ गोद में ॥47 ॥
चितकी मुकुटि टेढ़ा हुए यह नाचता तोतार है,
यह छुक करके नाचता अवधेश के आगार है ।
जो शिव की देकर आज वन्दीश चिरकाल हुआ,
वह दूध रोटी का वसुधा अधिपति के घर हुआ ॥48 ॥

दशरथ पुत्र ऐसा कौन है भाग्यवान ?
विधु बन चिरके श्रीनाथ है घर हुआ ।
प्रभुवर ! ! अनुकम्पा की निधि के लिए जो,
तव सुकल्याणिनी सी छवि भाँति की हो ॥ 51 ॥
रामचरितचिन्तामणि सर्ग 1, 47 से 51 ।

3- बनी बनी हुए ! नेत्र लोल दो, सुधा सने से " अवधेश" बोल दो ॥ 3 ॥
स्वदेश-सेवा-व्रत से नहीं कभी, उठो, उठो राम ! तुम्हें में लगी ॥ 17 ॥
रामचरित चिन्तामणि, सर्ग 2, 3 से 21 ।

अनेक स्थलों पर स्त्री होते हुए भी दुष्टा ताड़का के वध का आदेश राम को देते हैं। कवि ने यहाँ राम को स्त्री वध के कलंक से मुक्त करने का प्रयास किया है।[1]

तीसरे सर्ग में अहिल्या उद्धार की कथा है। अहिल्या की राम के प्रति स्तुति देव के उद्धार की मंगलकामना है।[2] जनक की वाटिका का राम के द्वारा अवलोकन विशिष्ट है। यहाँ भी देव भक्ति पूर्ण सूक्तियाँ राम से कहाई गई हैं।[3] राम-सीता का प्रथम मिलन यहाँ दर्शित नहीं है। धनुर्भंग, तथा परशुराम प्रसंग का वर्णन है। राम विवाह की कथा कथानक में कह दी गई है। पाँचवें से सातवें सर्ग तक राम के वनगमन का वर्णन है। आठवें सर्ग में वन-पथ पार करने तथा चित्रकूट का वर्णन मिश्र में किया गया है। दशरथ के देह त्याग तथा भरत के अयोध्या आने पर विलाप शोक वर्णित है। कवि ने राम को कलंकित होने से लिए भरत से कैकेयी की भर्त्सना नहीं कराई है। वाल्मीकीय रामायण के समान यहाँ भी कौसल्या भरत से कटु वाक्य कहती हैं तथा भरत आत्मग्लानि अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। भरत राम के पास चित्रकूट जाते हैं। यहाँ रामभरत से वाल्मीकीय रामायण के आधार पर अनेक प्रश्न-प्रश्न करते हैं। चित्रकूट की मंत्रमूलक सभाओं का वर्णन कवि ने नहीं किया है और न वे वार्तालाप ही हैं जिनसे भरत के धर्म, विवेक, भक्ति एवं प्रेम से परिपूर्ण हृदय की झाँकी पाठक को प्राप्त होती। अनावश्यक आलाप से प्रतीत होने वाले प्रसंगों को अंकित कर राम से कहाकर तथा चित्रकूट प्रसंग आदि को छोटे छोटे छंदों में कह कर कवि ने भरत को अयोध्या पहुँचा दिया। दसवें सर्ग से सत्रहवें सर्ग तक राम के वन चरित्र एवं सीतान्वेषण आदि का वर्णन है। यह वर्णन एवं प्रकृति-चित्रण अपनी विशिष्टता है।

अठारहवें सर्ग से बाईसवें सर्ग तक विभीषण अरण्यगति, सेतुबन्ध, अंगद दौत्य, कुम्भ एवं रावणादि वध वर्णित है। इसमें "मानस" से अलग और है कि लक्ष्मण शक्ति प्रसंग में हनुमान भरत से नहीं मिले हैं तथा यहाँ मेघनाद वध-प्रसंग में नहीं अपितु रणक्षेत्र में मारा जाता है। यह विस्तार का प्रसंग नहीं है। तेईसवें सर्ग में राम का अयोध्या

1- देखिए, रामचरित चिन्तामणि, सर्ग 2, 42 से 46 तक।
2- देखिए, " " सर्ग 3, 9 से 19 ।
3- स्वामन्य मु में मिलते न प्रीति हो,
उन्हीं की हो पर में प्रतीति हो।
स्वतापना को सुख हो वे सभी,
न मानो मानस सुख भी कभी।

रामचरित चिन्तामणि, सर्ग 3, 43 ।

की आकांक्षा है । वाल्मीकि रामायण के समान यहाँ भी भरत के हृदय के भेद को लेने तथा भेद जानकर ही उनको राम के आगमन की सूचना देने हेतु हनुमान को राम भरत के समीप भेजते हैं । रामराज्याभिषेक का वर्णन अति संक्षिप्त है । अपने जन्म में अन्य पुकारने का कारण देकर राम ने वशिष्ठ तथा वामदेव को विदा किया । सुग्रीव तथा हनुमान को भी विदा कर दिया । वशिष्ठ द्वारा राजनीति का उपदेश कराया गया है । रामराज्य वर्णन विस्तार से किया गया है । चौथीसवीं एवं पच्चीसवीं सर्गों में सीता निर्वासन तथा शम्बूक-वध वर्णित है । राम के अश्वमेध यज्ञ के अश्व को लव द्वारा पकड़ लेने, लव के राम की सेना द्वारा बाँध लिए जाने तथा कुश द्वारा उनका उद्धार होने का वर्णन, यज्ञ के प्रसंग में लवकुश द्वारा रामायण गान तथा राम से लवकुश का मिलन दिखाकर ग्रन्थ की समाप्ति कर दी गयी है । सीता के भूमि प्रवेश का उल्लेख नहीं है ।

रामगीत चिन्तामणि की विषय-वस्तु सम्बन्धी विशेषताएँ:-

1- काव्य का आधार वाल्मीकीय रामायण है ।

2- राम को परब्रह्म का अवतार माना गया है तथा ग्रन्थ के आरम्भ में कवि की भक्ति भावना स्पष्ट रूप से आती है । जैसे जैसे ग्रन्थ का विकास होता गया है कवि की भक्ति भावना तिरोहित होती गयी है तथा विभिन्न आदर्शों की स्थापना का प्रयास तथ्यात्मक वस्तु स्थिति में सामने आया है ।

3- कवि ने राम को परब्रह्म का अवतार तो माना है परन्तु वह उनका चरित्र-चित्रण तुलसी के समान सर्वथा दोष-हीनता एवं मुक्तारिपुणता के रूप में नहीं कर सका है । आगे अनेक स्थलों पर राम के कार्यों की कटु आलोचना कराई है, जैसे वालि-संवाद राम से मुनियों का संवाद, पुत्र-मिलन से दुःखी पिता द्वारा राम की आलोचना तथा लव-कुश-राम संवाद आदि में । कवि ने घटनाओं का वर्णन किया है परन्तु राम का चरित्र बहुत कम किया है ।

4- कवि की दृष्टि प्रायः रूप से देश-प्रेम पर अटकी रही है । कथा में यत्र-तत्र अवसर निकाल कर वह देश प्रेम का उपदेश देता रहा है । अतः यह प्रयास प्रशंसनीय है ।

5- आदर्श राजनीति एवं आदर्श राजा की परिकल्पना भी कवि ने की है ।

6- महत्वपूर्ण प्रसंगों तथा आदर्श चरित्रों का प्रभावशाली उल्लेख नहीं हो पाया है जैसे भरत तथा कौसल्या का चरित्र सम्यक उपेक्षित रहा है ।

रामचरित चिन्तामणि में भरत:- कुंभी ऋषि द्वारा यज्ञ कराये जाने पर राजा दश.. ने चार पुत्र प्राप्त किए । इनमें भरत भी थे यह समझा जा सकता है । कहीं स्पष्ट रूप से जन्म तथा बाल-लीला के प्रसंग में किसी भाई के नाम का उल्लेख तक नहीं किया गया है । इसी प्रकार विवाहादि के विषय में कवि ने मात्र यही कहा है-" चारों पुत्रों को ब्याह कर आये नृपति निज धाम पर ।" भरत का नाम प्रथम बार कैकेयी मंथरा संवाद में सुन पड़ता है जहाँ पहिले तो कैकेयी को राम और भरत समान प्रिय हैं फिर वह भरत को राज्य दिलाने के लिए राम को वनवास दिलाती है । पुनः छठे सर्ग में राम वन जाने हेतु विदा लेते समय सीता को समझाते हैं कि उनको भरत के प्रति किंचित् वर्ष आदरादि व्यवहार रखना चाहिए क्योंकि भरत राजा होंगे । यहाँ राम भरत की प्रशंसा में एक भी शब्द नहीं कहते हैं जो उनके साधु-सरल स्वभाव के प्रतिकूल है । सातवें सर्ग में वाल्मीकि रामायण के समान ही लक्ष्मण दशरथ कैकेयी तथा भरत को मारकर राम को राज्याभिषिक्त करने हेतु उत्तेजनापूर्ण सम्भाषण करते हैं । भरत को सौतेली माँ से राज्य मिलना उनको अच्छा नहीं लगा । राजा दशरथ ने रूठ छोड़ कैकेयी से कहा कि " भरत तेरे होकर भी कभी तेरे वश में नहीं रहेंगे[1] ।"

भरत केवल सर्ग प्रथम में तब होते हैं जब भरत गुरु का निर्देश सुनकर ननिहाल से अयोध्या आते हैं । नगर की दशा देखकर उनको अशुभ की आशंका होने लगी । वे कैकेयी से पूछने लगे कि, " माता ! पिता कहाँ हैं ? तथा उत्तर में कैकेयी ने पिता के निधन का समाचार उनको सुना दिया । पिता का निधन सुनकर भरत मूर्छित हो गये । चेतना के लौटने पर वे चिल्ला-चिल्ला कर विलाप करने लगे[2] । कैकेयी ने भरत को संसार की नश्वरता बताते हुए समझाने का प्रयास किया[3] । भरत का शोक जब कुछ कम हुआ तो उन्होंने राम के विषय में पूछा कि वे कहाँ हैं ? उनसे मिलकर पितृ-शोक कुछ घट सकता है । पिता के अन्तिम समय उनके निकट न होने का दुःख भरत के मन में था । उन्होंने माँ से पूछा कि पिता मरते समय उनके लिए क्या कह गए हैं । कैकेयी सरल क्या उत्तर देती । उसने उनसे यही कहा कि , " जब राम सीता सहित वन से लौट कर आयें तभी तुम उनसे मिल सकोगे । इस समय तो भरत देश का निष्कंटक राज्य

1- मेरे वचन झूठे ! तुझे क्या कुछ जायेंगे कभी ?
तेरे भरत हाँ पर न तेरे साथ जायेंगे कभी ।।
रामचरित चिन्तामणि, सातवाँ सर्ग, 77 ।

2- देखिए रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 37-41 ।

3- " " " 42-50 ।

करो।" कैकेयी ने राम वनगमन का कारण भी भरत को समझा दिया[1]। यहाँ भरत कैकेयी को भर्त्सना नहीं के बराबर करते हैं। वे केवल यही कहते हैं,-

कैसे गए क्यों राम वन में ? राज्यक्यों कुछ को मिला ?
क्यों आम में काँटा उगा ? क्यों भस्म में पंज खिला ?
तेरे लिए नरनाथ की भी दुष्टि कैसे खो गई ?
गो के लिए क्यों बाघिनी हा ! पापिनी तू हो गई ?

। रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 56 ।

कैकेयी ने उन्हें बहुत समझाने की चेष्टा की परन्तु उन्होंने उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। वाल्मीकीय रामायण में जहाँ भरत माँ के कुकृत्य की भर्त्सना करते थकते नहीं हैं और यदि राम का भय न होता तो वे उसको मार तक डालते, वहाँ रामचरित चिन्तामणि में भरत कैकेयी के कथन की मात्र उपेक्षा ही करते हैं तथा उठकर कौसल्या के पास चले जाते हैं। कौसल्या यद्यपि उठकर भरत को हृदय से लगाती हैं परन्तु " छल-छद्म" कह कर उन्हें सम्बोधित करती हैं तथा अनेक निष्ठुर वाक्यों से भरत को ममाहित करती हैं[2]। परिणामस्वरूप भरत को अपनी निर्दोषिता दो दो बार कानूनी सिद्ध करनी पड़ी है[3]।

नवाँ सर्ग भी भरत चरित से परिपूर्ण है। " परस्व " ग्राह्य नहीं होना चाहिए" अष्टम एवं नवम सर्गों में सार रूप से यही बात कही गई है। भरत ने गुरु के समझाने पर दशरथ की पारलौकिक क्रिया की। सचिवों ने भरत को राज्याभिषिक्त करना चाहा। परन्तु भरत किसी भी प्रकार राम का स्थान लेने के लिए तैयार नहीं हुए[4]। मंत्रियों को समझा-बुझाकर भरत ने राम के समीप जाने का निश्चय कर लिया[5]। बिना राम के राज्य

- -

1- देखिए रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 54- 55 ।
2- छल से छल सदृश ! हा मुधा, कलवाती मम राम को बना ।
तुझ से छल-धान्य-पूरिता, तुम थोथी माकन्दका मही ।। 62 ।।
। रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 61-64 ।
3- देखिए रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 65-72 ।
4- फिर सचिवों ने तिलक भरत का करना चाहा, राम-स्थान पर नहीं भरत ने हरना चाहा।
हुए निरुत्तर सभी भरत के उत्तर सुनकर, क्या उन्होंने नीति तत्व को ऐसे गुनकर ।।
। रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 5 ।
5- जहाँ राम के सहित मिलेंगी जनक-दुलारी, प्राप्त करूँगा वहीं, करो सचिवो ! तैयारी ।
मिले राम को राज सभी में भी सत्वरा हूँ ; जानकी कर नहीं सलाहल भी सत्वरा हूँ ।।

लिए भरत को जीवन दुस्तर लगता है । भरत ने वन के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में निषाद राज ने यह समझ कर कि भरत राम को मारने जा रहे हैं अपने सैनिकों को भरत से युद्ध करने के लिए सावधान किया परन्तु भरत का व्यवहार देखकर उसने अपना अनुमान झूठा माना तथा भरत को रात्रि में वहीं ठहराया और प्रातःकाल उनको गंगा पार करा दी ।

भरत गुह द्वारा बताये गए मार्ग से चित्रकूट पहुँचे । सैन्य द्वारा उड़ाई गई धूलि, भय से भागते हुए मृगों एवं पक्षियों को देखकर राम ने घबरा कर लक्ष्मण को वृक्ष पर चढ़कर देखने को कहा । लक्ष्मण ने मानि वृक्ष पर चढ़कर भरत की विशाल वाहिनी को देखा तथा देखते ही क्रोध से अभिभूत हो उन्होंने भरत के विरुद्ध अनेकानेक बातें कहीं एवं उनको युद्ध में मार गिराने का अपना निश्चय राम से कहा । यह सम्पूर्ण कथा कवि ने बड़े विस्तार से 21 से 38 तक अठारह छंदों में किया है । राम ने भरत की प्रशंसा करते हुए तथा उनके भ्रातृ-प्रेम का स्मरण कराते हुए लक्ष्मण को शांत किया । उसी समय भरत भी आ पहुँचे । यह हृदय-स्पर्शी मिलन कवि ने अति संक्षिप्त कर दिया है । भरत दण्डवत् राम के चरणों में गिरे तथा उनको पाकर पूर्ण मनोरथ हो गए[1] । भरत को निकट बैठा कर राम ने उनसे कुशल प्रश्न पूछे । कुशल-प्रश्न क्या पूछे, किसी उत्तर काण्डकार ने अनावश्यक प्रश्नों की बौछार ही कर दी । यह प्रश्न 40 से 61 छंदों तक पूछे गए हैं । फिर दो छोटे छंदों में अयोध्याकाण्ड की कथा कह दी गई है । भरत ने राम को पिता के निधन का समाचार सुनाया जिसे सुनकर राम शोक में मग्न हो गए । भरत ने

1- अति प्रसन्न मन हुए राम बातें सुन लक्ष्मण ;
सानुज सहित समाज भरत भी आए तत्क्षण ।
देख राम-पद-पद्म प्रेम उमगा उनके मन ;
अपनी सीसुधि रोक नहीं सकते वे निज तन ।।
धन्य मिले लघु भ्रात राम से, पूर्ण मनोरथ हो गए ।
झट मनोरथ के ऊँचे दुःख दैन्य तम खो गए ।।

(रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 47)

राम को अयोध्या लौट चलने के लिए बहुत समझाया परन्तु राम माने नहीं। विवश भरत अयोध्या को लौट गए[1]।

इसके पश्चात् भरत के दर्शन हमें तेईसवें सर्ग में होते हैं। राम चित्रकूट से अयोध्या को लौट रहे हैं। अयोध्या के निकट पहुँचकर वे हनुमान को आदेश देते हैं कि भरत के समीप जाकर उनके हृदय का भेद लेकर उनसे यहाँ का समाचार कहना। उनके समाचार लाकर तुम मेरे चित्त को स्थिर करो[2]। राम की आज्ञा पाकर हनुमान भरत के पास पहुँचे। विरहाग्नि से तप्त भरत को उन्होंने मुनि वेश धारण किए हुए तथा राम नाम जपते हुए देखा। हनुमान ने भरत को रामागमन का सुखद समाचार सुनाया। उनसे मिलकर भरत ऐसे प्रसन्न हुए मानों राम से ही मिले हों। हनुमान का परिचय पूछ कर उन्होंने कहा, "ऐसे तुमसे कभी उऋण नहीं हो सकता। तुमने मुझे शोक-सागर से बचाया है[3]।" हनुमान ने भरत को समस्त कथा सुनाई और भरत सेनापतियों के साथ राम के स्वागत के लिए चले। राम को देखकर भरत उनके चरणों में गिर पड़े। तब सकुशल अपने घर पहुँच गए। भरत

- -

1- तब भरत ने नृप-मरण, निज चित्त की बातें कहीं,
तुम राम के उर दुःख की कछु भी नहीं सीमा रही।
सीता सहित सानुज लगे करने विलाप-कलाप को,
जिनका नहीं आँसू गिरा पाकर अमित सन्ताप को ॥ 62 ॥

फिर शान्त होने पर भरत ने बहुत समझाया सही,
पर अवध का चलना तनिक रघुनाथ को भाया नहीं।
रघुनाथ- आज्ञा से भरत फिर घर गये होकर दुखी,
हतभाग्य क्यों उद्योग करके स्वप्न में होवे सुखी ? ॥63 ॥

। रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 62-63 ।

2- पाकर अयोध्या के निकट कपि से रघुराम ने कहा,
"हनुमान तुम जाओ चले बैठे भरत होवें जहाँ"।
उनके हृदय के भेद ले कहना यहाँ के कुशल को,
आकर यहाँ के कुशल कह स्थिर करो मम चित्त को ॥

। रामचरित चिन्तामणि, तेईसवाँ सर्ग, 9 ।

3- तुम कौन हो ? क्या नाम है ? क्या चिह्न हो ? बोलो अभी,
मुझ सा अधम तुमसे उऋण बन में न होने का कभी।
क्या दूँ तुम्हें उपहार मैं, कुछ भी न है संसार में,
तुमने बचाया, ऐसे गिरा था शोक-पारावार में ॥

। रामचरित चिन्तामणि, तेईसवाँ सर्ग, 12 ।

ने राम को राज्य सौंप दिया[1]। राम की राजसभा में तीनों भाइयों ने उनके निकट ही शोभा प्राप्त की। चारों रघुवरों का प्रेम देखकर सुग्रीव तथा विभीषण अपनी स्वार्थपरता पर अत्यन्त लज्जित हुए[2]।

इसके पश्चात् ग्रन्थ के अन्त तक भरत का उल्लेख नहीं है।

राघवचरित चिन्तामणि में भरत का स्वरूप:- इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से देव-प्रेम, देव-भक्ति, क्षत्रिय-पालन, आदर्श राजा आदि पर बल दिया गया है। चरित्र-चित्रण प्रतीकात्मक प्रतीत होता है। भरत का चरित्र भी उस भाव-प्रवणता के साथ चित्रित नहीं हो सका है जिसके दर्शन पाठक को रामचरित मानस, वाल्मीकि रामायण तथा पद्म-पुराण आदि ग्रन्थों में होते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि सम्पूर्ण कथा संक्षेप में कही गई है। फिर भी रामचरित-चिन्तामणि में जो कुछ भी उन्हें प्राप्त है उसके अनुसार भरत का चरित्र भी परम्परागत रूप में सर्वथा दोष रहित है एवं गुणों से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ के भरत में निम्नलिखित गुणों का दर्शन किया जा सकता है,-

पितृ-प्रेम:- पिता की मृत्यु सुनकर भरत मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े[3]। चेतना आने पर वे दुःख एवं शोक से सन्तप्त हो विलाप करने लगे। उन्हें पिता का वत्सल स्वभाव बार बार याद आ रहा था[4]। कैकेयी के बहुत समझाने पर उनका मन कुछ शान्त हुआ।

- -

1- बोले भरत श्री राम से यह राज्य अपना लीजिये,
अब काम मेरा हो गया, विश्राम मुझ को दीजिये।
शुभ काल में तत्काल ही तब राम सिंहासन चढ़े,
सबके बड़े मुद, ब्राह्मणों ने मंत्र वेदों के पढ़े॥
। रामचरित चिन्तामणि, तेइसवाँ सर्ग, 16 ।

2- मन में बड़े लज्जित हुए सुग्रीव-कपिनायक वहाँ,
रघुनायकों में देख लघु उनको समझ शायक वहाँ।
झुके थे दोनों मनोमल भोग ही गिर भूल पर,
उनके मनोमल धुले थे स्वार्थपरता धूल पर॥
। रामचरित चिन्तामणि, तेइसवाँ सर्ग, 19 ।

3- जनक की सुन मृत्यु अवधेश हो,
विरह वारिधि शोक-निवेश हो।
भरत भूमि गिरे सहसा वहाँ,
न कुछ भी दुखार उनमें रही॥ । रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 36 ।

4- देखिए, रामचरित चिन्तामणि, आठवाँ सर्ग, 37-41 तथा 52-53 ।

भ्रातृ-वत्सलता:- उन्होंने तुरन्त ही माँ से पूछा कि " राम कहाँ हैं ? बड़ा भ्राता पितृ तुल्य होता है । मैं उनकी चरण वन्दना कर शोक कुछ दूर कर सकूँगा ।[1] उत्तर में कैकेयी ने भरत को रामवनगमन का समस्त समाचार कह सुनाया । राम को वन भेजने वाली कैकेयी को भरत ने हल्की सी फटकार सुनाई और उसके उपदेश की अवहेलना कर वे कौसल्या के समीप चले गए[2] । रामवन में भटकें और भरत अयोध्या में राज्य करें यह बात भ्रातृ-वत्सल भरत को स्वीकार्य नहीं है[3] । पितृ-क्रिया से निवृत्त होते ही वे राम के पास वन जाने का निश्चय कर लेते हैं । चित्रकूट में राम के चरणों पर पड़ते हुए भरत के राम-प्रेम की हल्की सी झाँकी देखी जा सकती है[4] । रामचरित चिन्तामणि के भरत में राम के प्रति वह प्रेम चित्रकला नहीं है जो रामायण तथा मानस के भरत में है । उनमें धर्म-भावना का अधिक प्राधान्य है ।

धर्म-प्राण भरत:- इस पुस्तक में भरत का सबसे महत्वपूर्ण गुण उनकी धर्म-भावना है । वे राम का " स्वत्व" हरण नहीं करना चाहते हैं अतः कैकेयी द्वारा वरदान स्वरूप प्राप्त राज्य को वापिस करने के लिए राम के पास चित्रकूट जाते हैं । उनकी दृढ़ धारणा है कि परस्व हरण चिर-पाप के सदृश अरन्ध्रातक है[5] । लोभ आदि दोष भरत को छू नहीं

- -

1- जननी ! कहाँ राम हैं ? मुझ को बता दे शीघ्र ही,
वन में बड़ा भ्राता पिता के तुल्य है, कम है नहीं ।
स्वामी उन्हीं को मान अपना शोक निवारित करूँ,
उनके चरण की वन्दना कर धैर्य को धारण करूँ ।। (रामचरितचिन्तामणि, अठ्यासी सर्ग, 5)

2- देखिए- रामचरित चिन्तामणि, अठ्यासी सर्ग, 59 ।

3- वन में भटके राम, राज्य मैं करूँ यहाँ पर, मुझ सा अधी निलज्ज मिलेगा और कहाँ पर । (रामचरित चिन्तामणि, नवासी सर्ग 3) ।

4- अति प्रसन्न मन हुए राम बातें सुन लक्ष्मण, सानुज सहित समाज भरत की ओर सराहन ।
देख राम-पद-पद्म प्रेम उमड़ा उनके मन, अपनी ही सुधि रोक नहीं सकते थे निज तन ।
वन चिरे लहूट ते राम के, पूर्ण मनोरथ हो गये ।
इट मनोरथ के अंक ते दुःख दैन्य सब खो गये ।। । रामचरित चिन्तामणि, नवासी सर्ग 47

5- क्या परस्व भी कभी किसी को पच सकता है ?
करके शिव का काम कौन वन बीच सकता है ?
गौ-ब्राह्मण-गुरु-घात किए चाहे सुख सोवे,
हर कर किन्तु परस्व नरक में कौन न सोवे ?
। रामचरित चिन्तामणि, सर्ग नवासी, 2 ।

सकते हैं। कवि ने स्वयं ही कहा है,"कर सकते हैं भला भरत भी लोभ कभी क्यों ?"[1] उनकी धर्मभावना इतनी प्रबल है कि राम को राज्य दिए बिना भरत जीवित रहना नहीं चाहते।[2] राम स्वयं भरत की निर्लोभता तथा धार्मिकता को जानते हैं। अतः लक्ष्मण के अधिक उत्तेजित होकर भरत से युद्ध के लिए तैयार हो जाने पर राम उनको समझाते हैं कि भरत में लोभ का लेश नहीं है, यदि लक्ष्मण चाहें तो भरत लक्ष्मण को ही सम्पूर्ण राज्य दे सकते हैं।[3] धर्म-प्राण भरत राम की आज्ञा के परिपालनार्थ अपनी सदुकामना के विरुद्ध अयोध्या को लौट जाते हैं। राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन पर भरत राम को उनका राज्य सौंप देते हैं। कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में भरत के स्वभाव की झाँकी प्रस्तुत कर दी है,-

"राम देव, गुरुदेव आदि फिर मिले भरत से,
लोक-विरत से, शील सिन्धु से, धर्म-निरत से ॥"

1- कर सकते हैं भला भरत भी लोभ कभी क्यों ?
अम्बुधि को निगल करेगा क्षोभ कभी क्यों ?

(रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 10)

2- मिले राम को राज तभी मैं जी सकता हूँ,
अन्यथा कर नहीं हताशा पी सकता हूँ ॥

(रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 11)

3- तनिक लोभ का लेश भरत में अनुज ! नहीं है,
क्षीर- कणों से पद्म-पत्र क्या भिन्न नहीं है ?
यदि चाहो तो तुम्हें राज्य ये दे सकते हैं,
सुखपूर्वक वनवास आज ये ले सकते हैं ॥

(रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 43)

तथा- जनक जानक हो युवराज का,
भरत नायक हो वनराज का ।
भरत में पर लोभ मिले कहाँ ?
उपल आर कैसे खिले कहाँ ?

(रामचरित चिन्तामणि, नवाँ सर्ग, 46)

साकेत

साकेत की रचना कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने, जो चिरगाँव, झाँसी के निवासी थे संवत् 1988 अर्थात् सन् 1931 में की थी। दीपावली के दिन यह काव्य कवि ने अपने स्वर्गीय पिता को समर्पित किया था-

" आज आज्ञा के दिन तुम्हें, श्रद्धा-अर्पित-सेवा ;
अर्पण करता हूँ यही निज कवि धन " साकेत" ।

(साकेत, समर्पण)

परम प्राचीन रामकथा को नवीन परिवेश में रखने का सौद्देश्य एवं सार्थक प्रयत्न मैथिलीशरण गुप्त जी ने साकेत की रचना में किया है। उस युग में खड़ी बोली के काव्य में नवोन्मेष हो रहा था। भाषा को नए विचारों से पूर्ण करने की होड़ थी। प्राचीन साहित्य को देश की सामयिक आवश्यकताओं के अनुसार नवीन कलेवर दिया जा रहा था। आर्य सनातन प्राणों की नवोद्बोधनकारी प्रेरणा का संचार किया जा रहा था। यह साहित्य को युग के अनुरूप योग्य बनाने का प्रयास था। कुछ समय पूर्व ही पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी एक गुरु एवं आचार्य के समान तत्कालीन साहित्यकारों को साहित्य सर्जना की नवीन दिशा दी थी। प्राचीन को नवीन बनाने का संदेश दिया था। रामकथा के चिर उपेक्षित पात्रों को साहित्य बन्धु के रंगमंच पर लाने का संकेत किया था। गुप्त जी ने साकेत " साकेत" की भूमिका स्वयं निवेदन में आचार्य द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा है, " कृतज्ञता ज्ञापित करना मानो उनके ऋण का मूल्य निर्धारित करना है। वे कुछ न अपनाते तो मैं आज का प्रचार आप लोगों के समक्ष बढ़े होने में भी समर्थ होता या नहीं कौन कह सकता है-

" करते तुलसीदास भी कैसे मानस- नाद ? -
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद ।" [1]

गुप्त जी ने साकेत में रामकथा की विशिष्ट उद्देश्य के साथ नवीन रचना में रखा है। उपेक्षित चिरसखी उर्मिला तथा तिरस्कृता कैकेयी के प्रति कवि का मन करुणापूर्ण है। कवि ने अपने काव्य में कैकेयी के चरित्र का उत्कर्ष मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। चौदह सगे वर्षों तक वियोग के पात्र बना देने वाले विरह से तपती हुई

1- देखिए" साकेत" का" निवेदन" पृ० 1-2 ।

उर्मिला कवि की सम्पूर्ण सहानुभूति की पात्र है । कवि का कलम-विगलित मन उर्मिला के विरह वर्णन में प्रवाहमान हुआ है । लक्ष्मण, सीता और राम के रूप में गुप्त जी ने कर्मठता, कर्त्तव्यपरायणता एवं त्यागशीलता का सर्वोत्कृष्ट उपदेश दिया है । सीता और उर्मिला भारतीय नारी के सर्वोच्च आदर्शों पर प्रतिष्ठित दो स्वतंत्र हैं परन्तु एक दूसरे की आधार भूमि भी हैं । सीता का राम के साथ वनगमन उर्मिला की अपरिमित सहनशीलता के कारण ही सम्भव हुआ था । लक्ष्मण का पुरुषार्थ भी उसी सती के तप पर टिका था । उर्मिला ने अपना कठिन विरह- ताप सीता और राम की सुख-सुविधा के लिए ही सहन किया । भरत का लोक मंगलकारी भ्रातृत्व भी गुप्त जी के साकेत की सुविलेखा है । डा० आशा भारती ने " राम-काव्य-परम्परा में भरत का व्यक्तित्व एवं चरित्र" नामक शोध-प्रबन्ध में कहा है, " राम के प्रति भक्ति-भावना कथा नायक राम की ही रहती है, फलतः राम से सम्बद्ध व्यक्ति भी उभर कर सामने आये हैं । भरत इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण पात्र हैं ।"[1]

साकेत में कथा का प्रारम्भ राम के युवराज पद पर अभिषिक्त किए जाने की तैयारियों से होता है । उर्मिला ने भी राज्याभिषेक का चित्र बनाया है परन्तु लक्ष्मण के चित्र में चित्रकूट दीक्षा करते समय पुरुष्ट-कण से रंग का फेंक कर अभिषेक-काल में आना मानों अभिषेक में आने वाली बाधा की पूर्व सूचना दे गया । द्वितीय सर्ग में मंथरा-कैकेयी संवाद तथा कैकेयी द्वारा महाराज दशरथ से भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास मांगने का वृत्तान्त है । तीसरे सर्ग में रामवन-गमन हेतु पिता से विदा लेते हैं लक्ष्मण भी उनके साथ वन दिए । चतुर्थ सर्ग में कौसल्या-सुमित्रा से विदा लेकर राम, लक्ष्मण और सीता ने वन को प्रस्थान किया । पंचम सर्ग में चित्रकूट से विदा तथा नगर-वासियों के विलाप-विक्रोश का प्रसंग है । गुह से मिलन तथा गंगावतरण का वर्णन भी इसी सर्ग में है । भरद्वाज और वाल्मीकि से मिल कर राम चित्रकूट पहुंचे और वहीं पर पर्णकुटी रच कर रहने लगे । षष्ठ सर्ग में राजा दशरथ का स्वर्गारोहण है । भरत के चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से सप्तम तथा अष्टम सर्ग महत्वपूर्ण हैं जिनमें भरत के पितृ-शोक, कैकेयी भर्त्सना, राम को मनाने चित्रकूट जाने आदि का वर्णन है । नवम सर्ग में उर्मिला का विरह-वर्णन है । दशम सर्ग में पूर्व स्मृति के रूप में कवि ने उर्मिला के मुख से बालकाण्ड

1- देखिए- " राम-काव्य परम्परा में भरत का व्यक्तित्व एवं चरित्र" पृष्ठ 22 ।

(ले०- डा० आशा भारती)

की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कराया है । ग्यारहवें सर्ग में राम के वन-वास, वर्णन उधर से आए पक्षियों द्वारा सीता हरण से लेकर लक्ष्मण मूर्छा तक की घटनाओं का वर्णन हनुमान द्वारा कराया गया है तथा बारहवें सर्ग में हनुमान द्वारा कुछ संवाद सुनकर भरत ने राम की सहायता के लिए सेनाएँ सजाईं । उसी समय वशिष्ठ जी ने अपने योग बल से दिव्यदृष्टि द्वारा आगे का कुछ अयोध्यावासियों को साकेत में ही दिखा दिया । गुरु ने नगरवासियों को राम के स्वागतार्थ नगर सजाने की आज्ञा दी और उधर रावण-वध के पश्चात् श्रीराम श्री सीता-लक्ष्मण एवं सुग्रीवादि के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँचे । उनके आगमन की सूचना पूर्व ही मारुति ने दे दी थी । राम भरत का मिलन तो क्षितिज में सिन्धु और आकाश का मिलन था । लक्ष्मण और ऊर्मिला के मिलन से कवि ने ग्रन्थ की समाप्ति की है। साकेत की विवेचना उतनी अति मधुर भावपूर्णता है ।

साकेत में भरत का स्थान:-

साकेत में यद्यपि नायक राम हैं परन्तु यद्यपि: साकेत के आरम्भ से ही फूलती रहती है । चित्रकूट में सम्पूर्ण साकेत ही बना गया था । लंका की घटनाएँ साकेतवासी दिव्य दृष्टि से साकेत में ही देख लेते हैं । इस प्रकार साकेत में मुख्य रूप से राम की ही प्रमुखता देते हुए कथा वर्णन है । परन्तु साकेत की सर्वोपरि विशेषता उपेक्षित पात्रों को विशेष स्थान देना है जिसके अन्तर्गत ऊर्मिला तथा कैकेयी की कथा में विशेष महत्व दिया गया है । गुप्त जी भी भक्त कवि हैं, अतः वे भक्तों के आदर्श नायक भरत को कैसे भूल सकते थे । उनके काव्य में भरत का चित्रण उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार रामचरित मानस में अन्तर केवल है भावुकतापूर्ण परन्तु मनोवैज्ञानिक भूमिका लिए हुए संवादों का । प्रारम्भ में ही कवि ने भरत का परिचय, " भरत कहाँ माण्डवी उनकी प्रिया ।" कह कर दिया है । कवि अवतारवाद में विश्वास करता है तथा उसने राम को ब्रह्म का अवतार माना है । परिणामतः भरत भी ब्रह्म के अंशावतार हैं और उनकी पत्नी माण्डवी उनकी माया है ।

1- राम-सीता, धन्य श्रीरामचन्द्र तुम, और-वह सच्चरित्र, लक्ष्मण-ऊर्मिला ।
भरत-कहाँ, माण्डवी उनकी प्रिया; कीर्ति-सी श्रुतिकीर्ति सुकृत प्रिया ।
ब्रह्म की हैं चार जैसी मूर्तियाँ, ठीक वैसी चार माया मूर्तियाँ ।
धन्य दशरथ-जनक-पुण्योदधि हैं ; धन्य भगवद्भूमि भारतवर्ष है ।

साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० 18-19 ।

..... - भरत का पारस्य अत्यन्त प्रिय भ्राता तथा दशरथ के प्राण-प्रिय पुत्र के रूप में प्रारम्भ होता है। राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है। भरत की अनुपस्थिति सभी को खटक रही है- उर्मिला[1] और लक्ष्मण को, राम तथा सीता को[2], तथा महाराज दशरथ एवं कुल गुरु वशिष्ठ को[3]। भरत सब के प्रिय हैं- राम को तो प्राणाधिक प्रिय। राम भरत की मंत्रणा से ही शासन चलाना चाहते हैं। वे सीता से कहते हैं कि शासन संचालनार्थ मंत्रणा भरत की तथा सैन्य प्रबन्ध लक्ष्मण का रहेगा[4]। उधर कैकेयी को भी यह सोच है कि भरत मामा के घर होने के कारण राम के राज्याभिषेक के महोत्सव को नहीं देख पायेगा। मंथरा की दुर्बुद्धि में यह बात खटक रही है कि इस अवसर पर भरत अयोध्या में नहीं हैं और वह इसे एक षड्यंत्र का रूप दे डालती है। वह कैकेयी के सरल मन में संशय का बीज बो देती है कि- " भरत ने तुम पर भी सन्देह,

छुपाया सब न उन्हें जो गेह।"

रस में विष घुल जाता है और राम को राज्य के स्थान पर वन-वास मिलता है। मंथरा

1- इधर जो हुआ राम में मैं, उर्मिला उधर प्राणपति संग,
भरत विषयक ही वार्तालाप, देखकर सुनती थी सुचाव।
बताते थे लक्ष्मण यह भेद, कि" भ्राता है हम सब को खेद।
किन्तु अवसर था भ्राता अन्य, न आ सकते थे कुछ संकल्प।
परे थी और न ऐसी सन्य, पिता थी थे आतुरता-मग्न।"
साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 55-56 ।

2- देखिए साकेत, द्वितीय सर्ग पृ0 56-57 ।

3- मुनि बोले थे कुलगुरु-संग, भरत का ही था विहित प्रसंग।
कहा कुलगुरु ने- "निस्संदेह, खेद है भरत नहीं जो गेह।
किंतु यह अवसर था अयुक्त, कि नृप हो जायें चिन्तायुक्त।"
भूप बोले- " हाँ, मेरा चित्त, चिकित था आगत भविष्य निमित्त।
हानि से था मैं अधिक अधीर, आज है तो कल नहीं शरीर।
मारकर धोखे में मुनि-बाण, हुआ था मुझको शाप कराल।
कि " तुमको भी निज पुत्र-वियोग, बनेगा प्राण-विनाशक रोग।"
अस्तु यह भरत-विरह अकिंचन, दुःसम होकर भी था इष्ट।"
साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 58-59 ।

4- रहेगा साधु भरत का मंत्री मनस्वी लक्ष्मण का सत्र-मंत्र।
तुम्हारे लघु देवर का काम, आज दायित्व हेतु है राम।
साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 57 ।

5- " सोच है मुझ को निस्संदेह, भरत जो है मामा के गेह।
सरल करते निज निर्मल-दृष्टि, देख वह सका न यह कुल-सृष्टि।"
साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 44 ।

के मन में भी भरत के लिए प्रेम था परन्तु उसके नीच चिन्तन ने अयोध्या में आग लगा दी। जहाँ वाल्मीकि रामायण में महाराज दशरथ भरत की अनुपस्थिति में ही राम को युवराज-पद पर अभिषिक्त करना चाहते हैं, वहाँ साकेत में दशरथ को भरत की अनुपस्थिति का खेद है तथा वे भरत के वियोग में अपने मरण तक की कल्पना कर लेते हैं।[1]

साकेत के भरत शील के समुद्राय हैं। कैकेयी उनके विषय में कहती हैं,-

"भरत रे भरत, शील समुदाय,
गर्भ में आकर मेरे हाय !
हुआ यदि तू भी संशय-पात्र,
दग्ध हो तो मेरा यह गात्र।"

राम उनको साधु कहते हैं।[2] लक्ष्मण महाक्रोध के समय भी कैकेयी को फटकारते हुए भरत के शील की प्रशंसा करते हैं, उन्हें निष्पाप एवं साधु बताते हैं।[3] सुमंत्र को भी भरत के शील एवं आचार पर दृढ़ विश्वास है। वे कहते हैं कि, "भरत इस प्रकार से राज्य कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वे उसे लौटा देंगे।"[4] कौसल्या को भी भरत के शील एवं स्वभाव पर विश्वास है। वे राम से स्पष्ट कहती हैं,-

" तेरा स्वत्व भरत लेगा ?
वन में तुझे भेज देगा ?
वही भरत जो भ्राता है,
क्या तू मुझे डराता है।"

राम को भरत के सद्गुणों में विश्वास है। इसी कारण वन जाते समय वे पुरवासियों को समझाते हैं कि भरत को पाकर वे उनको भी भूल जायेंगे। भरत जड़ भरत के समान

1- देखिए-साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 58-59 ।
2- देखिए-साकेत, द्वितीय सर्ग, पृ0 57 ।
3- भरत को लगती है आग मैं क्यों ? पड़ेगे सुरसैनी पाप में क्यों ?
हुए वे साधु तेरे पुत्र ऐसे- कि लोहा कीच से है कंज जैसे।
साकेत, तृतीय सर्ग, पृ0 76-77 ।
4- भरत दशरथ पिता के पुत्र होकर- न लेंगे, फेर देंगे राज्य रोकर।
बिना समझे भरत का भाव सारा, विपिन का व्यर्थ है प्रस्ताव सारा।
साकेत, तृतीय सर्ग, पृ0 90 ।

निर्व्यूह हैं[1]। स्वजनों का दुःख एवं शोक वनवास की प्रथम रात्रि में राम को सोने नहीं दे रहा था। उस समय भरत के सद्गुणों में विश्वास ही उनके लिए शयन-साधक हो सका था[2]।

भरत राम के प्रिय भ्राता तथा दशरथ के प्रिय पुत्र हैं। भरत को भी अपने बड़े भ्राता राम एवं पिता दशरथ के प्रति असीम प्रेम है। वस्तुतः जो सहज स्नेह भाई का भाई से तथा पुत्र का पिता से होना चाहिए वह भरत में अत्यन्त उज्ज्वल रूप में है। ननिहाल से लौटकर अयोध्या में प्रवेश करते समय विपरीत लक्षण देखकर भरत को पिता की चिन्ता होती है[3]। राज-भवन में प्रवेश करते ही उन्हें पिता की मृत्यु की सूचना मिल जाती है। कैकेयी के महल में प्रवेश करते ही वे पिता के वियोग में चीत्कार कर उठे। पिता के निधन का उनको असीम दुख था परन्तु राम-वन-गमन की बात सुनकर तो वे क्षमशील हो उठे[4]। शत्रुघ्न का पितृ-शोक भी उस समय सहम गया। कैकेयी से राम-वन-गमन का कारण अपनी राज्य प्राप्ति सुनकर वे अत्यन्त व्यथित हुए तथा उसे

1- किंतु भरत के भाव मुझे सब ज्ञात हैं,
हमसे वे बहु भरत-तुल्य विश्वास हैं।
बीतेंगे सुख मुझे उन्हें पाकर, सुनो,
मुझे पुनः तो मिले वहूँ अब मैं पुनः।
× × ×
भरत तुम्हारे योग्य न हों भ्राता नहीं,
तो समझेगा राम उन्हें भ्राता नहीं। साकेत, पंचम सर्ग, पृ0 130-131।

2- स्वजन-शोक-संकोच तनिक बाधक हुआ,
किन्तु भरत-विश्वास शयन-साधक हुआ। साकेत, पंचम सर्ग, पृ0 136।

3- "रूग्ण ही हैं तात हैं भगवान।"
भरत सिहरे जल-वारि-समान।
थी उन्होंने एक लम्बी साँस;
हृदय में मानों गड़ी हो गाँस। साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0 188।

4- "वन गए?" बोले भरत अवाक।
तो सँभालेगा हमें अब कौन?
यों अनाथिनी रख सका कब कौन?"

साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0 194।

हो गए । उनकी यह मर्म-वेदना कैकेयी भरतीया के रूप में प्रस्फुटित हुई । उनके विचार में राम को वनवास देने के अपराध का दण्ड मृत्यु के रूप में तो बहुत तरल एवं सरल है, अतः कैकेयी की दुष्टता के लिए यह उपयुक्त नहीं । उनकी वेदना इन पंक्तियों में देखिए,-

पण्डित! सुन्दर ही थिते सार्थक,
पुष्प उठे तो विद्युतों के डंक ।
दण्ड क्या उस दुष्टता का स्वल्प ?
है सुधान्त तो अन्त-दल-शल्य ?
जो दिखाने हम सभी को मार,
कठिन तेरा उचित न्याय-विचार ।
मृत्यु ? उसमें तो तरल ही मुक्ति,
भोग सु निज भावना की भुक्ति ।
धन्य तेरा सुविज्ञ पुत्र-स्नेह,
जा गया जो भूल कर पति देह ।
प्राप्त करके उच्च मुझे तो तुच्छ,
और नाचे निज दुराशय-दृप्त ।

साकेत, सप्तम सर्ग, पृ० १९६-९७ ।

कैकेयी जब भरत के लिए राज्य माँगने के वरदान के मूल में अपने वात्सल्य को कारण बताती है तब तो भरत भड़क उठते हैं और कहते हैं कि तूने इस प्रकार मेरे मुख पर कालिख पोत दी है । वे कैकेयी के साथ-साथ स्वयं को भी धिक्कारते हैं । पश्चात् भरतीया के पश्चात् उनका दयार्द्र हृदय कैकेयी की दयनीय दशा पर द्रवित होने लगता है और उस पर आश्चर्य करते हुए से कहते हैं,-

---

।- तब बताती हैं तुम्हें के मात,
किंतु देती हैं कितना मात ।
भीत है मुझे पोत मेरा सर्व,
कर रही वात्सल्य का तू गर्व ।
कर गया वाहन कहीं अनुज्ञ,
देख हैं सब- है यही वह भूल ।

साकेत- सप्तम सर्ग, पृ० १९८ ।

" हाय ! मेरी तो न थी यह दुष्टि ,
क्या हुई मेरे हृदय की दुष्टि ? "

पुनः प्रकट कर देती हैं,-

" री, हुआ तुझको न कुछ संकोच ?
तू बनी बनी कि हननी, तोच ! "

इसी अवसर पर शत्रुघ्न भी भड़क कर कह उठे, " आज मेरा क्रोध राजद्रोह " और से भ्रातृ-वध तथा गृह-दाह के लिए उद्यत हो गए । दयालु भरत ने शत्रुघ्न को रोका तथा समझाया कि कैकेयी को क्या मारोगे ? उसको तो मृत्यु मुक्ति बन जायेगी । उसको उसी के ऊपर छोड़ दो और दोनों कौसल्या के दर्शनार्थ चल पड़े । स्मरणीय है कि वाल्मीकि-रामायण में भरत कैकेयी को मार डालने को उद्यत हैं यदि उन्हें राम का भय न होता तो । यहाँ भरत कैकेयी को शत्रुघ्न की कोपाग्नि से बचाते हैं । साकेत में भरत द्वारा की गई कैकेयी की भर्त्सना में भी तीक्ष्ण बातें तो कही गई हैं परन्तु अपशब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया गया है । साकेत के भरत वाल्मीकीय रामायण की अपेक्षा अधिक शान्त तथा गम्भीर हैं ।

कौसल्या भरत की निर्दोषिता के प्रति आश्वस्त हैं । जब भरत स्वयं को राज्यहारी घोर, षड्यन्त्रकारी एवं गृह कलह का मूल कहते हैं तो कौसल्या उन्हें रोक कर तुरन्त कहती है कि " यह सब झूठ है । तू निष्पाप है । मैं स्वयं तेरी निर्दोषिता की साक्षिणी हूँ ।"

- -

1- " भ्रातृ-निष्कासन, पिता का शोक ,
हो चुके दो दो जहाँ उत्पात,
और दो हाँ- मातृवध, गृहदाह !
बस यही था चित्त की अब चाह !
पूर्ण हो दुरदृष्टि तेरी तुष्टि !"
तीर ने मारी हृदय पर मुष्टि !
साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0 203 ।

2- " हाय ! मारोगे किसे हे तात, मृत्यु निष्कृति हो किसे हे तात ?
छोड़ दो इसको इसी पर तीर , आर्य-जननी-ओर आओ धीर !"
साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0 203 ।

3- " झूठ यह सब झूठ, तू निष्पाप;
साक्षिणी तेरी यहाँ मैं आप ।
भरत में अभिसन्धि का हो गन्ध,
हो मुझे निज राम की सौगन्ध !"
साकेत, सप्तम सर्ग, पृ0 204- 5 ।

स्मरणीय है कि वाल्मीकि-रामायण में कौसल्या भरत को कटु-उपालम्भ देती है और भरत को अपनी निर्दोषिता आकूर्वक सिद्ध करनी पड़ती है । यहाँ कौसल्या का भरत के प्रति विश्वास अपने के लिए अवकाश छोड़ता ही नहीं है । कौसल्या के लिए भरत राम के समान हैं । वे भरत को " भानुकुल का निष्कलंक मयंक" बताती हैं तथा कहती है कि, " तू मेरा राम ही है ; केवल नाम की भिन्नता है । दोनों के हृदय एक से हैं, शरीर भी एक से ही हैं, मानों एक सोने के दो पात्र हों ।" भरत को अंकस्थ कर कौसल्या को राम को अंकस्थ करने का सुख प्राप्त हो रहा है । उनकी दृष्टि में कैकेयी का विद्रोह उनसे उनके पुत्र को नहीं छीन सका । राम से न सही तो भरत से उनकी भेंट हो गई है[2] ।

गुरु वशिष्ठ भी भरत की प्रशंसा करते हैं एवं भरत के हृदय को अनेक गुण-रत्नों से परिपूर्ण बताते हैं । उनकी दृष्टि में भरत के भाव अद्भुतमय हैं[3] ।

पिता के शोक से सन्तप्त, राज्य-धन-धाम से रहित, विपुल से लौटाया भरत पिता की चिता के समीप ही वन की उत्कृष्ट भावुकतापूर्ण स्थिति में प्रण कर लेते हैं कि वे राम को उनका राज्य लौटाने वन को जायेंगे और सब पौरों को भी उनके साथ जाना चाहिये[4] । इस प्रसंग की वाल्मीकि तथा तुलसी के काव्यों से तुलना करते हुए डा० राजुरकर

1- " भरत रे आ जा, जुड़ा यह अंक,
भानुकुल के निष्कलंक मयंक ?
मिल गया मेरा मुझे तू राम ,
तू वही है, भिन्न केवल नाम ।
एक हृदय और एक सुगात्र ,
एक सोने के जो दो पात्र ।"

2- "कैकयी ने कर भरत का मोह ,
क्या किया ऐसा बड़ा विद्रोह ?
भर गई फिर आज मेरी गोद ,
आ मुझे दे राम का सा मोद ।"

3- देखिए, साकेत, सप्तम सर्ग, पृ० 211 ।

4- " " " पृ० 217 ।

ने मत व्यक्त किया है कि, " स्पष्ट है, वाल्मीकि यथार्थ राजनीति के धरातल पर भरत का राम के प्रति अनुराग व्यक्त करते हैं ; तो तुलसी तथा गुप्त जी आदुकता के धरातल पर ।[1]" यहाँ यह स्मरण कराना अनावश्यक न होगा कि तुलसी तथा गुप्त जी के भरत केवल राम के अनुज ही नहीं हैं अपितु उनके आदुक-भक्त भी हैं ।

" साकेत" में भी " मानस" के समान ही लक्ष्मण भरत के सदल चित्रकूट आने पर उनके प्रति दुराशंका व्यक्त करते हैं । परन्तु राम का भरत की सद्वृत्ति में अटल विश्वास है और वे सीता तथा लक्ष्मण से कहते हैं कि भरत अयोध्या का राज्य त्याग कर मुझे मनाने आ रहे हैं,-

" भद्रे, न भरत भी उसे छोड़ आये हों ,
माता की से भी मुझे न मोड़ आये हों ।
लक्ष्मण, सम्भव है यही मुझे दे भाई,
बीते न प्रथा हो पुरी शून्य कर आई ।"

राम भरत के आतुर प्रेम की पहिचानते हैं, इसलिए भरत-आगमन की सूचना के साथ ही यह चिन्ता हो उठी कि कहीं भरत उनको अयोध्या ले चलने के लिए हठ न ठानें[2] । इतने में सानुज भरत दूर से आते दिखायी पड़े । राम, लक्ष्मण, सीता ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया । भरत राम के चरणों पर गिरे और राम ने उनको अंक में भर लिया । भरत ने उपालम्भ दिया-

" उस वन की कानी का विमुख वचन तो पाता,
तुमने इस जन की ओर न देखा-भाला ।"

राम ने उत्तर दिया कि, " राम तो सदैव ही भरत-भाव का भूखा है, परन्तु उसको ऊधा कर्तव्य मिला है । वशिष्ठ भी कहते हैं कि स्वर्ग में राजा दशरथ

1- देखिए, "रामकथा के पात्र" पृ० 249, ले० डा० भ० ह० राजूरकर ।

2- पर मैं चिन्तित हूँ, लक्ष्य प्रेम के कारण,
हठपूर्वक मुझको भरत करें यदि धारण ? साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 239 ।

3- फिर क्या राम है भरत-भाव का भूखा ,
पर उसको तो कर्तव्य मिला है ऊधा ।
साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 241 ।

को " अकोक भरत का यही भाव सुख होगा ।"

भरत का राम के प्रति अटूट, भक्तियुक्त प्रेम सभी के लिए प्रशंसा का विषय है ।

भरत के त्याग का वास्तविक बोध तो उस चित्रकूट सभा में होता है जहाँ भावनाओं की हिलोरें एक से एक आगे बढ़ने को चंचल हैं । यहाँ " भरत-भाव" की सुरसरिता तथा राम के धैर्य का हिमालय एक साथ ही देखे जा सकते हैं । राम ने भरत से उनका " अभीप्सित" पूछा । भरत की अन्तर्वेदना प्रवाहित हो उठी-

" अकण्टक राज्य मिलने के बाद अब क्या अभीप्सित शेष रहा । राम को सहसा अरण्यवास मिल गया । पिता ने सहज-सहज कर शरीर त्याग दिया । क्या फिर भी अभागे भरत का अभीप्सित शेष रह गया है ?" भरत की स्वयं से ही विरक्ति हो उठी[1] । राम ने समझाया और उनकी महानता की प्रशंसा की[2] । भरत जैसे भाई की माता कैकेई को राम ने धन्य बताया । सभा ने भी चिल्ला कर घोषणा को दुहराया-

" सौ बार धन्य वह एक लाल की माई ।"

भरत की सदाशयता से कैकेयी का कलंक भी धुल गया । उसने हर प्रकार से राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह किया ।

भरत ने राम से अयोध्या की प्रत्यावर्तन हेतु नम्र अनुरोध किया । यह भी कहा कि आपका वन निवास का प्रण मैं पूर्ण करूँगा । राम ने समझाया कि " हम शरीर हैं परन्तु शरीर भिन्न हैं" इस कारण दोनों को अपना-अपना प्रण पूर्ण करना चाहिए ।" भरत

1- हे आर्य, रहा क्या भरत अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी ?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा ,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु सहज-सहज कर तप्त तात ने त्यागा ,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
× × × ×
मुझ से मैं ही आज स्वयं मुँह मोड़ा ।

साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 246-47 ।

2- उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
बनकर ही बनती बात न बाई जिसको ।

साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 247 ।

का राम-प्रेम इस भिक्षुणी को भी सहन नहीं कर सकता वे राम से दूर रहने के लिए तैयार नहीं हैं । अतः उत्तर देती हैं,-

" तो इस काया पर नहीं मुझे कुछ माया ।
लघु जाय घड़ी यह छली उरध के आगे,
मिल जाय तुम्हीं में प्राण आर्य अनुरागे ।"

। साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 257 ।

राम ने भरत को समझाया कि, " तुम सदैव ही मेरे आज्ञाकारी रहे हो । आज ही यह हठ क्यों ठाना है ? अपना कर्तव्य पालन करने में कुशल भी यह बन जाता है ।" भरत ने उत्तर दिया कि " आपका भरत अतीव अबल है ।" भरत ने अपने मन में राम की आज्ञापालन और राम के सान्निध्य सुख को तोला । आज्ञापालन कठिन होते हुए भी भारी रहा और अन्त में भरत ने अपना निर्णय नम्रतापूर्वक निवेदित किया,-

" जब तक आर्य वन में रहकर पिता की आज्ञा का पालन करें तब तक आर्या ही जाकर राज्य को संभालें ।" सीता की इस प्रस्ताव से आहमति स्वाभाविक ही थी ।

राम ने पुनः अनुरोध किया कि, " कुछ दिन तक ही राज्य संभालो ।" भरत ने राम की आज्ञा को शिरोधार्य किया तथा अवलम्बरूप राम की चरण-पादुकाएँ मांग लीं जिनके सहारे वे इस लम्बी अवधि को पार कर सकें । यह भरत का अपूर्व त्याग है । राज्य त्यागा और प्रियतम के सान्निध्य का सुख भी त्याग दिया, आज्ञापालन के लिए । राजने उन्हें " अपूर्व अलोभी" कह कर प्रशंसा की । सीता ने उन्हें राम से भी अधिक सुख

- -

1- हे देव भार के लिए नहीं रोता हूँ ।
इन चरणों पर ही मैं अधीर होता हूँ ।
प्रिय रहा तुम्हें यह दयाकुटुम्बक तो,
कर लेंगे प्रभु-पादुका राज्य-रक्षक तो ।
तो लेती आज्ञा, आर्य सुखी हों वन में,
खोकर सुख से दास उदास भवन में ।
बस, मिलें पादुका मुझे, उन्हें ले जाऊँ,
उनके ही बल पर अवधि पार मैं पाऊँ ।
हो जाय अवधि-मय अवध अयोध्या अब से
सुख सौख नाथ के बीच सहूँ मैं कब से ।

साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० 263 ।

का भागी होने का आशीर्वाद दिया[1]।

भरत राम की पादुकाएँ लेकर अयोध्या आये। उन्होंने नन्दिग्राम में पर्ण कुटीर बनाया और उसी में चौदह वर्षों तक निवास किया। वहाँ पर स्वर्ण-पीठ पर राम की पादुकाओं को स्थापित कर वे उनकी पूजा करने लगे। नन्दिग्रामस्थ तपस्वी भरत का कवि ने बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। अयोध्यावासियों को भरत के रूप में राम ही मिल गए हैं[2]। भरत निरन्तर राम के ध्यान में मग्न हैं। तेरह वर्षों से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं। अब राम के वापिस आने की अवधि निकट आ पहुँची है। भरत की राम-रट चातक से भी बढ़ कर है। चातक तो केवल आठ मास तक ही घन की प्रतीक्षा करता है, भरत ने तो वर्षों तक अपने घनश्याम की प्रतीक्षा की है[3]।

भरत अतीव धैर्यशाली हैं। वे सभी दुःख सीमाओं को धीरज धैयाँ रखते हैं। वे माण्डवी को समझाते हैं कि, " यह विषाद भी अन्त में स्मृति-विनोद बन जायेगा। उस अपने दिन भी दूर नहीं हैं।" सभी आत्मजनों मन जिसी चित्त के विषय में सोच लेता है

1- मैं अम्बा-मम आशीष तुम्हें दूँ आजों।
   निज अग्रज से भी अधिक पुण्य तुम पाओ।"
   साकेत, अष्टम सर्ग, पृ0 262।

2- उदय-अचल में पुण्य पुजारी
   उदासीन- सा बैठा है,
   आप देव-विग्रह मन्दिर से
   भिन्न लीन- सा बैठा है।
   मिली भरत में राम सभी सो,
   मिले भरत को राम सभी,
   वही रूप है, वही रंग है,
   वही जटाएँ, वही तपी।
   साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 389-90।

3- आठ मास चातक जीता है
      अपने घन का ध्यान किये;
   आशा कर निज घनश्याम की
      हमने बरसों बिता दिए।"
   साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 390।

तब राम के प्रति उनकी आस्था उन्हीं तथा अन्य सब के मनों में पुनः आशा और विश्वास उत्पन्न कर देती है[1]।

दयालु भरत परिवार में सब को जोड़े हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति के दुःख से उन्हें दुःख है। ऊर्मिला के भोजन न करने पर वे स्वयं फलाहार भी नहीं करते[2]। इस अवसर पर उनके मन की ग्लानि सीधे-सादे उमड़ पड़ती है,-

" हाय! एक मेरे पीछे ही
हुआ यहाँ इतना उत्पात।
" एक न मैं होता तो भव की
क्या अवध्या थ्व जाती?
छाती नहीं फटी यदि मेरी,
तो धरती ही फट जाती।"

साकेत के भरत का स्वरूप माण्डवी के शब्दों में देखिए,-

" नाथ न तुम होते तो यह कुल
कौन निभाता, तुम्हीं कहो?
औ राज्य से भी महार्घ धन
देता आकर कौन अहो!
मनुष्यत्व का सत्य-तत्व यों
किसने समझा-बूझा है?
तुम को लात मार कर तु-ता
कौन दुःख से जूझा है?

(साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 397)

उनके अनुसार विश्व को भ्रातृ-भावना का आदर्श तो भरत ने ही प्रदान किया है। भरत की गौरव-गाथा के सहारे कितने कुल तर जायेंगे। उनका आदर्श युगों तक

1- तो भी अपने प्रभु के आगे, है मुझको पूरा विश्वास,
आर्य नहीं हों किन्तु आर्य के दिव्य वचन हैं मेरे पास।
रोक सकेगा कौन भरत को अपने प्रभु को पाने से?
रोक सकेगा रामचन्द्र को कौन अयोध्या आने से?
साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 394।

2- देखिए साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 395।

प्रजाओं को यश-प्रकाश देता रहेगा[1]।

राम की पादुकाओं के राज्य में भरत के मंत्री तथा शत्रुघ्न के पुत्रों पुष्कल-तीर्थ में अयोध्या की समृद्धि की निरन्तर वृद्धि हो रही है तथा वह नगरी महाराज दशरथ के काल से कहीं अधिक समृद्ध एवं सुसम्पन्न हो गयी है[2]। भरत और भी हैं। कैकेयी से वे स्वयं कहते हैं-" तू ऊढ़ी थी राज्य ही के अर्थ,

तो न था तेरा सगर अनर्थ।
और मुझ पर था न कौशल नाम
छन भागी है कहीं भी काम।
धनियों के पाप-कोटि-समक्ष,
लोक में है कौन दुर्गम कक्ष?"

लक्ष्मण के शक्ति लगने के प्रसंग में आग्नेय सन्धीकरणी लेने वाले हनुमान भरत के बाण से चिकित्सा हो गिरते हैं। भरत उनको सन्धीकरणी दिया कर स्वस्थ कर देते हैं तथा उनके द्वारा लक्ष्मण के जीवन संकट एवं रावण से युद्ध की बात सुन कर युद्ध हेतु लंका जाने के लिए तैयार होते हैं।" मैं लक्ष्मण बन बचा हूँ" यह सदेश वे अनिला को बतलाते हैं। गुरु वशिष्ठ ने आकर दिव्य दृष्टि से सब को लंका के युद्ध का दृश्य अयोध्या में ही दिखा दिया परन्तु सेना की तैयारियाँ आदि से भरत तथा शत्रुघ्न के वीर-भाव का अन्त तो हो ही जाता है।

त्याग और तपस्या में, प्रेम और प्रेम के विश्वास में, कर्म और कष्ट के प्रति आस्था में भरत को राम से भी बढ़ कर दिखाया गया है। गुप्त जी ने राम के मुख से ही यह कहला कर भाई भरत की महानता की प्रतिष्ठा कर दी है,-

" अहा, भाई तुम सदा न तुल्य हो, राम कहा है,
तेरा पलड़ा बढ़ा भूमि पर आज पड़ा है।

1- देखिए साकेत, एकादश सर्ग पृ0 398-99।
2- देखिए, साकेत, एकादश सर्ग, पृ0 403-409।
3- देखिए साकेत, द्वादश सर्ग पृ0 492।

भरत-भक्ति

भरत-भक्ति नामक ग्रन्थ की रचना कविवर पं० शिवरत्न शुक्ल ने सं० 1989 में की थी।[1] काव्य की व्याख्या के विषय में पं० मदन मोहन मालवीय जी ने लिखा है,"मेरी समझ में पं० शिवरत्न जी अपने पाण्डित्य, भक्ति के भाव और कवित्व-शक्ति के उपयोग के लिए उदारचेता भरत जी की भक्ति की कथा से उत्तम कोई अन्य विषय नहीं चुन सकते थे।"[2] चारों सर्गों में लिखे गए इस काव्य में भरत के ननिहाल से अयोध्या लौटने की कथा से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन किया गया है।

मालवीय जी के अनुसार इस कथा के बीच में जो संवाद दिए गए हैं उनमें लोक-नीति, राजनीति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की व्याख्या तथा सुख के उदात्त भावों का प्रकाश अच्छी तरह से किया गया है। यह विविध छन्दों में लिखा गया प्रबन्धात्मक काव्य है।

कवि ने इस काव्य का मूल भक्तवत्सल राम की प्रेरणा एवं कृपा से लिखा है, जैसा उसका अपना विश्वास है।[3] प्रथम सर्ग में वन्दना तथा भरत का अयोध्या-दर्शन, द्वितीय में भरत ननिहाल-भेंट, तृतीय में अयोध्या में भरत को राज्य अपने हेतु मनाने के लिए राम-सभा वर्णन, चतुर्थ में भरत का चित्रकूट गमन हेतु उपक्रम पंचम में भरत की चित्रकूट यात्रा, षष्ठ में अन्तर्द्वंद्व, सप्तम में वाल्मिक भरताश्रम भेंट, भरताश्रम द्वारा भरत की प्रशंसा तथा आतिथ्य, अष्टम में भरताश्रम का संक्षिप्त प्रभाव, अन्तःपुरों का भव-चित्र वर्णन, नवम में प्रयाग से प्रस्थान, चित्रकूट-दर्शन, लक्ष्मण की ओर राम द्वारा लक्ष्मण-सुबोध, राम-भरत-मिलन तथा दशम में चित्रकूट तथा वहाँ के ऋषि-मुनियों का वर्णन किया गया है। एकादश सर्ग में चित्रकूट में सभा का वर्णन है जिसमें राम-भरत-संवाद के समय वाल्मिक द्वारा दोनों भाइयों की प्रशंसा की गई है। द्वादश सर्ग में राम-कैकेयी-संवाद द्वारा कैकेयी का राम-प्रेम तथा "आता कोटि राम के सुख के लिए वर" प्रतिपादित किया गया है। त्रयोदश सर्ग में सीता-विनती-वर्णन, रामकथन का चित्रकूट से अयोध्या लौटना तथा मार्ग में वाल्मिक का मुनि की राज्य का सम्पूर्ण साज-बाज सौंपने का आदेश है, जिसे भरत अपने प्रण का निर्वाह करने के वश में कर लेते हैं। चतुर्दश सर्ग में भरत-माण्डवी सम्वाद द्वारा भरत-भक्ति

1- सिंधु कथा सो आनि, यह दीन्हो पुनि मोर।
" भरत-भक्ति" पूरन भई, राम-कृपा-बल-जोर॥ भरत-भक्ति, दर्शन सर्ग, पृ० 518।
2- भरत-भक्ति, प्राक्कथन, पृ०-2।
3- भरत-भक्ति, भूमिका, पृ० 1।

के सार-सार को समझाया गया है ; भरत के नन्दिग्राम-वास द्वारा उनकी तपस्या तथा राम-भक्ति का वर्णन किया गया है तथा छठे सर्ग में अवध्यपुरी के द्वारा माण्डवी की नारी-धर्म का उपदेश दिया गया है । पंचदश सर्ग में रथ यात्रा तथा भरत के सम्वाद द्वारा सुख शासन एवं सुराज्य की व्याख्या की गई है । बीसवें सर्ग में कवि भगवान राम की भक्त वत्सलता का वर्णन करते हुए लंका पहुँच गया है । रावण की अनीति का वर्णन किया है । विभीषण त्याग तथा राम-रावण-युद्ध का वर्णन अति सुंदर में किया गया है । सम्वादश सर्ग में सीता-विजय के पश्चात् राम पवन-पुत्र हनुमान को दूत बना कर भरत के पास अयोध्या भेजते हैं । इस अवसर पर वे लंका से अयोध्या तक के मार्ग का वर्णन करते हैं । अयोध्या नगर, वहाँ के निवासियों, नन्दिग्राम तथा तपःनिष्ठ भरत की राम प्रतीक्षा करते हैं । अष्टादश सर्ग में भरत का वियोगानुभव वर्णन है एवं हनुमान द्वारा उनको राम के आगमन का शुभ समाचार सुनाया गया है । छठे सर्ग में राम के अयोध्या पहुँचने, राम-भरत मिलन तथा रामराज्याभिषेक का वर्णन है । एकोनविंशति सर्ग में सुख-नीति, विंश सर्ग में बन्धु-धर्म तथा एकविंश में लक्ष्मण-प्रतीक्षा तथा औरसुर के आनन्द का वर्णन है । राज-सभा में सीता की अग्नि-विजय की प्रतीक्षा राम ने की । द्वाविंश सर्ग में अश्व-सभा में यज्ञ-दर्शनों की चर्चा की गई है । भक्तिवाद को सर्वोच्च बताया गया है । यही ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य भी है । अन्त में भगवान राम की स्तुति कर ग्रन्थ का भारतीय परम्परानुसार समापन किया गया है ।

भरत-भक्ति की राम-कथा विषयक विशेषताएँ:-

1- काव्य के प्रारम्भ में एक विस्तृत भूमिका की रचना गद्य में की गई है, जिसमें कवि ने इस काव्य के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर स्वयं प्रकाश डाला है तथा अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है ।

2- इस काव्य के नायक भरत हैं । काव्य का प्रारम्भ भरत के अयोध्या प्रवेश से किया गया है तथा कथा भरत के साथ अनुरक्त है ।

3- राम को वन भेजने के लिए भरत कैकेयी की भर्त्सना नहीं करते हैं अपितु भाग्य-भाव से ही उसको दोष लगाते हैं । कैकेयी के प्रति वे किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं करते हैं ।

4- कैकेयी का चित्रण एक ममतामयी, स्नेहमयी, पुत्र वत्सला सद्गुणमयी महिला के रूप में किया गया है जिसने स्वयं कष्ट सही किन्तु सिंह शिशु में मंगल विकास किया है ।

5- भरत अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए शपथ नहीं करते हैं।

6- कौसल्या भरत को उपालम्भ नहीं देती हैं तथा कैकेयी के प्रति दुर्भाव भी नहीं रखती हैं, अपितु वे कैकेयी को राम के पास वन जाने हेतु अपने आगे वन में जाती हैं। वे कैकेयी से कहती हैं कि भरत को पाकर हम धन्य हो गई हैं।[1]

7- भरत-भक्ति में निषाद अपनी सेना सहित भरत का मार्ग रोक कर खड़ा हो जाता है।[2] अन्य ग्रन्थों में वह युद्ध की तैयारी भाग करता है।

8- चित्रकूट में सुखपूर्वक मिलन के समय भरत के साथ गुरु वशिष्ठ भी हैं। राम पहले गुरु वशिष्ठ से मिलते हैं फिर भरत से, फिर शत्रुघ्न और गुरु से।[3]

9- कवि ने राम और कैकेयी का सुमिलन संवाद चित्रकूट में कराया है जिसके कारण कैकेयी की निर्दोषता राम ने सिद्ध की है।[4]

10- चित्रकूट से अयोध्या को लौटते समय गुरु वशिष्ठ शत्रुघ्न को सकल राज्य के शासन प्रबन्ध का भार लेने हेतु आदेश देते हैं तथा शत्रुघ्न उसे स्वीकार करते हैं जिससे भरत का साथ कर सकें।[5]

11- भरत माण्डवी को दान-सम्मान तथा मातृ-गृह-सेवा का भार सौंपते हैं।[6] यह भरत-माण्डवी सम्वाद भी कवि की मौलिक उद्भावना है।

12- नारी-धर्म का उपदेश सा ग्रन्थ में अनसूया माण्डवी को करती हैं जबकि "मानस" में पतिव्रता-धर्म का उपदेश अनुसूया ने सीता को दिया है।[7]

13- रथ रोपा का भरत से सुजातन की नीति मानने के लिए संवाद भी कवि की मौलिक कल्पना पर आधारित है।[8]

1- राम कनी रथहिं उठायो, पाँति अनुसार।
धन्य भरतहिं धन्य तू है, धर्म सुयश-आगार॥ भरत-भक्ति, चतुर्थ सर्ग, पृ0 95।
2- देखिए भरत-भक्ति, पंचम सर्ग, पृ0 69।
3- " " नवम सर्ग, पृ0 143।
4- " " दशम सर्ग- सम्पूर्ण।
5- " " नवादश सर्ग, पृ0 235-36।
6- " " चतुर्दश सर्ग, पृ0 265-279।
7- " " चतुर्दश सर्ग, सम्पूर्ण।
8- " " पन्द्रहवाँ सर्ग, सम्पूर्ण।

14- राम पवन-पुत्र हनुमान को अपने के आगमन का संदेश भेजते हैं। ये कालिदास के मेघदूत के यक्ष के समान मार्ग के समस्त देशों एवं स्थानों का वर्णन करते हैं।

15- एक अन्य मौलिक प्रसंग लक्ष्मण-प्रतीक्षा का है जिसमें लक्ष्मण के चौदह वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण करने के कारण अयोध्या में उत्सव मनाया जाता है तथा लक्ष्मण के प्रति निषाद निषादि तथा क्रोध-दीक्षा की पृच्छा राम राज-सभा में करते हैं।

16- अन्त सैर्का-सभा का वर्णन है जिसमें वट-दर्शन आदि की चर्चा है। इस सभा में शिक्षा की ही ईश्वर-प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन बताया गया है।

भरत-भक्ति में भरत का स्थान:-

* "भरत-भक्ति" का नाम ही स्पष्ट कर देता है कि इसके नायक भरत हैं। कवि ने सम्पूर्ण ग्रन्थ में भरत की राम के प्रति भक्ति को उद्घाटित किया है। उसके अनुसार भरत राम के परम प्रिय भक्त हैं। कवि ने भरत की भक्ति को सख्यभाव की भक्ति माना है। उसका कथन है कि " राम और भरत के बीच सख्य-भाव की ही स्थिति है। जैसे नदी उस उस भिन्न स्थानों के अनुसार उसके साथ व्यवहार करती है, उसी भाँति सख्यभाव भी दो व्यक्तियों के बीच ज्येष्ठत्व और लघुत्व का भाव रखता है।[1] उल्लेखनीय है कि तुलसी आदि महाकवियों ने भरत की भक्ति को दास्यभाव की भक्ति माना है। उन्होंने भरत की भक्ति को इस प्रकार के सर्वोच्च आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। भरत-भक्ति में भी एकादश सर्ग में अनेक स्थलों पर भरत की भक्ति में दास्य भाव लक्षित हुआ है।[2]

1- देखिए भरत-भक्ति, भूमिका, पृ० 49 ।

2- सदा नेह सम्हारि राखौ, जानि सेवक मोहि ।
मति न दूसर करम मम मन, छाँड़ि के प्रभु तोहि ॥
सुकृत जो प्रभु सीस सोहत, सो धरौं सब अंग ।
एकादसी में अन्न जाये, होत स्वादि प्रसंग ॥ 67 ॥

तथा

सीस पादुका धारि, भरत निज सिर हरषित किए ।
सहमी बड़ी अकाज, नाथ दीन्हौ जनु बहु दिए ॥
निज सेवक स्वीकार, कीन्ह प्रभु, रह नहिं कछु मन ।
आज पालन करत, स्वामि की बनि दुविधु जन ॥ 112 ॥

भरत-भक्ति, एकादश सर्ग, छंद 67 तथा 112 ।

भरत और राम एक प्राण हैं। इसीलिए भरत कैकेयी से कहते हैं कि " राम प्राण बन कर मेरे शरीर में निवास कर रहे हैं जिसके कारण मैं जीवित हूँ। तूने उनको मुझसे दूर कर दिया है।[1]" यह प्रेम की पराकाष्ठा है। राम सूर्य हैं तो भरत उनके प्रकाश हैं; राम प्राण हैं तो भरत शरीर; रामचन्द्र हैं तो भरत चाँदनी, राम जल है तो भरत मीन हैं। राम के बिना भरत के लिए अयोध्या शून्य है और वे उसमें अन्न जल ग्रहण करना नहीं चाहते[2]। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जिस प्रकार मछली जल के बिना व्याकुल होकर तड़पती है उसी प्रकार मैं भी श्री राम के बिना अत्यन्त व्याकुल हूँ तथा राज्य नहीं सँभाल सकता।[3]" राम के साहचर्य की तुलना करोड़ों इन्द्र-पद भी नहीं कर सकते हैं। उनके लिए राम की सेवा मेवा है तथा राज्य बहुत भीख[4]। राम उनके लिए सुख के भी सुख हैं।

राम के वियोग में भरत बहुत व्याकुल हैं। अयोध्या आने पर राम-गन-गमन के समाचार ने भरत को सर्वाधिक व्यथित किया था। पिता की मृत्यु का शोक भी उसके सामने गौण हो गया है। राम के विरह से व्याकुल भरत का एक मार्मिक चित्र कवि ने इस पद में प्रस्तुत किया है,-

> सुख निधि उमड़ी ओर घोर घटि बिरह-पवन तहँ।
> इमगन धीरज-नाव, बीचि-पुरता जिय परि जहँ॥
> लखि कीटु तट भरत, बिदूरी अवनी महँ व्याकुल।
> राम-मातु की दसा, देखि सुर-नर मुनि आकुल॥

1- राम प्राण बनि बसि सरीर मम, कीन्हा राखा मोहीं।
दूरि कीन्ह तैं उन कहँ मो तोहीं, अवध लखिया तोहीं॥ भरत-भक्ति, प्रथम सर्ग, पद 30

2- जैसे लखि प्रकास भानु बिनु, प्राण-हीन तनु भाता।
चाँदनि चन्द्र, सूखी पानी बिनु, नेह बिना प्रिय नाता॥
उदित न पंडी पंक बिना नभ, जल बिनु मीन न जीवैं।
राम बिना नहिं काम अवध कछु, जल न पेंडु बिनु पीवैं।
भरत-भक्ति, द्वितीय सर्ग, पद 14।

3- मीन सकै सर बिना बारि रहि, लखत अम्बु दुखारी।
सत अति बिना राम-प्रिय बिनु मैं, सकौं न राज सँभारी॥
भरत-भक्ति, द्वितीय सर्ग, पद 16।

4- तातैं मातु देहु राज्य नाहिं, सहौं राम-पद-सेवा।
तोरि इन्द्र-सुख नाहिं रचहि सम है, सहौं निम्ब महँ मेवा॥
भरत-भक्ति, द्वितीय सर्ग, पद 19।

इस ग्रन्थ में भरत का एक अन्य गुण अत्यन्त विशिष्टता के साथ प्रदर्शित किया गया है और वह उनका परम पुरुषार्थ स्वभाव है। कवि के अनुसार उन्हें पूर्ण कीर्ति प्राप्त थी,[1] जिसके कारण उन्हें अरिशिक्षा देने तथा शासन-शक्ति थी। क्रोध आदि विकार भरत के धीर एवं शान्त मन का स्पर्श भी नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि इस ग्रन्थ में भरत ने अपनी माता कैकेयी पर क्रोध नहीं किया है; उनका अपमान अथवा भर्त्सना नहीं की है। कैकेयी से उनका संवाद क्रोध से युक्त नहीं है अपितु दुःख एवं शोक से व्यक्त हो गया है।[2] भरत ने कैकेयी का मान कुशिक्षा जल वाली सरिता के समान बुझा दिया।[3] यही नहीं चित्रकूट-सभा में तो भरत ने कैकेयी एवं मंथरा की निर्भर्त्सना भी सिद्ध की है।[4]

कवि की दृष्टि में राम और भरत त्याग, कर्त्तव्यपालन एवं सद्गुणों में एक समान हैं। दोनों की सांसारिक आकांक्षाएँ, राज्य वैभवादि से विभिन्न हैं, ठीक वैसे ही जैसे जल का मैं रह कर जल से।[5] अयोध्या के नर-नारि समान रूप से दोनों भाइयों

- -

1- देखिए भरत-भक्ति, भूमिका पृ0 53 ।
2- देखिए भरत-भक्ति, प्रथम सर्ग, छंद 27 से 30 तक ।
3- सुत सरिता सर बहुत सीच सकि, त्यागि देहुकमाना ।
सो भरत निज कैकयी, कहुँहिं सो मतिमाना ।।
भरत-भक्ति, प्रथम सर्ग, छंद 31 ।
4- मातु दीन्ह विचार नहिं अस, राम कानन जायँ ।
दुवरि भरि के कान-कनी, दीन्ह मति पलटाय ।।
तातु को का दोष यामें, लिखो विधि अस भाल ।
बहति दीन्हों राम मारग, बाम भो कैकाल ।।
भरत-भक्ति, एकादश सर्ग, छंद 59 ।
5- मन को दुःख राम नहिं मान्यो, सुख सुख हूँ नहिं मानो ।
सुता सीस सम अवध बन्धु रहि, कर्म बेट का जानो ।।
जाय रहता जल बिच सबहूँ त्यागि , कुमा वारि कहुँ लेयो ।
पावक सरनी-सरहूँ बसि निज, अम्बु और नहिं देयो ।।
भरत-भक्ति, तृतीय सर्ग, छंद 10 ।

की प्रशंसा करते हैं। भरद्वाज ऋषि भी भरत की प्रभु-भक्ति तथा त्याग की प्रशंसा करते हैं। राम स्वयं भी भरत की भक्ति, प्रेम तथा सज्जनता के प्रति आश्वस्त हैं। उन्हें विश्वास है कि भरत उनको राज्य देने तथा अयोध्या को ले चलने हेतु ही आ रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मण को यही समझाकर उनके मन में उठती हुई शंका का समाधान किया था।

भरत दया, धर्म और त्याग की साक्षात् मूर्ति हैं। चित्रकूट जाते समय भी हुए पक्षियों को देख कर उनके मन में दया उमड़ पड़ती है और वे उनकी सम्हारी लेते हैं। कैकेयी द्वारा राम को वनवास दिये जाने के मूल में स्वयं को मानकर वे आत्मग्लानि से भर रहे हैं। निर्दोष होते हुए भी स्वयं को दोषी मान कर धिक्कारते हैं। राम से सुख की प्रार्थना करते हैं। चित्रकूट सभा में भरत का आत्म चित्र दीनता, ग्लानि, कातरता, विनय तथा निश्चल प्रेमपूर्ण अनुरोध की लिए है यह देखते ही बनता है।

1- भरत-भक्ति का चित्रित सकल जग, राम हिते सब त्यागी।
प्रात चरन बुधि पद्म प्रीति हित, अवध न बसि बन भागी॥
× × × ×
भरत-त्याग त्यागी-ऋषि-मुनिहूँ, आदर अरब करायो।
लोक लेत हित हेरि हरषि सब, दुख गहि सुख दुरियायो।
भरत-भक्ति, सप्तम सर्ग, छंद 8, 9।

2- लेन समाज संग ले आयो, धरि मन भाव घनो।
देख साँचि सब साथ समारे, भरत न सारि बनो॥ 43॥
भरत-भक्ति, नवम सर्ग, छंद 43 तथा 47।

3- पंखिन पास कीउ चित्रकूट दिसि, मय मय पंखि बहु धीने।
देखि भरत त्यहि देत सम्हारी, दया दीन हित जी में॥
दुखित देखु पाँखि लेत जो, दुखी न यह फिर होये।
सकल करत तरि मारग कौं उमड़ बहत सुख जोये॥
भरत-भक्ति, नवम सर्ग, छंद 10।

4-चित्रत रघुवर- चरन-कमलहिं, धूरि-धूसर कीन्ह।
जनक कनी पन्थिय पारयौं, प्रभु कर-दुख दीन्ह॥
पुनि चित्रत पुरुषारथ निज बहु, भरत पिनु निमि देनु।
पहन प्रभु के चरन आयौं, नाथ कह, मैं रेनु॥
भरत-भक्ति, एकादश सर्ग, छंद 64।
तथा द्रष्टव्य है भरत का उत्तर छठी सर्ग में छंद 42 से 91 तक।

भरत के अलौकिक त्याग की प्रशंसा स्वयं राम ने कराची गई है। भरत लोक एवं परलोक के सुखों को त्याग कर और आगे बढ़ गए हैं। त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँच जाने के कारण भरत " त्याग" के पर्याय बनकर अद्वितीय त्यागी के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं[1]।

भरत-भक्ति के भरत श्रेष्ठतम तपस्वी हैं। वे निरन्तर राम के ध्यान में अवस्थित होकर राम का सान्निध्य प्राप्त किए रहते हैं। तपस्वी का सा धारण कर वे निरन्तर तपस्या में लीन हैं। राज्य राम का है इसलिए वे उसकी तत्परता से रक्षा करते हैं परन्तु फिर भी विरक्त रहते हैं[2]। वे महायोगी हैं तथा सुरितायों का निरोध कर आत्म-बोध प्राप्त किए हैं। राम के चरण-कमलों के ध्यान में निरत भरत ब्रह्म के साथ एकरस होकर जगत के त्यागी होते हुए भी उससे पुनः विरक्त हैं[3]।

1- प्रेम हिये भरपूर, भरत जग-गम-भय नहिं मन।
यस न सुख परलोक, लोक भोग कौं का मन॥
ब्रह्म-पदहु नहिं चाह, छाह नहिं जग में कोउ तन।
भेद खेद अरि मीत, सीत तापहु सह सुख तन॥
अब " त्याग" नाम निज भरत धर, विरत न कोऊ बंधु तन।
बलि करत आपु तब त्रास हित, भरत कहँ तो कहँ हम॥

भरत-भक्ति, एकादश सर्ग, छंद 103।

2- तपसि तप को धरि, तपत ते निसि दिन तप तहँ।
राज राम को मानि, करत रक्षा तापी यहँ॥
विरति, भोग, सुख तजि, भक्ति-पथ किनी भरत यहँ।
लोक और परलोक सुख, हित त्याग-धार यह॥

भरत-भक्ति, चतुर्दश सर्ग, छंद 29।

3- सुरितन करत निरोध, बोध निज आतम होये।
बाह्य दृष्टि कौं खींचि, राम-पद और जोये॥
सदा नाम आधार, सुरति तैं मन करि लीन्हें।
जगत होत नित काज, नाह कन तबहुँ न चीन्हें॥

भरत-भक्ति, चतुर्दश सर्ग, छंद 30।

तथा- रसना रट हरिनाम, ध्यान-नाभी समाधि भव।
तन मन प्रभु के साथ, कहौ को विषय-पंथ जन॥
करम पुण्य-फल चाह, भवत हित आह आस नव।
छोरि दया ते नाथ, नाथ रेखा तव विधि तव॥

भरत-भक्ति, चतुर्दश सर्ग, छंद 41।

राम के ध्यान में लीन भरत अनुराग के अमृत से ऐसे तृप्त हैं कि उन्हें विषय में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उन्होंने अपनी तपस्या से अवध-वासियों के हृदय की दशों दिशाओं को भी इतना स्वच्छ कर दिया है कि उनमें भी सीताराम का स्वरूप निरन्तर प्रतिबिम्बित रहता है और इस प्रकार उनके विरह-दुःख को दूर कर दिया है।

चतुर्दश वर्षों की अवधि के समाप्त प्राय होने पर कवि ने भरत की विरह-व्याकुलता एवं मिलन की प्रतीक्षा का बहुत सुन्दर चित्र अष्टादश अध्याय के पुष्प छन्दों में प्रस्तुत किया है। भरत को राम पर अगाध विश्वास है। उन्हें विश्वास है कि राम अयोध्या को अवश्य पुनरावर्तित करेंगे। इसीलिए पद्म पुराण के भरत की भाँति उन्हें चिता तैयार करने की आवश्यकता नहीं है। भरत के वास्तविक स्वरूप का दर्शन तो हनुमान ने अयोध्या आने पर किया था। देखिए-

" ज्ञान जहँ प्रतिहार सोहत, सदन-हृदय ललाम।
स्वच्छता अस सत्य राजति, भीति-हृदय धाम॥
सरल-भाव-गयाद बहु अति, दया-द्वार दिखात।
धर्म-जल सुधीर-घट जहँ, छमि-कमा दरसात॥
गंभीरता की कोठरी जहँ, विरति चँद्र विचार।
पुष्टि तात्विक तेजमी अति, दिपत दीप विचार॥
चित चिन्हिता चरित प्रभु के, जहँ दिसा अभिराम।
भरत भूपति करत स्वकर, राम आवहुँ धाम॥"

अयोध्या आने पर राम और भरत के मिलन का भी कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। कवि ने भरत का स्वरूप अत्यन्त तात्विकतामय चित्रित किया है। वैसे तो सभी रामकाव्यों में भरत का चरित्र सर्वथा निर्दोष ही चित्रित किया गया है परन्तु भरत-भक्ति में भरत के चरित्र से साधु-भावना तथा आकस्मिक कुण्ठता सिद्ध करने आदि दोष भी निकाल कर उन्हें विशुद्ध, तात्विक, योगस्थ भगवद्-भक्त के रूप में चित्रित किया गया है। कवि ने अपने काव्य में सिद्ध कर दिया है कि भरत रामरूप हैं और राम भरतमय।

1- दिखा सबै सियराम, उर दिव्य-दरपन माहीं।
धन्य भरत रत-राम, बहुरो दुःख विरहिन काहीं॥
भरत-भक्ति, चतुर्दश सर्ग, छंद 54-55 ।

लोक-विचार - लेखक जगदेव प्रसाद मिश्र

(सन् 1933)

" लोक-विचार काव्य की रचना श्री जगदेव प्रसाद मिश्र ने सम्वत् 1974 में की थी परन्तु पुस्तक का प्रकाशन संवत् 1990 में कराया गया । कथा-विषय के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं ही कहा है कि, " श्री भगवान् रामचन्द्र के माधुर्य तथा ऐश्वर्य-भावपूर्ण चरित को अपना कथा-विषय बना कर कोई अनौचित्य नहीं किया है ।" कवि ने यह भी स्वीकार किया है कि " श्री गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण के बालकाण्ड का कथानक ही इस ग्रन्थ के कथा-विषय का मुख्याधार है ।[1]" ग्रन्थ की विषयवस्तु का सारांश कवि के शब्दों में इस प्रकार है:-

" इस ग्रन्थ में अठारह सर्ग हैं । प्रथम सर्ग में विषय-प्रवेश, रावण-संत्रस्त देवताओं की स्तुति तथा भगवान का उत्तर है । दूसरे में दशरथ-नरेश का पुत्र-प्राप्ति के लिए प्रयाग तथा रामवन्य आदि का वृत्तान्त है । तीसरे में राम का नख-शिख तथा वाल्मीकि जी का साक्ष्य और प्रभातकालीन सौन्दर्य अंकित है । चतुर्थ में विश्वामित्र-दशरथ-संवाद, विश्वामित्र-राम संवाद तथा ताड़का-वध है । पांचवें में राक्षसी सभा तथा यज्ञ का वर्णन है । छठें में यज्ञ और विजय की बात है । सातवें में तपोवन निरीक्षण और जनकपुरी की ओर प्रस्थान है । आठवें में जानकी-जन्म की कथा तथा अहल्योद्धार की बात है । नवें में मा.ा - गौरव-गान, संतरन्, जनकपुर-आगमन तथा नगर-दर्शन है । दसवें में धनुष-यज्ञ का दृश्य है । ग्यारहवें में राम और सीता का प्रथम साक्षात्कार है । बारहवें में पूर्वानुराग की व्यथायें अंकित हैं । तेरहवें में धनुष-यज्ञ और चौदहवें में परशुराम-संवाद है । पंद्रहवें में बरात का वर्णन तथा जनु-सुकन्या का वृत्तान्त है । सोलहवें में विवाह की धूमधाम है । सत्रहवें में विदा का करुण दृश्य है और अठारहवें में अवध के आनन्द के साथ राम का युवराजत्व अभिलाषित है ।[2]" सम्पूर्ण विषय-वस्तु रामचरित मानस के बालकाण्ड पर आधारित है परन्तु विषय का संक्षेपीकरण एवं प्रस्तुतीकरण करने में कवि ने अपनी कल्पना का विलास प्रदर्शित किया है ।[3] सम्पूर्ण-काव्य हृदय-ग्राही, रोचक तथा माधुर्य एवं ओज से परिपूर्ण है ।

इस काव्य की कथा-वस्तु की विशेषता है पुत्र-प्राप्ति हेतु वशिष्ठ से दशरथ

1.- " लोक विचार" की भूमिका पृ0 9 तथा 10 ।

2.- देखिए- " लोक-विचार" की भूमिका, पृ0 6-7 ।

3.- " यह कथाना मौलिक विषय है है क्योंकि रामकथा को यदि विशेष रोचक बनाना है तो उसे इस विशेष दृष्टिकोण से ही देखना होगा । मैंने इसी नवीन दृष्टिकोण से बालकाण्ड की कथा का विस्तार किया है ।"

पं0 जगदेव प्रसाद मिश्र " लोक विचार" की भूमिका, पृ0 11 ।

की विनय तथा पाँचवें छठे सर्ग में अनार्य आचरण का वर्णन- दीर्घदन्त तथा वीरबाहु राक्षसों के भाषण तथा युद्ध वर्णन । अत्याचारों के वर्णन पर आधुनिक युग की छाया देखी जा सकती है । इन्द्र ने यज्ञ-रक्षा हेतु उन्हें इस युद्ध में राम लक्ष्मण की सहायता के लिए देव-सेना को भेजा । द्रष्टव्य है कि इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कहीं इस बात का उल्लेख नहीं हुआ है । यह कवि की अपनी कल्पना है । किसी विशाल शिक्षा-विद्यालय के समान महर्षि विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन भी अपनी विशिष्टता रखता है । अहल्या की कथा में भी कवि ने उदार अन्तर किया है । अहल्या नभमण्डल में इन्द्र के विलास स्थल मेघ-घटा तथा विद्युत छटा को देखकर काम भावना से पीड़ित होकर आकाश की ओर देखने लगती है । मुनि उसकी इस उच्छृंखलता से रुष्ट हो उसे शापित करते हैं । यदि कोई पाप अहल्या से हुआ था तो वह मात्र मानसिक था जिसके लिए उसे उपेक्षिता पाषाणी बनने का भीषण दण्ड भोगना पड़ा । इस प्रकार कवि ने नारी-चरित्र की रक्षा करते हुए अहल्या के चरित्र का उत्कर्ष करने का प्रयास किया है । कवि ने पुष्पोद्यान के रूप में राम के विरह का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया है । अन्तिम अध्याय में सम्पूर्ण कथा का आभास दे दिया है तथा रामराज्य का भी एक प्रकार से पूर्वाभास दिया है ।

इस ग्रन्थ में भी राम को विष्णु का अंशावतार माना गया है तथा राक्षस संहार से देवताओं तथा धरती का उद्धार करना इस अवतार का कारण बताया गया है । कवि ने आर्य संस्कृति के सुदूर दक्षिण तथा प्रसार की भी बात कही है तथा आर्य संस्कृति के सुन्दर समुन्नत स्वरूप को प्रस्तुत किया है । आर्यों, अनार्यों तथा वानरों की स्थिति स्पष्ट की है ।

कौशल-किशोर में भरत का स्वरूप:- इस काव्य में केवल बालकाण्ड की कथा का ही वर्णन एवं विस्तार है । परिणामतः भरत के स्वरूप के पृथक से दर्शन हमें यदा-कदा ही हो पाये हैं । ~~परन्तु~~ भरत भी विष्णु के अंशावतार हैं इस बात का आभास द्वितीय सर्ग में राजा दशरथ के स्वप्न से हो जाता है जब राजा दशरथ ने विष्णु को अपने चारों कर-कमलों में चार सुन्दर मूर्तियाँ लिए देखा[1] । भरत के जन्म का वर्णन कवि ने राम के

1- देखा उनने प्रथम रात्रि यह सपना भारी, नव-इन्दीवर-वदन विष्णु पर व्योम विहारी ।
पीताम्बर कटि को विजयन्ती उर धारे, कुण्डल केयूर मुकुट से रुचिर सँवारे ।।30 ।।
श्री वसुधा चार मूर्तियाँ थीं सुन्दर, दयादृष्टि से हुआ निहारते थे उन सब पर ।
देखा सुखागार मुनवर ने जब पाया, सौरभ परम प्रसन्न विविध विध दान कराया ।।31।।

। कौशल किशोर, अध्याय 2, 30-31 ।

धन्य के साथ उन्हें " भूमि-भय-भंजक" बताते हुए किया है[1]। चारों भाइयों के सभी संस्कार साथ-साथ हुए। राम लक्ष्मण तथा भरत शत्रुघ्न की जोड़ी का वर्णन इस काव्य में भी किया गया है[2]। चारों भाई परस्पर बड़े प्रेम से खेले थे। राम बिम्ब थे और तीनों भाई उनके प्रतिबिम्ब थे[3]। भरत का परिचय कवि ने पूर्ण रूप से अद्वितीय रूप से सच्चे सेवक धर्म के पालक रूप में दिया है तथा उन्हें दिव्य भ्रातृ-प्रेम का आदर्श बताया है[4]। युगपा के लिए बन जाते हुए चारों भाइयों के दर्शन हमें तृतीय सर्ग में होते हैं। तत्पश्चात् इस काव्य में चौदहवें सर्ग तक हमें भरत के दर्शन नहीं होते हैं।

पुनः भरत के दर्शन पन्द्रहवें सर्ग में होते हैं, जब महाराज जनक की पत्रिका के रूप में राम के विवाह का सुखद समाचार लेकर दूत अयोध्या आते हैं। दूतों/जनक की पत्रिका दशरथ को दी। आनन्द विभोर दशरथ ने यह समाचार सभा में बैठे लोगों को सुनाया। तत्पश्चात् अन्तःपुर में जाकर कौसल्या तथा अन्य रानियों को वह पत्रिका पुनः पढ़कर सुनाई। सभी हर्ष विभोर हो उठीं और भरत-शत्रुघ्न के समीप आईं। माताओं ने भरत से कहा, " भैया! भैया का मनोहर समाचार आया है, उठ कर मन-भाया मंगल-साज सजो।" सुनकर भरत के हर्ष तथा प्रेम की सीमा न रही। उत्सुक हो उन्होंने राम के समाचार पूछे और माता ने उन्हें राम के समस्त अद्भुत कार्य सुना दिए। इन समाचारों को सुनकर हर्ष से भरत की छाती फूल गई और उनको रोमांच हो उठा। कवि ने प्रेम-विभोर हर्ष-पूरित भरत का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। जब से राम कौशिक मुनि के साथ गए थे तब से राम के वियोग में भरत

1- ज्यों ही प्रकटे राम श्याम अभिराम सुमंगल, त्योंही आये भरत भूमि-भय-भंजक भूपर।

। कौशल किशोर, अयोध्या 2, 39 ।

2- क्रमशः जब कुछ बड़े हुए थे चारों भाई तथा शक्ति जब संग खेलने की हो आई।
तब से लक्ष्मण हुए राम-आज्ञा-अनुगामी तथा भरत जी को शत्रु-सूदन के स्वामी ।।49 ।।

। कौशल-किशोर, अयोध्या।21, 49 ।

3- इस ओर युग्म उनके अनुपम
साधारण जन जिस विधि भाये।
बिम्ब वही थे शेष बन्धु तो
उनके थे प्रतिबिम्ब सुहाये ।।3 ।।

। कौशल-किशोर, उत्तर्ग ।31, 3 ।

4- तथा सेवक धर्म भरत का, भूपर क्या कोई पायेगा ?
अहा! दिव्य यह भ्रातृ-प्रेम क्या, कभी पुनः छवि छिटकायेगा ?

। कौशल-किशोर, उत्तर्ग ।31, 2 ।

खिन्न मन रहते थे। इस संवाद ने उनमें नव जीवन का संचार किया[1]। दौड़े-दौड़े वे दशरथ के पास आए तथा उन्हें पुनः राम वृत्तान्त सुना। फिर सभा भवन में जाकर यही वृत्तान्त बार बार दूतों से सुना और आकर पिता से कहा, " अब सब को लेकर मिथिला को कब चलेंगे ?" राजा दशरथ ने उत्तर दिया, " क्यों हो पिलम्ब, शुभ कार्य शीघ्र ही पूरा- " भरत पिता का आधा वाक्य ही सुनकर बारात की तैयारी के लिए चल दिए[2]। कवि ने यहाँ स्वाभाविक भ्रातृ-प्रेम की मनोहारी झाँकी प्रस्तुत की है।

चारों भाइयों का विवाह एक साथ हुआ। राम-विवाह की धूमधाम में ही सब भाइयों के विवाह की धूमधाम देखी जा सकती है। विदा के करुण दृश्य में सीता के साथ माण्डवी तथा अन्य बहनों की विदा भी परिलक्षित है। राम ने राज-काज अलग कर दिया। समस्त प्रजा सुखी थी। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल (केकय देश) को चले गए। राजा ने अपना समीप वृद्धा देखकर राज्य राम को देने का निश्चय किया तथा राम के राज्याभिषेक की मंगल-आशा में ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है।

इस काव्य में भरत के चरित्र-चित्रण का अवकाश कार्य-विषय को देखते हुए नहीं था। इसी कारण कवि केवल भरत के भ्रातृ-प्रेम का ही चित्र प्रस्तुत कर सका है।

1- संवाद भरत को भूल गया अति सत्वर, वे दौड़े पड़े "माँ ! कहा !" हो व्यस्त।
मस्तिष्क हृदय आ शीघ्र बने कानों में, बिजली सी वह ध्वनि दौड़ गई प्राणों में ।।25 ।।
माता ने जो जो हाल रसाल सुनाये, यों गौरवमय वे हुए न हृदय समाये।
फूली छाती उठ गए रोम सुखकारी, उछला आँखों तक सलिल कण्ठ कर भारी ।। 26 ।।
वे जब से रघुकुल-तिलक सबन्धु सिधारे
रहते थे घर में भरत दुखित मन मारे।
नवजीवन सा संवाद रुचिर जब पाया
उत्साह अनुपम आज लौट फिर आया ।। 27 ।।

। कौशल किशोर, सुखद संवाद।15।,25-27 ।

2- वे रहते चाहे, वे न अघाते सुनकर
फिर फिर कुछ देते पूछ सुपुत्र मनोहर।
फिर दौड़े दशरथ तीर और यों बोले
" विदा की अब कब करें पिता ! सबको ले ?" 29 ।।
" क्यों हो पिलम्ब, शुभ कार्य शीघ्र ही पूरा- "
आगे सुनकर यह वाक्य मनोज्ञ अधूरा।
भृत्यों को झट आदेश दिया सुख साना
" सब हो बरात का पूर्ण साज सजाना" ।। 30 ।।

। कौशल-किशोर, सुखद संवाद 15, 29-30 ।

ऊर्मिला । बाल-कृष्ण शर्मा नवीन।

कवि ने इस काव्य की रचना प्रारम्भ की सन् 1922 में, और ग्रन्थ पूर्ण किया सन् 1934 में तथा इसे प्रकाशित कराया सन् 1957 में। यह 53 सर्गों का 617 पृष्ठों का विशाल काव्य ग्रन्थ है। काव्य प्रसाद पूर्ण तथा कवि मनोरंजक एवं सरस है।

प्रथम सर्ग में कवि ने ऊर्मिला से प्रार्थना करने के पश्चात् मिथिला नगरी की प्रदक्षिणा के मिस उसका वर्णन किया है। इस सर्ग में ही कवि ने ऊर्मिला और सीता के बाल्यकाल का वर्णन किया है। इन बाल सुलभ घटनाओं में ही इन दोनों राजकुमारियों के भावी जीवन की घटनाओं का आभास प्राप्त हो जाता है।

दूसरे सर्ग में विवाहोपरान्त का उत्सव दृश्य प्रस्तुत किया गया है। चारों नव-वधुएँ अयोध्या में आई हैं। नगर की नारियाँ उनको देखकर उनके रूप-गुण की प्रशंसा करते नहीं अघाती हैं। वधू ऊर्मिला सुमित्रा की लाड़ली हैं। देवर भाभी तथा भाभी और नन्द में उल्लासपूर्ण हास-विलास चलता रहता है। लक्ष्मण और ऊर्मिला का दाम्पत्य प्रेम सराहनीय है और निरन्तर अग्रसर की चर्चा करता है। लक्ष्मण ने ऊर्मिला के प्रश्नों के उत्तर में प्रेम के आध्यात्मिक पक्ष को समझाया। दोनों का प्रेम उदात्त होकर जन-जन के कल्याण की रचना करने लगा।

तीसरा सर्ग राम-निर्वासन की सूचना के साथ प्रारम्भ होता है। राज-भवन का हास-विलास समाप्त हो गया। लक्ष्मण ऊर्मिला से विदा ले रहे हैं। दोनों विकल हैं- अश्रु-प्लावित। लक्ष्मण ऊर्मिला को समझाते हैं कि वन-गमन आदेश की औपचारिकता मात्र है वस्तुतः राम को दक्षिण में आर्य-संस्कृति का प्रसार करने तथा वहाँ सुरक्षा और विजय प्रदान करने जाना आवश्यक ही है। यहाँ लक्ष्मण के मन में निर्वासन आदेश के प्रति आक्रोश नहीं है। सीता और ऊर्मिला का भी इस विदा-बेला पर वार्तालाप महत्वपूर्ण है। यहाँ ऊर्मिला कहती है कि राम सिद्ध पुरुष हैं और सीता निपुणातीत बनती हैं। सीता ऊर्मिला

1- अन्तर है श्री रामचन्द्र में, जीजी, और सुलक्ष्मण में,-
वही भेद जो कि है सिद्ध-गुण, और साधना-लक्ष्य में ;

* * *

ठीक कहा है उन ने, जीजी, तुम में मुझ में क्या समता ?
तुम हो निपुणातीत बनती, मैं हूँ दुर्बलता ममता।

ऊर्मिला, 3, पृष्ठ 279 ।

को धैर्य बँधाती हैं फिर राम आकर उनको आशीर्वाद करते हैं। उनसे मैं सुमित्रा आ जाती हैं। राम उनकी वन्दना कर कहते हैं कि, " माँ, सीता, लक्ष्मण, पिता दशरथ, माँ कौसल्या अथवा भाई भरत- कोई भी तुम्हारी और वधू उर्मिला की महानता को नहीं पा सकता।"[1] सुमित्रा समझा बुझाकर सीता सहित पुत्रों को वन के लिए विदा कर देती हैं।

चतुर्थ अंक में कवि ने उर्मिला का विरह-वर्णन किया है। सुमित्रा की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। पाँचवें सर्ग में भी उर्मिला का विरह-वर्णन ही किया गया है।

षष्ठ सर्ग में लंका विजय के पश्चात् विभीषण के राज्याभिषेक का दृश्य उपस्थित किया गया है। लंका का घर घर सजा हुआ है। वहाँ सदा की विजय हुई है। अन्धकार और अत्याचार दूर हुए हैं। वन-वन आह्लाद पूर्ण है। यह लंका अब मिथिला नहीं अपितु मिथिला हुई है।[2] राम ने विभीषण का राज्याभिषेक किया। विभीषण के वामभाग में मन्दोदरी विराजमान है। राम उस समय वसुन्धर भाषण के द्वारा राम और रावण के सिद्धान्तों का अन्तर स्पष्ट करते हैं। उनका कथन है कि विजय तपस्या के द्वारा ही संभावित है। विभीषण और सुग्रीव भी राम के प्रति आभार व्यक्त करते हुए भाषण करते हैं। विभीषण सीता की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। पुष्पक द्वारा राम अयोध्या को सीता लक्ष्मण सहित प्रस्थान करते हैं। सीता लक्ष्मण से वधू उर्मिला की चर्चा करती हैं और मिलन के क्षणों की भावपूर्णता को प्रकट करती हैं। यह भावात्मक आध्यात्मिकता में बदला जाता है। अयोध्या में विमान आ पहुँचा परन्तु कवि की लेखनी भावातीत-मिलन की उस अनिर्वचनीय घड़ी का वर्णन करने में असमर्थ है।[3] फिर भी लक्ष्मण के चरण-नाद पर न्योछावर होती हुई उर्मिला के ध्यान से काव्य समाप्त हुआ है।

उर्मिला में भरत:- इस काव्य में पात्रों का चित्रण बहुत सीमित रूप से किया गया है। मिथिला में केवल सुनयना और जनक का, अयोध्या में उर्मिला, सीता, लक्ष्मण, राम तथा

1- रामभद्रे, न यह सीता भी, लक्ष्म न, नहीं तात दशरथ-
परम पूजनीया कौसल्या, माँ भी नहीं, न बन्धु भरत-
कोई नहीं पहुँच पाते हैं, वहाँ तुम्हारा आसन है,-
वहाँ वहाँ उर्मिला वधू है, उस-मोद का आसन है:

उर्मिला, 3, पृ० 315 ।

2- नहीं अब मिथिला यह लंका, - वहाँ विजय है आर्यों की,
यह जय है तापस आर्यों के, सुदृढ़ वज्र ब्रह्मचर्यों की। उर्मिला, 6, पृ० 531 ।

3- धरती का यह सारा प्रतीक्षा, सन्निकटीभूतानन्द कन्द,
और वह सारे मिथिला अपनी, जय प्रतिमा होवे शिव-रूप ?

उर्मिला, 6, पृ० 618 ।

सुमित्रा का और लंका में विभीषण के परिजनों का चित्रण रत्नोत्तिता परिवेश में किया गया है। एक एक बार दशरथ, शत्रुघ्न और सुग्रीव के दर्शन भी कराये हैं। राम-कथा के महाशक्तिमान हनुमान का तो नामोल्लेख तक नहीं है।

सम्पूर्ण काव्य में भरत के दर्शन किसी भी रूप पर नहीं कराये गए हैं। मुख्य पात्रों ने उनका विशिष्ट स्मरण भी नहीं किया है। सम्पूर्ण-काव्य में केवल छः स्थलों पर भरत का नामोल्लेख हुआ है। सर्व प्रथम विवाहोपरान्त नवविवाहों के नाम में चारों भाइयों के नाम आए हैं जिन्हें "रतिया" बताया गया है[1]। अयोध्या की प्रजा चारों जोड़ियों पर मुग्ध है। भरत का नामोल्लेख दूसरी बार उस समय होता है जब रामसुमित्रा से विदा ले रहे हैं[2]। उस समय वे सुमित्रा को सखी महाबु बताते हैं- भरत से भी। तीसरी बार भरत का उल्लेख पुनः उसी सर्ग में विदाई की बेला में लक्ष्मण और सीता के परिहास के प्रसंग में हुआ है। लक्ष्मण कहते हैं कि "भला भरत मेहूना छोटी भाभी के मकरन्द में लीन हैं और तुम्हारी अमिता ने मुझको अपने छल-छन्द में बाँध लिया है[3]।" इस उपहास में भी भरत के भला होने की बात व्यञ्जित होती है। चौथी बार भरत का उल्लेख विरहणी अमिता के मुख से कराया गया है। वह परिवार-वर्ग के राम-लक्ष्मण-विरह जनित कहते हुए कहती है कि "भरत बन्धु की आँखों के आँसू पल भरत की भी नहीं सूखी हैं[4]। वह आगे कहती हैं कि, त्याग और सन्यास की परिभाषा अब एक हो गई है। भरत पूर्ण सन्यास हैं और त्याग तथा तप का आधार भी भरत ही हैं[5]।" वस्तुतः भरत

1- चारों राजकुमारों से लघु मन चिह्न-रतियाँ का सारा ;
हमारे ऊपर बढ़े हैं रतिया, बढ़े पुलने हैं ये उन री ;
x x x
राम, भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण का यह नया प्रभात हुआ ;
अमिता, 2, पृ० 78 ।

2- देखिए अमिता, 3, पृ० 315 । पद 291 ।

3- "भला भरत मेहूना की छोटी
भाभी के मकरन्द की ;
और तुम्हारी विमल अमिता
ने मुझ पर छलछन्द की ।" अमिता, 3, पृ० 334 ।

4- "बाबु सुमित्रा देवि की, और पूज्य जननी,
भरत बन्धु की नेह का नेहु नहीं ठहरात ।" । 5101

तथा-

5-" त्याग और सन्यास की परिभाषा अब एक,
भरत पूर्ण सन्यास है, भरत ही त्याग तप टेक ।
अमिता, 5, 518 तथा 523 । पृ० 485 ।

के जीवन का यही सच्चा चित्र भी है। पाँचवीं बार भरत का उल्लेख पुष्पक विमान में बैठी हुई सीता ने स्वयम ही किया है, " राम की लीला नर को नारायण बना देना है। भरत-माण्डवी, रिपुसूदन-श्रुतिकीर्ति तथा हमारी सभी माताएँ पुरुषोत्तम-रूपिणी हो गई हैं।" यहाँ भरत का भी पुरुषोत्तमत्व प्रकट हो रहा है। अन्तिम तथा छठीं बार पुनः पुष्पकस्था सीता ने स्वयम कहा है कि, " हे भाभी तुम तो भरत की योगेश्वर की योग-प्रेरणा हो।"

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि अनिता-काव्य में यद्यपि भरत का प्रसंग बहुत कम आया है परन्तु इतने अल्प क्षण में भी उनका त्याग, त्याग, योग तथा वैराग्य आदि सौ-गुण स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते हैं। प्रभु राम के ऐसे त्यागी भरत माण्डवी सहित पुरुषोत्तमत्व को प्राप्त हैं। राम के विरह में निरन्तर अश्रु-मूर्ति उनके नेत्र राम के प्रति उनके प्रेम को प्रकट कर देते हैं।

रामचन्द्रोदय-(कवि रामनाथ ज्योतिषी)

रामचन्द्रोदय काव्य की रचना सन् 1936 ई0 में पूर्ण हो चुकी थी। इस काव्य के रचनाकार अयोध्या- राज्य के राजकवि पं0 रामनाथ ज्योतिषी हैं। कवि विद्यावारिधि की उपाधि से विभूषित था। श्री रामचन्द्रोदय काव्य" पर मार्च सन् 1937 में कवि को औरछा नरेश द्वारा स्थापित " देवपुरस्कार" प्राप्त हुआ था। श्री रामदेव त्रिपाठी ने इस काव्य

1- नर को नारायण कर देना,
यही राम की लीला है,
इसीलिए यह दैहिक बन्धन,
अब कुछ ढीला-ढीला है,
भरत- माण्डवी, रिपुसूदन-श्रुति-
कीर्ति हमारी सब मातें-
पुरुषोत्तम रूपिणी हो गईं
सब अब की सकलाएँ। अनिता, 6, 179 । पृ0 607 ।

2- भरत सदृश योगेश्वर की तुम
योग-प्रेरणा हो, भाभी,
विकट तपस्वी लक्ष्मण की तुम
अन्न योजना हो भाभी, अनिता, 6, 194 । पृ0 614 ।

ग्रन्थ की बड़ी प्रशंसा की है, " मैं बिना किसी संकोच के यह कहता हूँ कि आधुनिक ब्रजभाषा का यह सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ है और प्रत्येक ब्रजभाषा-प्रेमी के लिए एक अभिमान की चीज है।[1] " काव्य " स्वान्तः सुखाय" लिखा गया है। कवि को ब्रजभाषा तथा संस्कृत दोनों पर ही समान रूप से अधिकार प्राप्त है।

इस काव्य का कथा-विषय वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड की कथा है। काव्य के प्रारम्भ में गणेशवन्दन तथा सीता-राम युगल-स्वरूप की वन्दना की गई है। रामावतार का कारण कर्म-संन्यासन ही बताया गया है।[2] इसी प्रसंग में कवि ने दशावतार का भावभीनि भी कर दिया है।[3] सूर्यवंश, अयोध्या तथा सरयू का बड़ा सविस्तार किया गया है। वर्तमान अयोध्या एवं सरयू की दुर्दशा भी चित्रित है।

कथा-प्रारम्भ पुत्रहीन दशरथ के पुत्र-कामना से यज्ञ करवाने से होता है। प्रसाद रूप में प्राप्त खीर दशों रानियों को दिया गया। प्रभु गर्भ में आए तथा सम्पूर्ण विश्व की सुखमा कौसल्या के भवन में प्रविष्ट हुई। कैकेयी की नगरी को वन पथि पुत्र उपवन से तथा एवं वन का भी राम ने कब्जा लिया। फिर कैकेयी के पुत्र-दान-सम्पन्न पुत्र हुआ।[4] चारों भाइयों की वाणि वेदि मनोहरक थी। विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। सब भाई सद्गुणि विद्याओं से सम्पन्न हो गए। कुमार के समय प्रकृति-रूप देख कर राम के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। गुरु वशिष्ठ द्वारा ज्ञान का तत्व समझाने से राम की उदासीनता का निवारण हुआ तथा वे कर्म मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए।[5] यह प्रसंग वाल्मीकीय रामायण में नहीं है। यहाँ कवि " योगवाशिष्ठ" से प्रभावित हुआ है। विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को यज्ञरक्षार्थ जाने का प्रसंग वाल्मीकीय रामायण के अनुसार ही है। राम,लक्ष्मण ने ताटका एवं सुबाहु का वध कर यज्ञ रक्षा की। गौतम नारी अहिल्या को पावन किया। विश्वामित्र के साथ राम जनकपुर के समीप आकर

1-देखिए- श्री रामचन्द्रोदय, भूमिका, पृ0 2 ।
2- " " पहली कला पृ0 5-6 ।
3- " " " पृ0 6 ।
4- पुनि कैकेयी के भयो, सुत सुन्दर अभिराम ;
सुमित्रा सुमित्रा के भयो, सुत सत्रु सकाम ।

श्री रामचन्द्रोदय काव्य, दूसरी कला, पृ0 28 ।

5- देखिए- श्री रामचन्द्रोदय-काव्य, दूसरी कला, पृ0 36-38 ।

में पहुँचे । मुनि का आगमन सुनकर मिथिलापति जनक उनके स्वागतार्थ आए । राम-लक्ष्मण का परिचय पा वे कृतार्थ हुए । ~~चौथी कला में राम-लक्ष्मण का परिचय पा वे कृतार्थ हुए~~ । चौथी कला में राम-लक्ष्मण के जनकपुर भ्रमण का वर्णन है । नगरवासी तथा कन्याएँ से आयी हुई पुरबालाएँ मुग्ध हो गईं । इस सम्पूर्ण कला की कथित मधुरता एवं काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से उच्च कोटि की है ।

पाँचवीं कला में जनक-वाटिका, पुष्पचयन तथा सीता के पुष्प-दर्शन का वर्णन है । विशिष्टता यह है कि यहाँ राम माँ गिरिजा की वन्दना करते हैं । गिरिजा आशीर्वाद के रूप में कहती हैं, " हे राम सीता तुम्हारी आधा शक्ति हैं । कीर्ति तथा अतुल शक्ति प्राप्त कर जन-रंजन करते हुए, अभिमानियों को नाश करते हुए, राज्य को त्याग कर, वनों का सौंदर्य कर, पृथ्वी को निष्कंटक बना कर अयोध्या के सिंहासन पर बैठो ।[1]" सायंकाल सीता गिरिजा पूजन को आती हैं । पुष्प दर्शन से ही प्रेम उत्पन्न हो जाता है[2] । छठी कला में धनुष की कथा है । सीता ने जयमाल राम के गले में डाल दी[3] । परशुराम-संवाद " मानस" के ही समान है परन्तु कुछ पदों पर केशव की रामचन्द्रिका की छाया है । सातवीं कला में चारों भाइयों के विवाह का वर्णन है । इनमें भी प्रमुख रूप से राम के ही विवाह का वर्णन किया गया है । आठवीं कला में सीता-राम की अष्टयामचर्या, नवीं में ऋतु वर्णन, दसवीं में सीता द्वारा ग्राम वधुओं को नारी-धर्म उपदेश, ग्यारहवीं में राजसभा में वर्ण-व्यवस्था तथा बारहवीं में आश्रम-धर्म उपदेश है । तेरहवीं कला में राजनीति वर्णन, चौदहवीं

1- देखिए - श्री रामचन्द्रोदय-काव्य, पाँचवीं कला श्लोक्ष में छंद। पृ० 89 ।

2- सिय-मुख-सौंदर्य-सरस-रस-रसिक भयो मन मोर ;
पुष्प प्रेम का बँधि रह्यो, बहु सुवास न ओर ।

श्री रामचन्द्रोदय, पाँचवीं कला पृ० 99 ।

3- वारती अनूप निज जय की मैं सुकाय,
लीन्हें माल दोऊ बाहु उन्मत्त पसारती ;
मानों प्रेम लतिका तमाल मूल सींचनि हैं-
सैन माल माल से तमाल गर डारती ।

श्री रामचन्द्रोदय, छठीं कला पृ० 120 ।

में साधारण-नीति तथा पन्द्रहवीं में वेदान्त तथा वेद-विद्या का वर्णन है। तेरहवीं तथा अन्तिम कला में शिक्ष-सूची, ग्रन्थ-परिचय, कवि परिचय एवं रचना है।

इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में भरत के चरित्र विकास के लिए कोई अवसर नहीं है। पूरे ग्रन्थ में केवल तीन बार भरत का नामोल्लेख हुआ है- [1] जन्म के समय, राम-विवाह सम्बन्धी कलह पनिका आने के समय[2] तथा विवाह के समय[3]। भरत की गौरवमयी गाथा गाने वाली महिमामयी अयोध्याकाण्ड की कथा तो कवि का कथ्य विषय ही नहीं है।

1- पुनि कैकेयी के भवनि, सुत सुख-धाम-निधान ;
श्री रामचन्द्रोदय-काव्य, दूसरी कला, पृ० 20 ।

2- भरत कहते हैं, -
राम-पनिका सुनत की, रही तथा अनुराग ;
सुनि सुनि सुनि नृप धीर धरि, बांधी सबनि सुहाग ।

सातवीं कला, पृ० 147 ।

3- कलह अनुज सुनेहु, आपनी छोरि सवाया ;
भरतहिं दई सनेम, माँगी सु-कल-प्रभाव ।

सातवीं कला, पृ० 150 ।

अष्टम-अध्याय

छायावादोत्तर हिन्दी रामकाव्य में भरत

(सन् 1937 ई० से सन् 1975 तक)

छायावादोत्तर युग अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष इन दिनों तीव्रतर हो गया था । सन् 1937 से 1975 के मध्य अनेक महत्वपूर्ण एवं युगपरिवर्तनकारी घटनाएँ घटीं । अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में द्वितीय विश्व युद्ध तथा राष्ट्रीय मंच पर गांधीजी का शक्ति विस्तार सन् 1942 का "भारत छोड़ो" आन्दोलन , सन् 1947 में स्वतंत्रता की घोषणा, साम्प्रदायिक विभाजन, गांधी बलिदान, अस्पर्शी समस्या, संविधान का निर्माण, गणतंत्र की स्थापना, 1962 का चीन युद्ध तथा 1965 व 1971 में पाकिस्तान से युद्ध आदि घटनाओं ने जन-चिन्तन को प्रभावित किया । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जो आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक प्रगति हुई उससे कवि-चेतना भी सम्पृक्त हुई । इस युग के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय भावना का अभूतपूर्व उदय हुआ तथा काव्य चेतना को गांधीवाद ने प्रभावित किया ।" राष्ट्रीय भावना में जीवन के सुकुमार आदर्श मूल्यों का समावेश हुआ, स्वतंत्रता की घोषणा के पश्चात् आक्रोश कम हो गया और एक सात्विक उल्लास का स्वर उभर कर सामने आया ।" कल्याण की कामना ने राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर विश्वमैत्री का रूप धारण किया । वहाँ श्याम नारायण पाण्डेय के काव्य में राष्ट्रीय-भावना की अभिव्यक्ति होती रही वहीं महादेवी तथा पंत के काव्यों में छायावाद का अधिक सूक्ष्म एवं परिष्कृत रूप प्रकट हुआ । इस युग में प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविताओं का सृजन हुआ तथा इन दोनों से भिन्न व्यक्ति के सुख-दुःख, अभाव और कुंठा की सहज अभिव्यक्ति करने वाली एक अन्य काव्य प्रवृत्ति का भी विकास हुआ । यह नई कविता थी । इस युग में अनेक प्रख्यात कवियों ने काव्य जगत् को श्री समृद्ध किया । मैथिलीशरण गुप्त, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, " नवीन", "दिनकर", " बच्चन," " नरेन्द्र", श्याम नारायण पाण्डेय आदि इस युग के कुछ प्रमुख कवि हैं ।

सूक्ष्म छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तथा अकविता के इस युग में भी रामकाव्य की रचना अपने परम्परागत तथा परम्परायुक्त रूप में निरन्तरित अबाधित प्रवाह के साथ रची जाती रही । छायावाद युग में भी छायावादी रामकाव्य की रचना नहीं हुई थी अपितु छायावाद के कुछ तत्वों का प्रभाव उस युग के रामकाव्य पर पड़ा था । उसी प्रकार सन् 1936 के पश्चात् प्रारम्भ होने वाले साहित्यिक युग के रामकाव्य पर भी

उपर्युक्त बातों का प्रभाव कम ही पड़ा है ।

रामकाव्य में छायावादी रचना " निराला की अर्चना पूजा" (1938) को कहा जा सकता है परन्तु इसमें भी " न हैन्यं न पलायनम्" का उदात्त स्वर गूँज रहा है । काव्यगत उदात्त और महाप्राणता के अंश को कुछ रहा है । एक अन्य रामकाव्य जो छायावादी युग में तो नहीं रचा गया परन्तु जिसमें छायावादी तत्व स्पष्ट रूप से उपस्थित हैं, श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात की "छैनी" है । इसकी रचना सन् 1950 में हुई थी । इस काव्य में अनेक छायावादी तत्वों के साथ राष्ट्रीयता का युगानुरूप संदेश प्रबल होकर गूँजा है । सन् 1940 में रचित " विदेही कथानक" में जहाँ कवि सीता के प्रति भक्ति से नत है वहीं उसने राम कथा के उत्तर अंश की नव्युग की सर्वपूर्ण वैज्ञानिक विचारधारा के अनुरूप वस्तु योजना प्रस्तुत की है । इस काव्य में राष्ट्र के कल्याणार्थ व्यक्ति के उत्सर्ग का संदेश हरिऔध जी ने दिया है । " वैदेही वनवास" (1946) में भी यही संदेश है । अपने विकास सर्वोत्तम काव्य पं० बालेश्वर प्रसाद मिश्र का " साकेत सौरभ" 1946 में प्रकाशित हुआ । इस पर राष्ट्रीयतावाद, गांधीवाद तथा सौ फिलोसोफी आदि के सर्वोदय का प्रभाव दृष्टव्य है । रचना भावपूर्ण एवं सरस है तथा प्रभाव एवं प्रवाह से युक्त है । डा० हरिकिशन शर्मा ने सन् 1953 में रचित " रामराज्य" में गांधी जी के स्वप्नों के रामराज्य का वर्णन किया गया है । काव्य में युग के आदर्श अति स्पष्ट हैं । डा० बालेश्वर प्रसाद मिश्र ने (सन् 1960) " रामराज्य" में भी गांधीवाद तथा सर्वोदय का प्रभाव स्पष्ट है । इस काव्य के राम तथा भरत दोनों ही ग्राम-विकास को विशेष महत्व देते हैं । मिश्र जी रामभक्त हैं । उनके तीन काव्य-मोक्ष विशेष, साकेत-सौरभ तथा रामराज्य राम के जीवन की कर्मठता, उदारता तथा आदर्शों की उपलब्धि को प्रकट करते हैं ।

सन् 1954 में श्री रामाधार चौधरी " अंजन" का महाकाव्य " विदेह" प्रकाशित हुआ । यह काव्य अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा प्रसाद गुण के कारण विशिष्ट है । कवि ने भावपूर्ण सरस शैली में विकासशील कवि "विदेह" के जीवन को काव्य रूप में प्रस्तुत किया है । सन् 1958 में प्रकाशित श्री हरिशंकर सिन्हा का " मानसी" नामक प्रबन्ध काव्य अपनी कथा विकास कल्पना के कारण उल्लेखनीय है । इसमें कवि की स्वच्छन्द कल्पना ने अप्सराओं की दैवी कलाओं का संदेश के प्रतिरोध, भरत द्वारा अपनी अन्तर्वृत्ति तथा संदेश और अप्सराओं के युद्ध का वर्णन किया है । राम का मन की पुराण कथा को भी मानव कल्पना

के साथ अनुरूपता एवं कथा-क्रम पर उसमें कवि ने परिवर्तन किए हैं परन्तु मूल रामकथा अविच्छिन्न ही रही है। सन् 1961 में रचित श्री रघुवीर शरण मित्र की भूमिका पर प्रगतिवाद का प्रभाव द्रष्टव्य है। इस काव्य में सीता निर्वासन की कथा को लेकर राम की कटु आलोचना की गई है जैसे कोई राजनीतिक नेता अपने विरोधी दल के आदर्श के लिए अपने प्रति सही अथवा गलत सब प्रकार की कटु बातें कह डालता है। इसमें राम को उनके अवतारी स्वरूप से पृथक कर साधारण मानव की श्रेणी में रख कर उन पर दूषित उद्देश्य आरोपित किए गए हैं, सीता के प्रति भक्ति और राम के प्रति कवि का विद्रोह इस काव्य की विशेषता है। सन् 1962 में रचित श्री चरित्र मेहता की " सैन्य की एक रात" रामकाव्य में नई कविता की शैली की रचना है। कवि के अनुसार राम सनातन पुरुष पुरुष हैं। मेघनाद सो चुका है और राम की सेना पर आक्रमण करता है। पुरुष-पुरुष राम के मन में संशय उठा कि एक सीता के लिए भीषण नर संहार कहीं अकारण न हो। मलयगिरि के हेमकूट के समान राम " कहीं या न कहीं" के संशय के दोलन में झूल रहे हैं। लक्ष्मण तथा वानरों की आत्माएँ उन्हें युद्ध हेतु प्रेरित करती हैं। अन्त में लक्ष्मण, हनुमान तथा विभीषण के समझाने पर विवश राम को युद्ध छेड़ना पड़ा। कुछ आलोचकों ने इस काव्य पर निराला की " राम की शक्ति पूजा" का प्रभाव भी देखा है। जो भी हो रामकाव्य के क्षेत्र में " सैन्य की एक रात" नई कविता का सुन्दरतम उदाहरण है।

नई कविता की उपर्युक्त रचना के पश्चात् रामकाव्य पुनः भक्ति की ओर मुड़ा है। सन् 1969 में प्रकाशित चंद्रिका प्रसाद की " सेतेनी" इसका उदाहरण है। तीन खण्डों में रचित मनमोहन लाल श्रीवास्तव का " कल्याण राम" श्रीकल्याण युग की भक्ति-परक रचना है जिसमें रामकथा-क्रम में पुरातन परम्परा का ही निर्वहन किया गया है। इसी प्रकार सन् 1974 में प्रकाशित " कल्याणी केकेयी" तथा " राम महाकाव्य" भी भक्ति परक रचनाएँ हैं। सन् 1972 में प्रकाशित डॉ० रामकुमार वर्मा का काव्य "उत्तररामायण" अपने विषय-वस्तु संयोजन में नवीन है। इसमें इस बात की पुष्टि की गई है कि " सीता-निर्वासन" विवाद तथा काल्पनिक एवं प्रक्षिप्त है। कवि के हृदय की राजभक्ति इस काव्य में सरस काव्य सौन्दर्य के साथ मुखरित है। सन् 1973 में " गगन मधुःमती" के आधार पर प्रकाशित " अलख-रामायण" अति सुन्दर महाकाव्य है। सरल दार्शनिक पृष्ठभूमि, रामकथा का परम्परागत निर्वहन, यथा स्थान आदर्श एवं कल्पना का सामन्जस्य, सरस काव्य प्रवाह, माधुर्य एवं ओज आदि इस काव्य की अनेक विशेषताएँ हैं। यही शैली हिन्दी में यह सर्वश्रेष्ठ रामायण है।

उपर्युक्त के आधार पर आधुनिक रामकाव्य में निम्नलिखित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं:-

(1) पुराण-आख्यान में नवीनता लाने का प्रयास- आज तक कवियों ने कम-कम रूपों में मौलिक उद्भावनाएँ अथवा कल्पनाएँ भी की हैं, परन्तु कथा की मूल आत्मा अक्षुण्ण ही रखी है।

(2) राम-कथा के अनेक पात्रों की अधिक महत्व देकर उनके चरित्र-उद्घाटन हेतु रचनाएँ की गईं, जैसे- विभीषण, अंगिरा तथा मन्दोदरी आदि पर खण्डकाव्य अथवा महाकाव्यों की रचना।

(3) राम-कथा के कुछ पात्रों का चरित्र अति उदात्त होने के कारण उनको कथा-नायकत्व प्रदान कर उन पर काव्य रचना, जैसे- सीता, भरत, लक्ष्मण तथा हनुमान विषयक खण्ड काव्यों अथवा महाकाव्यों की रचना।

(4) कुछ पात्रों के चरित्र के उदात्तीकरण हेतु काव्य-रचना की जैसे, केकयी, मेघनाद तथा रावण आदि पर काव्य रचना।

(5) चरित्र-चित्रण की अपेक्षा मानवता पर अधिक बल दिया जाना। इस दृष्टि से मानवीय आकांक्षाओं का रहस्योद्घाटन तथा जीवन की विविधता को महत्व दिया जाना।

(6) मानव की दुर्बलताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर चरित्र का क्रमशः विकास करना तथा मानव जीवन की उलझी हुई गुत्थियों का उद्घाटन और समाधान- अर्थात् मनोवैज्ञानिक आधार पर चरित्र-विकास।

(7) अपने युग की राजनैतिक आर्थिक परिस्थितियों का बोध तथा उनका काव्य में निरूपण एवं समाधान।

(8) युगानुरूप आदर्शों की स्थापना।

(9) प्रकृति-चित्रण एवं विश्वात्मकता की काव्य में समुचित स्थान प्रदान किया जाना।

(10) आत्माभाव एवं आत्मिकता का यथासम्भव निरोधान अथवा घटनाओं को अधिक सशक्त तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाना।

उपर्युक्त विशेषताओं की न्यूनाधिक रूप में प्रायः सभी युग आधुनिक-युग में हिन्दी भाषा में अनेक रामकथा सम्बन्धी खण्डकाव्यों तथा महाकाव्यों की रचना की गई है। खण्ड-काव्यों में सुग्रीव, वन हनुमान, पंचवटी, शबरी-वन, मन्दोदरी आदि हैं तथा महाकाव्यों में अंगिरा, केकयी, मन्दोदरी, साकेत-संत, अवध रामायण तथा राम महाकाव्य आदि प्रमुख हैं। इन ग्रन्थों में से साकेत संत, अवध-रामायण, मन्दोदरी, केकयी, पाटलिका अनुराग, तथा मन्दोदरी-केकयी आदि काव्यों में कथा के उदात्त चरित्र की विशेष रूप में पुनर्व्याख्या करने तथा

उनके जीवनादर्श को जन-मन के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । उपर्युक्त काव्यों में से कुछ में निरूपित भरत के स्वरूप को इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

वैदेही-वनवास

छायावादोत्तर युग के राम-काव्य में वैदेही-वनवास का प्रमुख स्थान है । राम की महामानवता एवं सदाशयता में कवि का दृढ़ विश्वास है । सीता-निष्कासन राम की धवलकीर्ति में कभी कभी कलंक सा दीखने लगता है । कवि ने इस काव्य में उसको इस परिमार्जित रूप में रखा है जिससे सीता के प्रति उनकी निर्ममता व्यक्त न हो अपितु सोद्देश्य सीता का वाल्मीकि-आश्रम में निवास राम की कीर्ति को और भी गौरवान्वित कर सके । काव्य की रचना पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय " हरिऔध" ने सन् 1940 में की थी ।

" वैदेही-वनवास" की रचना में कवि महाकवि भवभूति के " उत्तर-राम-चरित" से विशेष प्रभावित हुआ है तथा उसने भूमिका के रूप में अपने " वक्तव्य" में भवभूति का " एकोरसः करुण एव निमित्त भेदाद्" छंद उद्धृत भी किया है । परन्तु कवि ने " उत्तर-राम-चरित" की कथा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया है । मुख्य अंतर यह है कि " वैदेही-वनवास" में राम गुरु वशिष्ठ की सहमति से सीता को सम्पूर्ण वस्तु-स्थिति समझा कर वाल्मीकि-आश्रम में उस समय तक के लिए भेजते हैं जब तक सीता के रावण के घर में रहने सम्बन्धी अपवाद का शमन न हो जाये । कथा का प्रारम्भ अपने उपवन में राम-सीता के वार्तालाप से होता है । यह वार्तालाप परमार्थ एवं राष्ट्र कल्याण विषयक है । परन्तु इसके द्वारा राम-सीता का पारस्परिक दृढ़ अनुराग एवं आदर्श दाम्पत्य देखा जा सकता है । राम चित्रशाला में चित्र देख रहे हैं, उसी समय दुर्मुख ने आकर रजक द्वारा सीता-अपवाद की बात कही । राम के मन में चिन्ता हुई । सीता की अग्नि-परीक्षा के चित्र पर दृष्टि पड़ी । सीता का अद्वितीय त्याग एवं चौदह वर्षों का वन का सहवास याद आया । उनकी पवित्रता का प्रत्यय पुनः दृढ़ रूप में उभरा । वे कलंक के प्रतिकार का उपाय खोजने लगे । भाइयों से मंत्रणा की । सीता-परित्याग का सब ने विरोध किया,

परन्तु राम ने अपने-आप वाल्मीकि से ही विवाह करना निश्चय किया। उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त गुरु वशिष्ठ के सम्मुख रखा। गुरु ने आदेश दिया कि सीता को वाल्मीकि आश्रम को भेजा जा सकता है परन्तु सब कुछ सीता के आने पर तथा उनकी सहमति से ही किया जाना चाहिए। राम ने सीता को सब कुछ बता दिया तथा सीता किसी प्रकार अपने हृदय पर पत्थर रख कर्तव्य-पालन हेतु सासों तथा बहिनों से विदा लेकर लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि आश्रम को चली गईं। जनता ने भी भैंसाकुण्डान तक जा कर कुछ आसुओं सहित भावुकतापूर्ण सीता को विदाई दी। वाल्मीकि ने सीता की प्रतीक्षा करते हुए उनका स्वागत किया तथा पुत्री के समान आश्रम में उचित निवास दिया। लक्ष्मण ने आकर राम से सीता का सन्देश कहा। राम सीता की कर्तव्य-परायणता पर मुग्ध थे। कुछ मास पश्चात् शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध करने हेतु मथुरा को प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने अयोध्या के दर्शन किए। उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया। इसी दिन सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। गुरु वाल्मीकि ने उत्साहपूर्वक दोनों पुत्रों का नामकरण संस्कार कराया। इसी बीच शत्रुघ्न ने लवणासुर का वध किया और मथुरा में शान्ति स्थापित की। वह सुसम्वाद सुनकर वे मैथिली को सुनाया। दोनों पुत्रों की आशीष के साथ उस दिन का उत्सव समाप्त हुआ। तपस्विनी सीता पशु-पक्षियों तक का ध्यान रखती थीं। मुख्य-घटिका में सीता राम के मिलन की कथा, अयोध्या, वर्ष स्वर्णमय की कथा सरयूसी वर्ष आनेवाली में सीता के सम्मुख दोहराई। आनेवाली में विवाह, वन-वास, सीताहरण तथा रावण वध तक की घटनाएँ भी प्रतीकात्मक दोहराईं। राम-सीता की पुत्र-प्राप्ति, राम राज्य का सुख-वैभव, गर्भिणी सीता का वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश आदि की कथा भी की गई। इस प्रकार सम्पूर्ण रामकथा आत्मलीन के रूप में सुना दी गई है। सीता के दोनों पुत्र क्रमशः बड़े हो रहे हैं। सीता स्वयं उन्हें शिक्षा देती रहती हैं। वे समय-समय पर उन दोनों को अपने पिता के महान कुल की बताती हैं। वाल्मीकि ने दोनों बालकों को वेदों एवं अन्य विद्याओं की शिक्षा दी। रचयिता रामायण के पदों को गाने की शिक्षा भी वाल्मीकि ने उनको दी। भारत एवं बाहु मथुरा में शान्ति स्थापित कर शत्रुघ्न अयोध्या को जाते समय वाल्मीकि आश्रम में सीता के दर्शनार्थ आए और उन्होंने सीता को अयोध्या के विषय में सूचना दी। इसी बीच राम-अश्वमेध की बातें हैं और यहाँ सीता की स्मृति उभर

आती है। वे वनदेवी को अश्वमेध में आने का निमंत्रण इस आश्वासन के साथ देती हैं कि वहाँ उनको उनकी सखी सीता मिलेंगी। अश्वमेध यज्ञ में राम ने उत्तरकालिक सीता को अयोध्या में बुलाया। भरत-शत्रुघ्न, लक्ष्मण, कुश-लव तथा वाल्मीकि के साथ सीता ने अयोध्या में प्रवेश किया। राम को देखते ही वे हर्ष-विभोर हो उठीं। राम-रथ के निकट पहुँचे। सीता ने रथ से उतरकर राम के चरणों का स्पर्श किया और उसी समय वे निर्जीव मूर्ति सरीखी धरती पर गिर पड़ीं।

<u>वैदेही वनवास में भरत:-</u> उपर्युक्त कथा से स्पष्ट है कि इस काव्य में भरत-चरित्र को कोई विशेष स्थान दिया जाना सम्भव नहीं है। फिर भी कवि भरत के महनीय-चरित्र की उपेक्षा नहीं कर सका है। दुर्मुख से सीता-अपवाद की सूचना पाकर राम अपने भाइयों से इस विषय में मंत्रणा करते हैं। इस समय भरत आठ पृष्ठों के लम्बे कथन के द्वारा अपना मत व्यक्त करते हैं। उनके इसी कथन से हम उनके स्वभाव को जान सकते हैं।

भरत का मत था कि लोग केवल देव के वश ही परनिन्दा नहीं करते हैं अपितु दम्भ के कारण भी करते हैं। राम-राज्य धन-धान्य चरित्र से समृद्ध है। लोग पुण्यशील हैं, सुखी हैं। उनका अनुमान है कि मन्थरों ने रावण वध के कुछ दाग़ों से मिलकर देवत्व पर अपवाद फैलाने का प्रयत्न किया है। भरत ने मन्थरों को पराजित किया था तब से मन्थर समूल से ही ईर्ष्या रखने लगे हैं।[1] यद्यपि लोक आराधन की नृप-नीति उचित एवं पवित्र है परन्तु मलिन-मुखों द्वारा की गई निन्दा नितान्त उपेक्षणीय है। इस प्रकार की निन्दा अशोभनीय है तथा दण्डनीय है। अलौकिक लोकापवाद का उन्मूलन किया जाना चाहिए।[2]

1- इस समय का तपोबल सुन। हाथ में मेरे वह आकर ॥
आप से उनका चतु सम्पर्क। मानता है उनका अशेष ॥ 47 ॥ छंद 47 व 48 ।
अतः यह मेरा है सन्देश। इस अमूल्य जन-रव में मुग्धा ॥
हाथ उन सब का भी है क्योंकि कब हुई सिता-मूर्ति विमुग्धा ॥
वैदेही-वनवास, तृतीय सर्ग, पृ० 34-35 ।

2- उचित है, है अत्यन्त पुनीत। लोक आराधना की नृप-नीति ॥
किंतु है सदा उपेक्षा-योग्य। मलिन-मानस की मलिन प्रतीति ॥ 49 ॥
× × × ×
यह अशोभित है, है दलनीय। दण्डय है दुर्जन का दुराचार ॥
सदा है उन्मूलन के योग्य। अलौकिक सत्य लोक अपवाद ॥ 51 ॥
वैदेही-वनवास, तृतीय सर्ग, छंद 49 तथा 51 ।

भरत के विचार में श्री राम के चरित्र को निधि मानने वाला एवं पवित्रता की मूर्ति सीता को लक्ष्मी मानने वाला धीर नीचता से विरक्त है[1]। उनके विचार में राम पुण्य-पुञ्ज के सदृश, लोक-आराधन के अवतार, लोकहित-व्रत-कण्टक के काल तथा लोक-मर्यादा के पारावार हैं[2]। उनके विचार में धरती-आकाश में व्याप्त राम की कीर्ति पताका को वह अनैतिक लोकापवाद-धूम क्षुब्धित नहीं कर सकेगा[3]। अतः इस लोकापवाद की उपेक्षा करना अथवा उसका दमन ही उनके मत में श्रेयस्कर है।

उपर्युक्त कथन से भरत के चरित्र की कुछ विशेषताएँ प्रकट हो जाती हैं-

(1) उनमें राम के लोकरंजक रूप के प्रति अटूट आस्था है तथा राम एवं सीता दोनों उनके लिए श्रद्धा तथा प्रेम के पात्र हैं।

(2) वे बुद्धिमान हैं तथा सुविचारित मंत्रणा देते हैं। यदि राम उनकी मंत्रणा स्वीकार करते तो जानकी का चिर-वियोग उनको न सहना पड़ता। भरत ने वस्तु स्थिति की पहचान कर सुपरिणाम मंत्रणा दी थी जिसमें उनकी बुद्धिमत्ता स्पष्ट रूप से झलकती है।

(3) वे न्यायप्रिय भी हैं। अतः निर्दोष एवं पवित्र सीता के वनवास से वे सहमत नहीं हैं। वे इस प्रकार के अपवाद को दण्डनीय समझते हैं।

(4) भरत में युद्ध लेना चरित्र का गुण भी है जो उनके द्वारा मंत्रियों से युद्ध के समय युद्ध सैन्य संचालन से प्रकट होता है।

केशवी रामायण में एक स्थल पर ही भरत को कुछ कहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। रचना के शेष भाग में भरत-विषयक कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं है।

1-निधि है रघुकुल तिलक चरित्र। लक्ष्मिता है पवित्रता मूर्ति॥
पुण्य आलय में जलता कौन। जो न होती पामरता पूर्ति॥ 25 ॥
केशवी-रामायण, तृतीय सर्ग, 25 ।

2- आप हैं पुण्य-पुञ्ज-सदृश। लोक आराधन के अवतार॥
लोक-हित-व्रत-कण्टक के काल। लोक मर्यादा पारावार॥ 26 ॥
केशवी-रामायण, तृतीय सर्ग, 26 ।

3- फैलकर जन-रव जो धूम।
करेगा कैसे उसको म्लान॥
गगन में भूतल में है व्याप्त।
कीर्ति की राका सिता समान॥ 53 ॥

केशवी-रामायण, तृतीय सर्ग, 53 ।

जानकी-जीवन

(रामाराम शुक्ल " राष्ट्रीय आत्मा")

" राष्ट्रीय-आत्मा" जी ने " जानकी-जीवन" की रचना सन् १९५५ में पूर्ण कर ली थी, परन्तु इसका प्रकाशन उनके जीवन-काल में नहीं हो सका । उनकी यह रचना उनके निधन के लगभग नौ वर्ष उपरान्त सन् १९७१ में प्रकाशित हो सकी ।

काव्य का प्रारम्भ "गिरिराज" वन्दना से तथा कथा का प्रारम्भ चौदह वर्षों के वन-वास से लौटने वाले राम की प्रतीक्षा से हुआ है । औजाणी भरत सीता-राम के ध्यान में लीन नन्दिग्राम में बैठे हैं । माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति उनके दायें-बायें विराजमान हैं । वनवास-अवधि समाप्त प्राय है परन्तु राम के लौटने का कोई संवाद तक नहीं है । भरत अशान्त तथा चिन्तित हैं । इस समय उन्हें कपीश्वर हनुमान की याद आती है और पवन-पुत्र राम के कुशलक्षेम के संदेश सहित उपस्थित हैं* । अशेष समाचार सुनकर भरत हर्ष-विभोर हो उठे तथा सम्पूर्ण श्रद्धा-भक्ति के साथ राम के स्वागत की तैयारी होने लगी । पुष्पक विमान नन्दिग्राम में उतरा । भरत राम के चरण-कमलों पर गिर गए । उस समय का मिलन-प्रेम कल्पनातीत है । थोड़ी देर नन्दिग्राम में रुक कर राम राजभवन में पहुँचे । राम ने अपने दण्डकारण्य-निवास के अनुभव गुरुओं तथा स्वजनों को सुनाए जिसमें शूर्पणखा-विरूपीकरण से लेकर राक्षस-वध तक की घटनाएँ थीं । उधर सीता तथा कौसल्यादि के सम्मुख कैकेयी अपनी ग्लानि एवं मनोव्यथा व्यक्त करती है तथा कौसल्या एवं राम उसको सान्त्वना देते हैं ।

पंचम सर्ग में राम के राज्याभिषेक का वर्णन है । अभिषेक के समय ब्रह्मा एवं शिव राम की स्तुति करते हैं जिससे राम का परब्रह्मत्व तथा विष्णुत्व स्पष्ट हो जाता है । वशिष्ठ अपने भाषण में " महि" के हितों में राजमहिषी कौसल्या जाती हैं,[1] जो राजरानी सीता के भावी शिवातिन का सूचक है । छठे तथा सातवें सर्ग में राम राज्य की सुख-समृद्धि तथा धर्म-शिक्षा-पालनादि का वर्णन है । आठवें सर्ग में प्रेम तथा भक्ति को ही श्रेष्ठतम सत्य

1- सम्राट की भुजा में गुप्त परिणाम हैं,
है एक राजमहिषी, महि दूसरी है ।
यों तो सप्रेम प्रतिपालन हेतु दोनों,
है स्वामिनी राजमहिषी महि के हितों में ।।

जानकी-जीवन, ५,९३ ।

निरूपित किया गया है। गुरु-वन-अर्चना भी प्रभु अर्चना ही है। नवम सर्ग में कवि ने भक्तिमूर्ति राम का भक्तिमय वर्णन किया है। दशम सर्ग में दशरथ के आमंत्रण कवि लुप्त के यज्ञ में गुरु वशिष्ठ तथा तीनों राजमाताओं के आने का तथा उनकी गर्भिणी सीता विकल चिन्ता, आशीर्वाद एवं उपदेश का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में चित्रकूट के स्थान सूर्यवंशीय राजाओं का उनकी पत्नियों सहित वर्णन किया गया है, जिस पर कालिदास के रघुवंश का प्रभाव देखा जा सकता है। राम के जीवन चरित सम्बन्धी चित्र सीता के मन में वन-निवास की इच्छा को पुनः जाग्रत कर देते हैं।

बारहवें सर्ग में लोक निन्दा के कारण राम सीता को निर्वासित करने का निश्चय कर लेते हैं। भरतादि अनुजों ने राम के सीता-निर्वासन सम्बन्धी निर्णय का विरोध किया परन्तु राम अपने निश्चय से नहीं डिगे। तेरहवें सर्ग में लक्ष्मण तथा सुमंत्र सीता सहित वाल्मीकि आश्रम के निकट पहुँचे। सीता के पूछने पर लक्ष्मण उन्हें सभी कुछ बता देते हैं और शोक संतप्त हो उठते हैं। सीता को भागीरथी की गोद में छोड़कर रोकर लक्ष्मण अयोध्या को लौटे। चौदहवें सर्ग में विरही राम के शोक-संताप का वर्णन किया गया है। पन्द्रहवें सर्ग में वन की विहरावस्था तथा सीता की अतीत स्मृति के रूप में उनके जन्म से लेकर विवाह, वनवास, लंका-निवास, रावण-वध तथा पुष्पक द्वारा अयोध्या आने तक की घटनाओं का वर्णन कराया गया है। सोलहवें सर्ग में यज्ञ से वापिस आई माताओं के सीता-विलाप तथा सीता से मिलने सम्बन्धी वशिष्ठ का राजमाताओं सहित वाल्मीकि आश्रम जाने का निश्चय है। सत्रहवें सर्ग में वन्दूक कथा भी अपने संक्षिप्त रूप में है। दण्डकारण्य में पूर्व स्मृतियाँ राम के सीता-विरह को उद्दीप्त कर देती हैं।

वाल्मीकि आश्रम के समीप गंगा तट पर विश्राम किया जाता है। भिक्षा से आए कवि एवं अयोध्या से आये अलम्बुषा, वशिष्ठ तथा तीनों राजमाताओं की उपस्थिति में वाल्मीकि ने स्वरचित राम-कथा का मधुर वाणी में गान किया। कवियादि ने वाल्मीकि से " सीता कहाँ है ?" पूछा। वाल्मीकि ने कहा भूमि और भागीरथी की गोद में। सीता के दर्शन के बिना ही सब को वापिस लौटना पड़ा।

अठारहवाँ सर्ग लव-कुश के जन्म तथा उनके विकास की आकुलता से भरा है। लव-कुश को वाल्मीकि ने सब विद्या तो दी परन्तु उनके पिता तथा वंश का नाम नहीं

आया । उन्नीसवें सर्ग में अश्वमेध का पुनर्मेध है । भरत शान्तिपूर्ण रामराज्य में युद्ध एवं सम्बन्धित विपरितियों के मूल अश्वमेध का विरोध करते हैं, परन्तु राम उनकी उपेक्षा कर देते हैं । वसिष्ठ की व्यवस्थानुसार अश्वमेध का निश्चय हो गया । अब सहित सेना दिग्विजय करने चल पड़ी । राम की सेना को वहीं युद्ध नहीं करना पड़ा । वाल्मीकि आश्रम के शिष्ट लव ने घोड़े को पकड़ लिया तथा अपने शिष्यकौशल प्रयोग से शत्रुघ्न तथा सम्पूर्ण सेना को सुला दिया । लव के आश्रम लौटने पर कुश आए और उन्होंने शत्रुघ्न तथा लक्ष्मणादि को निद्राकाल से सुला दिया । राम स्वयं आए परन्तु वाल्मीकि से युद्ध न कर रथ में लौट गए । कुश उनका मुकुट उतार कर तथा हनुमान को बांध कर सीता के पास ले गए । सीता बहुत दुखी हुईं और वाल्मीकि के साथ युद्ध भूमि में आकर अपनी कृपा दृष्टि मात्र से ही सम्पूर्ण सेना को जीवित कर दिया । यह उनके सतीत्व के तेज का प्रमाण था । राम ने सीता से मिलने की इच्छा व्यक्त की । वाल्मीकि ने कहा कि यज्ञ में पधारिये । सतीत्व सीता ने यज्ञ मण्डप में प्रवेश किया । राम ने स्वर्ण प्रतिमा को हटा दिया और सीता सहित यज्ञ पूर्ण हुआ । काव्य का अन्त उत्तररामचरित के समान ही सुखान्त है ।

जानकी जीवन में भरत

जानकी जीवन में भरत का परम्परागत रूप ही चित्रित किया गया है । कवि ने राम के परात्पर ब्रह्म के अवतार होने की धारणा को स्वीकार किया है, परिणामतः भरत की दिव्य अलौकिकता भी मात्रा रूप में युक्त होती है । ग्रन्थ का प्रारम्भ राम के विरह में व्याकुल तथा उनके आगमन की प्रतीक्षा में उत्कंठित भरत के दर्शनों से ही किया गया है ।[2] उनकी छाया सी माण्डवी तथा श्रीवान शत्रुघ्न उनके दायें बायें विराजमान थे । नेत्र बार बार दक्षिण दिशा की ओर ही देख रहे हैं । वनवास की अवधि समाप्तप्राय है । राम का अभाव उनके हृदय का अब तक न आना व्यथा उत्पन्न कर रहा है । इस समय भरत अपने अपराधों को गिन रहे हैं- सीता युद्ध में सहायार्थ न

1- " उन्होंने हानियाँ सब जान पाया, पिता की, माँ की, भ्रात की न पाया ।
न वाणी बन्धु-बधू सब व्यर्थ पाया, मिलाती हैं मिले यह अर्थ पाया ।।
जानकी-जीवन, 10, 95 ।

2- सुदीर्घान्त प्रवासान्त, आदि दिन का, शीतांशु के सदृश हैं,
वे रामाकृत मन्दिराग्र वन में, बैठे हुए ।
माता-सी प्रिय मांडवी, स्व-प्रभु के सौमित्र के ध्यान में,
प्राणों का मिल देह, मेह-गति का, वे भाग भूमी हुए ।। जानकी-जीवन, 1.2 ।

का पाना, राम भार कर पवनसुत के मार्ग में बाधक होना आदि। फिर सरल भक्त एवं प्रिय भाई का व्यंग्य मन। भाई की सुख एवं विजय की मंगलकामना करने लगता है[1]। वे स्वयं को तथा कैकेयी को मन ही मन कोसते हैं। वहाँ कैकेयी-कर्म से उत्पन्न कलंक की ग्लानि स्पष्टतः दृष्टिगत है[2]। व्याकुल भरत रो पड़ते हैं। उन्हें पवनसुत की याद आई और राम आगमन के अनुमान से उत्सुकता सहित पवनसुत सामने थे। भाव-मुग्ध गद्गद भरत ने हनुमान को हृदय से लगा लिया तथा पूछा- " तन्धु श्री जीवन-नाथ है कहाँ ?" हनुमान ने समस्त राम-वृत्तान्त भरत को सुना दिया। राम तथा भरत का मिलन तो अत्यन्त प्रेमपूर्ण था ही। भरत के पूर्ण आत्म समर्पण की भावना यहाँ स्पष्ट है[4]। जिस प्रकार लक्ष्मण के सन्निकट आ में आनन्द-विधान की पूर्णता होती है उसी प्रकार भरत के सन्निकट भी श्री राम प्रेम-विमुग्ध थे। जब राम अपनी बाल-लीलाओं को सुना रहे थे भरत/दुःख हुआ कि वे उन लीलाओं से वंचित रह गए।

उधर राम को भी भरत से बहुत प्रेम है। उनके अनुसार कैकेयी में वे भी दोष हैं परन्तु विचारने में वह सा हैं। राम भरत को " सुधी भ्राता" कहते हैं। वे उनके त्याग और तप की यथास्थान प्रशंसा करते हैं। चित्रकूट के समय राम सिंहासनस्थ पादुकाओं को देखकर पुनः भरत की प्रशंसा करते हैं। वे उन्हें भ्रातृ-प्रेमादर्श का भव्य

1- मोह। तोरिअ सुखी रहैं सदा, कदापि बाँछा उनका न बाम हो।
दिया सहूँगा सुख भी यहाँ न तो, कभी सुनेगी न कलंक-कालिमा।।
जानकी-जीवन, 1.22 ।

2- लिये पिता के प्रिय प्राण साथ ही, अनाथ सारे निजेश भी किये।
महा विपत्ति विष घोलि अन्ध तो, फला उसी के फल-सा कराल मैं।।
जानकी-जीवन, 1.24 ।

3- विमुग्धता से भरतादि बन्धु थे, मिले महानन्दित पाद-पद्म मैं।
स्वतः सरोमांचित से पुलकित हो, थिरे यथा तन्मद रत्नाकर-सिन्धु से।।
जानकी-जीवन, 1.62 ।

4- सदैव है जीवन जीवनेश को, रहे न आशा निज नाम धाम की।
सरोमणी अपने सरोष से, सदैव दोनों मिल एक सा हों।।
जानकी-जीवन, 1.64 ।

-भूल जाती हैं[1]। कैकेयी भी स्वीकार करती हैं कि भरत के लिए राम के हृदय में पिता के समान स्नेह है।

राज्य के भाग-पोषण-रक्षा का कार्यभार आयुक्त भरत पर है। उनमें माण्डवी उनकी सहायिका है[2]। श्रेष्ठ बन्धु हाथों के समान सहायक हैं।

भरत धर्म भीरु तथा आज्ञापालक हैं। " प्रजा में शंका के हेतु भूत व्यक्ति के प्रति राजा का क्या कर्तव्य हो" इस विषय में पूछे जाने पर भरत अपनी सम्मति न देकर कैकेय यही कहते हैं कि " मुझे केवल सेवक-धर्म का ज्ञान है और मैं सदैव आज्ञा पालन में तत्पर हूँ। मैं अज्ञ हूँ। मेरी मंत्रणा किसी की चिंता न बन जाय।"[3] राम के सीता परित्याग के संकल्प से भरत बहुत व्याकुल हैं, परन्तु विवश हैं। सीता-निर्वासन से भरत पुनः ग्लानि ग्रस्त हैं सम्भवतः मूल में राम-वन-गमन को ही कारण समझ कर, जिसमें उनकी माता दोषी थी।

मानवी-जीवन के भरत दयालु तथा शान्ति प्रिय हैं। उन्हें राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव अनुचित प्रतीत हो रहा है क्योंकि इसमें उन्हें लाखों दास तथा सेवक के मारे जाने का भय है। राम का प्रभाव तो सर्वमान्य है फिर राजसूय यज्ञ किसलिए किया जाये[4]? वस्तुतः भारत विश्व-शान्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ की व्यवस्था की गई।

भरत वीर हैं। परन्तु पराजय हेतु लव-कुश द्वारा सेना सहित लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के संहार के पश्चात् राम किसी प्रकार भरत को युद्ध में नहीं भेजना चाहते -क्योंकि वे उन्हें प्राण-प्रिय हैं। राम-भरत का आपस-में [illegible] है।

1- मुग्ध-आसन पाहुनाओं से सदा, राज्य-आसन में स्वयं तल्लीन हो।
बन्धु! ये वह बन्धु पैरागी की, भव्य भूमा आप प्रेमादर्श के।। मानवी-जीवन ।।,76

2- भाग-पोषण-रक्षा लोक का, भरत आयुक्त के सिर भार है।
मुक्त कंकन मण्डिता माण्डवी, सुमति सी महिलाओं के लिए।।मानवी-जीवन,9,77।

3- मानवी-जीवन, 12,35-39।

4- विश्वासु भाव क्यों जगा विशीर्ण बन्धु का, क्यों राजसूय साथ आज शील सिन्धु का।
सम्मति-संचित नष्ट हो विनष्ट सृष्टि हो, कदाचित्कष्ट हो अभिष्ट की दुष्टि हो।।19।।
निर्विघ्न शान्ति राज्य की अशान्ति मुक्त हो, सामर्थ्य दास हो सेवक मात-मरा हो।

× × × ×

सारथ्य क्या विशेष सास अश्वेश का, सन्देश दूर हो दयालु! भाव-भेद का।

मानवी-जीवन, 19, 9-12 ।

5- मानवी-जीवन, 20,72-75।

साकेत-सौध

साकेत सौध की रचना सन् 1946 में कविवर डा० कवीन्द्र प्रसाद सिंह के द्वारा हुई। कवि को कवि श्रेष्ठ बाबू मैथिलीशरण गुप्त जी ने प्रेरणा दिली है। कुछ ही वर्षों पूर्व गुप्त जी का साकेत प्रकाशित हुआ था। साकेत-सौध की संक्षिप्त भूमिका में गुप्त जी ने इस काव्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है[1]। साकेत-सौध शिल्प और के वस्तुत्व के लिए आलोचित है, प्रसाद है, मंजुलमय पद-पुटकों से। साकेत-सौध अपने युग का अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य है। अंश सम्बन्धी काव्यों में मेरे दृष्टिकोण से यह सर्वश्रेष्ठ ही माना जाना चाहिए।

साकेत-सौध के नायक भरत हैं। चारों भाइयों के विवाह के उपरान्त कथा का प्रारम्भ होता है। नव-विवाहित भरत तथा माण्डवी, माता सुमित्रा के साथ केकय देश जाने की उमंग से पूर्ण हैं। दोनों प्रेमालाप में संलग्न हैं। भरत माण्डवी की सीमा दिखाकर के बीच देखना चाहते हैं तथा वे उन्हीं में सुमेरु देखना चाहती हैं[2]। भरत माण्डवी सहित केकय देश पहुँचे। अध्य स्वागत हुआ। सुमित्रा उन्हें आशीष के लिए ले गई। कुछ महर्षियों भरत के साथ से हरिण आसन सीधे छटपटाने लगा। उनके नेत्रों की करुण याचना ने भरत के मन की व्यथा को जगा दिया। वे दया-द्रवित हो उठे[3]। सुमित्रा देवी की अवसर सोच रहे थे, जिसके पाकर वे भरत के मन में राज्य के प्रति लालसा उत्पन्न कर दें तभी दासी कैकेयी की निरर्थक बातें उनके मन से निकाल दें। कैकेयी से विवाह के समय उनके पिता ने महाराज दशरथ से यह बात स्वीकार करवा ली थी कि कैकेयी का औरस पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। अब सुमित्रा भरत को राज्य दिलाने का अवसर देख रही थे। परन्तु पहिले भरत को इस सत्य के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गें। अवध भरत के राज्य के लिए

1- देखिए " साकेत सौध" की भूमिका ।

2- तुम्हारी छटा अंक के पास, किशोरी में सहित सुहास।"
" और मैं हूँ सुख में ही सुखान, किशोरी सुमेरु अचिराभ।"
साकेत-सौध, प्रथम सर्ग, पृ० 24 ।

3- कुछ ऐसी करुणता थी, मुख की आँखों में व्यापी।
मुस्कराना भरत सुंदर की, व्यथा पूरित हो काँपी।

की रक्षा के लिए मंत्रियों को पहिले ही अयोध्या भेज दिया गया था। आशा-भरे पर भरत की उत्कण्ठता को लिए पुरोहित ने भरत को एक सन्देश दे डाला। कवि ने अपने शब्दों में " पुरोहित की यह कैसिन्य समर्थितवक्तृता भरत के मन पर कोई असर न कर सकी।" भरत ने पुरोहित के सत्कार किया परन्तु उन्हें महाराज की मृत्यु का भय और वे अयोध्या गमन के लिए आकुल हो उठे। जब तक वे मामा, मामा से विदा लेकर अयोध्या को चले, अयोध्या से ही उनको बुलाने के लिए दूत आ गए। वे दुःखी हो उठे। आगे गरुवाहु क्यों क्या है की अन्य पुस्तकों में है।

राम को मनाने भरत चित्रकूट पहुँचे। पहुँचने से पूर्व उन्हें अयोध्या में जनता के, मुनियों के, भरद्वाज आश्रम में ऋषि के सहित का भाव होना पड़ा। भरत के हृदय की कुलता तथा उनके राम-प्रेम ने उस सन्देश का निवारण कर प्रेम की रस धारा प्रवाहित कर दी। चित्रकूट में राजा जनक भी आए। सभी राम को अयोध्या की पुरुषावलि होकर राज्य ग्रहण करने को कहा। वशिष्ठ ने कहा कि जब तक की आज्ञा भरत नहीं। भरत ने यह भरसक ही राम की आज्ञा को ही सर्वोपरि समझा। भरत राम की पादुकाओं को लेकर अयोध्या को लौट गए।

वहाँ पहुँच कर ग्राम-नगर को अपना मुख्य केन्द्र बना कर भरत ने नन्दिग्राम में अपना निवास बनाया। औरंगपुर की समस्त व्यवस्था सचिवों मण्डली को सौंपी गई थी। भरत की तपश्चर्यायें प्रारम्भ कठिन थी। उन्हें किसी समय विश्राम नहीं था। एक रात्रि के तृतीय पहर में संजीवनी से घायल हुए हनुमान को राक्षस समझ कर बाण मार कर गिरा दिया। हनुमान के मुख से राम नाम सुनकर वे व्याकुल हुए तथा किसी प्रकार संजीवनी के प्रयोग से उन्हें स्वस्थ किया। हनुमान सीता-हरण तथा लक्ष्मण-वधित आदि समाचार सुनाकर चले गए। भरत की अपार शोक हुआ तथा वे योगबल से लंका जाने को उद्यत हुए। उसी समय वशिष्ठ ने दिव्य-दृष्टि से निकट भविष्य में होने वाली घटनाएँ दिखा कर उन्हें शान्त किया। उसी आधार पर उन्होंने आवश्यक तैयारियाँ होने का संकेत किया।

1- देखिए- साकेत-संत, चतुर्थ, पृष्ठ 11 ।

चौदह वर्षों की अवधि पूर्ण हुई। राम लौट आए। भरत ने उनको राज्य की धरोहर समृद्धि-वृद्धि के साथ उन्हीं को सौंप दी।

साकेत तौर के भरत का चरित्र:-

1- नव-विवाहित प्रिया के छल में:- भरत का यह छल कवि की मौलिक कल्पना का परिणाम है। अन्य काव्यों में इस प्रकार का चित्रण नहीं है। यहाँ वे माण्डवी के छल पर मुग्ध हैं। उसके आगे पर अपने सम्भ्रान्त व्यवहार के अनुसार उसका स्वागत करते हैं। वे अपनी नव-वधू के अनुरूप उत्साहपूर्ण हैं। प्रिया के साथ वैभव देख की जाने का उनका उत्साह विलक्षण उमंगपूर्ण है। हिमालय की सुन्दर शोभा के बीच वे माण्डवी के छल की छटा देखना चाहते हैं। भरत का दाम्पत्य अत्यन्त उच्च कोटि का है। पति-पत्नी मिल कर एक हो गए हैं। उन " मदीय" "अस्मदीय" में परिणत हो चुका है। प्रेम इतना उदात्त हो चुका है कि वे समस्त विश्व में माण्डवी की छवि का विस्तार देखना चाहते हैं और वह भी उनको हृदय में स्थापित कर स्वयं ही

1- देखिए, साकेत तौर, प्रथम सर्ग, 27-35 ।

2- भरत किस उठे, बढ़ उठे साथ, "वह," लो कीर्ति पीकर साथ।
मिले चित्र से रति और अनंग, सभी चित्र बन चित्रित का संग ।।14 ।।
साकेत तौर, प्रथम सर्ग, 14 ।

3- प्रिये! अब देखो वैभव देख, यहाँ चित्रित किस शास चित्रित ।।16 ।।
× × × ×
नया आवेश, नये संगीत, नये अनुराग, सुरम्य पुनीत।
नये सखि अपने अधिकार, नया नव दम्पति का संसार ।। 19 ।।
साकेत तौर, प्रथम सर्ग, 19 ।

4- न, पर, देखा "मेरे" सुख साथ, "हमारे" हैं अब ये सुख-साथ।
यहाँ पर भी " मदीय" की छाप, यहाँ हैं "अस्मदीय" अब आप ।।24 ।।
साकेत-तौर, प्रथम सर्ग, 24 ।

5- प्रिये! तुम अपनी ही न उमंग, तुम्हीं हो रागिनि! नव के रंग।
अहा तुम हो, तुम सारस-गीत, तुम्हीं नन्दन की सुरभि-पुनीत ।। 42 ।।
साकेत-तौर, प्रथम सर्ग, 42 ।

अर्थ और आरती बन जाना चाहती है। विश्व की सारी कांति को समेट कर एक मात्र भरत की आरती बनना चाहती है। यही उनमें भरत दाम्पत्य केवल देह से मिलने के परमाणु अर्थ की गम्भीरता में परिणत हो जाता है। दम्पति की पूजा आरती उमंगपूर्ण है तो दूसरी अन्दा का विषय है।

भरत का ज्ञान एवं संगीत-प्रेम- साधेश-सौ के भरत सौन्दर्य के पुजारी हैं। उन्हें हिमालय की छटा आकर्षित करती है। उनका भवन एवं वाटिका सुन्दर है। ज्ञान से विशेष प्रेम तो भवन में टंगे चित्र तथा कलाकृतियाँ प्रकट रूप से सिद्ध करती हैं। संगीत से भी उन्हें प्रेम है। उनके पूजा दर्शन हमें वीणा बजाते हुए होते हैं। इस समय उन्हें होली में भी श्याम की बात असह्य लगती है। केवल संगीत में मन रमा है[2]।

दया-भाव:- सभी पुरुषों में भरत को बलात्कार एवं पर दुःखों से दुःखी दयालु अंकित है। साधेशसौ के भरत की दयालुता का परिचय भी अनेक स्थलों पर मिलता है। आखेट में आहत हरिण के नेत्रों में कातरता देखकर दयालु भरत की करुणा पिघलकर उठी[3]। गहन की सम्पदा पर कटाक्ष देने वाले युधाजित् को वे करारा उत्तर देते हैं[4]।

1- " और मैं तुम्हें हृदय में आऊँ, बनूँगी अर्थ, आरती आऊँ।
विश्व की सारी कांति समेट, बनूँगी एक तुम्हारी भेंट ॥ 46 ॥
साधेश-सौ, पूजा सर्ग, 46 ।

2- छटाओं स्वरग्राम की बात, भर उठे अनुज प्रबुद्ध से रात।
सजाओ मृत्यु, सजाओ भीत, कि जिसे गाय उठे संगीत ॥ 49 ॥
साधेश-सौ, पूजा सर्ग, 49 ।

3- कुछ सेती कातरता की, मृग की आँखों में व्यापी।
कुलटारना भरत सुंदर की, करुणा पूरित हो काँपी ॥ 15 ॥
साधेश-सौ, द्वितीय सर्ग, 15 ।

4- " सत्ता में कौन सजाता ?
सत्ता का साधन क्या है ?
यह गर्व चाह मुनाफा की,
मृग की आँखों के क्या है ॥10 ॥
साधेश-सौ, द्वितीय सर्ग, 10 ।

उनके अनुसार कला में अनुभिज्ञ वह है जिस पर कवियत्री भी न्योछावर है[1]। दयाधाम भरत शत्रुघ्न से पीटी जाती हुई मंथरा का भी नाम लेते हैं। मंथरा को बचाने का आदेश यद्यपि कौसल्या ने दिया, भरत ने यह कहते हुए कौसल्या की प्रशंसा की, " वैसा दोष दया यह ऐसी।" सीता के जन मन पर भरत की कला रो उठी है[2]।

भ्रातृ-प्रेम- भरत के भ्रातृ-प्रेम की प्रशंसा तो सभी कवि मुक्त कंठ से करते आए हैं। तुलसी-सौ भी पीछे नहीं हैं। शत्रुघ्न तो भरत के परम-प्रिय एवं उनसे अभिन्न हैं ही, लक्ष्मण के प्रति भी उनके मन में अपार ममता है। लक्ष्मण के जन-मरण की खबर से कैकेयी को धिक्कारते हैं[3] और राम को तो वे अपने प्राणों से भी बढ़ कर मानते हैं। दशरथ-मरण के बाद राम उनके लिये पिता के स्थान पर हैं, उनके स्वामी तथा राजा हैं[4]।

भरत का राम-प्रेम- भरत का राम-प्रेम ही उनका सच्चा स्वरूप है। राम उनके सर्वस्व हैं। ~~राम उनके सर्वस्व हैं~~। राम उनके इष्ट हैं, आराध्य हैं। उनके जनमन पर भरत की घोर शोक है[5], कष्ट एवं आत्म ग्लानि है। उनकी यह आत्म ग्लानि तथा वेदना कौसल्या के साथ प्रकट हुई है। कौसल्या के दुःख का मूल-कारण स्वयं को समझकर भरत

- -

1- वधु क्या न सचिव हमें है ? वधु क्या न दया-अधिकारी ?
कला का वह अनुभिज्ञ है, कवियत्री जिस पर वारी ।। 42 ।।
तुलसी-सौ, द्वितीय सर्ग, 42 ।

2- आयीं सीता जो सदा सुखों में पाली, करती थी जिन्हें सचीस सुचित्त खाली ।
कांटों पर अब वे चलें जिस पर सोयें, उनके भाग्य पर धाय उन्हीं के रोयें ।।25 ।।
तुलसी-सौ, तृतीय सर्ग, 25 ।

3- लक्ष्मण वह जिसने एक राम को जाना, छल-छन्द न देखा, कभी न हुआ पछताना ।
तुलसी सुखों को स्वाम सुख कलधारी, फिर भी छल माँ की बढ़ी रही यह भारी ।।
तुलसी-सौ, तृतीय सर्ग, 26 ।

4- फिर दीरघ श्वास ले उठे, उठाते नेत्र, बोले" भाता ! हैं यहाँ राम भ्रातागण ;
जो देख मेघ रहे बाप से अब हैं, स्वामी, राजा, सचिव, आप से अब हैं"।।10 ।।
तुलसी-सौ, तृतीय सर्ग, 10 ।

5- जो थे मेरे आराध्य, हुए वनवासी, जिनको होना था भूप, हुए सन्यासी ।
भारत का स्वामी लिये ठोकरें खाता, संकट, आतप से होम रहे जन-माता ।।24 ।।
तुलसी-सौ, तृतीय सर्ग, 46 । तथा देखिए तुलसी-सौ, चतुर्थ सर्ग, पृ0 34-35 ।

अपने आप को धिक्कारती हैं। राम के वनगमन तथा पिता की मृत्यु के मूल में वे स्वयं को देखती हैं[1]। उनको अपने आप पर घोर ग्लानि है। उन्हें बार-बार यह पश्चाताप होता है कि वे केकय देश गए ही क्यों? न वे वहाँ जाती और न अवध में यह सब अनर्थ ही होते[2]। उनकी ग्लानि का कारण लोकापवाद नहीं है, अपितु निर्दोष राम का वन वन भटकना है[3]। सम्पूर्ण रात्रि उन्होंने एकान्त चिन्तन में ही व्यतीत कर दी। राम उनके प्राण हैं। राम के समान मुनादेवी ये अपना मानती हैं[4]। राम के बिना वे स्वयं को "बीचिका जल" समझती हैं। उनके लिए जिय स्वरूप तो राम हैं[5]। जब गुरु वशिष्ठ एवं मंत्रिगण राज्य ग्रहण करने के लिए उनके समक्ष

1- " क्यों कुटिल काल ने कुटिल ज्ञान यह मैं हूँ, जिसके हित यह सुखद विपत्ति यह मैं हूँ।।44।।

x x x

मेरे कारण ही अवध राम ने छोड़ा, मेरे कारण लघु-बंधु पिता ने तोड़ा।
मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता! दानव हूँ दानव, विषधर व्यथा का दाता।।45।।

2- जिस मुख से माँगू क्षमा, सफाई क्या दूँ, किस तरह वीर पर हृदय, तुम्हें दिखाऊँ।
जो यह हूँ केकय न अवध में आता, यह घटना बहुत अनर्थ न होने पाता।।46।।

साकेत-सौ, तृतीय सर्ग, 46।

तथा देखिए साकेत-सौ, चतुर्थ सर्ग, 34-35।

3- लोकापवाद? नहीं, कुछ और, ग्लानि की रेखा उर में ठौर।
ग्लानि में क्लान्ति, ग्लानि में शान्ति, हृदय की रेती यह उद्भ्रान्ति।

साकेत-सौ, 4.22।

4- यहाँ वे केवल परम महान,
न सुख में तुष्ट न दुख में म्लान।
यहाँ वह भरत महा मतिमान,
सुधा में पीन सुधा में दीन।।

साकेत-सौ, चतुर्थ सर्ग, 23।

5- " बीचिका जल हूँ मुनी! सुधा जिन्हें मनवाती,
मुझ तापसा: यही मुझ की जिनकी दासी"।। 26।।

साकेत-सौ, पंचम सर्ग, 26।

अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं तब आखिर भरत आखिरी उत्तर देते हैं[1]।

भरत को राम पर अनाथ विश्वास है। वे राम को वन वापस लौटा लाने का निश्चय करते हैं। वे आश्वस्त हैं कि राम उनकी बात अवश्य मानेंगे। उनकी कामना है कि निरन्तर राम से ही उनकी लौ लगी रहे[2]। अति विनीत एवं सरल शब्दों में उन्होंने कैकेयी से अनुरोध किया कि वह उनकी मेहनत राम की राह खाकर उन्हें बिगाड़ दे। चित्रकूट में राम के विशाल रूप को देख कर तो भरत प्रेम विह्वल हैं। उनके व्यापार देखिए,-

माथे पर मोरी धूल नहीं,
कुछ मुरझाये फूल नहीं।
मैं जहु उमाड़ अभी उठी,
" श्री राम" पुकार अभी उठी।

राम- प्रेम के सम्मुख भरत को कोई राज्य-वैभव स्वीकार्य नहीं है। माँ, नगर, तपोवन- राम के बिना उन्हें सब कुछ व्यर्थ प्रतीत हो रहा है। वे सब कुछ पार करते हुए अपने भाई राम से मिलने जा रहे हैं[3]। भरत का राम-प्रेम साधना की उस उच्च अवस्था को प्राप्त हो गया है जहाँ वे अपने स्वामी के साथ तद्रूप हो गये हैं[4]।

- -

1- मैं भोगूँ यह राज्य, नरक जीते जी झेलूँ।
जन्म-जन्म की साध एक पल में यों खेलूँ।
कल-कल धूमें राम लौट मैं जोत यहाँ पर।
यह ऐसा उपदेश, देख-लिख लिखना सुन्दर।। 32 ।।
साकेत-सौध, पंचम सर्ग, 32 ।

2- कामना है सिंधु हर घनश्याम से, लौ लगे घन-धाम-पति श्री राम से ।।34 ।।
सप्तम सर्ग, 34 ।

3- नगर का यह विभव राजा न भाया, कुलगुरु का विकल साजा न छाया।
तपोवन की न तारुण्यता सुहाई, बढ़ा भाई कि फिर मिल जाय भाई ।।29 ।।
साकेत-सौध, दशम सर्ग, 29 ।

4- न रघु का काम, तम का क्रोध आया, न लघु के लोभ का अनुरोध आया।
सिन्धु को पार करते जा रहे थे, विपत्ति पार बढ़ते जा रहे थे।
साकेत-सौध, दशम सर्ग, 30 ।

है[1]। उनके मन में एक ही निष्ठा है, एक ही प्रण है, अथवा यूँ कहें कि उनका सम्पूर्ण चित्त ही राम में लीन हो गया है[2]। उनके रोम-रोम से राम की ध्वनि निकल रही है[3]। भरत ने राम-प्रेम की जो धारा बहाई उसमें सारा विश्व ही उनके साथ बहने लगा। अयोध्या का जन समूह जो उनके साथ राम से मिलने जा रहा था उनके प्रभाव से राम-प्रेममय हो गया था[4]। चित्रकूट पहुँच कर जब उनको दूर से ही राम की कुटिया दिखाई दी तो वे इतने प्रेम-विभोर हो गए कि उनकी समाधि ही लग गई[5]। चित्रकूट के निकट पहुँचते पहुँचते साँझ हो गई। वहीं रात्रि-विश्राम की व्यवस्था की गई। एक गोष्ठी में विचार किया गया कि " अब श्री राम से क्या कहा जाये।" मुनि ने कहा, " चौदह वर्ष हम सभी प्रण कर में राम के समीप रह कर बिताएँ।" भरत के लिए इसी उत्तम और कौन सा सुझाव हो सकता था परन्तु आशाएँ सब यही थीं कि यह भरत के मन की बात टटोली गई है। वस्तुतः मुनि ने वह एक उठौती भाव की है।" यह भार भरत पर छोड़ दिया गया कि वह वे राम से क्या प्रस्ताव-अनुरोध करेंगे। अनुरक्त एवं उत्कण्ठित भरत ने वह रात कैसे व्यतीत की इसका अनुमान कवि के लिए कठिन है।

1- जाग निकसी उन्हीं का हो गया मन, उन्हीं के बंध का था बंधि जीवन।
कर लिए बंध से श्री राम प्यारे, भरत ने सब वहाँ कटक निहारे ।। 33 ।।
तारेश-सौ, दशम सर्ग, 33।

2- हृदय में एक निष्ठा, एक प्रण था, अनुवासित हो श्री राम-रस था ।। 45 ।।
तारेश-सौ, दशम सर्ग, 45।

3- उठी ध्वनि रोम से श्री राम की धुन, परम विरह-व्यथा विह्वल किये सुन ।।
तारेश-सौ, दशम सर्ग, 55।

4- भरत ने जो बहाई प्रेम-धारा,
बहा उसमें विश्व हो विश्व-सारा।
न देखा भरत आगे जा रहे थे,
अनेकों बीच साथ बहा रहे थे।

तारेश-सौ, दशम सर्ग, 50।

5- हो गई चित्त की वृत्ति विभोर उनी सी,
हो गए वहीं वह भरत समाधि लगी सी। तारेश-सौ, दशम सर्ग, 65।

6- बीती जैसे वह रात भरत ही जानें,
कवि की मति किस विध आय आए। अनुमाने ।।
तारेश-सौ, एकादश सर्ग, 12।

भक्त-भरत प्रातः काल कामद गिरि पर चढ़े । वे उस पर्वत पर प्रत्येक पग पर दण्ड-प्रणाम कर रहे थे तथा धूलि को मस्तक पर लगाते थे । शरीर रोमांचित तथा नेत्र सजल हो उठे । शरीर के अंगों में विरह-तीव्रता इतनी अधिक थी कि उनकी धमनियों की गति में राम-राम की ध्वनि छा गई[1]। दर्शनों की उत्कट अभिलाषा, चरण की आशा, सदीक्षा का भाव, सब कुछ एकनिष्ठ हो ध्यान में परिणत हुआ कि भरत स्वयं को भूल गए, अब केवल वहाँ राम ही थे[2]। भरत रामगय हो गए तभी राम भी प्रकट हो गए । यह भी सम्भव हो सकता है कि भक्त प्रभु की प्राप्ति करने के लिए चढ़े और स्वामी निश्चल ही बैठा रहे[3]। रात्रि में लोगों से भरत के चित्रकूट के निकट आने की सूचना पाकर राम प्रातः होते ही भरत से मिलने चल पड़े । दोनों भाइयों का मिलन तो अलौकिक था, अनिर्वचनीय था[4]। भरत राम के चरण-स्पर्श के लिए उत्कण्ठित हैं और राम उन्हें हृदय से लगाना चाहते हैं । दोनों बाहुओं में आकृष्ट हैं ।

अब राम को अयोध्या लौटा ले चलने का प्रश्न था । कई दिन तक भरत उपयुक्त अवसर की खोज में रहे । वे राम से " वापिस लौट चलने का सीधा प्रश्न हेतु कर न तो अपने आराध्य राम की आज्ञा में टालना चाहते थे, और न उनसे

- -

1- प्रति पद पर दण्ड-प्रणाम, धूल रज माथे ;
प्रति पुलक परम कलपाई, अंशु ते नाथे ।
प्रति अंगों में यह विरह-तीव्रता आई,
प्रति धमनी में थी राम-राम ध्वनि छाई ।।
तापेश-तौ, एकादश-सर्ग, 14 ।

2- जो थी दर्शन की चाह, चरण की आशा, जो थी सदीक्षा हेतु उत्कट अभिलाषा ।
सब कुछ ध्यान में सभी, हुआ यों एका, हो गया श्यामल ही मयूर का देखा।।15।।
तापेश-तौ, 11,15 ।

3- पथ पर चढ़ता हो भक्त, अडिग हो स्वामी ?
निष्ठुर है जाना कभी न अन्तर्यामी ।
तापेश-तौ, एकादश सर्ग, 17 ।

4- प्रद्युम्न और कुछ रहे देखते यह छवि,
वो अवध, वहाँ किस भाँति भला यह छवि कवि ।
जिस रस के वश में हुए नया मन तक था,
रसना का रस-ना नाम यहाँ तार्क्ष्य था ।।
तापेश-तौ, एकादश सर्ग, 22 ।

नकारात्मक उत्तर पाने ही के लिए तैयार थे।" अतः भरत ने राम से पूछा कि प्रेम और कर्तव्य में से जीवन का सार क्या है ? भरत इस प्रश्न के द्वारा राम के जीवन के आदर्श-पथ का पता लगाना चाहते थे। उन्हें उत्तर भी मिला परन्तु उनकी इच्छा के प्रतिकूल। राम ने कर्तव्य को ही श्रेष्ठ समझा। उन्होंने सीधे रूप से कह दिया कि चौदह वर्षों तक उन्हें किस प्रकार का आसन ग्रहण करना है- किस प्रकार के लोक-सेवा-व्रत में दीक्षित होना है। फिर भी अन्तिम निर्णय भरत के ही हाथ में राम ने सौंप दिया। भरत ने राम की इच्छा को ही सर्वोपरि समझा और उनकी इच्छानुसार अयोध्या लौट जाने का निर्णय कर लिया[1]। यह प्रेम का सर्वोच्च आदर्श था, उदात्त चरित्र था। यह प्रेम अपूर्व त्यागमय था जिसमें प्रियतम प्रभु के सान्निध्य सुख को भी त्याग कर भक्त प्रेमी ने प्रियतम प्रभु की आज्ञा का पालन किया, उनकी इच्छा को सर्वोपरि माना। यह पूर्ण आत्म समर्पण की स्थिति है[2]।

<u>कर्तव्य-निष्ठा:-</u> मानस-मीमांसा के भरत कर्तव्य-प्राण हैं। करुणा, न्यायप्रियता, दूसरे का स्वार्थ ग्रहण न करना, सरलता, सत्य, दृढ़-निश्चय तथा कर्तव्य-पालन एवं सेवा भाव उनकी कर्तव्य भावना के अंग हैं। रघुकुल की परम्परा के अनुसार राज्य राम का है अतः भरत उसे किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकते। वे दृढ़ निश्चयी हैं। कोई भी तर्क उनके निश्चय से उन्हें डिगा नहीं सकता। पुरवासियों का कठोरता पूर्वक अपना अंश ले लेने के तथा निर्दयता पूर्वक शासन-संचालन के स्वार्थमय तर्कों से वे सहमत नहीं थे।

1- मुख अनुचर की अभिलाषा क्या,
प्रभु-इच्छा अभिलाषा मेरी।
प्रभु की जो संतोष दिलावे,
सभी न हो यह भाषा मेरी।

मानस-मीमांसा, अयोध्या सर्ग, 58।

2- आपा का अपनी इच्छा से,
बाकीना प्रभु इच्छा निहर।
मैंने क्या-क्या आज न पाया,
इस जन में अपनापन देकर।

मानस-मीमांसा, अयोध्या सर्ग, 62।

उनके अनुसार कला एवं सभ्यता के मूल कठोर अभिचार से बनाती हैं। इसी प्रकार राम के पास चित्रकूट जाते समय मार्ग की बाधायें उन्हें रोक नहीं पाईं। राम से मिलने के लिए और उन्हें अपना राज्य लौटाने के लिए वे दृढ़ संकल्प थे।[1]

काव्य:- वे लक्ष्मण के समान ही पुरुषार्थवादी हैं। चतुर्थ सर्ग में उनके एकान्त चिन्तन से यह बात स्पष्ट हो जाती है,-

" पुरुष है भाग्य विधाता आप। अन्य हो पाता है अभिशाप।
चित्र हैं कर्म-पंथ आरूढ़। दैव के बल पर रहते मूढ़।"

लक्ष्मी भरत राम का ग्राम-विकास का लक्ष्य सामने रख नन्दिग्राम में निवास बना कर राज्य-शासन का संचालन करने लगे।[2] उन्होंने समस्त राजकीय क्रियाओं का स्थान कर लंगोटी धारण कर ली है।[3]

दिन पर दिन व्यतीत होते गए, परन्तु भरत की कठिन दिनचर्या एक सी ही रही। कवि के अनुसार अष्टयामचर्या इस प्रकार थी,- " रात्रि के प्रथम प्रहर में पादुका-पूजन, आत्म-चिन्तन आदि, तदनन्तर दिन के पूर्वार्ध-प्रहर में पुरवासियों से उनके सुख-दुख, अभाव-अभियोग आदि के सम्बन्ध में बातचीत। द्वितीय प्रहर में सचिवों से परामर्श तथा आत्म-विधान और राजकीय-व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में आवश्यक आदेश, तृतीय प्रहर में लक्ष्मणी माण्डवी द्वारा अंतःपुर विषयक अनुसंधान, भोजन तथा स्वल्प विश्राम, चतुर्थ प्रहर में स्थान स्थान पर जाकर विभिन्न विभागों की कार्य परम्परा का अवलोकन और इस प्रकार समूचे भारत के

- -

1- बढ़े प्रभु के चरण बन धूलित दैवज,
बढ़े जिन चित्त का सब दैन्य निवर।
मनस वह दैन्य दुखता पर अटल था,
भरा जिसमें पुरुष-सागर पड़ा था।
साकेत-सौध, दशम-सर्ग, 46।

2- सुख कर पादुकायें राम ही की धराईं-
पर माँगों के कुछ राज्य की तो कुछ पाईं।
x x x x

3- भरत पुर ग्रामीण कुटी लघु एक बनाई,
जन पर तंबल और लंगोटी तन पर धाई।

के सामूहिक समुत्थान का दिग्दर्शन, तदनन्तर रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वस्थ व्यायाम, सैन्योपासना, युद्ध-सामग्री तथा वस्तु के सेवा की महत्ता, जीवन सत्य, जीवन की क्षणभंगुरता और जीवन के सामूहिक ध्येय सदृश विषयों पर विचार, द्वितीय प्रहर में सुमन्त्रों की चर्चा और रात्रि के चौथे तृतीय प्रहर में श्री अवधपुरी का क्रमिक ही विकास।[1] कवि ने अध्यात्मपरक प्रबन्ध काव्य के चतुर्दश सर्ग में अंकित की है। भरत के त्यागी जीवन की यह सुन्दर एवं आदर्शपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करती है। नागरिकों ने अनुभव किया कि राजा का तपस्या का यही है।[2]

भरत के इस त्याग-त्याग में माण्डवी उनकी सहयोगिनी हैं। उन्होंने सहधर्मचारिणी के कर्तव्य को भलीभाँति निभाया है। सारिकी केवल शादी के दो दुःखी धारण किए हैं तथा सौभाग्य चिन्ह के रूप में हाथों में चार चूड़ियाँ हैं। वह भी एक बार ही फलाहार करती थी तथा एक बार ही जो पति के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता था।[3] अंतःपुर की समस्त व्यवस्था का भार उनको ही सौंपा गया था। वह उनका उत्तरदायित्व था कि वहाँ किसी प्रकार प्रबन्ध दोष न रहे।[4]

सावेत-सौध के भरत योगी भी हैं। हनुमान ने सीता-हरण तथा लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर वे योग-बल से लंका जाने के लिए उद्यत हुए परन्तु गुरु वशिष्ठ ने उन्हें रोक कर वहीं दिव्य दृष्टि के बल से लंका युद्ध की भावी घटनाओं को दिखा दिया।

1- देखिए, साकेत-सौध कथानक, पृ0 15 ।

2- अनुभव करते थे नागर-जन, राजा का तपस्या सा यही।
जनता है जन सा जिसका है,
उनमें पुत्र मिल कर किसका है।
कहता है " वह तो सेवक है, श्री रामचन्द्र की सेवा यही।।"
साकेत-सौध, चतुर्दश सर्ग।21 आ ।

3- था भोजन एक बार, उपवास एक बार,
एक बार वह दिन भर में पाती थी वह थे मन।।
साकेत-सौध, चतुर्दश सर्ग, 141 उ ।

4- देखिए, साकेत-सौध, चतुर्दश सर्ग, 141 उ ।

इस प्रकार भरत के आत्म-बल, दृढ़ निश्चय, सर्व-भावना तथा राम-प्रेम ने उनको उस अवस्था पर पहुँचा दिया जहाँ कोई शंका, संदेह ठहर नहीं सकता था। कैकेयी द्वारा राम को निर्वासित कराये जाने के कारण प्रत्येक पग-पर उन पर संदेह किया गया परन्तु उनकी राम-प्रेम धारा ने प्रत्येक पग पर उस अनुचित की थोड़ शंका करने वालों के हृदयों को परिवर्तित कर दिया। अवध में प्रवेश करते ही नगरवासियों की शंका-संदेह उन्होंने उनके व्यवहार में देखा[1]। भरत की माँ के महल का अत्यंत ठाठ था। वहाँ भी हृदयों में शंका थी। उनको देखकर कोई दासी रो उठी तो कोई हँस दी[2]। यह संशय, कि भरत के राम के समीप जाने के निश्चय से दूर हुआ तो दूसरा संशय नगर-निवासियों के मन में उत्पन्न हो गया। उनके मन में संशय उत्पन्न होने के भरत के प्रस्ताव ने यह आशंका उत्पन्न की कि कहीं राम के अनिष्ट हेतु तो यह तैयारियाँ नहीं हैं? इस पाप शंकी लोगों में नगर-रक्षक भी था। नगर-व्यवस्था निरीक्षणार्थ भरत के उसी समय पहुँचने से तथा उनके प्रेम एवं सम्पूर्ण आचरण से उनका यह संदेह धुल गया।

" राम में लौ लगी है, विरह ज्वाल बुझाये बुझती नहीं है। अतः यहाँ रहकर सब राम-विरह में क्यों जलें? जो लोग भी जलना चाहें जलें।" भरत ने कहा था। यही तो लोग चाहते थे कि वे भी साथ चलें ताकि कोई अनर्थ न हो सके। भरत के भाव ने तो

1- अपने देवा मुख फेर लिया अनदेखा कर ;
अपने देवा, की प्रभाती बहुत खबर कर।
कुछ ने आदर पग दिया जरा बढ़ आगे,
कुछ निज-निज घर की राह नापती भागे।। साकेत-सौ, तृतीय सर्ग, 2 ।

2- कोई दासी रो उठी, हँसी झट कोई,
नाई पाँवर के लिए पीस-पर कोई। साकेत-सौ, तृतीय सर्ग, 5 ।

3- जान पड़ता है कि यह भूपाल का,
आ गया है रंग में अनरथ का।
राह के काँटे हटाने जा रहे,
देव अपने को बनाने जा रहे।। साकेत-सौ, सप्तम सर्ग, 15 ।

4- लौ लगी, लगती लगाये रह नहीं ;
दो घड़ी बुझती बुझाये रह नहीं।
क्यों यहाँ रह कर विरह में जल कहीं,
जल रहे हैं सब कहीं सुख से कहीं।।

साकेत-सौ, सप्तम सर्ग 35 ।

अब उनके मन से शंका का काँटा पूरी तरह से निकाल दिया । उन्होंने भरत का धिक्कार किया । शंकाओं का यह क्रम चलता ही रहा । शृंगवेरपुर के गुह ने तो अपने मन में निश्चय ही कर लिया था कि वह भरत को गंगा पार नहीं होने देगा । परन्तु भरत ने स्वयं ही उसके सम्मुख प्रस्तुत हो कर कहा, " मैं राम का दास भरत तुम्हारे पास खड़ा हूँ । तुम मुझे भैया के पास जाने का मार्ग बता दो, मुझे उनसे मिला दो ।" सारा मन का संदेह धुल गया । गुह लज्जावनत हो गया । इसी प्रकार प्रयाग में भरद्वाज ऋषि ने भी उनके सदाशय पर शंका की तथा ऋद्धि द्वारा विपुल वैभवमय प्रलोभन उपस्थित कर भरत की परीक्षा ही ले डाली । निस्पृह भरत उसमें भी उत्तीर्ण हुए । मुनियों को कहना ही पड़ा, " भोग योग की शक्ति न थाही, साधु । सदय के हृदय उत्साही ।"

महाराज जनक भी भरत के चित्रकूट जाने के समाचार से शंकित हो उठे । उन्हें गुह-कथा की शंका हुई और वे समय रहते उसको रोकने के उद्देश्य से चित्रकूट पहुँचे । परन्तु वहाँ भरत को देखते ही उनके मन की शंका स्वयं ही दूर हो गई । भरत के अनुपम अनुराग ने उनकी दृढ़ भक्ति ने तथा उनके अलौकिक त्याग ने कैकेयी के मन को क्षुब्ध कर उसके भी कलंक को धो डाला ।

भरत के उच्च राजनैतिक सिद्धान्त, उनकी धर्म-निष्ठा, उनका दृढ़निश्चय एवं सत्यव्रत, उनका ग्राम-निवास, उनकी दिनचर्या, लँगोटी धारण करना, माण्डवी का खादी के दो टुकड़े धारण करना तथा उनकी कठिन अष्टयामचर्या तत्कालीन भारत सूर्य सम्राट, पूज्य बापू की याद दिला देते हैं । कवि अपने युग से प्रभावित कैसे न हो । उसके भरत में युग-पुरुष गांधी की छाप पड़ ही गई । या यूँ भी कह सकते हैं कि सम्भवतः गांधी जी ने अपने जीवन में राम और भरत के आदर्शों का अनुकरण करना चाहा होगा । वस्तुतः दोनों ही सत्य हैं । एक तो अनादि काल से अपने यश के प्रकाश से धरती को आलोकित कर रहा है- एक अनुपम आदर्श दे रहा है, दूसरे ने प्रकाश के

- -

1- मैं भरत, राम का दास खड़ा ?
मैं भरत, तुम्हारे पास खड़ा ।
भैया की राह बता दोगे ?
क्या उनसे मुझे मिला दोगे ?

साकेत-सौध, अष्टम सर्ग, 35 ।

समान जन-जीवन में प्रवेश कर उनकी अज्ञान एवं विषाद की समस्या को दूर कर दिया है ।

कवि ने प्रारम्भ के एक पद में भरत के समग्र स्वरूप को प्रस्तुत कर दिया है :-

" धन्य था कलंक निष्कलंक कर मानस को ,
मानव का जिसने प्रकाश छिटकाया है ।
धन्य था विरह वह जिसने नये हृदय,
और भक्ति भक्ति का अमृत बिखराया है ।
धन्य वह सन्त था कि राम हेतु राम से भी
दूर हट, राम के समीप रहा आया है ।
धन्य वह तार भारती की वीणा का था,
जिसके स्वरों ने हमें भरत दिलाया है ।

साकेत-सौध, उपक्रम, 3 ।

तथा-

अन्त में यह श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत है-
सुखी-जीवन का सुख है प्राप्ति,
जगत्-सौंदर्य न है यदि कान्ति ।
मनुजता के आदर्श ज्वलन्त ।
धन्य साकेत-पुरी के संत ।।

साकेत-सौध, चतुर्दश सर्ग, पृ0 204 ।

- - - - - - - - - - -

कैकेयी

। श्री केदारनाथ मिश्र " प्रभात।

रचनिका के नवोन्मेष में श्री केदारनाथ मिश्र "प्रभात" द्वारा रचा गया "कैकेयी" काव्य राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है । " तन्तुल" के नाम से काव्य की भूमिका सन् 1950 ई0 में श्री चिन्तामणि द्वारा लिखी गई है । भूमिका में कैकेयी की नवीन सृष्टि की सराहना की गई है तथा परम्परा से हटने के औचित्य को सिद्ध किया गया है । " कैकेयी" छायावादी रामकाव्य का सुन्दर उदाहरण है । कवि बड़ा चतुर शिल्पी है जिसने प्रतीकात्मक रूप में सभी पात्रों का अपने युग के अनुरूप उत्कर्ष किया है ।

इस काव्य की कैकेयी राष्ट्र कल्याण एवं मानव-सेवा की बलिवेदी पर माँ की ममता तथा प्रियतम का प्यार लुटा कर कठोर कर्तव्य की असि धारा पर चलने वाली बनाती है । कथा के प्रारम्भ में अवध राज्य की दुर्दशा देखकर अनुसूचित नयना कैकेयी अत्याचारी दानवों के दलन हेतु चिन्तित है । राम का राज्याभिषेक होने जा रहा है । वह नहीं चाहती कि राम राजसिंहासन की कारा में बन्दी बने, क्योंकि राजतिलक बन्धन का ही पर्याय है[1] । राम का कार्य क्षेत्र तो वहाँ है जहाँ मानव के शोणित से धरती लाल की जा रही है[2] । मानवता की रक्षा राम का कर्तव्य है । इसके लिए राम को वन भेजना आवश्यक है । मन में अन्तर्द्वन्द्व है । एक ओर माँ की ममता है और दूसरी ओर पीड़ित मानवता की आर्त पुकार । वह सबकी जानती है कि महाराज के मन में राम के प्रति अपार स्नेह है । राम के बिना उनके प्राण नहीं रहेंगे । उसने निश्चय कर लिया कि कर्तव्य की वेदी पर वह अपना सुहाग भी लुटा देगी[3] ।

वह राजा को समझाती है कि वे राम को दानव-दलन हेतु वन को भेज दें[4] ।

1- वह राम बने अब
बंदी सिंहासन का
पर्याय न क्या वह
राजतिलक बंधन का ।
कैकेयी, 5,पृ0 72 ।

2- है क्षेत्र राम का जहाँ
दुर्गों के मोती
लुटते, शोणित से
लाल धरित्री होती ।
कैकेयी, 5,पृ0 72,73 ।

3- कैकेयी मुझे स्वीकार
राष्ट्र की जय हो
दासत्व न अंगीकार
राष्ट्र की जय हो ।
कैकेयी, 5,86 ।

4- राजतिलक रूक जाय राम का
हो आदेश अयोध्या छोड़ें
राजतिलक की बेला में वे
सिंहासन का बन्धन तोड़ें ।
कैकेयी, 8,118 ।

मोहासक्त दशरथ इसके लिए तैयार नहीं हुए तब उसने पूर्व प्रतिश्रुत वरों के रूप में राम-वन-वास का वर माँग लिया[1]। भरत के राज्याभिषेक का वर उसने नहीं माँगा और न चौदह वर्षों की अवधि निश्चित की।

पिता दशरथ ने पुत्र के राम को पुत्र की समाप्ति कर दिया[2]। राम वन को चले गए। राजा दशरथ राम के वियोग को सह न सके। प्राण त्याग दिए। कैकेयी दुःखमग्न हो गई। उसने अपना सौभाग्य, अपना प्रेम राज्य की सेवा में उत्सर्ग कर दिया। भरत ननिहाल से अयोध्या को लौटे। कैकेयी की कटु भर्त्सना की तथा चित्रकूट गए जहाँ कर्तव्य तथा त्याग का अभूतपूर्व संगम हुआ।

"कैकेयी" के भरत:- इस काव्य में भरत के दर्शन सर्व प्रथम द्वादश सर्ग में होते हैं जब वे महाराज दशरथ के निधन के उपरान्त शोक मग्न अवध के राजद्वार पर रथ रोकते हैं। वे एक प्रभापुञ्ज आलोकपिण्ड के समान हैं तथा शोक तिमिर में विद्युत्-दीप हैं। अयोध्या में फैले हुए शोक-विषाद एवं दैन्य के अन्धकार में वे सूर्य के प्रकाश हैं। वे तपस्या का तेज हैं जो राज्य-विभूति के प्रलय अग्नि को चुनौती दे सकता है। वे भाग्य की टेढ़ी रेखा को सीधा कर देने वाले शौर्य हैं[3]।

भरत प्राप्त समाचारों से व्याकुल हो धमक उठे। राजमहल में प्रवेश करते ही वैधव्य-वेष में कैकेयी को देखकर उनका हृदय आर्तनाद कर उठा। पिता के मरण तथा

1- कभी दिए वरदान आपने
आज वही थाती लौटा हूँ ।8,131।
x x x
भीख राम की पुत्र को दे दूँ
विश्व स्वर्ग का भव पा लेगा
आप गीत हूँ, विश्व-वीन पर
यह ज्वालामय पुत्र गा लेगा।
कैकेयी, 8,132 ।

2- पुत्र के राम रहे मिल पुत्र को
आज साधु माता दशरथ से
किंतु न दशरथ विकलित होता
है कर्तव्य। तुम्हारे पथ से।
कैकेयी, 8,133 ।

3- राजमहल के सिंहद्वार पर
रथ जब रुका भरत का
लगा कि आया पर्व दशहरा
किसी तपस्वी रत का।
लगा कि आया सूर्य देखकर
तमसावृत मेघाटल को
लगा कि तेज चुनौती देने
आया प्रलय-अनल को,
लगा कि आया शौर्य पलटने
टेढ़ी राह नियति की।
कैकेयी 12,175 ।

तथा भाई के निर्वासन की कारणभूत कैकेयी को उन्होंने कटु भर्त्सना की परन्तु अपशब्द नहीं कहे[1]। भरत द्वारा कैकेयी की यह फटकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से नितान्त स्वाभाविक है। भरत के कटु वचनों ने कैकेयी के मन में तूफान मचा दिया। उसने भरत को कठोर कर्तव्य के मर्म को समझाया। उसने कहा कि, " मैंने कर्तव्य पर अपने सुहाग और गोद दोनों को उत्सर्ग कर दिया। राम मेरे लिए तुझसे भी बढ़ कर हैं। राम-वन-गमन निर्वासन नहीं है। तुझको राज्य का अधिकारी समझना पाप है। राम का वन जाना आर्य-सभ्यता एवं मानव-धर्म की विजय है। राम के पट चिन्हों को देखकर तू भी जाग उठ। तेरी आँखों के आँसू तेरे मन की दुर्बलता है, जो मेरे रक्त का अपमान है[2]। कैकेयी के इस उपदेश को सुनकर भरत मौन हो गए। त्याग ने कर्तव्य के मर्म को जान लिया।

राम से मिलने भरत चित्रकूट पहुँचे। विविध सम्मेलन था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी चारित्रिक गरिमा के कारण नैतिकता के किसी श्रेष्ठ गुण का प्रतीक बन गया था। भरत ने राम से लौट चलने का अनुरोध किया मानों त्याग ने कर्तव्य से लौट चलने का आग्रह किया हो। विजय कर्तव्य की हुई। कर्तव्य, त्याग तथा शक्ति विराजे। प्रेम बँध त्याग कर्तव्य के चरणों में झुक गया।

1- बोले भरत- तुम्हें मैं जननी
कहूँ या कि यह ज्वाला
अपनी लपटों से जिसने
सर्वस्व नाश कर डाला।
किया क्रेम तुम्हारा, भाई को
भाई से छीना
धो ली अपनी माँग लुटा कर
हाय, सुहाग नगीना
× × ×
जिस कुमारी को तुमने
अपने स्नेह से सींचा
जिसके कण-कण में पवित्र
ममता का सिंधु उलीचा
उसी सुमन कुमारी में
तुमने क्यों आग लगा दी ?
मेरे सपनों की दुनियाँ क्यों
तुमने यहाँ मिटा दी।

कैकेयी 12,178।

2- राम-वन-गमन निर्वासन है
यह असत्य है भारी,
पाप सोचना भरत ! कि तू है
सिंहासन अधिकारी।
वन की ओर राम का जाना
मानवता की जय है,
आर्य-सभ्यता की, फिर मानव-
स्वतंत्रता की जय है
वत्स ! राम के पट-चिन्हों का
स्वर सुन- क्यों सोता है
जाग, देख, कर्तव्य-क्षेत्र
क्या तुझे खोता है।
तेरे मन में दुर्बलता का
दृग में जल का आना,
है अपमान रक्त का मेरे
भरत ! न तू ने जाना।

कैकेयी 12,185।

इस अति संक्षिप्त चित्रण में भी कुशल कवि ने भरत के भ्रातृ-प्रेम, तपस्या तथा त्याग आदि गुणों को प्रदर्शित कर दिया है। उसकी प्रतीकात्मक भाषा में भरत मूर्तिमान त्याग हैं[1]। राम कर्तव्य, लक्ष्मण शौर्य एवं सीता शक्ति हैं[2]। कर्तव्य, शौर्य तथा शक्ति विश्व को चिर मंगल प्रदान करेंगे -

यह कर्तव्य- और यह शोभन
शौर्य, शक्ति सुकुमारी
धन्य विश्व के चिरमंगल की
यह अपूर्व तैयारी।

रामराज्य

। ले0 डा0 हरिशंकर शर्मा ।

रामराज्य का द्वितीय संस्करण सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। डा0 हरिशंकर शर्मा ने इस काव्य की रचना देश की स्वाधीनता के नव-विहान में सन् 1953 में की थी। गांधी जी के रामराज्य के आदर्शात्मक सिद्धान्तों एवं स्वरूप का भावात्मक, कलापूर्ण यथार्थपरक विवेचन इस काव्य में किया गया है। कवि ने इस काव्य को परम्परागत रूप में वन्दना से ही प्रारम्भ किया है। अन्य सर्ग विश्वबन्धुत्व, कल्याण-ज्योति, पुरुषार्थ, अभिषेक, राज-व्यवस्था, शिक्षा-संस्कृति, कलाकृति, कृषि-वाणिज्य, स्वास्थ्य महिलाएँ, ग्राम-योध, सामाजिक जीवन तथा "गणतन्त्र" हैं।

- -

1- देवों का आराध्य त्याग यह
लंका जग-मंगल का
कभी न मिटने वाला अनुपम
स्नेह-स्नेह-वत्सल का
× × ×
सुख त्याग, कर्तव्य उठाता
व्योम फूल बरसाता
वर्तमान निस्सार्थ, भविष्यत्
फूला नहीं समाता।

कैकेयी, 13, 191।

2- क्रांति सोचती-हुआ मधुर
मंगल कर्तव्य-सवेरा
अब न विश्व में ठहर सकेगा
रक्तमय पाप अँधेरा।

कैकेयी, 13, 191।

रामराज्य का वर्णन विशद रूप से किया गया है परन्तु कथा का प्रायः लोप ही है । कल्याण ज्योति के अन्तर्गत कवि ने प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक के महापुरुषों अथवा महान् विभूतियों का वर्णन किया है । पुरुषार्थ में राम के वन से अयोध्या को लौटने का वर्णन है तथा अभिषेक में उनके राज्याभिषेक का वर्णन है । कथा का लघु आभास इन्हीं सर्गों में हो पाता है । शेष ग्रन्थ में गांधी जी के स्वप्नों के रामराज्य का वर्णन है । कवि ने राज्य व्यवस्था का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण ग्रन्थ में व्यक्ति विशेष के चरित्र-चित्रण की गुंजाइश ही नहीं है ।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार ने राम का चरित्र-चित्रण नहीं किया है, तब अन्य पात्रों के विषय में तो स्वतः-चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठता है । फिर भी कवि ने दो-तीन स्थलों पर भरत का उल्लेख किया है तथा उनके स्वरूप की एक सुन्दर छटायुक्त झाँकी प्रस्तुत की है । कल्याण-ज्योति शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने भरत को भारत की विभूतियों में श्रेष्ठ स्थान दिया है । वर्णन इस प्रकार है,-

" प्रिय भरत बन्धु ने राज-साज ठुकराया
लक्ष्मण ने वन में प्रभु का साथ निभाया ।

× × ×

साकेत त्याग जब राम सिधारे थे वन
तब किया भरत ने सेवक बन कर शासन
था कन्द-मूल-फल कुश-आसन अपनाया
वल्कल धारे, तापस का वेश बनाया ।
प्रभु-भक्त भरत का शासन था सुखकारी
थे कुशल, दक्ष, निष्पाप, सभ्य अधिकारी
सेवा से सब का हृदय जीत लेते थे
सुविधा, सुख, धैर्य, न्याय नित-दिन देते थे ।
वह प्रजा-प्रेम निष्काम कर्म कुल साधन
वह मातृ-भूमि-अनुराग, स्वस्थ-शुचि जीवन
वह प्रेम-प्रीति नैतिकतामय अनुशासन
वह सक्षमता, वह निर्भय भाव-प्रकाशन ।
आचारवान, विद्वान, कुशल अधिकारी

सब जनता के अदेय, मित्र, हितकारी
दे-दे उपदेश शुद्ध भाव भरते थे
मन-वचन-कर्म से सबका दुःख हरते थे
थे रामचन्द्र के प्रतिनिधि कहलाते थे
सर्वथा त्याग-तप में ही सुख पाते थे
आदर्श बन्धु, आदर्श भक्त, अनुचर थे
थे मुनी किन्तु वस्तुतः भरत परिवर थे ।

उपर्युक्त वर्णन में भरत के सौम्य-शासक स्वरूप की सराहना की गई है । वे त्यागी, तपस्वी, प्रभु-भक्त, कुशल-प्रशासक, देश-भक्त, निर्भय, आचारवान, विद्वान, लोक की श्रद्धा के पात्र, मुनी होकर भी परिवर थे । उनकी प्रभु-भक्ति एवं राम-प्रेम निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिबिम्बित है,-

प्रभु-चरणपादुका-दर्श न हृदय समाया
हनुमान चटुक को पुनि-पुनि कंठ लगाया
वे पवन-पुत्र हैं राम-चरण-अनुरागी
यह ज्ञान भरत की भक्ति और भी जागी ।
जिनके वियोग में दुखद दुःख सहते थे
पर तापस वेश विरक्त-व्यथित रहते थे
वे राम,लक्ष्मण, सीता वन से आए हैं
तुम भरत हर्ष से आकुल उठ धाए हैं ।

- - - - - - - - - - - - - -

विदेह

। पीयूष राधाकृष्ण अलम ।

इस काव्य की रचना " अलम" जी ने सन् 1954 में की थी । कथा नायक तीरभुक्ति जनक विदेह हैं । सम्पूर्ण कथा विदेह की ही परिधि करके पुष्ट होती है । उनके ही आश्रम-निष्ठ योगी एवं ज्ञानी स्वरूप से सम्बद्ध उपनिषदों तथा पुराणों में यत्र-तत्र बिखरी कथा-सूत्रों का संग्रह कर कुशल कवि ने श्रेष्ठ महाकाव्य की रचना की है । सम्पूर्ण काव्य अति रोचक, ज्ञानवर्धक तथा उत्साहवर्धक है । यह पाठक की सात्विक-वृत्तियों को जगाने तथा अनासक्त सदाचरण की दिशा में प्रेरित करने में समर्थ है ।

जनक का जीवन सीता के माध्यम से राम से सम्बद्ध है । उसी भाषा में राम-कथा इस काव्य में उपलब्ध है । पाँचवे सर्ग में मिथिला में भीषण अकाल पड़ने, विदेह द्वारा यज्ञ करने तथा हल की नोक से एक घड़े के फूटने तथा उससे सीता के उत्पन्न होने की कथा है । वहाँ वर्ष बाद एक दिन साँकाश्य नगर के राजा सुमन्त्रा ने दूत भेजकर सीता को तथा शिव के महाधनुष को माँगा अन्यथा युद्ध ही परिणाम बताया । युद्ध हुआ । सुमन्त्रा घायल हुआ और मर गया । साँकाश्य नगरी पर महाजनक के भाई कुशध्वज का राज्य हो गया । प्रजा सुखी हुई ।

आठवें सर्ग में एक दिन सीता शिव के धनुष को उठा कर उस स्थान को लीपती हैं । दूर से सुनयना और जनक ने पुत्री की इस महिमामयी शक्ति को देखा । जनक के मन में विचार उठा कि सीता का विवाह उसी के साथ हो जो इस धनुष को चढ़ा ले । विचार संकल्प में परिणत हुआ । परन्तु कोई राजा उस भारी धनुष को उठा नहीं सका । श्री राम ने कौशिक के आशीर्वाद से उस शिव-धनु को आगे विष्णु-कर से तोड़ दिया । सम्राट दशरथ सूचना पाकर मिथिला आए और जनक की आध्यात्मिक महानता से प्रभावित हुए तथा उनकी पुत्रियों को अपनी पुत्र-वधुओं के रूप में प्राप्त कर स्वयं को धन्य समझने लगे ।

इसके पश्चात् कैकेयी के वरदान माँगने, रामनिर्वासन तथा दशरथ-मरण की कथा का स्पष्ट उल्लेख न कर नवम सर्ग में कवि रामवनवास से दुःखी भरत का चित्रण करता है । भरत सोच रहे हैं कि " राज्य के अधिकारी राम हैं, मैं सत्य में आग लगा कर राज्य किस प्रकार करूँ ![1]" वे निश्चय कर लेते हैं कि उन्हें बन्धु को वन से वापिस लाने जाना है । भरत के आँसू वन से धुल कर साधेय निर्मल हो गया । भरत की वाणी ने कैकेयी में सच्ची मातृत्व चेतना को जगा दिया[2] । भरत राजकुल तथा परिजनों सहित राम को मनाने वन की ओर चल पड़े ।

- -

1- अधिकारी हैं राम राज्य के
मैं क्यों हो जाऊँ
सोच रहे हैं भरत, सत्य में
कैसे आग लगाऊँ । विदेह, 9, पृ0 141 ।

2- साधेय भरत के आँसू से धुल गया स्वयं
सारा कौशल्या मिटा, प्रेम की वाणी से
कैकेयी हुई प्रकम्पित सत्य-अनल भय से
मातृत्व चेतना मिली भरत की भाषा से ।
विदेह, 9, 142-43 ।

राम की सुधि में मग्न अश्रु-स्नात भरत को न पैरों में चुभ रहे काँटों का, न कंकरों का और न धूप से तप रहे अंगों का ही ध्यान है। जनक ने भरत की श्रद्धा का समाचार सुना तो वे भी चित्रकूट को चल दिए।

चित्रकूट में ऋषियों का संसद बैठा। न्यायासन पर वशिष्ठ हैं। राम से स्वीकार करा लिया गया कि उनको ऋषि-संसद का निर्णय मान्य होगा। मुनि ने भरत से कुछ कहने का आग्रह किया और उन्होंने कहा कि, "माता की कुमति का दोष मेरे माथे है। मैं राम को लौटाने आया हूँ। मुझे राम राजमुकुट से अधिक प्रिय हैं। जिस माता की इच्छा से राम यहाँ आए उसी की इच्छा से अब लौट चलें।"[1] वशिष्ठ अपना निर्णय देना ही चाहते थे कि जनक के आने का समाचार प्राप्त हुआ और वशिष्ठ सहित सारा समाज उनके स्वागतार्थ चल पड़ा।

चित्रकूट के शिविर में रामादि सब भाई, सीता तथा वहाँ और स्वयं गुरु वशिष्ठ आए। चित्रकूट ने निर्णय दिया कि यद्यपि भरत के आँसू कुछ कह रहे हैं परन्तु मानव-कर्तव्य का सत्य आयुक्ता से आया है। राम का वनवास ही आज्ञा के सत्य का पालन है। अतः राम वनवास अवधि पूर्ण करें तथा दक्षिण में दुष्टियों की शिष्ट-सभ्यता को मनुष्यत्व की दिशा दें।[2] भरत ने राम की चरण-पादुकाओं को माँग लिया। जब से नन्दिग्राम में पादुकाएँ पूजी जा रही हैं तब से माण्डवी भी संयमित कला-साधना में लीन है। भरत सम्राट का गौरव लेकर भी भाई के लिए कठिन तपस्या में रत हैं। उनका सन्देश कहता है कि स्वर्ण-सिंहासन की अपेक्षा भाई श्रेष्ठ है।[3]

भरद्वाज चित्रकूट को सीता-हरण तथा राम के राक्षस से संघर्ष का समाचार सुनाते हैं। द्वादश सर्ग में कवि ने महाबल शिलाती रावण की सीता के लिए कामना तथा उद्वेग दिखाया है तथा सीता के राम-विरह की विकल वेदना को चित्रित किया है। त्रयोदश सर्ग में रावण

1- " मैं आया हूँ अपने भाई को लौटाने
× × × ×
हैं राज मुकुट से अधिक प्रेमपात्र मुझे राम
जिस माता की इच्छा से राम यहाँ आये
उस माता की इच्छा से ही वे चलें लौट"
चित्रकूट 9, 152 ।

2- चित्रकूट, 9 पृ० 159 ।

3- अन्यायी माँ ने दिया स्वार्थ साम्राज्य किंतु
सन्देश उसी स्वामिनी प्रेम बलिदानों से
कहता है भाई श्रेष्ठ स्वर्ण सिंहासन से । चित्रकूट, 10, 174 ।

का अन्त हो गया है । मृत्यु के समय वह पश्चात्ताप से दग्ध है । विभीषण को लंका का राज्य-पट मिला । राम का मन सीता से मिलने को व्याकुल है । वे प्रतीक्षारत बैठे हैं । मन में लोक-भावना की चिंता है । फिर सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन है । चौदहवें सर्ग में सीता के पुनः अपनी कुटता के साक्ष्य रूप में भूमि प्रवेश किया । वाल्मीकि और जनक दोनों के नेत्र अश्रुओं से गीले हैं । लुनवा पुत्री के आकस्मिक निधन से शोकाकुल हो मृत्यु की गोद में छिप गई । विदेह जनक भी रो उठे ।

पन्द्रहवें सर्ग में कवि ने दक्षिण के समुद्रतट पर महारानी जनक का अभिनन्दन कराया है । इस प्रकार उत्तर और दक्षिण की संस्कृतियों ने एक दूसरे की महानता को देखा । मिथिला आने पर जनक को राम के परम निर्वाण की सूचना मिली । विदेह शान्त है परन्तु आरम्भ द्वारा याद दिलाये जाने पर मानव जनक की आँखें सरस हो उठीं । सोलहवें सर्ग में यही जनक की उदात्त भावना तथा मानवता के सदैव सम्बन्धी बातें हैं । सत्रहवें सर्ग में उर्मिला विदेह की परीक्षा लेने आती हैं ; और समझ लेती हैं कि वे कितने महान हैं । अन्तिम सर्ग में विदेह का परम-निर्वाण दिखाया है ।

<u>विदेह-काव्य में भरत का स्थल:-</u> कवि ने जनक के बाद भरत को ही मानव के सच्चे रूप में प्रतिष्ठित किया है । प्रेम को संसार के जीवन के रूप में स्वीकारते हुए विदेह प्रेम-योग को सर्व श्रेष्ठ मानते हैं । उर्मिला के सम्मुख प्रेम के महत्व को समझाने के लिए वे भरत का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तथा भरत को " स्वयं साकार प्रेम" बताते हैं[1] । कवि की दृष्टि में भरत प्रेम के आधार हैं । नवम सर्ग के प्रारम्भ में, जहाँ अयोध्याकाण्ड की कथा प्रारम्भ की गयी है कवि ने " राज-मुकुट से प्रेम को श्रेष्ठ समझाने वाले" भरत की प्रशंसा उपदेश के हेतु मंगलाचरण के समान की है । भरत के जन्म से लाभ उनके स्नेह की अकथनीय" से पवित्र हो गया है[2] । भरत का भ्रातृ-भाव सत्य और स्नेह पर प्रतिष्ठित

1- ये भरत राम के बन्धु स्वयं साकार प्रेम
ईर्ष्यालु माँ ने दिया उन्हें भी निर्वासन
सब दिया उन्होंने उसे प्रेम की छाया में
हो गए स्वयं योगी भ्रातृ-स्मृति के गुह में ।

विदेह, 17, पृ० 306 ।

2- जिस मिट्टी को मिला धन्य है
एक भरत-सा भाई
वह पवित्र है देव, स्नेह की
जहाँ अकथनीय छाई ।

राज-मुकुट से जहाँ श्रेष्ठ है
प्रेम, वहीं मानवता
जहाँ सृष्टि त्रुटा-जीवित है
है, पावन वहीं सफलता ।

विदेह, 9, पृ० 141 ।

है। वह हृदय को पुलकित करने वाला है तथा सेवा के कलश-जल से जीवन को सरस बनाता है। उनका आदर्श-अनुज "त्याग की मूर्ति, शील की शीतलता सब माता के से निर्मल प्रेम का साकार स्वरूप है।"[2] कैकेयी द्वारा राम को निर्वासित कराने की घोर ग्लानि से भरत का मन पीड़ित है, विशेषकर इसलिए कि भरत को राज्य और राम को वनवास भरत के अनुज-आदर्श को भग्न कर रहा है।

न्यायी भरत स्वार्थ-कपट के दुराचार से तो मरण को ही श्रेष्ठ समझते हैं। अन्याय से प्राप्त अमृत "घोर पाप" है।[3] आत्म वे राम को लौटा लाने का निश्चय कर लेते हैं। भरत ने अपने आँसुओं से धोकर साकेत को पवित्र कर दिया। उनकी प्रेम-वाणी ने कैकेयी की मातृत्व-भावना को फिर से जगा दिया। भरत राम को मनाने चल पड़े।

चरणों में काँटे चुभे, फफोले पड़े, शरीर का अंग-अंग जल रहा है परन्तु "बंधु-सुधि-स्नात" भरत को जा रहे हैं।[4] राम के प्रति भरत की इस श्रद्धा के समाचार से जनक प्रसन्न हैं। राम भी भरत के श्लाघनीय प्रेम को पहचानते हैं। वे भरत को अपने प्राणों से प्रियतर तथा प्रेम का देवता बताते हैं।[5] उन्हें उन पर गर्व है।

भरत राम को लौटाने के लिए विनय करते हैं। वे दृढ़ निश्चय से कहते हैं कि, "मैं अपने भाई को लौटा कर ही जाऊँगा और यदि वे न लौट पायेंगे तो मैं भी वन में ही बिताऊँगा। राम मुझे राजमुकुट से अधिक प्रेमपात्र हैं।[6] भरत की दोषहीनता की पुष्टि वहाँ के ऋषि-मुनि करते हैं। वे निश्छल भरत को "कुटिलः दोषमुक्त" समझते

1- विदेह, 9, पृ० 141।

2- अनुज त्याग की मूर्ति,
शील की पवित्र शीतलता,
माता का साकार प्रेम,
जिसमें समस्त निर्मला।
विदेह, 9, पृ० 142।

3- स्वार्थ-कपट के दुराचार से
अच्छा है मर जाना
घोर-पाप है जीवन में
अन्याय-सुधा अपनाना।
विदेह, 9, पृ० 142।

4- धो रहे चरण को भरत-अनु
चरण में काँटे चुभे, फफोले पड़े
जो सब अंग-अंग
पर भरत-बन्धु सुधि-स्नात चले जाते पथ पर
विदेह, 9, पृ० 143।

5- आये हैं मेरे भरत स्वयं जो मेरे प्राणों से प्रिय हैं
खिलता है मुझको गर्व अपने इस भाई पर, जो
है भरत प्रेम-देवता एक।
विदेह, 9, पृ० 151।

6- मैं आया हूँ अपने भाई को लौटाने
लौटाकर ही जाऊँगा अपने जीवन में
यदि वे न लौट पायेंगे तो मैं भी बिताऊँगा वन में ही
है राजमुकुट से अधिक प्रेमपात्र मुझे राम।
विदेह, 9, पृ० 152।

हैं। शत्रुघ्न भी कहते हैं कि, " राम भरत के लिए प्राणों से भी बढ़ कर हैं। राज-सभा में सिद्धि भरत के राम-प्रेम की प्रशंसा करते हैं।[1] परन्तु राम को कर्तव्य-पालन हेतु वन में ही रहने का निर्णय देते हैं। विवश भरत राम से चरण-पादुकाएँ माँग रहे हैं।[2]

भरत के त्याग और कठिन-व्रत का चाक्षुष-स्थल उनके नन्दिग्राम जीवन में देखा जा सकता है। वहाँ चरण-पादुकाओं की पूजा होती है। भरत के रूप में " इस आर्य देश का आदर्श चरम सीमा पर है। यहाँ सम्राट-पदवी- गौरव लेकर भी अनुज वर्ण पर सोता है। भाई के हित वह कठिन तपस्या करता है। अन्यायी माँ ने स्वार्थ-साम्राज्य दिया परन्तु बन्धुत्व ने उसे प्रेम-बलिदानों से त्याग दिया। वह कहता है कि भाई स्वर्ग सिंहासन से श्रेष्ठ है।

माण्डवी

। ले0 हरिकर सिन्हा ।

" माण्डवी" की रचना श्री हरिकर सिन्हा ने सन् 1958 ई0 में की थी। यह कवि की प्रथम काव्य-कृति है। रशिया के प्राचीनतम इतिहास के अध्ययन के पश्चात् ही कवि ने अपनी कृति-प्रस्तुत की है जिसमें केकय देश तथा उसके पश्चिम में स्थित असुर सभ्यता का प्रसंगवश वर्णन भी किया है। भारत की मानवतावादी सभ्यता तथा असुरों की आसुरी निष्ठुरता का अन्तर द्रष्टव्य है।

कथा की नायिका भरत-पत्नी माण्डवी है परन्तु कथा में महत्व भरत-चरित का ही है। कवि ने कथा के प्रारम्भ में तारका के माध्यम से भारत का उद्बोधन किया है। केकय पर असुरों के आतंक के बादल छाये देख कर राजा दशरथ ने अपने पुत्र भरत को केकय की सहायता हेतु जाने का आदेश दिया। माण्डवी भी साथ जाना चाहती थी परन्तु भरत अपने लज्जाशील स्वभाव के कारण उसको साथ नहीं ले गए।

1- हम सभी प्रेम के पथ से आये हैं वन में।
कर रहे समर्थन सभी प्रेम का प्राणों से
राम के नयनों में भरत अश्रु कुछ कहते हैं।
सिद्धि, 9, पृ0 158 ।

2- प्रिय चरण-पादुका माँग रहे हैं भरत राम से विनयपूर्ण
और, राम वनवास के निर्णय से कितनी प्रसन्नता में विभोर हो रहे स्वयं ।
सिद्धि, 9, पृ0 160 ।

एक वर्ष बाद राजा ने शुभ वचन में राम के राज्याभिषेक का निश्चय किया। सब ओर आनन्द की लहर दौड़ गई। उधर केकय देश से भरत की विजय की सूचना आई। माण्डवी अभिषेक से खिल उठी। उसी समय एक दासी ने आकर भरत को युवराज पद तथा राम को वनवास दिए जाने सम्बन्धी कैकेयी के वरदानों की बात कही। सुनते ही माण्डवी चेतना-शून्य हो भूमि पर गिर पड़ी।

राम को वनवास दिए जाने से दशरथ अत्यन्त शोकग्रस्त हो गए। राम उनको समझाते हैं कि " वन जाकर मैं दस्युओं तथा असुरों का उन्मूलन कर सकूँगा। रावण के जीते जी विजय सुख की साँस नहीं ले सकता। अतः रावण-वध के लिए मेरा वन जाना आवश्यक है।" उन्होंने वन-गमन आदेश दिलाने हेतु कैकेयी के प्रति आभार प्रकट किया। माण्डवी ने कैकेयी को समझाने का साहस किया कि राम निर्वासन के कलंक से दूषित कीर्ति वाले राज्य को भरत स्वीकार नहीं करेंगे। कैकेयी के मन में तो संशय दृढ़ हो चुका था अतः उसने माण्डवी की प्रार्थना स्वीकार नहीं की।

तृतीय सर्ग में माण्डवी के दुख, शोक एवं ग्लानि का वर्णन है तथा इसी सर्ग में केकय देश में भरत के असुरों से युद्ध का वर्णन है। यहाँ असुरों की देवी अनाना भरत की वीरता, शौर्य तथा मानवता पर मुग्ध हो जाती है। भरत की विजय हुई परन्तु उन्हें मरणासन्न कन्या का युवाजिह्व द्वारा वध अच्छा नहीं लगा। चतुर्थ सर्ग के पूर्वार्द्ध में अनाना का भरत के प्रति समर्पण तथा भरत का एक पत्नीव्रत का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उसको अस्वीकार करना दिखाया है। केकयलोग से गान्धार आने पर भरत को अयोध्या के दूत मिले और भरत उनके साथ चल पड़े। यहाँ गुरु ने नहीं अपितु दशरथ ने ही भरत को बुलवाया है। कौसल्या दशरथ को उपालम्भ न देकर समझाती हैं कि राम वन में अच्छी तरह रह लेंगे, अतः राजा चिन्ता न करें। फिर भी मुनि के शाप की याद आने पर शोकाकुल दशरथ विष्णु पद को प्राप्त हुए।

भरत अयोध्या पहुँचे। कैकेयी के कलाकलक वैधव्य-वेश पर वे कलाकुंठित हो उठे। कैकेयी ने अपनी सम्पूर्ण कुटिल कठोर राम-निर्वासन तथा भरत को युवराज-पद दिलाने की करनी कह सुनाई। भरत को वज्र-विद्युतों के देश के समान कष्ट हुआ परन्तु उन्होंने संयत भाव से कैकेयी को उसका दोष समझाया। उसकी आँखें खुलीं और वह पश्चाताप की ज्वाला से दग्ध हो उठी। रात में भरत और माण्डवी की बातें हुईं।

1- माण्डवी, 2, पृ० 51 ।

भरत माण्डवी के व्यवहार से प्रसन्न तथा कैकेयी के पश्चाताप से संतुष्ट थे । उन्होंने माण्डवी को राम को मनाने हेतु वन जाने की अपनी योजना समझा दी । कैकेयी भी राम को मनाने के लिए वन जाने को उद्यत हुई ।

छठे दिन में कैकेयी और भरत पैदल ही चित्रकूट को चले । परिजन तथा वाहन उनके साथ थे । गंगा तट पर गुह ने उन्हें राम-विरोधी समझ कर युद्ध की तैयारी की । उधर भरत भी सब कुछ समझ गए । वे कैकेयी के साथ गुह से मिलने चल पड़े । गुह उनका भाव समझ कर उनके चरणों में आ गिरा । भरत-कैकेयी और गुह का मिलन परम-प्रेमपूर्ण था । कैकेयी के पश्चाताप ने लोगों को आकर्षित किया तथा शृंगवेरपुर का सम्पूर्ण समाज भरत के साथ चल पड़ा । वे सब अत्रि के आश्रम में पहुँचे । अत्रि पत्नी ने उनका आतिथ्य किया और अपने आश्रम के उपवन में उन्हें राम से मिला दिया । लक्ष्मण के मन में आशंका उत्पन्न हुई परन्तु राम ने उसका शमन कर दिया । भाइयों का मिलन अपूर्व था । कैकेयी और राम का मिलन भी अद्भुत प्रेम पूर्ण था । कैकेयी ने स्वयं मुकुट राम के मस्तक पर बाँध दिया । परन्तु राम ने अयोध्या लौट चलने के आग्रह को स्वीकार नहीं किया । राम से विदा होकर भरत अयोध्या पहुँचे । नन्दिग्राम में वास बनाया । सिंहासनासीन राम-पादुकाओं की अर्चना करते हुए तपस्वी भरत व्रत-नियम पूर्वक रहने लगे । वस्तुओं का आकर्षण कभी उनके कठिन व्रत को भ्रष्ट न कर सका । भरत और माण्डवी का प्रेम भी स्तुत्य था । वे सूर्य और रश्मि के समान अभिन्न थे ।

इसी प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो गए । एक दिन उर्मिला की कातरता का कारण माण्डवी ने भरत से किया । वे दुःखी हो उठे । फिर दम्पति में जन-कल्याण विषयक वार्तालाप होता रहा । एक दिन एक योगिनी आई जिसने राम के चित्रकूट से जाने की कथा से लेकर सीता-हरण तथा लंका के युद्ध तक की कथा सुनाई । राम की सहायता के लिए भरत की सेना युद्ध हेतु सन्नद्ध हुई । माण्डवी ने भरत के मस्तक पर तिलक लगाया उधर उर्मिला तीव्र चीत्कार कर अचेत हो गई । उसी समय आकाश मार्ग से जाते हुए हनुमान भरत के बाण से आहत होकर धरती पर गिरे । मुख से राम-राम निकला । अचेत हनुमान के घाव को भरत ने राम नाम से ही सेंका । कपि सचेतन हुआ । लक्ष्मण-शक्ति का समाचार दिया । भरत के सामने लंकास्थ राम और उनकी लौट में पड़े लक्ष्मण दिखाई देने लगे । वे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई हो । राम का विलाप सुन पवन-सुत सचेत उठे और पर्वत सहित उड़ गए । लक्ष्मण को संजीवनी पाकर जीवन मिल गया । इधर गुरु ने भरत को समझाया कि " लक्ष्मण जाग उठे हैं । अब एक मास में विजयी राम लक्ष्मण-सीता सहित लौट आयेंगे अतः अब सेना को विसर्जित कर दो ।"

राम अयोध्या पहुँच गए । अवध पुरी नितनूतन ताओं से सज उठी । सीता अपने लंका-निवास की कल्प-कथा बहनों को सुनाती रहती थीं । अन्त में कवि ने नारियों के सम्मान हेतु कामना की है । माण्डवी की सम्पूर्ण कथा अनूठी है । कथानक सम्पूर्ण कथा कवि की मौलिक कल्पनाओं के सहारे आगे बढ़ती है परन्तु कथा का मूल स्रोत परम्परागत एवं सनातन है । इतनी अधिक नवीन कल्पनाओं को सँजोते हुए भी कवि ने रामकथा के मूल-सूत्र को विच्छिन्न नहीं होने दिया है ।

माण्डवी में भरत का स्वरूप:- जिस प्रकार कवि ने " माण्डवी" की कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाएँ की हैं उसी प्रकार भरत के चरित्र में भी विलक्षण मौलिकता लाने का प्रयास किया है । " माण्डवी" के भरत शील-सौन्दर्य में अद्वितीय हैं । उनका गठा हुआ शरीर, तेजोमय मुख मण्डल तथा कमल-नेत्र बरबस लोगों को आकर्षित करते हैं । इस काव्य में उनके दर्शन हमें सर्वप्रथम प्रेमपूर्ण पति के रूप में होते हैं । वे माण्डवी को बहुत प्रेम करते हैं परन्तु अपनी सन्ध्यासीलता के कारण सुन्दरी केकय दे का जाते समय उसको अपने साथ ले नहीं जाते । उनमें सत्य शौर्य एवं शालीनता है तथा माण्डवी के आग्रह करने पर वे उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि ," मैं पत्नी रूप में तुमको पाकर स्वयं को धन्य समझता हूँ तथा तुम्हारा आदर करता हूँ ।"[1] केकय जाते समय वे उसको विश्वास दिलाते हैं कि माण्डवी से उनका सौ आजीवन रहेगा[2] । वे एक पत्नीव्रत हैं । माण्डवी उनके नयनों में ही नहीं अपितु मन-प्राणों में बसी हुई है । वह उनकी प्रेरणा-स्रोत है[3] । भरत केकय को गए और माण्डवी घर पर रह गई ।

वेणीसोन के भयंकर युद्ध में जब शम्बा प्राणों की भिक्षा माँगता हुआ भरत के चरणों में गिर पड़ा तब उन्होंने उसे मारा नहीं अपितु मानवता एवं करुणा का पाठ पढ़ाया । वेणीसोन की देवी अनाना उनके इस शौर्य तथा दिव्य मानवता पर मुग्ध हो गई और उनसे

1- सुन्दर सरल भरत बोले तब-
" धन्य ! धन्य ! मैं मानो मेरा
जीवन धन्य रत्न तुम सा पा
करता आदर हूँ तव धीरा ।
माण्डवी, 1.पृ0 27 ।

2- यह थोड़ा अधिक हो सकता
तुमिव ज्योति के बुझने पर बस ।
माण्डवी, 1.पृ0 27 ।

3- आँखों में तुम बसी हुई हो,
नहीं दृश्य कोई जम सकता ;
उर में प्रतिपल वास तुम्हारा
कैसे कोई फिर रह सकता ?
× × × ×
मन आह्लादित नित करना अरु
नयी प्रेरणा मन में भरना ।
माण्डवी 1, पृष्ठ 30 ।

प्रेम तथा विवाह का प्रस्ताव किया । एक नारी-व्रत धारण करने वाले भरत उसके आह्वान पर गए तो परन्तु उसको उन्होंने स्पष्टतया एक पत्नी-व्रत की बात बताकर क्षमा याचना कर ली[1] । कैकेयी अपने पुत्र की अनुपम सुन्दरी तथा अपराजिता वीर बाला थी जो वहाँ देवी के रूप में पूजी जाती थी । ऐसी रूपराशि एवं वीरता की साक्षात् मूर्ति को भी अस्वीकृत कर भरत ने कितने आत्म-संयम एवं सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है ।

इस काव्य में भरत का शौर्य वीर्य भी अनुपम है । वे असुरों को पराजित करने में सफल रहे । असुरों की देवी कैकेयी उनके सौन्दर्य पर ही नहीं, उनके शौर्य पर मुग्ध हुई थी । राजा दशरथ ने उनकी वीरता एवं दृढ़ता को देखकर ही केकय राज की सहायतार्थ उनको भेजा था । पुनः ग्यारहवें सर्ग में सीताहरण की बात सुनकर वे युद्ध भूमि लंका को जाने हेतु तैयार होते हैं । भरत का युद्ध धर्म युद्ध है । वे अस्त्र, विश्वास, शस्त्र-रहित तथा शरणागत पर आक्रमण नहीं करते हैं इसी कारण शरण में आए हुए असुर शम्बर की उन्होंने अपने ही अभिभावित पुत्र से रक्षा की[2] । उसे मुक्त कर मित्र बनाया[3] । उधर युद्धरत्त में शस्त्ररहित शरणागत शम्बर की हत्या कर दी । यह वीर और कायर का अन्तर है ।

" माण्डवी" के भरत में मानवता का महान् गुण है । वे दयामय, करुणील तथा उदार हैं । शत्रुओं पर भी कृपा करते हैं । वे बुराई के शत्रु हैं । बुराई का निवारण वाले हैं और बुरे का भला नहीं सुधार वाले हैं[4] । भरत सुधारवादी हैं । वे विषधर की जनता को शिक्षा कर सुबुद्धि देना चाहते हैं । केवल देश की जनता को वे शिक्षित बनाते हैं क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही स्वतंत्रता के मूल्य को समझ सकता है ।

1- मैं धन्य सीता पर तुम्हें
पर मैं बहुत आभार हूँ,
मैं हृदय धरोहर, अन्य के
विश्वास का आधार हूँ ।
माण्डवी, 4,पृ0 91 ।

तथा- सम्बल कहाँ तक दो सखे,
हम भारती का एक ही
रक्षी बना अर्द्धांगिनी
सहगामिनी, सहधर्मिनी ।
माण्डवी, 4,पृ0 92 ।

2- " आया शरण करो रक्षा मम,"
कहने लगा दीन विनती से ।
x x x
उसी समय कीलिका का आयुध
कहा भरत ने, " दुरिन्द्र है ।
माण्डवी, सर्ग 3, पृ0 84 ।

3- " उठो आज उन्मुक्त हुए हैं
तुम कारागार में इस धरती पर,
उठो मित्र का हाथ दे रहा,
उठो बहादुरो सा को शिवर ।"
माण्डवी, 3, पृ0 85 ।

4- "कहना मानो । उचित सुन्दरतर
पर युद्ध से बढ़ कर मानो है,
सभी देखना चित्र आदर्श से,
बना मनुष्य निकृष्टतापन है ।
x x x
उठो नष्ट करने से पहले
दे अच्छी संगति का अवसर ।
माण्डवी, 3,पृ0 85 ।

यहाँ भी भरत धार्मिकता तथा सात्त्विकता से परिपूर्ण हैं। राजा दशरथ उनको राम से भी बढ़कर सत्यनिष्ठ समझते हैं तथा उनके हृदय में इसी विश्वास के साथ मरते हैं कि उनके हाथों से इस सत्य की ध्वजा को झुका नहीं लेगा[1]। माण्डवी उनके इन गुणों को भलीभाँति समझती है। अतः जब कैकेयी भरत के युवराजत्व तथा राम के वनवास का वर माँगती है तो माण्डवी सक्रिय विरोध करती है। वह स्पष्टतः उस कलंक को देख रही है जो कैकेयी की इस राज्यलोलुपता के कारण भरत पर लग रहा है। वह यह भी जानती है कि भरत इस कलंकपूर्ण राज्य को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। माण्डवी की सब धारणायें सत्य हैं क्योंकि दशरथ की मृत्यु के पश्चात् केकय से आए हुए भरत कैकेयी के दोनों वरदानों की ग्लानि से गड़े जा रहे हैं[2]। उनके हृदय में इस बात का घोर कष्ट है कि राम को उनके कारण ही वनवास के कठिनतर कष्टों को भोगना पड़ रहा है। अन्त में वे और कैकेयी वन जाकर राम को लौटा लाने का निश्चय करते हैं और चित्रकूट की ओर प्रस्थान कर देते हैं। राम से लौट चलने का आग्रह यहाँ भरत के स्थान पर कैकेयी करती है। भरत का नन्दिग्राम-वास अन्य कार्यों की भाँति त्याग तथा तपस्या से पूर्ण है। वहीं पादुकाओं के प्रतिनिधि रूप में शासन, वहीं तापस-वेष, फलाहार, कठोर ब्रह्मचर्य पालन तथा आठों याम का परिश्रम।

कैकेयी की भर्त्सना यहाँ अवश्य की जरायी गयी है तथा उसके दुःख दैन्य एवं पश्चाताप पर भरत का करुणापूरित हृदय द्रवित हुआ है। बाद में तो वे कैकेयी की प्रशंसा करने लगे हैं तथा उसके व्यवहार पर गर्व का अनुभव करते हैं[3]।

माण्डवी के भरत कायरित्र अत्यन्त उज्ज्वल, निर्दोष तथा सब प्रकार से पूर्ण है। राम-भक्त के रूप में वे भक्तों के आदर्श रहे हैं तथा आदर्श अनुज के रूप में कठिनतम उत्तरदायित्व करते रहे हैं। इस काव्य में उनकी प्रतिष्ठा आदर्श पति तथा आदर्श नरेश के रूप में भी की गई है। यही इस काव्य के भरत की विशेषता है।

1- अनुज के रहते भी तुम्हारी
मैं रहा हूँ सुदृढ़ता में
यही मान सब हाथों से इस
झुका न सकता कभी सत्य ध्वज।
माण्डवी 1.23।

2- "यह था वरा। मुझ को सदा से आज दूँ,
है सोच। तू गिर कर मुझे अब घूर कर,
तू ही दया दे है जानि। मेरा भला,
सब पुत्र अस्वीकार करता राज्य को।"
माण्डवी, 5.पृ0 109।

3- आज हूँ गौरव को मैं प्राप्त
धन्य पाकर उस जननी-हृदय
मुझ का सुन्दर पश्चाताप
छिपे। जो करती शोकर रूप
माण्डवी, 5.पृ0 115।

रामराज्य

(डा० गणेश प्रसाद मिश्र)

डा० गणेश प्रसाद मिश्र ने सन् 1960 में राम राज्य शिखर राम से सम्बन्धित तीसरा प्रबन्धकाव्य पूर्ण किया । इससे पूर्व " कोसल-किशोर", " साकेत-सौर" वे लिख चुके थे । " साकेत-सौर" अयोध्याकाण्ड की कथा पर ही मुख्य रूप से आधारित था । रामराज्य भी राम की वन-यात्रा से प्रारम्भ किया गया है । " साकेत-सौर" राम के वनवास अवधि पूर्ण कर साकेत आने पर पूर्ण हुआ है और"राम राज्य" राज्याभिषेक के पश्चात् " राम-राज्य" बनने तक पूर्ण हुआ है । दोनों काव्यों में राम-कथा तो परम्परा रूप ही है परन्तु कवि भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया गया है । इसमें राम के आदर्श-चिन्तन तथा उनके क्रिया-रूप आदर्श राज्य व्यवस्था को कर्म-विधि के रूप में महत्व दिया गया है । कवि के अनुसार काव्य का आधार मुख्य रूप से " रामचरित-गाथा" है[1] । राम-राज्य लिखने की प्रेरणा कवि को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दी थी[2] । कवि के ही शब्दों में " कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं, राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य-स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है ।"

राम-राज्य की कथा त्रिवेणिका राम की वन-यात्रा से प्रारम्भ होती है । राम-लक्ष्मण-सीता, सुमंत्र वाहित रथ पर जा रहे हैं । चारों व्यक्ति विचार मग्न हैं । सुमंत्र को अवध और अवध-पति की चिन्ता है । कोसल राम के कठोर वन कष्टों को सहने की चिंता, भरत के लिए राज्य भार होने की तथा जनता के आक्रोश की चिन्ता है । लक्ष्मण राम सीता का अपार पावन प्रसन्न हैं, सीता को राम के सान्निध्य में सब प्रकार सुख सौख्य है । राम विश्व की सुधि तथा भारत को सौंदर्यमय बनाने की कल्पना में लीन हैं[3] । वे दक्षिण कोसलारने के लिए कृत-संकल्प हैं[4] तथा तैयारी हैं । शृंगवेरपुर पहुँच कर गुह से भेंट हुई ।

1- देखिए, "राम-राज्य" की भूमिका, पृ० 9 ।
2- " " " पृ० 9 ।
3- " " " पृ० 9 ।
4- बड़ी बात है यह, सुमंत्र तो अब पल है भारत का ध्यान ।
भरत पालनी हों, भारत का सौंदर्यमय हो उत्थान । रामराज्य, 1.27 ।
5- भरत राज्य का एक सिपाही यदि दक्षिण को तत्पर तैयार
तो आने पूर्वज सुतों को मिलता होगा सौख्य अपार ।
रामराज्य, 1. 32 ।

दूसरे दिन में राम गंगा पार कर प्रयाग पहुँचे। भरद्वाज ऋषि से भेंट की। भरद्वाज-आश्रम में उन्होंने आदर्श-ग्राम का रूप देखा[1] तथा प्रयाग के जन-सम्मेलन के रूप में भारत-ऐक्य-प्रयास को मन ही मन सराहा[2]। तीसरे दिन में वाल्मीकि से भेंट की। कवि को अपने काव्य हेतु कथा-नायक मिल गया तथा राम को अमर बना देने वाला कवि मिल गया[3]।

चौथे दिन में चित्रकूट प्रदेश का वर्णन है। राम की प्रेरणा तथा लक्ष्मण और सीता के प्रयासों से चित्रकूट में जन-सम्पर्क एवं ग्राम-विकास हो रहा था। एक दिन एक दूत ने राम को सौन्दर्य भरत के आगमन की सूचना दी। राम को आह्लादमिश्रित आश्चर्य हुआ, सीता को कारण की जिज्ञासा हुई और लक्ष्मण को तीव्र क्षोभ और फिर साथ आ गया। राम ने समझाया कि " भरत धर्म तथा त्याग में मुझसे श्रेष्ठ हैं। तुम्हारा भय कल्पना जन्य है। तुम अपने मन को व्यर्थ सताप न दो।" कुछ देर बाद ही भरत ने वहाँ पहुँच

1- " एक ओर तिलतोर, एक यह आश्रम व्यास
दोनों हैं दो छोर, मध्य में भाति की धारा।
यह बतलाता अहो! कार्य कितना है बाकी
यह दिखलाता कार्य-क्षमता की कुछ झाँकी।
रामराज्य, 2,50।

2- जिसने पानीदार किया भारत वसुधा
जिसने भारत-ऐक्य, धर्म जिस रक्खा अविचल।
जिसने जन प्रेरणा, दिव्य पा रहा राम है
उस प्रयाग को सदा सदा शत-शत प्रणाम है।
रामराज्य, 2,55।

3- तुम होगे मेरे काव्य-चरित के नायक
तुम शब्द-व्यूह में बनो कथा-उन्नायक।
तुम साधु-मात्र के राम शिखर की भू पर
पर रहे अमर रामत्व काव्य के ऊपर।।
रामराज्य, 3,36।

तथा- कवि ने पाया श्री राम, राम ने सत्कवि
जिस उठी उभय से उभय सुरभि की सुकृति-छवि।
रामराज्य, 3, 48।

4- भरत सुत से कमलतार बन्धु! धर्म में और त्याग में आप
सोचकर उनके प्रिय अनिष्ट, न दो अपने मन को सन्ताप।
तुम्हारा भय यह निश्चय तात! तुम्हारा ही कल्पना-प्रसूत
सत्य को यह बनाती कभी, कल्पनाओं के बहुरूप भूत।
रामराज्य, 4, 39।

कर राम के कथन को सिद्ध कर दिया । भरत के मन में कल्प सन्ताप भरा था । राम और भरत का मिलन जीव और ब्रह्म के मिलन के समान था[1] । फिर आगे जो कुछ हुआ वह बड़ा कल्प था । सारांश यह है कि अंततोगत्वा भरत झुक गए । प्रभु को भी झुकना पड़ा । भरत सफल हुए । राम को राज्य स्वीकार करना पड़ा भले ही भरत ने चौदह वर्षों तक उनके प्रतिनिधि के रूप में शासन की देखभाल करना स्वीकार किया[2] । सभा में अनेक सुधी परन्तु राम के भाव को बदल देने में केवल ताँता-सौ भरत ही सफल हुए[3] । अब राम भी राजनीति-निरपेक्ष नहीं रह सके । उन्हें भरत की प्रार्थना पर राम-राज्य को सुसम्पन्न बनाने के लिए शासन सूत्र भी उनको थमाने पड़े । उन्होंने चित्रकूट के सुशासित वसुदेव का आदर्श (जो "मानस" में भी उपलब्ध है) भरत के सम्मुख रखा है[4] । सत्यवादु भरत के सिर पर हाथ रख कर उन्हें सन्देश विदा दी । भरत के आग्रह-अनुरोध पर राम को चौदह वर्षों बाद अवश्य जाकर राज्य सँभालना पड़ेगा ही ।

राम चित्रकूट स्थान कर आगे बढ़े । मार्ग में राक्षसों द्वारा बाए गए मुनियों के अस्थि समूह को देखकर करुणा-निधान का मन करुणा व्याकुल हो गया । नर के द्वारा नर का भक्षण अत्यन्त निंद्य है । उसका निवारण आवश्यक है[5] । उसी समय उन्हें सामने अगस्त्य ऋषि का आश्रम दिखाई पड़ा । ऋषि के परामर्श के अनुसार नर-भक्षी राक्षसों के विनाश हेतु राम ने पंचवटी में अपना निवास बनाया । वहाँ के निवासियों को राम ने सुधि की का भी सिखा कर सुसंस्कृत बनाया ।

1-अब बहुरूप यों सुख किये, जीव का सुख ब्रह्म से मेल
एकता हो गया और ही आप छाँटा माया का खेल । 40 ।
2- रामराज्य, 4, 40 ।

2- रामराज्य, 4,41 ।

3- सभाएँ सुधी अनेकों, जहाँ बने बनकर विवेक प्रताप
सका ताँता सौ ही एक, बदल ही दिया राम का भाव ।
रामराज्य, 4,43 ।

4- " मिलें प्रतिनिधि को । शासन-सूत्र, कर जो रामराज्य सुसम्पन्न ."
भरत ने विनय सहित जब कहा, राम बोले ये वचन प्रसिद्ध ।44 ।
पुरातन का आदर्श अनूप, बना यह चित्रकूट अभिराम
सुशासन से सम्पन्न सब भाँति, यहाँ का है वन-प्रान्त सनाथ ।
रामराज्य, 4,44-45 ।

5- " नर का भोजन ? और करे निर्वाह उसे नर ?
सो यह निश्चय निंद्य, नारकी से भी बढ़ कर ।
नर-भक्षण हट जाय, मैं कैसा यह साधूँ ?
पथ-दर्शक हो कौन ? किसे जाकर आराधूँ ।
रामराज्य, 5, 14 ।

तत्पश्चात् सुग्रीव-विभीषण की कथा है । परिणामतः जल-दुर्ग एवं शिविर का वध हुआ । फिर सीता हरण की करुणापूर्ण कहानी है । तत्पश्चात् सुग्रीव से मित्रता तथा वालि-वध का प्रसंग है फिर सीतान्वेषण एवं लंकादहन की कथा है । हनुमान से समस्त समाचार जानकर राम ने वानर सेना के सहित लंका की ओर प्रयाण किया । उधर रावण द्वारा तिरस्कृत विभीषण राम की शरण में आया । राम ने उसका स्वागत किया और लंका के दुर्ग का विजय में परिणत करने का निश्चय कर लिया सतोगुणी विभीषण को लंका का राज्य देने के संकल्प के साथ । सेतुबन्ध तथा शिव का संस्थापन हुआ । अंगद का दौत्य भी रावण के मन में कुछ संकल्प नहीं जगा सका ।

युद्ध प्रारम्भ हुआ । रावण की सेना विध्वस्त होने लगी । मेघनाद ने क्रुद्ध हो कर युद्ध किया और लक्ष्मण को शक्ति से आहत कर दिया । राम व्याकुल हो उठे । विभीषण की सम्मति से वैद्य सुषेण आये । हनुमान रातों रात संजीवनी ले आए तथा लक्ष्मण के प्राण बच गए । युद्ध में कुम्भकर्ण मारा गया, फिर मेघनाद और फिर स्वयं रावण । विभीषण का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ । तत्पश्चात् सीता की अग्नि परीक्षा का वृत्तान्त है । भरत का स्मरण करके राम सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा विभीषण आदि के साथ पुष्पक से अयोध्या को चले ।

अयोध्या के निकट पहुँच कर राम ने हनुमान के द्वारा भरत को अपने आगमन की सूचना दी । प्रसन्न भरत को मानो नया जन्म मिल गया[1] । भरत के साथ गुरु तथा माताओं ने राम का स्वागत किया । भरत के सुशासन तथा उनके अहंकार-परित्याग की उनकी साधना की प्रशंसा हुई[2] । संजीवनी प्रसंग से हनुमान निशीथोत्तर काल में जल-आकाश पर उड़े थे परन्तु तब प्रसन्न भरत की दृष्टि से वे भी बच नहीं पाये[3] । प्रसन्न भरत का आनन्द-पूर्ण आदर्श था । सुख से भरत की

1- हनुमान को देख, आनन्द-पूरित जनाया
प्रसन्न भरत ने जन्म नया सा मानो पाया ।
रामराज्य, 10,14 ।

2- किंतु राम पुर गये, भरत-त्याग-भूमि देखी
प्रतिनिधि-निधि राज्य-व्यवस्था की सरेखी ।
स्वामि सेवा मूर्तिमंत थी वहाँ सुहाई
जीवन है साधना दिया प्रत्यक्ष दिखाई । 27 ।
रामराज्य, 10, 27 ।

3- रामराज्य, 10,39 ।

प्रतीक्षा करते हुए राम की नन्दिग्राम में भरत ने उनकी सिंहासनासीन पादुकाएँ उठाकर स्वयं पहना दीं। तीसरे राम का राज्याभिषेक हुआ। प्रजा-समाज को नवीन कर्म-स्फूर्ति प्राप्त हुई। एकादश सर्ग में राष्ट्रपति के सिद्धान्त अथवा उनका संविधान वर्णित है।

द्वादश सर्ग वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु को लेकर चला है। इसमें सीता-निर्वासन, श्याम के प्रति न्याय, शम्बूक के प्रति न्याय तथा शम्बूक-वध की कथायें हैं। कवि का मत है कि राम ने शम्बूक के भावों का निग्रह किया था जिसको कवियों ने शम्बूक-वध की संज्ञा दे डाली। इसके पश्चात् कवि ने सर्व पृष्ठों में रामराज्य के विकास की विभिन्न दशों में प्रतीक्षा की है। राम का और राम राज्य का एक ऐसा अनुपम आदर्श जन-मन के सम्मुख उदय हुआ जो उस युग से आज तक निरन्तर कसा चला आ रहा है। कवि के शब्दों में-

" राम ब्रह्म हैं, राम विष्णु हैं, किंतु राम नर तो हैं निश्चय युग द्रष्टा ही नहीं, आप ही युगस्रष्टा भी जो निःसंशय।" ग्राम-कूट वासी से कहते " राम बनो, रावण मत होना, राम-राज्य के अवयव रहकर, जगाग कर दो कोना-कोना।"
। 62 ।

<u>रामराज्य में भरत:-</u> इसके पूर्व कवि साकेत-सौध की रचना कर चुका है। साकेत-सौध के भरत के चित्रण में इस प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में चर्चा की जा चुकी है। प्रस्तुत काव्य में भरत का चित्रण संक्षिप्त है परन्तु उसमें " साकेत-सौध के भरत अपने सम्पूर्ण गुणों सहित देखे जा सकते हैं। उनकी राज्य व्यवस्था एवं शासनकला प्रशंसनीय है।[1] इस प्रबन्ध के भरत का ग्राम-विकास एवं उनकी सर्वोदय-भावना दृष्टव्य है।[2] यह भरत-चरित्र पर युग का प्रभाव है।

- -

1- दिन भर करते कार्य, कार्य में जिसका था रस
वह ही तो है बोध कि जो बनता है नीरस।
संध्या को फिर ध्यान, रात्रि को रामचरित फिर
पहर, दोपहर बनी रहा होगा मन सुस्थिर।
रामराज्य, 10, 39 ।

2- ऐसी थी साधना, भरत के शासन-व्रत में
गाँव गाँव तक गए, न नगरों ही तक सिमटे।
रूखा भोजन, वस्त्र तपोटी, भूमि शयन था
दीन-प्रजा का सुख ही उनका जीवन था। 40 ।

रामराज्य, 10,40 ।

भूमिया

। रघुवीर शरण मित्र ।

" भूमिया" की रचना सन् 1961 में की गई । यह एक विशिष्ट विचारधारा का ग्रन्थ है । इसमें राम द्वारा निर्वासित गर्भिणी सीता के अरण्य-रोदन से काव्य प्रारम्भ किया गया है । कवि ने राम को बहुत कुछ धिक्कारा है तथा रावण को राम से श्रेष्ठ दूसरी सिद्ध किया है । राम के चरित्र का अपकर्ष यहाँ तक किया गया है कि उन्हें मात्र राज्य-लोलुप कह दिया गया है जो राज्य के लिए पत्नी को निष्कासित कर ऋषि आश्रम पर आक्रमण तथा शिशुओं से युद्ध कर सकता है । ऋषि वाल्मीकि जिन्होंने राम को विश्व का सर्वोत्तम चरित्र मानकर रामायण महाकाव्य की रचना की थी, भूमिया में राम को फटकारते हैं । राम के परम्परागत पुरुषोत्तम एवं लोकनायक स्वरूप को एक काल्पनिक पृष्ठ के आधार पर नीचे गिरा कर तथा आदि कवि के आदर्श को भुलाने की चेष्टा कर कवि ने साहित्य के साथ न्याय नहीं किया है और भारतीय संस्कृति के साथ, भूमिया के साथ भी नहीं जिन्हें राम प्राणप्रिय थे ।

परित्यक्ता सीता वनिताश्रम के पश्चात् वन में अरण्य-रोदन करती हैं, फिर गंगा में डूबने जाती हैं । किसी प्रकार वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में ले जाते हैं । वहाँ वे दो यमज पुत्रों को जन्म देती हैं और उन्हें पालती पोसती हैं । ऋषि के आश्रम में प्राणियों को लाकर खेती करना सिखा देती हैं । राम को उन क्षेत्रों का स्वामी बनने का लोभ हो जाता है और वे अयोध्या का खजाना कर ऋषि के आश्रम पर आक्रमण कर देते हैं । ऋषि युद्ध हेतु सन्नद्ध राम को समर से विरत कर बताते हैं कि वह सीता के परिश्रम की खेती है और लव-कुश उन्हीं के पुत्र हैं । राम सीता से मिलते हैं । सीता के आँसुओं से पृथ्वी फट जाती है और सीता उसमें समा जाती हैं । सीता के विरह में राम विक्षिप्त से हो जाते हैं और लव-कुश को राज्य देकर स्वयं वन को चले जाते हैं । वहाँ वे सीता का ही स्मरण करते रहते हैं ।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि इस कथा में भरत के महान् चरित्र हेतु कोई आधार ही नहीं है, परन्तु कवि ने भरत का भी नामोल्लेख किया है । प्रथम सर्ग अरण्यरोदन में उसने राम को राज्य-लोलुप तथा महत्त्वकांक्षी सिद्ध करते हुए कहा है कि राम ने अनुज को भागा के वह देश कर उसकी अनुपस्थिति में अभिषेक की तैयारी कराई । इसी सर्ग में

1- भूमिया, अरण्य-रोदन, पृ० 29 ।

उसने पुनः कहा कि त्याग राम का नहीं था, भारी त्याग तो भरत का था।[1] सीता के विरह में रोते हुए राम राजसिंहासन की निन्दा करते हुए कहते हैं कि, " इस सिंहासन के मिलने से पूर्व कुलों की साख डालनी पड़ी, पिता विमुख गए, भरत रोये थे- सब कुछ किया अकाज के हुआ।[2] पुनः एक बार भरत का उल्लेख लव-कुश से युद्ध के प्रसंग में हुआ है[3] तथा अन्तिम बार सीता के वियोग में रोते हुए भरत को वाल्मीकि ने समझाया है।[4] इस प्रकार इस काव्य में भरत के त्याग का चित्रण नहीं हो पाया है।

- - - - - - - - -

कैकेयी

। चरित्र अनुवाद "चन्द्र" ।

इस काव्य की रचना सन् 1969 में की गई है। "चन्द्र" औरंगाबाद निवासी हैं। अहिन्दी भाषी होकर भी इतनी सुन्दर, शुद्ध भाषा में यह रचना प्रशंसा की वस्तु है। कवि ने इस काव्य में कैकेयी के चरित्र की परम्परागत मलिनता को दूर कर उसका उत्कर्ष किया है। विचित्रता यह है कि ऐसा करने में उसने अन्य पात्रों के चरित्रों का अपकर्ष नहीं किया है।

कैकेयी का दशरथ से विवाह होने जा रहा है। सब की राशि किशोरी कैकेयी से सखियाँ ठिठोली-ठठोली कर रही हैं। दूसरे सर्ग में विवाहोपरान्त दशरथ और कैकेयी के प्रणय का वर्णन है। तीसरे में देवासुर संग्राम में कैकेयी दशरथ के रथ का संचालन करती हुई दो बार उन्हें मृत्यु के मुख से बचा लेती हैं। कृतज्ञता तथा प्रेम से अभिभूत दशरथ उसे दो वरदान देना चाहते हैं, किन्तु वह उस समय नहीं लेती है।

- -

1- त्याग राम का नहीं, भरत का-
त्याग हुआ है भारी।
लक्ष्मण त्यागी थे, किन्तु-
उर्मिला राम पर भारी।।
भूमिका, अरण्य रोदन, पृ० 31।

2- राजतिलक होने से पहले
साख कलों में डाली।
बिछुड़े पिता, भरत रोये थे,
सिंहासन था पाया।।
भूमिका, सत्य का दीप, पृ० 07।

3- वीर भरत ने तीर तान कर-
सीधा कराया रथ का।।
भूमिका, आह्वान, पृ० 113।

4- क्यों रोते हनुमान! भरत! क्यों-
आँखें भर भर लाते?
जो गए जो अब हैं वे फिर -
रोने से क्या आते!
भूमिका, अनुप्रास, पृ० 127।

इसके पश्चात् कवि ने राम-विवाह तक की कथा न कह कर, पुत्रों तथा वधुओं से भरे पूरे राज भवन के सर्वोल्लास का वर्णन किया है। भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल गए हैं। इसी बीच दशरथ के मन में राम को राज्य देने की बात उठती है परन्तु विवाह के समय अयोध्या को दिए गए अपने वचन उनको सालते हैं कि कैकेयी की संतति को ये राज्य देंगे। राम उनके मनभावन हैं। वे गुरु वशिष्ठ से मंत्रणा करते हैं। उधर कैकेयी पड़ोसी राज्यों में हो रहे असुरों के अत्याचारों से चिन्तित है। वह सोचती है कि रावण और बालि के अनाचारों तथा अत्याचारों का प्रक्षालन केवल राम के द्वारा ही किया जा सकता है। नर-भक्षकों से भरत जन-जीवन की रक्षा करने हेतु राम को वन भेजना आवश्यक है।

उधर सचिवों तथा नगर के श्रेष्ठ जनों का विशेष संयुक्ताधिवेशन बुला कर महाराज ने रामराज्याभिषेक की सहमति प्राप्त कर ली। कौसल्या, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, कुशलीसादि में हर्ष की लहर दौड़ गई। कैकेयी के लिए यह समाचार राजा की ओर से सचिव का वर्णन है वे स्वयं उसको उद्घोषित करना चाहते थे। राम को भरत की अनुपस्थिति का खेद है। सुमंत्र उन्हें महाराज के पास ले जाते हैं तथा राजा उन्हें राज्य-संचालन सम्बन्धी उपदेश के बीच यह भी बता देते हैं कि वे भरत के आने से पूर्व ही अभिषेक करना चाहते हैं। कुटिल मंथरा ने सरला कैकेयी के मन को विकल्प बना दिया। कैकेयी के मन में प्रचण्ड अन्तर्द्वन्द्व है और वह। दोनों घटनाओं के बल में भरत को राज्य और राम को वन देना चाहती है। वह सोचती है कि यदि भरत का ननिहाल में रहना और राम के राज्याभिषेक की सूचना का उस तक न पहुँचना कोई महत्त्व न भी हो तो भी दक्षिण के नर-भक्षी दानवों का दमन तो आवश्यक है ही। उसके लिए पुरुषोत्तम राम ही उपयुक्त हैं। अतः राज्य की दक्षिण सीमा पर राम दानवों से चौदह वर्षों तक संघर्ष करते रहें और इधर भरत का राज्य दृढ़ हो जायेगा। लोग राम की लोकप्रियता को भूल जायेंगे। दशम सर्ग का कैकेयी के वर-याचन का प्रसंग तथा एकादश सर्ग का राम को बुलाना और वन-सूचना प्रसंग मानस के ही समान है।

द्वादश सर्ग में राम का कौसल्या से विदा मांगना " मानस" के समान है परन्तु लक्ष्मण की उपस्थिति वाल्मीकि के अनुसार। सीता, राम और लक्ष्मण वन तक वन के लिए तैयार हुए प्रजा का ज्वार द्वार पर उमड़ आया। राम प्रजा के पूछे हुए युवराज हैं। प्रजा उन्हें वन नहीं जाने देगी और ही राम मार्ग लाखों से पट जाये। राम ने प्रजा को समझाया। भरत के गुणों की प्रशंसा की। उन्हें कठिन कर्तव्य का बोध कराया फिर पिता से विदा लेकर उन्हें अंतिम प्रणाम कर वन को चले गए।

पिता की रुग्णता का समाचार सुन कर भरत अयोध्या आए। परन्तु नगर में प्रवेश करते हुए उनका मन खिन्न हो रहा है। पिता की मृत्यु तथा राम-निर्वासन का कारण स्वयं कैकेयी को वे अति लघु अनुभव करते हैं, फिर माता कौसल्या के सम्मुख अपनी निर्दोषिता सिद्ध करना चाहते हैं। उधर कैकेयी भी अपनी भूल समझ गई और पश्चात्ताप से पीड़ित वह कौसल्या के भवन में सती होने के प्रस्ताव सहित पहुँची।

भरत ने चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। मन्दाकिनी तट पर सीता सहित विचरते हुए राम ने मन में छाई धूलि को देखा। लक्ष्मण ने वृक्ष पर चढ़कर भरत की और चतुरंगिणी वाहिनी को देखा। वे क्रोध से उग्र मन और भरत को मारने को उद्यत हो गए। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। राम उन्हें शान्त करते हैं। इतने में भरत पहुँच गए। राम को वल्कलधारी देखकर वे रो पड़े। पिता की मृत्यु के समाचार से राम को अपार शोक हुआ। वन में सभा जुड़ी। यहाँ भरत-राम तथा कैकेयी का वार्तालाप बहुत कुछ साधित से चिन्ता-मुक्त है। राम को पराजयिति करने के भरत के समस्त तर्क व्यर्थ हो गए। राम की आज्ञा ही शिरोधार्य हुई। खड़ाऊँ भरत ने माँगीं और राम ने उनकी पूर्ति की।

चौदह वर्ष व्यतीत होने को हैं। हनुमान से भरत को लक्ष्मण की विपत्ति का समाचार मिला। इतना भी अवसर न था कि सेना भेजी जा सके। कैकेयी राम-लक्ष्मण के मंगल की कामना करती है। अन्तिम सर्ग में राम ने पुष्पक से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। हनुमान से राम के आगमन का समाचार सुन सम्पूर्ण अयोध्या सकौतुक हो सरयू राम के स्वागत में खड़ी थी। पुष्पक उतरा। भरत राम से मिलने वेगवश से दौड़े। राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और दोनों ने एक दूसरे का आँसुओं से अभिषेक किया। राम का राज्याभिषेक हुआ। राम-राज्य में जनता प्रसन्न थी।

'कैकेयी' में भरत का स्वरूप:--'कैकेयी' में भरत का चित्रण परम्परागत ही है। इसमें रामायण, रामचरितमानस तथा साकेत के भरत के दर्शन हमें एक साथ ही हो जाते हैं। भरत और राम में कैसा स्नेह है। अभिषेक के समय भरत की अनुपस्थिति से उत्पन्न राम की खिन्नता का भरत को बोधक है। कैकेयी भी स्वीकार करती है कि राम और भरत में

1- कर रही प्रिय भरत की, अस्थिर मुझे अति याद।
क्यों न हो अभिषेक उनके लौटने के बाद ?
x x x x
साथ हम पुत्रों को, देते सभी हम साथ।
साथ रहती सुख व दुख देते सभी हम साथ।
कैकेयी, 30-31।

परस्पर अमिट स्नेह है जिसकी तुलना विश्व भर में नहीं है[1]। जब कैकेयी राम के चौदह वर्षों का वनवास माँगती है तब उनको समझाते हुए दशरथ कहते हैं कि " सम्भव है भरत राम का वियोग न सह सकें[2]।" उनका यह कथन भरत के राम-प्रेम को उजागर करता है। भरत को राज्य दिए जाने की बात सुनकर राम कैकेयी से कहते हैं कि, "भरत मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं। जो राज्य का अधिकारी हो उसका ही तिलक होना चाहिए[3]"। अयोध्या लौटने पर भरत कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि," तू ने राम के प्रति मेरे भाव को भी नहीं जाना ? सदल भरत जब चित्रकूट पहुँचे तो लक्ष्मण के मन में शंका हुई, तब राम ने उनको समझाया कि भरत शत्रु-भक्त और धर्म-धुरीण हैं[4]। भरत-राम के वास्तविक प्रेम को तो उनका चित्रकूट मिलन व्यक्त करता है जब दोनों एक दूसरे का नेत्र-जल से अभिषेक कर रहे हैं[5]। उनके निश्छल,अकूट स्नेह को देखकर पेशन बन्धु हो गए और बन्धु पेशन[6]। वनवास अवधि की समाप्ति पर साकेत में भरत और राम का मिलन पुनः उनके अनुपम प्रेम की पुष्टि करता है।

- -

1- " स्नेह, सत्य अमिट
भरत औ " राम दोनों में परस्पर ;
विश्व में तुलना न जिसकी ।
कैकेयी, 8,292 ।

2- कैकेयी, 10,90 ।

3- धा जानी -सी बात अन्त, तो
व्यर्थ पिता का मन भारी ।
भरत मुझे प्रिय सर्वाधिक, हो
तिलक उसी की अधिकारी ।।
कैकेयी, 11,55 ।

4- कैकेयी, 15,29 ।

5- आये रोकित अश्रु-नीर,
रहा न उनको सम्भव भान ।
बढ़े राम भी प्रेम-विभोर,
सरका सहसा, सहसा बाण ।
वह " हा आर्य्य ! आर्य-उद्देश,
गिरे चरण धोये दृग-नीर ।
प्रभु ने किया अश्रु-अभिषेक,
खींच हृदय से भींच अधीर ।।
कैकेयी, 15,38,39 ।

6- प्रेम निरख वह निश्छल, अकूट ;
पेशन बन्धु, बन्धु पेशन सर्व ।। कैकेयी, 15,40 ।

कैकेयी के भरत " मानस" तथा " रामायण" के भरत के समान ही दयालु तथा कर्तव्यनिष्ठ हैं। उन्हें सीता-राम-लक्ष्मण के वन जाने का दुख है। राम को वल्कल धारण किए देख वे रो पड़ते हैं। दुष्ट मंथरा तक पर वे दया ही करते हैं।

इस काव्य के भरत भी धर्म-परायण हैं। अधर्म तथा अनाचार पर उन्हें क्रोध आता है। वे अन्याय सहन नहीं कर सकते। राम-प्रेम तथा धर्म-भावना से प्रेरित होकर वे कैकेयी की कठोर भर्त्सना करते हैं। यहाँ कवि वाल्मीकि से प्रभावित है। उसके भरत कहते हैं- यदि मेरा तुम्हारा पुत्र तथा माता का नाता न होता तो मैं तुम्हारे रक्त से ही पिता का तर्पण करता। कैकेयी की इस भर्त्सना में भरत के हृदय का क्षोभ एवं ग्लानि विद्यमान है।

भरत की कर्तव्यता की प्रशंसा स्थल स्थल पर सभी पात्र करते हैं। दशरथ अपने मन में उनकी प्रशंसा करते हैं। गुरु वशिष्ठ भी भरत को सत्य-व्रत तथा सेवा निरत बताते हैं। राम अवध की प्रजा को समझाते हैं कि " भरत योग्य, गुणवान तथा मेरी प्रतिमूर्ति है।" राम वन गमन के क्षोभ से आशंकित तथा उनके विरह से दुखी भरत को कौसल्या समझाती हैं। "भरत का सम्पूर्ण चरित्र तो राम ने अपने इन शब्दों में व्यक्त कर दिया

1- आर्य शिला पर, आसीन,
घटा-जूट सिर, वल्कल वेश।
समक्ष स्वर्ण की झलका मृग,
पड़े कूट हो भरत विशेष॥
कैकेयी, 15,37।

2- " रक्त कर " पुत्र-मां" का चिरन्तन नाता।
रुधिर से तात को तर्पण करता॥
लगाया भाल स्वर्ण कलि टीका।
मिटे न कभी, कभी जो हो न फीका॥
कैकेयी, 14, 50।

3- " भरत तो नीतिज्ञ है, कवि है,
गुण-समुच्चय तात है, सत्पात्र है;
कैकेयी, 4, 16।

4- भरत निरीक्षा सत्य-व्रत, सेवा-निरत;
वह रहे पर राम वन-वन-वन-वास॥
कैकेयी, 4,24।

5- भरत योग्य, गुणवान, उसी पुत्र,
पाओगे अनुरूप।
मुझ का भी प्रस्ताव यही, वह
मेरा ही प्रतिरूप॥
कैकेयी, 13,61।

6- किसी अभिलाषा में होवे भरत-मन।
अनिल,अनिल में होवे भरत-मन॥
× × × ×
अवध सुखी कभी अब हो न सकता।
रहे तेरा सुयश-सौरभ महकता॥
कैकेयी, 14,73-75।

है,-

प्राण-भला वह धर्म-धुरीण,
सत्य-निष्ठ, विनयी, गुणवान ।
स्नेह-सिन्धु ही, कपट-विहीन ;
सत्य, भरत ही भरत-समान ।।
अन्य न उसके मन दुर्विचार
रिपुसूदन वह भक्त-मन-सदृश ।
कलंक-दोष उस पर बेकार ;
पंक चन्द्रिका क्या रुचिर न पद्म ?

भरत के पुरुत्व ने कैकेयी की कलंक-कालिमा धोकर उसको गौरव प्रदान किया है । चित्रकूट का भरत-राम संवाद, प्रेम, धर्म, न्याय और विधि का प्रत्यक्ष स्वरूप प्रस्तुत करता है । चौदह वर्षों तक कठिन तपस्या करने वाले, अपरिमित वैभव के बीच रह कर योगी के समान निर्लिप्त भरत अनन्त युगों तक गौरव तथा ऐश्वर्य से मंडित होकर अपने पारिमिक गुणों से विश्व को आलोक-मण्डित करते रहेंगे ।

- - - - - - - - - -

"भगवान-राम" । ले० प्र० मोहन लाल ।

। पूर्व चरित्र वाल लीला ।

भगवान राम काव्य की रचना श्रीमनमोहन लाल श्रीवास्तव ने साठ तथा सत्तर वर्ष की आयु के मध्य की । यह काव्य सन् 1960 में प्रकाशित हुआ । कवि ने इस ग्रन्थ के व्यापक का आधार वाल्मीकीय रामायण को बनाया । आवश्यक अन्तर-कथाएँ छोड़ कर केवल बालकाण्ड की रामकथा इस काव्य के पूर्वचरित में सन्दोहित की गई है । राम-विवाह का वर्णन संक्षिप्त है ।

भगवान राम के पूर्वचरित में भरत विषयक कोई विशेष उल्लेख नहीं है । चारों भाइयों के जन्म तथा विवाह के प्रसंग में भरत का भी नामोल्लेख एक दो बार किया गया है परन्तु चरित्र-चित्रण की तरह ऐसी कोई घटना चर्चित नहीं है । विवाह के उपरान्त

- -

1- विदेहजानाथ । परम्परा यही
महर्षि वाल्मीकि पुनीत काव्य में,
सभी महादिव्य चरित्र गान की ।
निधान की थी अमराणना बनी ।।

भगवान राम, उत्तरचरित, विषयवर्ग, रामराज्य-काण्ड, 2,152 ।

भरत-शत्रुघ्न सहित अपने मामा युधाजित के साथ केकय देश जाने का उल्लेख पूर्वचरित के अन्त में किया गया है।

भरत-चरित तपोवन-विहार में वाल्मीकीय रामायण के आधार पर राम-वन-गमन, भरत के भ्रातृ-प्रेम तथा राम को मनाने चित्रकूट जाने एवं राम की पादुकाओं को लेकर अयोध्या को लौटने, राम के दण्डक-वन-चरित तथा सीताहरण से सम्बन्धित कथाओं का भी अयोध्याकाण्ड, चित्रकूट कण्ड तथा पञ्चवटी कण्ड के अन्तर्गत किया है। आदि वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड तथा अरण्यकाण्ड की कथा "भरत-चरित" के अन्तर्गत कही गई है। भरत-चरित का भी " भरत-चरित" में ही उपलब्ध है।

उत्तर-चरित(विजय-वधू) में वाल्मीकीय रामायण के किष्किंधा, सुन्दर तथा युद्धकाण्ड की विषयवस्तु के आधार पर सीता खोजने से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा मधुवन कण्ड, उदीच कण्ड, युद्ध-कण्ड तथा राम-राज्य कण्ड के अन्तर्गत वर्णित है। संजीवनी लेकर आते हुए हनुमान की भरत से भेंट का प्रसंग नहीं है। भरत का प्रसंग राम के अयोध्या लौटने पर भरत-राम-मिलन के रूप में उपलब्ध है।

* भगवान राम काव्य में भरत का स्वरूप:- भगवान राम के भरत में वे ही सब विशेषताएँ हैं जो वाल्मीकि के भरत में हैं। " भगवान राम" वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड तक की काव्य-कथा का अधिकांशतः छायानुवाद है, फिर भी सम्पूर्ण ग्रन्थ में काव्य-सौन्दर्य उच्च कोटि का है। इस ग्रन्थ में भरत कवि, त्यागी, तपस्वी, दयालु, भ्रातृ-वत्सल तथा राम-भक्त हैं। इन विविध चारित्रिक गुणों के उदाहरण इस काव्य में द्रष्टव्य हैं :-

कविता- भरताग्रज ने भरत की कविता की प्रशंसा की-

अर्थात्-अन्याय-दूषित तुम्हारी,
विराग की कृतियाँ विलक्षणीय,
रचना: तुम्हारी अलंकार के
प्रमाण प्रत्यक्ष अकाट्य सभी ।।

तपोवन विहार 14, 1398 ।

दशरथ भरत की प्रशंसा राम से करते हैं,-

यद्यपि भरत कुलीन साधु हैं, अनुज-वट अनुरक्त,
पुरुषरत्न कवि जितेन्द्रिय सर्व प्रकार विरक्त ।।

तपोवन विहार, 2 ,97 ।

1- भगवान राम-पूर्वचरित, बाल लीला, 10,785 ।

राम कौसल्या को समझाते हुए उनसे भरत की प्रशंसा करते हैं-

परहितरत त्यागी भरत माता पिता के,
मम पद अनुरागी भक्ति-भ्रातृत्व-सीमा,
भरत सदृश दोषी कुछ कर भी न सकि,
छल रहित करैंगे नित्य सेवा तुम्हारी ।।

रामचरित-विचार, 8,550 ।

लक्ष्मण को भी भरत के चारित्र की दृढ़ता में विश्वास है ।

त्याग- भरत की त्याग-भावना की सभी ने मुक्तकंठ से सराहना की है । अयोध्या का वैभवशाली राज्य त्याग कर राम की आज्ञा का पालन करते हुए नितान्त निर्लिप्त भाव से तपस्वी का जीवन यापित करते हुए सीमित वर्षों की लम्बी अवधि में भारत संयमपूर्ण त्याग में त्याग का अलौकिक उदाहरण है । यह अति दारुण था । ऐसा अनुपम त्याग एवं वैराग्य केवल उनमें, राम में तथा लक्ष्मण में ही देखा गया । वशिष्ठ उनके इस त्याग की सराहना करते हैं-

आचार्य भाव-अभिभूत प्रसन्न बोले,
हैं धन्य कुलमणि-पुत्र महान त्यागी ।
लोकोत्तर तुमसे है सब त्याग-मूला ,
मोक्षाभिप्रसन्न जन के हित है तरी सी ।।

रामचरित-विचार, 14,1295 ।

मुनि भी भरत के त्याग से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा करता है-

" उत्तमभूति ! प्रभु धन्य हुए धरा में
है देव आप सह धर्म-सरोज के हैं ।
ऐसी अतुल्य त्यागमाला राज्यश्री का
है कौन और जग में नर-रत्न त्यागी ।।

रामचरित-विचार, 14,1327 ।

भरद्वाज मुनि भी भरत के अनुपम त्याग से प्रभावित होकर कहते हैं -

अतुल्य है वाक्पटुता तुम्हारी,
प्रशंसनीया मुनि लालसा है ।
न योगियों में न विरोगियों में
असीम त्यागी तुम सा मिलेगा ।।

रामचरित-विचार, 14,1397 ।

उनके त्याग की चरम परिणति तो उस समय दृष्टव्य है जब भरत राम की पादुकाओं को लेकर चौदह वर्षों तक तपोलीन त्याग कर सन्यासी की भाँति रहने की प्रतिज्ञा करते हैं-

मैं राज्यनीति कर अपने पादुका को
नियति की अवधि की करता प्रतीक्षा,
तपोवन में तपस्वी भीम-विनीतिता से
अवधारुतार प्रभु आगम-भार दूँगा ।।

तपोवन-विहार, चित्रकूट खण्ड, 1.234 ।

व्याख्या- तपस्वी भरत ने चौदह वर्ष फलाहार कर, अजिन वस्त्र धारण कर, तृण की शैय्या पर नगर के बाहर कुटिया में व्यतीत किए-

आहार कन्द फल से मुनिवर्य धारी
शय्या बना अवनि की तृण की कुटी में,
आसक्ति-रिक्त मन चौदह वर्ष मैं भी
वैराग्य से तपस्वी मैं व प्रतिष्ठ हुआ ।

तपोवन-विहार, चित्रकूट खण्ड, 1.235 ।

राम का संदेश लेकर गए हुए हनुमान को भरत के दर्शन उपर्युक्त रूप में ही हुए थे-

देख दूरस्थ त्याग का स-अम्बु नेत्र हो गए
भक्ति निजा भाव से स्वयं कपीन्द्र भी झुके ।
तापसेय रामबन्धु वर्ण आत्मत्व से
कृष्ण वीर भी पुनीत था सुरंग वर्ण का ।

चित्रकूट, राम राज्य खण्ड, 1.61 ।

कला- राम वन जाते समय प्रजा वर्ग से भरत के उदार गुणों का वर्णन करते हुए उन्हें कला का सागर बताते हैं -

तपोवन्य शील प्रतिमा सुशिक्षार्थ नागी
प्रजा अतीव कला-सरिता से हैं ।
× × × ×

तपोवन विहार, 10.822 ।

वे लक्ष्मण से भी कहते हैं," निधि भरत दया के शील तपोवन्य के हैं ।" तपस्या की दयनीय दशा देखकर भरत का मन करुणा -कातर हो गया -

"ज्येष्ठा माता सरल हृदया देवता रूपिणी की
आँ से वंचित तनय से हीन तूने किया है ।
तपोवन विहार, 13,1215 ।

कुशल द्वारा पीटी जाती हुई मंथरा की भी रक्षा दयालु भरत ही करते हैं-

नारी अवध्या अथवा अनुकम्पनीया
प्राता ! क्या अवध्या अधिकारिणी है ।
क्या दण्ड से कुकृति का प्रतिकार होगा ,
तीदार्य भुला कर दो अब विंध्यरी को ।।
तपोवन-विहार, 14,1264 ।

हुँगेरपुर में राम की तुल्य-शैय्या देख कर तथा मुख से वेदनामय समस्त समाचार सुन कर करुणानिधान भरत मूर्छित हो गए-

दुरान्त दुःखद मर्म विदीर्णकारी
केवलनाथ मुख से सुन राम-प्राता,
गेरे हुए गरिमा भू पर बैठना है
मानो गिरा विकिर विष्ट गोन्द्र कोई ।
तपोवन-विहार, 14,1356 ।

<u>प्राता-प्रेम तथा राम भक्ति:-</u>

भरत राम को तथा राम भरत को अति प्रिय हैं । राम सीता को समझाते हुए कहते हैं-

कैकेयी-सुत महाबलवी
औदार्य-सीमा निधि शील के हैं ।
प्यारे मुझे प्राण समान हैं जो,
तीदार्य सद्भाव उन्हें दिखाना ।।
तपोवन विहार, 8,596 ।

कौसल्या के समक्ष राम भरत को " भक्ति-प्रावुरुष-सीमा" कह कर प्रशंसा करते हैं । राम के प्रेम के कारण ही वे राम-वन-गमन की कारणभूता अपनी माता की भी भर्त्सना करते हैं । राम के प्रति अनन्य प्रेम तथा अटल भावना ही उनको राम के सभी जन जाने का निर्णय कराते हैं । उनका यह उच्च कोटि का प्रेम तथा भक्तिपूर्ण है-

मेरा है निश्चय विदित की आप की भी ।
प्राता-भाटाम्बुज-रज किंवा आँख हैं प्राण मेरे ।।

मानिये साक्षात विनय जो पूज्य आराध्य मेरे
लौटेंगे सानुज विभिन्न से साथ सुन्दरी सुता के,
सरोज विहार, 14.1258-59 ।

भरत ने राज्य सभा में भी इसी प्रकार का अपना निर्णय सुनाया था । मंत्रियों ने उस समय उनकी भ्रातृ-भक्ति तथा त्याग एवं समर्पण की प्रशंसा की थी-

आदर्श-भक्ति निज अग्रज की तुम्हारी
उत्तर्ण की अवधि निःस्पृहता अनीहा
उद्दीप्त दर्शन मानव का करेगी,
अन्याय और अब आत्मबोध होगा ।।
सरोज विहार, 14.1297 ।

कुलिन्दपुर में जब समस्त सेनादि सुख की नींद सो रहे थे भरत राम की स्मृति में बिता रो रहे थे-

पर भरत निज की आँख निस्तब्धता में
अति विवश पड़े थे अश्रुधारा बहाते ।
स्मृति स्मृतियों की मर्मभेदी चिता
अविरत सुख निद्रा की बनी वैरिणी थी ।।
सरोज विहार, 14. 1310 ।

भरतराय अपने अनुजों तथा राम की पारस्परिक प्रीति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

अनन्य है भक्ति यथा तुम्हारी
सदैव है राघव प्रीति-सीमा ।
सन्धु सीता जब थे वहाँ थे
उन्हें रहा ध्यान सदा तुम्हारा ।।
सरोज-विहार, 14.1399 ।

राम के आगमन के निकट पहुँच कर भरत का प्रेम स्वयं अश्रु रूप है -

सोती प्रतीति मन की हुई मूक मेरे
आराध्य देव रघुनाथ यहीं कहीं हैं ।।
रोते न बन्धु कभी भवनानुसारा
आवेग से हृदय स्पंदन हो रहा है ।

सन्ताप-दग्ध उर शीतल हो गया है,
वात्सल्य वारि निधि में चित्त मग्न हुआ है ।।

लवोपन-विहार, 14,1439-40 ।

जब लक्ष्मण का मन सीधे पूर्वत्त हो क्रोध से आकुलित हो उठा, तब भी राम को भरत की भक्ति पर अगाध विश्वास है । वे लक्ष्मण को समझाते हैं-

आता है भाग्य सहज में रुक ही भाव मेरे
प्राणों से भी प्रिय भरत हैं शोक सीमन्त आते ।।

लवोपन विहार, चित्रकूट कण्ड, 1,46 ।

चित्रकूट में भरत और राम का मिलन तथा दोनों की परस्पर वार्ता तो भ्रातृ-प्रेम के सर्वोत्कृष्ट आदर्श को प्रकट करती ही है । भरत को राम का विरह असह्य है । उन्हें खेद है कि " मम विरह व्यथा से प्राण का अन्त होगा ।" राम के समझाने पर भरत ने किसी प्रकार धैर्य धारण किया । राम की पादुकायें भी भरत को राम के समान ही पूजनीय हैं । यह प्रेम का चरमोत्कर्ष है । इसी कारण से पादुकायें सीधे वहाँ तक सिंहासनासीन रहीं । कवि का यह कथन जितना उचित एवं प्रेमपूर्ण है-

ऐसी अनन्य हृदु पावन भ्रातृ-भक्ति
आदर्श की अनुकूर्य पदानुरक्ति ।
कर्तव्यनिष्ठ जन का अनुष्ठानधारि
उद्दीप्त है भरत के यश का सितारि ।।

लवोपन-विहार, चित्रकूट कण्ड, 2,202 ।

राम के अयोध्या लौट आने के समाचार को सुनकर आवेग एवं उत्कण्ठापूर्ण भरत का प्रेमपूर्ण चित्र देखिए-

प्रभु ! प्रभु ! प्रभु आये, क्या कहा, मीत क्यों हो ।
रुक्ष भरत निरे उद्वेग की तीव्रता से ।

चित्रकूट, रामराज्य कण्ड, 1,64 ।

दोनों बन्धुओं का परम प्रेमपूर्ण मिलन देखिए-

संयोग का विरह-वीथि बन्धुओं का
उत्तर्ण का कि सब प्रेम पयोधि में था ।
सन्देह और अभिमान्यक बन्धु को ले
बैठे रहे जिस राम विमान ही में ।।

चित्रकूट, रामराज्य कण्ड, 1,95 ।

उत्तरायण

सुप्रसिद्ध नाटककार डा० रामकुमार वर्मा ने सन् 1972 में उत्तरायण काव्य की रचना की । इस रचना के द्वारा कवि ने ढाई हजार वर्षों से राम-कथा पर चले हुए सीता परित्याग के कलंक के प्रक्षालन का प्रयास किया है । कथा-नायक के शब्दों में कवि ने अपने मानस के भाव मुखरित किए हैं,-

" सीता निष्कासन है असत्य फिर रामायण क्यों है प्रमाण ?
मैं कहता हूँ, यह रामायण के कोमल उर में घुसा बाण ।

उत्तरायण के नायक महाकवि तुलसीदास हैं । कवि ने प्रारम्भ में तुलसी के निराश्रित बाल-जीवन का वर्णन किया है । बाबा नरहरि दास की कृपा से उन्होंने विद्या प्राप्त की तथा शेषसनातन से ज्ञान । उनकी मुग्धकारी कथा-वाचन-प्रणाली एवं सुन्दर सौम्य स्वरूप पर मुग्ध होकर रत्नावली के पिता ने उनको अपनी कन्या ब्याह दी । रत्ना के प्रेम में तुलसी सब कुछ भूले हुए थे, तभी एक रात रत्ना ने नश्वर-शरीर से प्रेम न कर भगवान राम से प्रेम करने को कहा जिससे भय-भीति न रहे । सीधे में कही गई रत्ना की यह बात तुलसी के मर्म को भेद गई और उन्होंने उसी समय गृह-त्याग दिया । रत्ना की अनुनय-विनय व्यर्थ हुई । अटूट प्रेमी प्रियतम राम की खोज में निकल पड़ा । प्रयाग, काशी, चित्रकूट-यात्राएँ पूर्ण हुईं । राम-कथा की काव्यमय रचना की उत्कट अभिलाषा जाग्रत हुई । तैत्तिरीय उपनिषद तैय्यार हुई । सीता-परित्याग की कथा के विषय में मन में शंकाएँ उत्पन्न हुए । तमसाचार्य आदि कवि ने स्वप्न में आ कर कहा,-

उन सीता के अनुपम सतीत्व पर
राम करें सन्देह ? कथा ।
यह है असत्य । सत्य है असत्य ।
यह है आत्म । है सौम्य सौम्य ।

उत्तरायण मुख्यतः तुलसी का चरित है । "मानस" के कवि ने मानस-रचना के उपक्रम के रूप में राम कथा अति संक्षेप में बतलाई गई है जिसमें किसी भी घटना का विस्तार सम्भव नहीं है, परिणामतः भरत-चरित भी छोड़ा नहीं जा सका है । राम-वन-गमन के प्रसंग में भरत के चित्रकूट आने तथा राम की पादुकाओं को लेकर

------ अयोध्या को लौटने का उल्लेख किया गया है[1]। राम के समान तपस्वी वेष, जटाजूट धारण कर, पादुकाओं को सिंहासनासीन कर भरत ने नन्दिग्राम में निवास किया[2]। रावण-वध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने पर भरत-भेंट तथा राज-तिलक का उल्लेख किया गया है[3]।

एक अन्य स्थल पर सीता-परित्याग की आवश्यकता को सिद्ध करने हेतु तुलसीदास अपने मन में राम के सत्यव्रती होने का तर्क दे रहे हैं। पिता के सत्यव्रत का पालन करना आवश्यक है। राम प्रेमी तथा भक्त भाई का अयोध्या लौट चलने का अनुरोध सत्य-पालन हेतु अस्वीकार कर देते हैं। यहाँ कवि ने भरत की प्रभु-भक्ति की सराहना की है[4]।

इस काव्य में सीता-परित्याग की कथा को आदर्श एवं प्रक्षिप्त सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। परिणामतः सीता-राम का चरित्र तो किसी सीमा तक चित्रित हुआ है परन्तु राम कथा के अन्य पात्रों के चरित्र-चित्रण का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। फिर भी प्रसंगवश भरत का जो भी उल्लेख हुआ है, उसी उनकी प्रभु-भक्ति, प्रेम, त्याग तथा तपस्या की एक झलक मिल ही जाती है।

1- ये सुख से सुरपुर गये, भरत घर आये,
घर लिया शीघ्र वे जिस्कुट-जन आये ।।
सब भाँति राम घर लौट की तैयारी,
पुरजन, परिजन ने यत्न किए भारी ।
"प्रिय पिता सत्य पर थिरे, भई" प्रभु बोले,
उत्तरकाण्ड, सर्ग 7, पृ० 82 ।

2- पुष्पक-विमान पर बैठ अवधपुर आये,
जो भरत-भेंट की पुर में उत्सव छाये ।
फिर राम-तिलक का शुभ आयोजन,
दर्शित थे पुर के सभी वर्ग के जन-जन ।।
उत्तरकाण्ड, सप्तम सर्ग, पृ० 94 ।

3- ये दीन भरत गमगीन प्रेम में होते,
जब से सब सके न अश्रु आँख में रोके ।
बोले वे प्रभु से- " लौट चलो घर भाई ।
जननी कैकेयी स्वयं यहाँ है आई ।
लौटा लाने के हेतु कि राज्य सँभालो,
यह उलझ गई है ग्रंथि उसे सुलझा लो ।"
रघुपति बोले वे- " सुनो भरत जी भाई ।
सुनने जनमन की पीड़ा यहाँ भी धाई ।
पर तोड़ी, अपने पिता हमारे कारण,
सब प्राण कर सके सत्य-सौध-पुत धारण ।"
उत्तरकाण्ड, 8, 95 ।

4- ये नन्दिग्राम में जो भक्ति में लीन,
"मैं क्या पाऊँगा अवधपुरी को है ।"
सिर जटाजूट है, धनुष-बाण धारे हैं,
सिंहासन पर प्रभु-चरण-पादुकाएँ हैं ।।

उत्तरकाण्ड, सर्ग 7, पृ० 83 ।

अद्भुत-रामायण : परिष्कार : अद्भुत : रामावतार

" मिथिला" के कवि ने पुनः लगभग बीस वर्ष बाद राम के चिरवंदित चरणों में श्रद्धा के काव्य-सुमन अर्पित किए । " माधव पद्मः झा" ने राम-कथा को एक बार फिर सहृदय कवि की सरल भाषा में मुखरित होते देखा । लोगों के सम्मुख नए भाव में कर्तव्य, प्रेम और त्याग के आदर्श को जगा देने वाले आदर्श पुनः प्रकट हुए । सम्पूर्ण राम कथा को वाल्मीकि के आधार पर परन्तु तुलसी के साज में कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया और ग्रन्थ का नामकरण " अद्भुत-रामायण" किया । चिर-पुरातन कथानक को कवि ने अपने युग की आवश्यकता के अनुरूप नए संदर्भों देकर कुछ मौलिक नवीनता के साथ प्रस्तुत किया है ।

आज के युग के अनुरूप अद्भुत-रामायण के राम तथा भरत नीतिज्ञ के चरित्र उन्नायक हैं । वे आध्यात्मिक उद्धारक भी हैं । इस रामायण में भी राम के जन्म से पूर्व पुत्रेष्टि यज्ञ का उल्लेख हुआ है । अन्य आधुनिक काल के राम काव्यों के समान ही यहाँ भी कैकेयी भरत की अपेक्षा राम को अधिक प्रेम करती है ।

अद्भुत रामायण की कथा में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:-

1- कहीं-कहीं आयी घटनाओं का पुनर्भास दिया गया है । जैसे श्रीहरिरस बालक राम दशरथ का मुकुट उतार लेते हैं । कैकेयी जब उसे ठीक करना चाहती है तो भरत उसका हाथ पकड़ लेते हैं, मानों वे मुकुट पर राम का ही अधिकार समझते हों कैकेयी का नहीं[1] ।

2- राम का भरत के प्रति अगाध प्रेम है । जब भरत ननिहाल को जाते हैं तो राम को उनके बिना अच्छा नहीं लगता है और वे भी तीर्थाटन के लिए चल देते हैं । एक वर्ष बाद घर लौटने पर उनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो जाता है । यहाँ योग वासिष्ठ का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है[2] ।

3- महाराज दशरथ ऐक्य-राज्य की दृष्टि से राज्य के उत्तराधिकार सम्बन्धी अपने वचनों के विषय में कौसल्या को बता देते हैं तथा राम के राज्याभिषेक का निश्चय राज्य परिषद में करते हैं[3] ।

1-अद्भुत-रामायण, मिथिला ।
2- अद्भुत-रामायण, बालकाण्ड पृ0 12 ।
3- अद्भुत-रामायण, बालकाण्ड, पृ0 14 ।
4- अद्भुत-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 112 ।

4- सरयू स्नान को यहाँ मन्थरा को राम की सुमधुरी डाँटा मिलती है और दोनों राम को दण्डकारण्य भेजने के षड्यंत्र की नींव डालती हैं।

5- दशरथ की मृत्यु के पश्चात् अयोध्या आने पर जब भरत कैकेयी को फटकारते हैं तथा राज्य को अस्वीकार करते हैं तब कैकेयी भरत को मूर्ख समझती है[1]।

6- भरत के चित्रकूट आगमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण उत्तेजित हो उठते हैं, तब राम भरत की प्रशंसा करते हैं और लक्ष्मण को वन प्रस्थान हेतु कैकेयी के पक्ष पर कहते हैं। लक्ष्मण को रात्रि यहीं व्यतीत करनी पड़ती है तथा प्रातः भरत को साथ लेकर राम के आश्रम की ओर चलते हैं[2]।

7- राम से अयोध्या को लौट चलने का अनुरोध कैकेयी करती है[3]।

8- वशिष्ठ के स्थान पर जनक भरत को समझाते हैं कि " राम पुरुषोत्तम हैं वे सर्व शक्ति से पूर्ण हैं। उनकी वन्दना हम सब संसार के कल्याण हेतु सदा है। चित्रकूट की यात्रा के सम्बन्ध में न सोचो। राम के कार्य में तुम सहायक बनो। राम ही महाविष्णु एवं कामधुक हैं[4]।"

9- अशोक-वाटिका रावण की विज्ञान-शक्ति का केन्द्र है। रावण तांत्रिक एवं वैज्ञानिक है। वह सीता को उस महाशक्ति के रूप में पहचानता है जिसके उर में ज्योति-पुंज विद्यमान है[5]।

10- मंदोदरी तथा सीता के समक्ष वह डाँटता तथा धमकाता आता जाते वह राम-निर्वासित विकल अपने षड्यंत्र को स्वीकार करता है[6]।

11- सीता हरण का समाचार सुनकर चिन्तामग्न भरत सेना-गठन की अनुमति हेतु दूत को राम के पास भेजते हैं, परन्तु निर्वासित प्रभु ने सेना स्वीकार नहीं की[7]।

12- सागर पर सेतु-संरचना न होने वाले, इस विषय में रावण के वैज्ञानिक प्रयत्नों एवं तांत्रिक विफलता का कवि ने उल्लेख किया है[8]।

1- उक्त रामायण,अयोध्याकाण्ड, पृ0 245।

2- उक्त रामायण,अयोध्याकाण्ड, पृ0 287-89।

3- " " " पृ0 300-304।

4- " " " पृ0 317।

5- " " सुन्दरकाण्ड पृ0 447-450।

6- " " " पृ0 450।

7- " " " पृ0 478।

8- " " " पृ0 494-97।

13- राम के द्वारा अंगद को रावण को दूत कर अपनी ओर मिलाने का आदेश प्रदान करता है[1]।

14- राम शक्ति-पूजन करते हैं तथा प्रसन्न महादुर्गा द्वारा दिए गए बाण से रावण का वध करते हैं। यहाँ निराला की " राम की शक्ति पूजा" का प्रभाव द्रष्टव्य है[2]।

15- आठवें रावण के अन्तिम क्षणों में राम ने लक्ष्मण को उसके समीप भेजा। उस समय वह सीता-हरण विषयक अपने अपराध को स्वीकार करता है। वह रावणों विश्व-नायक तथा स्वर्ग की छत्र-नायक बताता है। मरते समय उसे राम का पुरुष-स्वरूप दिखाई देता है तथा वह उनसे शरण की याचना करता है[3]।

16- अयोध्या लौटने पर भी राम राज्य-शासन स्वीकार करने हेतु तैयार नहीं हैं। वे तपस्वी भरत के राज्य संचालन से बहुत प्रभावित हैं तथा स्वीकार करते हैं कि " भरत अवध का सुयोग्य राजा एवं लोक नायक है तथा श्रेष्ठ शासन प्रवीण है[4]।"

17- सीता के निर्णयानुसार राम को राज्य स्वीकार करना पड़ता है।

18- कवि ने सीता-निर्वासन तथा उनके भूमि-प्रवेश की कथा का भी वर्णन किया है।

अध्यात्म-रामायण में भरत का स्वरूप

<u>आधार तत्व-</u> अध्यात्म रामायण के कवि ने राम को परब्रह्म, पुराण-पुरुष विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया है। वे अनन्त आध्यात्मिक शक्ति के अधिपति हैं तथा उनके हृदय में ज्योतिपुञ्ज चमकता रहा है। सीता राम की पराशक्ति हैं, उनके हृदय में भी

1- अध्यात्म-रामायण लंकाकाण्ड, पृ0 411-12।
2- " " " पृ0 563।
3- वे स्वर्ग जा रहे हैं मुझ से मिलने लक्ष्मण।
लगता कि हार कर जीत गया मैं अपना रण
हे राम! पुरुष विष्णुरूप! हे सीतापति!
दीजिए शुभाशीष रावण को भी अब सद्गति
मैं देख रहा हूँ जो देखा कभी नहीं
हो गया धन्य मैं, हुई धन्य यह निशि मही।
मेरे कारण ही आप यहाँ आए अनाथ!
दीजिए शरण! दीजिए शरण! दीजिए शरण!
अध्यात्म-रामायण, लंकाकाण्ड पृ0 578।
4- अध्यात्म-रामायण,उत्तरकाण्ड, पृ0 612।

ज्योतिमंडल जगमग है। राम के विष्णुत्व तथा ब्रह्मत्व के रहस्य को वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भरद्वाज, वाल्मीकि तथा अगस्त्य आदि ऋषि जानते हैं। महाराज जनक तथा याज्ञवल्क्य भी रामावतार की बात जानते हैं। परशुराम को भी रामावतार का अनुभव पिनाक-भंग-विवाह के पश्चात् हुआ। भरत राम के ही समान शील-सौन्दर्यमय हैं। यद्यपि कवि ने उनके अवतार होने का उल्लेख किसी भी स्थल पर स्पष्ट रूप से नहीं किया है परन्तु अध्यात्म-विलास अथवा अन्तर्ज्योति-विलास में राम के बाद भरत का ही स्थान है।

(1-10) वशिष्ठ- श्री राम नहीं हैं कोई साधारण कुमार
है उनमें अमित शक्ति है उनमें बल अपार
बालकाण्ड, पृ० 21 ।

(2) विश्वामित्र- पुरुषोत्तम राम नहीं साधारण नर राजन् ।
राक्षस समूह से भी रक्षा कर सकता राम ।
बालकाण्ड, पृ० 10 ।

(3) भरद्वाज- नर शरीर में तुम अविनश्वर हे रामचन्द्र ।
मानव-शरीर में तुम ईश्वर हे रामचन्द्र ।
अयोध्याकाण्ड, पृ० 211 ।

(4) वाल्मीकि- तुम सा आदर्श पुत्र भू पर अवतरित नहीं
तुम सा कोई भी व्यक्ति धर्म आचरित नहीं
हे आचरित प्रभु ! भारत में आदर्श भरो
अपनी भावना से दानवता दूर करो ।
अयोध्याकाण्ड, 221 ।

(5) अत्रि- हे मर्यादा पुरुषोत्तम, हे अवतरित राम ।
अलौकिक शक्ति-युक्त सगुण लोक-लीला धाम
हे त्रिभुवनेश पुनीत सच्चिदानन्द राम ।
अरण्यकाण्ड, पृ० 325 ।

(6) अगस्त्य- हैं प्राण तुम्हारे, मात्र प्राण ही नहीं देव ।
हे भरत ! हे पुरुषोत्तम ! हे श्री विष्णु वीर ।
× × × ×
अरण्यकाण्ड, पृ० 346 ।

(7) जनक- दैवत्व सिद्धि से केवल तुम्हारे बन्धु राम
हे भरत तुम्हीं भी तो अपना है राम-नाम
× × × ×
हे भरत ! राम ही पुरुषोत्तम, यह स्मरण रखो ।
अयोध्याकाण्ड, पृ० 317 ।

चित्रकूट में भरत को देखकर जनक कुछ गंभीर हुए। भरत के त्यागानुराग के समक्ष उनकी गौण दृष्टि नगण्य है। भरत के विषय में जनक का अनुभव है- "

" जिसका-जुगा-सा शील का मूल प्रकाश
जैसा-प्रेम का अपूर्ण पावन समाज। "

शील-सौन्दर्य- शील-सौन्दर्य में भी भरत राम के समान ही हैं। दशरथ स्वयं स्वीकार करते हैं कि " हे राम-सदृश ही भव्य भरत की प्रेम-दृष्टि।" गुरु वशिष्ठ भी राम तथा भरत में रूप तथा शील का विशेष साम्य देखते हैं,- " दोनों ही पितु-वचन-पालक, कृतशील, स्वरूप में समान स्वरूपवपु, आकृति में सुन्दर समानता वाले हैं।" हाँ, राम सत्य स्वरूप हैं तो भरत प्रेमस्वरूप हैं।

प्रेमाय स्वरूप- कवि ने भरत के स्वरूप की परिभाषा भरद्वाज ऋषि के मुख से कराई है। उनके अनुसार भरत प्रेम का साकार रूप हैं। जो भरत को चाहता है उसको ही राम-तत्व प्राप्त होता है। भरत राम के हृदय हैं। वे प्रेम की महिमा की अभिव्यक्ति हैं। भरत के परम प्रेम-स्वरूप के सम्मुख ही तो भरद्वाज ऋषि की मति नम्रित है[2]। राम सत्य पुरुष हैं और भरत प्रेम-पुरुष हैं। सत्य अपनी आभा सहित निवासित है इसीलिए अयोध्या में

1- जिस मुख में राम-भरत, वह तो पुण्य-मन्दिर
निर्मल कर्म है रूप, रूप है जिसका निर्मल।
दोनों ही पितृवचन-पालक, हैं कृतशील
है स्वरूप भी तीनों पुण्य-समान नील
है राम-भरत-आकृति में भी सुन्दर समता
दोनों की एक दूसरे पर आस्था, ममता
अवध-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 256।

2- हे भरत! तुम्हीं हो राम-हृदय जिसमें प्रकाश
सज्जनता में ही तो करते हैं तो वास
तुम व्यक्ति नहीं, अभिव्यक्ति प्रेम की महिमा की
तुम आलोकित ओंकार हृदय की गरिमा की
जो तुम्हें चाहता मिलता उसको राम-तत्व
राम ही चाहो हैं कि भरत का क्या महत्व
साकार प्रेम! मेरा प्रणाम स्वीकार करो
है जहाँ वहीं रिक्तता हृदय में उसे भरो।
अवध-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 273।

विश्व विद्यालय पुस्तकालय काशी

शोक है। इस समय भरत का प्रेमालोक ही मार्गदर्शक है तथा उनका विवेक ही आशा की एक किरण है। प्रेम सदैव से ही त्याग का रहा है, इसीलिए प्रेम ने राज्य सिंहासन स्वीकार नहीं किया। शिव के समान भरत ने भी कैकेयी के वरदानों के कालकूट-विष को पिया है। भरत के मन-वचन-कर्म में समरसता है। उन्हें हृदय की सहज सिद्धि प्राप्त है। भरताश्रय के लिये वे पावन पुण्य प्रेम-पुरुष हैं।[1]

भरत का राम के प्रति तथा राम का भरत के प्रति प्रेम सम्पूर्ण काव्य में स्थान-स्थान पर प्रतिबिम्बित है। भरत ननिहाल गए तो राम का मन राजभवन में नहीं लगा। वे भी तीर्थ-स्नान को चल दिए।[2] राम ने धनुष तोड़कर अतुलित कीर्ति का वरण किया, तो भरत ने गौरव तथा गर्व का अनुभव किया।[3] राम की राज्याभिषेक के समय भरत की अनुपस्थिति अच्छी नहीं लगी।

1- जब तरत स्वयं निर्वासित निज आशा लेकर,
तब क्यों न अयोध्या बने शोक का दुःख-निकेत ?
हे भरत ! इस समय तुम्हीं प्रेम-आलोक एक,
निस्तरता आशा किरण तुम्हारा ही विवेक
प्रभु वहीं जहाँ पर प्रेम दिखाई पड़ता है
× × × ×
लेकिन हे प्रेम ! सदा से ही तुम त्याग का
सहृदयता के कारण तुम बनते नहीं कुश !
हे भरत प्रेम से तुमने जग को जीत लिया
शिव के समान तुमने भी तो विष पान किया
× × × ×
मन वचन कर्म में समरसता का सके तुम्हीं
हे राम तेरे अनुपम आज्ञा पा सके तुम्हीं !
× × × ×
सच कहता हूँ हे भरत ! आज मैं हुआ धन्य
तुम से उत्तम सुचि प्रेम-पुरुष है नहीं अन्य ! अयोध्याकाण्ड, पृ० 274 ।

2- रथ से ननिहाल गए कैकेयीसुत उस दिन
प्रिय बिछुड़न से राम के लिए दुखद पल-छिन
वाणी तीर्थाटन की इच्छा उनके मन में। बालकाण्ड, पृ० 14 ।

3- प्रिय भरत और शत्रुघ्न प्रातृ-द्वय से गर्वित
गुरुयुक्त वशिष्ठ राम की विजय से आनन्द मुदित।
बालकाण्ड, पृ० 87 ।

उनको रह रह कर भरत की ही याद आती रही[1]। राज्य के स्थान पर वन तथा भरत को राज्य मिलने पर राम को हर्ष ही है[2]। वे निरन्तर भरत के कल्याणार्थ मंगल कामना करती हैं[3]। वे वन जाने से पूर्व भरत से मिलना चाहती हैं[4]। उर्मिला लक्ष्मण को भी वे भरत के प्रति विनयशील बने रहने का आदेश देती हैं। वे यह भी चाहती हैं कि भरत का अभिषेक सर्वोत्तम विधि से हो। वे लक्ष्मण से भरत की प्रशंसा करते हुए कहती हैं कि भरत का मन निर्विकार है, वह बहुत सीधा और अतिशय उदार है। भरत

1- मन में सहृदय यह प्रश्न कि भरत नहीं है जो।
यह तो चमिलाल गया है प्रिय शत्रुघ्न-संग
फीका क्या नहीं लगेगा उसके बिना रंग ?
सुखराय यह कहूँ जो " वह न रहे। वह अनुचित -सा
कैसे प्रसन्न होऊँगा मैं उस पट को पा ?
अयोध्याकाण्ड, पृ० 112 ।

2- सुखमय प्रसन्नता व्याप्त राम मुख मण्डल पर
ज्यों प्रातः पद्म प्रस्फुटित अरुण निर्मल जल पर
× × × ×
भाई भूपति हो, इससे अच्छी बात नहीं
इस भू पर भरत-समान सुकुमार तात नहीं।
सुख ही सुख जिसमें वही भरत मेरा भाई
उसकी सम्पन्नता मेरे प्राणों पर छाई। अयोध्याकाण्ड, पृ० 168 ।

3-(क) प्रिय भाई के हित रहें सुरक्षित स्नेह सभी। अयोध्याकाण्ड, पृ० 171 ।
(ख) राम प्रजा से कहते हैं-
यह प्रेम सुरक्षित रहे भरत के लिए सदा
मेरे न बन्धु को कभी यहाँ कोई विपदा। अयोध्याकाण्ड, पृ० 192 ।

4- सुख है कि भरत से होगी इस क्षण भेंट नहीं
अकुलाएँगी आँखें सुधि में है बन्धु, यहीं।
× × × ×
वे वन आएँ तो निश्चय हमारा उन्हें कहो
" मिलने न दिया उस निष्ठुर काल ने भाई से
पूछे न कभी कारण वह अपनी माई से।"
× × × ×
अयोध्याकाण्ड, पृ० 178 ।

सारल्लीन हैं तथा प्रेम की साकार मूर्ति हैं[1]। कोसल की सीमा पर जन्म भूमि वन्दना करते समय भी राम भरत की सफलता की कामना करते हैं[2]। प्रयाग में भरद्वाज ऋषि से भी राम भरत के ही मंगलमय भविष्य की कामना करते हैं[3]। वाल्मीकि ऋषि से भी राम यह आशीर्वाद चाहते हैं कि " कपटाती भाई को भाई कभी न भूले। बन्धुत्व-प्रेम चिरन्तन सा ले बना रहे[4]।"

उधर गुरु का आदेश लेकर जब केकय में दूत पहुँचे तो भरत ने पूछा प्रश्न राम की कुशल के विषय में ही किया और फिर कुछ क्षणों तक वे राम के ध्यान में ही मग्न रहे[5]। अयोध्या पहुँचने पर भी उनका प्रथम प्रश्न पिता तथा भ्राता के विषय में ही था। पिता की मृत्यु सुनकर भरत मूर्छित हो गए। चेतना प्राप्त करने पर वे बार बार यही पूछते रहे कि " राम कहाँ हैं ? " राम के निर्वासन की बात सुनकर तो भरत मानों निष्प्राण ही हो गए। वे बालकों की भाँति विलाप कर रोने लगे, फिर मूर्छित हो गए। चेतना आने पर उन्होंने कैकेयी को बहु भर्त्सना की[6]। कैकेयी ने भरत के भगवान को जल कर दिया

1- प्रिय भरत बहुत कोमल, अतिशय वह है उदार
उनका उज्ज्वल अन्तर है सरसल। निर्विकार
× × × ×
पर भरत-भाव में सदा लीन, निकले प्रवाह
उनका विशाल अन्तर सागर- सा है अथाह
साकार प्रेम की मूर्ति भरत, वह बाट रहे
है भरत वही जो सत्य वचन ही सदा कहे।
अयोध्याकाण्ड, पृ0 179।

2- दो आशीर्वाद जननि, कि भरत हो कार्य-सफल
भूले न कभी भी सहृदया का सहज-बल।
अयोध्याकाण्ड, पृ0 195।

3- " हैं आशीर्वाद महर्षि कि वाञ्छा पूरी हो
सह-शील-सुन्दर में नहीं सभ्यता दूरी हो
प्रिय भरत रहें सब विधि प्रसन्न निज जीवन में
प्रतिबिम्बित हो यह मेरे मन के दर्पण में।"
अयोध्याकाण्ड, पृ0 213।

4- अलम रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 222।

5- भाई का पहला प्रश्न कि कैसे हैं भाई।
नयनों में प्रेम-सुधा सरसाती आई।
कुछ क्षण तक कोमल भरत, राम-सुधि में तन्मय
उभरी पर स्मृति-भूकम्प, हृदय में उमड़ी लय।
अयोध्याकाण्ड, पृ0 237।

6- अयोध्याकाण्ड, पृ0 242-245।

था, अतः वहाँ न रोता 2 राम का निष्कासन भरत को घोरतम अन्याय प्रतीत हुआ। उन्हें आश्चर्य और दुःख इस बात का था कि कैकेयी माँ होकर भी यह नहीं जान पाई कि " भरत राम का भक्त है तथा राम के चरणों में ही अनुरक्त है। " कैकेयी ने अपनी नीचमता से भरत के निर्मल यश को कलंकित कर दिया। भरत का मन ग्लानि से भर गया। कैकेयी का कार्य न्याय, धर्म तथा मानवता के प्रतिकूल था। भरत इस अन्याय को कैसे सहन करते 2 कैकेयी पहिले तो उनको भावुक मूर्ख समझती रही परन्तु बाद में वह भरत की कर्तव्यता एवं प्रेम से प्रभावित हुई।[1] भरत की उज्ज्वलता में उसे अपने कृत्य की कालिमा स्पष्ट दिखाई देने लगी और उसका मन सन्ताप, ग्लानि तथा पश्चात्ताप से भर उठा। भरत के प्रेम ने माता को विवेक-ज्योति प्रदान कर उसका कलंक धो दिया।

भरत के लिए राम भगवान हैं, सर्वस्व हैं तथा सीता भगवती स्वरूपा हैं। भरत तो आशु-साधना के विलक्षण परिणाम हैं। कौसल्या ने भरत को समझाया कि राम और भरत में कोई अन्तर नहीं है। दोनों के हृदय एक डाल पर खिले हुए दो पुष्पों के समान हैं। जहाँ भरत हैं, वहाँ राम हैं, यह ध्रुव-सत्य है।[2] भरत का अतुल राम प्रेम ही उनके विवेक की चाबुक रखता है तथा कैकेयी के समक्ष ही यह निर्णय करा देता है कि इस शोक-समस्या का निदान राम को वन से लौटा लाना ही है।

<u>भरत की भक्ति भावना-</u> भरत की भक्ति इतनी विलक्षण है कि वे ध्यान अथवा बुद्धि-सिद्धि के द्वारा राम के वन तक पहुँच सकते हैं। भरत प्रेमा भक्ति के सर्वोच्च सोपान पर आरूढ़ हैं। बुद्धि-सिद्ध, प्रेम के कारण उनके लिए प्रियतम से प्रतिक्षिप्त मिलन सम्भव है। कौसल्या से बात करते हुए भरत राम में ही इतने तल्लीन हो गए कि वे कुछ क्षणों के लिए विदेह से प्रतीत हुए। माताओं को लगा कि वे निष्प्राण हैं। सब और हाहाकार मच गया। परन्तु इतनी परिष्कृत इस स्थिति को समझ गए। वे जानते थे कि भरत इस समय

1- अयोध्याकाण्ड, पृ0 245।

2- भगवान भरत के लिए राम सब कुछ थे ही
भगवती-स्वरूपा पूज्य सदा से सीता
आशुरूप-साधना का विलक्षण परिणाम भरत
जो प्रतिपल सुमरत राम का नाम भरत।

अयोध्याकाण्ड, पृ0 248।

3- है वहाँ भरत, है वहाँ राम, यह सत्य अटल
है एक तुला पर खिले हुए दो पुष्प धवल।

अयोध्याकाण्ड, पृ0 251।

राम की दिव्यात्मा के सम्पर्क में हैं। उनके अन्तर्मन में इस समय मिलन वेला एवं महान आनन्द है।[1]

पिता की अन्त्येष्टि के पश्चात् सचिव ने, गुरु ने तथा कौसल्या माता ने- सभी ने भरत को राज्याभिषिक्त करना चाहा, परन्तु भरत को अन्यायपूर्वक मिला हुआ राज्य स्वीकार्य नहीं है। उनके विचार से राज्य तो श्रीराम का है; वे उनके मुकुट के भार को ढोने में असमर्थ हैं। राज्य तथा राम-प्रेम में से लोग सरीखे है- इस बात का विवेकपूर्ण निर्णय भरत के लिए महत्वपूर्ण है।[2] निर्णय सर्वोत्तम के पक्ष में ही हुआ। अब भरत सेनेत सहित राम को मनाने जाने हेतु व्यग्र हैं। भरत को राम के दर्शन से ही आत्म शान्ति सम्भव है।[3] भरत को राम के प्रेम, सरलता तथा आत्मीयता में अगाध विश्वास है। उनका विश्वास है कि बिना कहे ही राम हृदय की वाणी को सुन लेते हैं। अतः वे गुरु वशिष्ठ से अपने दिल

1- निष्प्राण भरत ! रे, नहीं नहीं, निष्प्राण नहीं !
टूटा है अवलम्ब रिक्ति का प्रिय-ध्यान नहीं
हो गई देह श्रीराम स्मरण से ही पवित्र
सुआत्मा की दिव्यात्मा से अति घना स्नेह !
बोले वशिष्ठ विश्वास सहित औचित्य सन में
आलोकित उनका मन इनके उज्ज्वल मन में
सुदृढ़-निष्ठ प्रेम के कारण प्रिय प्रतिबिम्ब-मिलन
अन्तर्मन में वेला-मिलन आनन्द महान !
अयोध्याकाण्ड, पृ0 254 ।

2- है एक ओर साधन, आराधन एक ओर
× × × ×
है एक ओर प्रभु-प्रेम, पुरातन एक ओर
है एक ओर रघुवर, सिंहासन एक ओर !
× × × ×
है एक ओर विश्वास, मोह है एक ओर
है एक ओर आशा, विरोध है एक ओर !
है एक ओर उत्तम, सर्वोत्तम एक ओर
अयोध्याकाण्ड, पृ0 259 ।

3- जो लगा हुआ है उधर, उधर देखूँ कैसे
लगता है प्रातः ही मुझको कैसे-कैसे
है आत्मशान्ति सम्भव प्रभु के ही दर्शन से
वाणी है सुधा मुझे उनके उर लोचन से !
अयोध्याकाण्ड, पृ0 264 ।

ही जाने हेतु आज्ञा मांगी है। उनका प्रस्ताव है कि जो भी लोग उनके साथ चित्रकूट जाना चाहें चलें। प्रातः काल ही भरत ने गुरु, सचिव, माताओं तथा सेना सहित चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया। वे वन में ही राम का राजतिलक कराना चाहते हैं।

भरत को जो भी [illegible]थिति देखता है वही उनके प्रेम-रस में सिक्त हो उनकी सराहना करने लगता है। भरत का राम प्रेम तथा उनकी अटूट-भक्ति सर्वथा वन्दनीय है। कुटुम्ब के लिए सम्कट निवारक राम उनकी राम-भक्ति देखकर मुग्धभाव से उनकी वन्दना करता है[1]। भरतजी उनके राम-प्रेम की प्रशंसा करते नहीं अघाते हैं। वे तो भरत को साकार प्रेम की मूर्ति ही मानते हैं[2]। भरत ने अपने चित्रकूट वन की व्यथा उनसे किसी सार्थक शब्दों में व्यक्त की है-

" प्रभु राम बिना पुलकित शरीर हो रहता है,
लगती न भूख, आती न नींद, होती न ज्वर,
मेरे मन में उठती न कभी आनन्द-लहर "

भरत के मन की कल्पना यह थी सहन करें कि उनके आराध्य अकेले भूमि, वल्कल धारण कर, फलाहार कर वन में रहें। सुकोमल सीता और लक्ष्मणवाली हों, यह कैसे सहा जाये? वे वहाँ भूमि के नीचे कुश शैय्या पर सोयें। कौशेय दुःख ही दुःख सहन करें? यह सब भरत के होते हुए हो रहा है, अतः भरत का मन ग्लानि तथा कल्मषपूरित है[3]। भरत का अनुपम प्रेम, त्याग तथा कल्पना देखकर ही भरतजी को उनकी " तापस-सी" की उपाधि देती है। वे उन्हें पितृ-कर्तव्य-भाव का आदर्श बनने का श्रेय भरत के भ्रातृत्व-हेतु की रक्षा का आशीर्वाद देती है[4]।

1-अध्यात्म-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 268-73।
2- " " " पृ0 274।
3- पादुका-रहित वल्कलधारी फल-आहारी-
है देव! राम-सीता-लक्ष्मण भी वनचारी?
भूमि के नीचे भूमि-कक्ष कुश-शैय्या पर?
× × × ×
मेरे कारण वन में सीता,- वन में भाई
राज्याभिषेक हो गया स्थगित मेरे कारण
तीरथ हो गया शोक चकित मेरे कारण
× × × ×
मैं दुःख-कर्ता, मैं पाप हेतु, मैं तप-मार्ग अध्यात्मरामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 275
4- तापस-सी! हो सफल तुम्हारी है राम-कार्य
तुम करो सदा उनकी आज्ञा को शिरोधार्य
तुम करो पितृ-कर्तव्य-भाव के शिक्षा-हेतु
तुमको रक्षित हो भरत का भ्रातृत्व-हेतु! अयोध्याकाण्ड, पृ0 276।

भरत की मनः स्थिति का वर्णन इन पंक्तियों में देखिए-

तीजी-तीजी कैकेयीनन्दन जपी
आरती-दीप की भाँति प्राण-मन भी जपी
प्रभु की स्मृति-पूजा से पुलकित पावन-शरीर
नयनों से झरता कभी कभी आनन्द-नीर ।
इस ओर राम, उस ओर राम, हर ओर राम
सुधि के अपनी-अम्बर में देख राम-नाम
हो गया राजमय चित्रकूट, स्थिति अब ऐसी
अन्तर्मन्थन जीवित स्वयं भक्ति जैसी ।

सेना सहित कैकेयी के साथ भरत के चित्रकूट आने की सूचना से लक्ष्मण का मन शंका से उद्वेलित है । वे युद्ध के लिए तैयार हैं परन्तु राम तो भरत के मन की, उसके हृदय की पहचानते हैं । वे लक्ष्मण को स्पष्ट बताते हैं कि " अज्ञानी भाई ही भाई से लड़ता है- कारण अज्ञानजन्य भय होता है । भरत के समान भाई तो संसार में दुर्लभ है । जिस घर में भरत जैसा भाई हो वहाँ प्रेम-दीप जलता ही रहता है । भरत में गुण ही गुण हैं ।" भरत को पाकर राम स्वयं को धन्य समझते हैं । राम ने उसी समय लक्ष्मण को कैकेयी की सेवा में जल और फल भेजा । अयोध्या के इस शिविर को देखकर लक्ष्मण का मन कल्मषपूरित हो उठा । कैकेयी के पुत्र-स्नेह से कठिनाई से मुक्त होकर ही वे प्रातःकाल राम की सेवा में उपस्थित हो सके । प्रभु ने लक्ष्मण को भी भरत के राम-प्रेम के दर्शन करा दिए ।

भरत का चित्रकूट में राम से मिलन प्रेम की परम सिद्धि का स्वरूप है । भरत सब कुछ भूल कर राम के चरणों पर पड़े हैं और राम अपने शरीर की भी सुध-बुध भुला कर भरत को हृदय से लगा रहे हैं । प्राणों से प्राण और हृदय से हृदय मिल गया । दोनों कुछ देर तक प्रेम की समाधि में लीन रहे । दोनों के मन एक दूसरे के मन में समाए हुए थे । यह अभूतपूर्व मिलन

- -

1- जिस घर में एक भरत, उस घर में प्रेम-दीप
जिसका है जिसी-जिसी गुण की ही उर-समीप
गुण ही गुण जिसमें सही भरत सुधि सीमाम
कौन कहे सुनहीं कि भरत जिसका महान
अति भाग्यवान था, जिसे भरत-सा बन्धु मिला
जिस कुल में एक भरत उसमें सुन्दरेन्दु खिला ।

अयोध्याकाण्ड, पृ0 291 ।

दुख था। किसी कवि ने ऐसा मिलन इससे पूर्व कभी नहीं देखा था। अब दोनों की आत्मा की गहराई में आनन्द नाद हो रहा था। इस समय वे हर्ष-विषाद से बहुत ऊपर थे।

गुरु वसिष्ठ भरत के राम-प्रेम तथा राम-विरह-जन्य भरत की अन्तर्व्यथा से बहुत प्रभावित हैं। वे उस आनन्द-मिलन के समय भी आत्म-विलोप को देख रहे हैं। वसिष्ठ का यह कथन कवि की भाषा में ही श्रवणीय है,-

है राम! भरत के प्राणों में है अकथ व्यथा
बुधिजीवी कर देती मन की उसकी आत्म-कथा
दुख ही दुख जिसमें व्याप्त उसी का नाम भरत
अन्तुल्य साधना ही है उसका जीवन-व्रत

× × × ×

साकार हृदय की मूर्ति यही है, यही एक
आपूरण-भावना से विभोर उसका विवेक
जिस क्षण कानों ने सुनी जननि की दुष्टि-कथा,
मर गई प्राण में तुरत व्यथा ही व्यथा-व्यथा।
स्वीकारा उसने नहीं राज्य-सिंहासन राम!
उसके मत से उस पर न भरत-अधिकार राम!

विशिष्ठ को भरत के प्रेम से विवश होकर ही सब के साथ और सब के निर्णयानुसार राम को लौटाने हेतु आना पड़ा। भरत की आत्म-भक्ति सब को ही अपने वश में कर लेती है। राम को भी अपना निर्णय भरत के समक्ष ही बदलना

- -

1- सुधिहीन रहे कुछ क्षण तक प्रेम विभोर भरत
सहसा समाधि से भावना में दिव्य क्रान्ति
मिट गई आत्म-विस्मृति-भरी मन-मंदिर-भ्रान्ति।

× × × ×

उठ उठे राम होकर अधीर, फिर बढ़ा तीर
फिर बढ़ी मन-तरंग, झलका ज्वारित अंतर

× × × ×

सह मन प्राण से प्राण, हृदय से हृदय तुरत
बाहों में बँध रहे दोनों-प्रिय राम-भरत।
दोनों की प्रेम-समाधि देख, निर्वाक सभी

अयोध्याकाण्ड, पृ० 295।

होगा[1]। राम ने भरी सभा में भरत की सराहना तथा उनके भ्रातृत्व-भाव की सराहना की। राम को भरत का ही निर्णय मान्य है[2]। परन्तु भरत क्या कहें? वे तो राम के सामने अभी भी मर्यादापूर्ण बोले ही नहीं थे[3]। वे कुछ न बोल सके। केवल आँसू ही आँसू बहते रहे। राम ने भाई को अपने पास बैठा कर अपने कर से उनके आँसुओं को पोंछा। सभा उस भ्रातृ-प्रेम को देखकर पुलकित हो उठी[4]। कैकेयी ने भी अपनी ग्लानि और पश्चाताप व्यक्त करते हुए राम से अयोध्या को लौट चलने का आग्रह किया। राम ने पुनः सम्पूर्ण निर्णय भरत पर छोड़ दिया। राम को भरत पर कितना अगाध विश्वास है! लगता है कि सत्य से कितना सुन्दर श्रेष्ठ है। भरत ने अपने हृदय की व्यथा राम के सम्मुख पुनः उँडेल दी। उनके प्रेम ने पुनः सर्वत्र समर्पण कर दिया। रामको लौटा ले चलने का अपना सक्रिय अनुरोध प्रस्तुत किया। फिर भी जो कुछ राम कहेंगे वही भरत की स्वीकार्य होगा[5]। राम विचार कर रहे हैं कि क्या करें। इसी समय महाराज जनक के आगमन की सूचना के साथ सभा-विसर्जित हो गई।

जनक ने भरत को समझाया कि पुरुषोत्तम राम को उनकी लीला करने दें। भरत को राम की आज्ञा का पालन करना ही उचित है। उन्हें अपने भाई को ही नहीं पुरुषोत्तम को भी पहचानना चाहिए। उन्हें राम-कार्य करना है अतः उसके लिए मौन-

- -

1- बोले वशिष्ठ " हे तात! भरत में भ्रातृ-भक्ति
तब की यह मैं कर लेती है पुत्र-प्रेम-भक्ति
× × × ×
आज ही विशाल सभा में हो कोई निश्चय
करना है भरत-समक्ष तुम्हें अन्तिम निर्णय
अयोध्याकाण्ड, पृ० 298।

2- जनक-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ० 299।

3- जो कभी नहीं कुछ बोल सका, वह क्या बोले
जिसका उर आर पार हुआ ही है, वह क्या बोले
अयोध्याकाण्ड, पृ० 300।

4- भाई ने अपने निकट भरत को बैठाया
कोमल हाथों ने कोमल तन को सहलाया
वह देख, शान्ति का यहाँ सभा में सभी ओर
सच्चिदानन्द-मय देख, प्राण-मय हुए भोर।
अयोध्याकाण्ड, पृ० 300।

5- जनक-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ० 309-10।

रक्षित होकर तापर रहना चाहिए। विश्वामित्र की लघुता के बन्धन में बाँधना उचित नहीं है। उन्होंने भरत को बताया कि राम महाविष्णु, जगद्गुरु, परमात्मा हैं। वे वनवास-दण्ड स्वयं ही भोग रहे हैं। राजर्षि जनक की योगदृष्टि से भरत के नेत्र खुल गए। मोह नष्ट हुआ।[1]

इस बार सभा में भरत सत्य, धर्म-निष्ठ, आज्ञा पालक हैं। राम का निर्णय सर्वमान्य है। भरत राम के आदेश से अब राम-राज्य का संचालन करेंगे। अब राजसिंहासन "सत्ता के सूर्य-सा" सुशोभित होगा। भरत में कल्प-वृक्ष के समान सत्ता का विकास होगा। प्रेम से संचालित सम्पदाएँ शासन में ही पूर्ण न्याय सम्भव हो सकता है। इस राम-मंत्र को राम की पावन चरण पादुकाओं के साथ ग्रहण कर भरत अयोध्या की ओर गए।[2]

<u>पुरुष पहुना-</u> इस पुरुष के भरत की दूसरी विशेषता "राम-मंत्र" के आधार पर राज्य संचालन है। इस आदर्श-राज्य-संचालन का संकल्प उन्होंने चित्रकूट में ही ले लिया था।[3] भरत के शासन-काल में राम राज्य के सिद्धान्त पुष्पित और पल्लवित हुए। सत्य और प्रेम तथा सत्ता का विकास हुआ। दैव वृष्टि तथा सिद्धि से परिपूर्ण हुआ। कहीं कोई दुःख, कष्ट या संताप नहीं रहा। चौदह वर्षों की भरत की तपस्या ने कोशल राज्य के गाँवों तथा नगरों को समृद्धि, सुख तथा नैतिकता पूर्ण धर्म की प्रभा से आलोकित कर दिया।[4]

- -

1- अवध-रामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 315-18।
2- " " " पृ0 318-322।
3- करना है राम रहित राज्य का संचालन
करना है उनकी आज्ञा का विधिवत् पालन
चौदह वर्षों तक होगा भरत-वियोग एक
होगा जन-जन में उनका शासन-विवेक
राम की चरण-पादुका रहेगी गद्दी पर
फूलेगा उसी दिव्य-प्रेरणा का शिर
अयोध्याकाण्ड, पृ0 321।
4- भाई की इच्छा पूरी कर दी भाई ने
रक्षित कर दिया सभी को सुख-सच्चाई ने।
खिल उठी अयोध्यानगरी प्रिय सरयू-तट पर
सुन्दर पहिले से थी, अब और अधिक सुन्दर
उत्तरकाण्ड, पृ0 401।

कवि ने भरत द्वारा सुशासित राम राज्य का वर्णन पूरे आठ पृष्ठों में किया है।[1] अयोध्या को लौट कर आने के पश्चात् राम ने पाँच दिन तक धूम-धाम कर भरत से सुशासित राज्य का परिचय लिया।

भरत की धीर तपस्या के परिणाम स्वरूप सभी और समता का विकास हुआ था। बिना राजा का शासन-संचालन सराहनीय था।[2] राम ने भरत के शासन संचालन की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उनकी दृष्टि में भरत से उत्तम शासन संचालन कोई भी नहीं कर सकता है।[3] इसीलिए वे राज्य सिंहासन प्राप्त करना नहीं चाहते, अपना राज्याभिषेक नहीं चाहते हैं।[4] उनका स्वप्न तो भरत ने साकार कर ही दिया है।[5]

भरत का न्याय तथा विवेक क्या के अन्त तक उनके साथ है। लोकरंजनार्थ मिथ्यापवाद के आधार पर सीता-निर्वासन सम्बन्धी राम के निर्णय से वे खिन्न हैं। उन्होंने राम से स्पष्ट ही कह दिया कि, " आपकी मधु-वाणी से हृदय-विदीर्ण हो गया है। परम-पावन जानकी का शोक तो कौन सहेगी। आप मिथ्या शोक के लिए शोक न करें।"[6]

भरत के पावन चरित्र का अवतार तो विवेक के इन शब्दों में सारा विश्व ही करेगा-

> हे भरत! तुम्हारा त्याग धन्य, -
> अग्रज के प्रति निश्चल सुन्दर अनुराग धन्य
> अब तक तुमने जो किया, अग्रज का उदाहरण
> है भविष्य मन्थ से भरा तुम्हारा प्रेम-सुमन।
> राम सत्य हैं और भरत जिन सुन्दर हैं।
> उनका शासन सत्य किंतु सुन्दरतम है।

1- उत्तर-रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ0 595-602।
2- " अयोध्याकाण्ड, पृ0 611।
3- आने जो कुछ भी किया, वही कर सकता था
  ज्ञानी व्यापक जन-जीवन वही भर सकता था।
  है वही लोक-नायक राजा का मुकुटमणि
  नव अवध राज्य में वही श्रेष्ठ शासन-प्रवीण
  नव-युग का नेता वही, वही नवयुग-द्रष्टा
  इस पृथ्वी पर था, वही सत्य शासन स्रष्टा। उत्तरकाण्ड, पृ0 612।
4- उत्तर-रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ0 613।
5- मैं सपने को उसने ही साकार किया
  उसने ही सत्ता से शासन-उद्धार किया। उत्तरकाण्ड, पृ0 623।
6- उत्तर-रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ0 623।

राम- महाकाव्य

" राम" महाकाव्य की रचना श्री रामचन्द्र आचार्य ने सन् 1970 से 1974 तक की अवधि में की । स्मरणीय है कि वर्ष 1974 में गान्धी-शताब्दी मनाई गयी थी । इस काव्य को पुस्तकाकार देकर सन् 1974 में प्रकाशित किया गया था ।

यह काव्य मुख्यतः वाल्मीकि रामायण पर आधारित है । परन्तु रामचरित-मानस का प्रभाव भी स्पष्ट है । राम के विष्णु का अवतार होने की ओर संकेत कहीं-कहीं उपलब्ध हैं परन्तु स्पष्ट उल्लेख नहीं हैं । जन्म से लेकर विवाह तक की कथा परम्परागत ही है । विशेषता यह है कि राम महाकाव्य में विश्वामित्र बार-बार राम की सुन्दर सराहकर उनके मन में दानव-दलन एवं अत्याचार-शमन का उत्कट संकल्प भर देते हैं ।

ननिहाल जाते समय भरत एवं शत्रुघ्न के साथ उनकी पत्नियाँ भी नहीं थीं । राजा दशरथ ने कैकेयी के पिता को विवाह के समय वचन दिया था कि कैकेयी का पुत्र ही राज पद प्राप्त करेगा । इस बात का पता किसी को भी नहीं था- कैकेयी को भी नहीं । राजा दशरथ के मत में राम भरत की अपेक्षा अधिक योग्य बालक सिद्ध होंगे । देश की उन्नति के लिए राम को राजा बनाना आवश्यक है । गुरु वशिष्ठ तथा राज सभा से महाराज दशरथ ने राम के राज्याभिषेक सम्बन्धी अपने प्रस्ताव का अनुमोदन प्राप्त कर लिया । राम वनवास का केवल पूर्वार्ध परम्परागत है ।

1- गुरु की वशिष्ठ ने यह भी था कहा-, " राम ! तुम रमो भुवन में,
तुम न अयोध्या की सीमा में बँधो, रहो पीड़ित जन-जन में ।
मुक्त करो धरती दुष्टों से, संकट से मानव-जीवन में,
मेरी बातें कुछ न जानना केवल राज्य के सिंहासन में ।
राम महाकाव्य, बालकाण्ड, पृ0 21 ।

2- मैंने तो था दिया वचन, प्रिय कैकेयी के पिता मानो
भी भी जाँ कैकेयी माटी की उसे आज भी सत्य मानो ।
हम दोनों के बीच जाँ का पता नहीं है किसी अन्य को,
कैकेयी भी नहीं मानती माटी की उस जाँ रम्य को ।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ0 28 ।

3- शिशु राम की सुरक्षा में क्या भरत पुत्र को पाल सकेगा ?
उन्नति के अनुपम साधि में अवधपुरी को डाल सकेगा ?
नहीं-नहीं, यह अनुमानी है देश नहीं हैं राजा राम,
सिर्फ देश के लिए सुनिश्चित वचन-बंध का मैं अंजाम ।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ0 28 ।

कवि ने दशरथ मरण, भरत द्वारा कैकेयी की भर्त्सना आदि न दिखाकर भरत को सीधे चित्रकूट पहुँचा दिया है। सेना द्वारा उड़ाई गई धूलि को देख कर लक्ष्मण ने पुष्प पर चढ़ कर देखा कि अयोध्या की विशाल वाहिनी पंक्ति पर चढ़ रही है। उसमें महिलाएँ भी हैं और छत्रहित सुसज्जित हाथी। लक्ष्मण को अयोध्या की सेना की चिन्ता हुई और वे पुष्प से उतरे। यहाँ लक्ष्मण के मन में भरत के विरुद्ध कोई शंका उत्पन्न नहीं हुई और न उन्होंने भरत के विषय में अन्य ग्रन्थों के समान कटु शब्द ही कहे।

चिंतित राम और लक्ष्मण उसी ओर दौड़ पड़े। आते में ही उन्हें "सेना-सेना" की कलध्वनि सुन पड़ी और सामने भरत थे। दोनों भाइयों का मिलन परम्परानुसार अनिर्वचनीय है[1]। पिता का मरण सुनकर राम को अत्यन्त शोक हुआ और वे रो पड़े। विमाता माताओं को देखकर उन्हें और भी दुख हुआ।

भरत मुकुट को कमल भारण किए हुए देखकर राम आश्चर्यचकित हैं। वे सोच रहे हैं विधाता ने दोनों को लक्ष्मण बना कर तो राज्य देते होगा[2]। रामराज्य का विचार रहे कि वे अयोध्यावासियों को लौटा वापिस लौटें। पुनः सभा जुड़ी। अपराधी से भरत सभा के बीच खड़े हुए ; बोले, "मैं बिलकुल नीच हूँ। आपने राज्य त्यागा, पिता ने प्राण और मैं राज्य अनुरागी कुछ न त्याग पाया। मेरी बुद्धि मुझ से कहती है कि पहिले राम बनो, फिर राज्य करो। मेरा सुख मुझे राम बना दो। यदि आप सेवा नहीं कर पाये तो मैं अनशन कर प्राण त्याग दूँगा"। फिर कैकेयी ने राम से अयोध्या लौट चलने का अनुरोध किया। कहा कि "महाराज की भाँति भरत भी जब "राम राम" की रट लगा देता है तो उसका जीवन भी तेज में प्रतीत होने लगता है। हे राम ! उसको रामराज्य बना दो, वह वियोग से विक्षिप्त सा हो गया है"। राम असमंजस में पड़ गए। वे पल भर में भरत को रामराज्य देने वाले हैं।

- -

1-कहा कि दोनों मुख वाणी भाव-सिन्धु में अपने आप,
इसीलिए तो अमर हुआ है रामबन्धु का भरत-मिलाप।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 57 ।

2- राम के साथ लक्ष्मण बन जायेंगे तब देते राज्य होगा।
राजा बिना प्रजा का जीवन बिना छाया में कहाँ पलेगा।।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 58 ।

3- भरत राम देते बन जाये ; सायत देव संकेत नहीं है,
मुझे रामराज्य कर दो, भैया ! अन्य सूत्र में राम नहीं है।
यदि न आप सेवा कर पाये, अनशन व्रत यह भरत करेगा,
चित्रकूट की इसी भूमि पर अवधपुरी का पाप मरेगा।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 60 ।

उन्होंने वशिष्ठ से उपाय पूछा । वशिष्ठ का उत्तर था कि, " एक दृष्टि की सिद्धि, एक दिवस की सूर्य तथा एक रथ कल की घड़ी को ईश्वर ही बना सकता है । अन्यथा भरत को राम बनाना सम्भव नहीं है । अतः भरत को अपनी खड़ाऊँ दे दो । इस सम्मान को लिए रामानुरागी भरत अयोध्या को लौट जायेगा ।" राम ने खड़ाऊँ दे दिए और भरत ने उनकी शिरोधार्य किया । उन्होंने राम से कहा कि," यदि चौदह वर्षों की अवधि पूर्ण होने पर आप अवश्य नहीं आए तो मैं आत्मदाह कर लूँगा ।" राम ने दण्डकारण्य को प्रस्थान किया । इसके पश्चात् सीता हरण तक की कथा परम्परागत रूप से ही प्रस्तुत की गई है । राम के वन से लौटने तथा भरत की तपस्या एवं कर्मठता की कथा भी परम्परागत है तथा वाल्मीकि रामायण पर आधृत है । तत्पश्चात् राम के राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन है ।

कवि ने राम को सम्पूर्ण पृथ्वी के राजपद पर अभिषिक्त कराया है । रामभूमि की स्थापना हुई । पृथ्वी के सभी कवि और सभी राजा वन में जाकर राम को वापस ले आकर राजा बना दिया । राज्याभिषेक का उत्सव सब ओर छा गया । जयध्वनि धरती और आकाश में छा गई ।

राम महाकाव्य में भरत

राम काव्य में भरत का चरित्र परम्परागत रूप में ही चित्रित किया गया है । उसका विस्तार कवि ने बहुत कम किया है। परम्परागत भरत के चरित्र का उत्कर्ष इस काव्य में नहीं है । इस काव्य में दृष्टव्य कुछ चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है,-

(1) महाराज दशरथ पुत्रों में राम को भरत से बहुत श्रेष्ठ समझते हैं । वे दोनों की तुलना करते हुए कहते हैं,-

---

1- पूज्य खड़ाऊँ माथे पर रख लौटे भरत- हमारे राम ।
चौदह वर्ष बिता कर भी यदि आये नहीं अयोध्याधाम-
तो खड़ाऊँ के सम्मुख मैं आत्मदाह कर लूँगा निश्चय
आज प्रतिज्ञा करता हूँ मैं ईश्वर की साक्षी कर निर्भय ।
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ0 61 ।

2- " कल के राज्याभिषेक के अवसर राम की जय हो । जय हो ।"
जय ध्वनि से गूँजी यह धरती " राम राज्य युग युग अक्षय हो ।"
राम महाकाव्य, उत्तरकाण्ड, पृ0 170 ।

" सिंधु राम की तुलना में क्या भरत पृथ्वी को पाल सकेगा ?
उन्नति के अनुपम साधे में अवधपुरी को डाल सकेगा ?"

स्पष्ट रूप से भरत के सुशासन में दशरथ को विश्वास नहीं है । वे भरत को राज्य न देकर वे राम को राज्य देना चाहते हैं यद्यपि उन्होंने कैकेयी के पिता से भरत को ही राज्य देने का वचन दिया था । अब सत्यवादी दशरथ देश के सुशासन के लिए में अपने वचन को भंग करने को उद्यत हैं,-

" नहीं, नहीं, यह अनुभागी है देश यहाँ हो राजा राम ।
सिर्फ देश के लिए सहूँगा, वचन-भंग का मैं अंजाम ।

उन्हें भरत के विवेक तथा दृढ़ निश्चय पर भी विश्वास नहीं है । यद्यपि भरत भाई का भक्त है फिर भी वे उसके चित्त के चंचल होकर राममयी हो जाने की शंका को राम के सामने प्रकट करते हैं । उन्हें यह भी सीख है कि भरत के मामा, नाना उसको न जाने क्या क्या सिखा पढ़ा रहे होंगे ।

(2) गुरु वशिष्ठ भी राम की तुलना में भरत को बहुत छोटा समझते हैं । भरत को भरत को राजपद पाने की प्रार्थना पर गुरु वशिष्ठ कहते हैं कि," विष्णु को दूर, यह सिंधु को सागर तथा रवि को पतंग बना देने का सामर्थ्य तो ईश्वर में ही है ।" अर्थात् उनके अनुसार यदि राम सूर्य हैं तो भरत किरण, यदि राम सागर हैं तो भरत बूँद और यदि राम पर्वत हैं तो भरत रजकण । राम को अवतार मानने वाले कुलगुरु ने भरत को भी ईश्वरावतार माना है तथा भरत के चरित्र की अति महिमा-मण्डित बताया है ।

(3) राम स्वयं भी भरत को अपने से बड़ा मानते हैं । भरत को उनको राजपद पाने की प्रार्थना पर वे चिंता में पड़ कर कि " अपना विचार कैसे करूँ ? जो कुछ उन्होंने है उसको भरत में किस प्रकार भरा जाये ?"[2]

(4) उपर्युक्त विचार-धारा के होते हुए भी राम को भरत की सज्जनता, स्वामी भक्ति-भावना तथा प्रेम पर अटूट विश्वास है । सीता हुँढ़ित महाराज दशरथ का भरत पर

1- " एक सिंधु को सिंधु बनाना, एक किरण को सविता सूरज,
यह तो ईश्वर ही कर सकता पर्वत एक बहुत छोटा रज ।"
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 61 ।

2- चिंता में पड़ कर राम-कैसे अपना विचार करूँ मैं ?
जो कुछ कुछ मैं है वह सब उस भाई में किस भाँति भरूँ मैं ?
राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 60 ।

सीता पर उनकी अनुपस्थिति में ही राम को राज्य देना चाहते हैं तब राजा की पिता का दृष्टिकोण अत्यधिक लचीला है । वे अपने मन में कुछ रखे हैं कि भरत को राजा बनाया नहीं सके । " भरत राम के लिए राज्य क्या प्राण निछावर तक कर देगा ।" निर्दोषी राम की जैसा पर कोई राज्य की आवश्यकता नहीं है ।

35। भरत की पिता वाहिनी को देखकर लक्ष्मण उनके प्रति सीख नहीं करते हैं, अपितु उनकीन कर्तव्य को देखकर चिन्ता में पड़ जाते हैं ।

36। राम तथा भरत का पारस्परिक प्रेम यहाँ भी आदर्श का में दिखाया गया है । राम के विरह में भरत के प्राण ही संकट में हैं । कैकेयी इस स्थिति से अनभिज्ञ है । उसे डर है कि महाराज के समान ही व्याकुल हो " राम-राम" की रट लगाते हुए भरत भी न कहीं संसार से विदा हो जाये । राम के विरह में भरत विक्षिप्त से हो गए हैं ।

37। भरत का इस तरह त्याग, नम्रता-सरलता, सब सुखों का परित्याग, कठिन तपस्वी जीवन भरत के पारस्परिक चित्र के अनुरूप है । प्रयाग में भरद्वाज ऋषि भरत तथा शत्रुघ्न के सुख की चर्चा राम से करते हैं । वे कहते हैं कि," तुम तो उधर कुटी में व्यस्त रहे और इधर भरत और शत्रुघ्न परिश्रम में लगे रहे जिसे प्रजा का सुख सुखी तथा राजकोष इस तुला सम्पन्न हुआ है ।

इस कुछ लिखा कर इस ग्रन्थ में भी भरत की आदर्श भ्रातृ-प्रेमी, कर्तव्य-निष्ठ, तपस्वी के रूप में अंकित की गई है ।

- - - - - - -

- -

1- पर पिता का यह " राम ! राम !" की विह्वला कोकिल करता रटना,
मुझे तुम्हारे पूज्य पिता की आती याद अचानक घटना ।
कहीं भरत भी जान न जाये ! सो रामाय कर दो राम !
यह विक्षिप्त मनुज है इसके मन को जल्दी दो विश्राम ।

राम महाकाव्य, अयोध्याकाण्ड, पृ० 61 ।

पंचम-अध्याय

भक्ति की भक्ति भावना

राम-भक्तों में प्रतिपादित भक्ति-भावना और भक्त:- प्रेम तथा श्रद्धा की भावना सदैव ही भक्त के अन्तस्तल में छिपी रहती है जो अनुकूल वातावरण की प्रेरणा से प्रस्फुटित अथवा उद्भासित होती है। पूज्य के गुणों का स्मरण तथा अतल निरन्तर ध्यान इस रागात्मिकी भावना को पुष्ट एवं सुदृढ़ करता है। भगवान के प्रति सच्चे प्रेम, श्रद्धा भाव तथा आसक्ति एवं प्रवृत्ति को हम भक्ति की संज्ञा दे सकते हैं। भक्ति शब्द की निष्पत्ति " भज्" धातु से हुई है। " भज्" सेवायाम् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से " भक्ति" शब्द बना है। भक्ति का अर्थ " भजन्" अथवा सेवा की साधक क्रिया है।

डॉ० शिवनन्दन दयाल अवस्थी ने अपनी पुस्तक " गोस्वामी तुलसीदास-दर्शन और भक्ति" में भक्ति की अनेक परिभाषाओं का उल्लेख किया है, जिनमें प्रमुख निम्नवत् हैं-

1- " भगवान के प्रति आसक्त पुरुषों की उनके प्रति प्रवृत्ति का नाम भक्ति है।" [2] । भागवत पुराण।

2- " पूज्य में अनुराग भक्ति है।" । देवी भागवतपुराण [3]

3- " ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ अनुराग ही भक्ति है।" । शांडिल्य ।

4- " नारद-भक्ति-सूत्र" में कहा गया है कि प्यार के मार्ग से पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है।

5- नारद के मत से अपने सम्पूर्ण कर्मों को भगवान के प्रति अर्पित कर देना और भगवान का क्षणभर का भी विस्मरण होने पर परम व्याकुल होना ही भक्ति है। [6]

1- कथमहं तेष्वहं प्रति भक्तिः । शब्दार्थवाची 4,3,95 ।

2- देवानां गुणलीलानामनुकीर्तनं खलु ।
सतत एव मनोवृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।। भागवत, 3,25,32-33 ।

3- पूजायामनुरागो भक्तिः । देवी भागवत, 7,31 ।

4- तत्र परानुरक्तिरीश्वरे । शांडिल्य भक्ति सूत्र, 2 ।

5- " पूजादिष्वनुरागो इति पाराशर्यः ।" नारद-भक्ति-सूत्र, 16 ।

6- "नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति ।"
नारद-भक्ति -सूत्र, 19 ।

16। यह भक्ति परम प्रेम रूप एवं अमृत स्वरूप है[1]। इस प्रेमा-भक्ति को प्राप्त कर लेने पर मनुष्य न तो किसी वस्तु की आकांक्षा करता है, न शोक करता है और न द्वेष ही करता है। वह किसी वस्तु में न तो आसक्त होता है और न विषय-भोगों की प्राप्ति में उसे उत्साह ही होता है[2]। ब्रज-गोपियों में यही प्रेम रूप भक्ति थी[3]।

17। भक्ति मीमांसा के अनुसार ईश्वर के प्रति मन की उत्कट-पुरित ही भक्ति है[4]।

18। नारद पांचरात्र के अनुसार सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त होकर हृषीकेश की सेवा का नाम भक्ति है[5]। अन्य के प्रति ममता का त्याग तथा भगवान विष्णु के प्रति प्रेमयुक्त ममता ही भक्ति कही जाती है जैसे भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव तथा नारद में।

19। श्री रूप गोस्वामी के मत से ज्ञान और कर्म से अनावृत्ति एवं अन्य समस्त कामनाओं से शून्य होकर सर्वभावानुकूलतापूर्वक भगवान् का अनुशीलन करना भक्ति है[6]।

110। श्री मधुसूदन सरस्वती के अनुसार भगवद्गुण-श्रवणादि से द्रवीभूत चित्त की सर्वेश्वर भगवान् के विषय में अविच्छिन्न रूप से अनवरताकार पुरित को भक्ति कहते हैं[7]।

111। रामानुजाचार्य के मत से स्नेहपूर्वक सतत ध्यान को भक्ति कहा जाता है[8]।

1- तत् स्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृत स्वरूपा च। नारद-भक्ति-सूत्र, 2, 3।
2- यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति, न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते नोत्साही भवति।
नारद- भक्ति सूत्र, 5।

3- यथा व्रजगोपिकानाम्। नारद-भक्ति सूत्र, 21।
4- भक्तिर्मता उत्कटपुरितः। भक्ति मीमांसा, 1, 1।
5- सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।
अन्यत्र ममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥ नारद पांचरात्र।

6- अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

हरिभक्ति रसामृतसिन्धु 1, 1, 11।

7- द्रुतस्य भगवद्धर्मादास्वादाद्यिता मया।
सर्वेशे मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते॥

भगवद्भक्ति रसायन, 1, 3।
8- स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।
गीता 7/1 पर रामानुजकृत भाष्य।

(12) स्वामी रामानन्द के अनुसार अनन्य भाव से सरल हृदयपूर्वक कपट से रहित (उपाधि-विनिर्मुक्त) होकर परमात्मा की सेवा करना भक्ति है[1]।

(13) स्वामी विवेकानन्द के अनुसार निष्कपट होकर ईश्वर की खोज करना भक्ति है[2]।

(14) श्रीराधार्य के मत से अपने स्वरूप का अनुसंधान करना भक्ति है[3]।

(15) महाप्रभु वल्लभाचार्य का मत है कि भगवान के प्रति माहात्म्य ज्ञानयुक्त सुदृढ़ तथा सर्वाधिक स्नेह होना ही भक्ति है। मुक्ति इस भक्ति से ही प्राप्त होती है, अन्य किसी साधन से नहीं[4]।

(16) गोविन्दराम जयतीर्थ मुनीन्द्र के मत से भगवान अपरिमित, अनन्त एवं कल्याणकारी गुणों के साथ से समुत्पन्न, उनके प्रति अपने सभी सम्बन्धियों और पदार्थों से ही नहीं, अपितु प्राणों से भी अधिक, अत्यन्त सुदृढ़ अखण्ड प्रेम के प्रवाह को भक्ति कहते हैं[5]।

(17) महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज के मत से भक्ति आह्लादिनी शक्ति की एक विशेष वृत्ति है[6]।

(18) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है[7]। जब पूज्य भाव की पुष्टि के साथ श्रद्धाभाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के एक अंश के साक्षात्कार की वासना हो, तो हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।

1- उपाधिविनिर्मुक्तमनोऽनन्यं भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम् ।
अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा, महाधिभिस्तैः खलु सरसरत्नो : ॥
वैष्णवमताब्जभास्कर, 63 ।

2- भक्ति- स्वामी विवेकानन्द ।

3- स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते । विवेकचूडामणि, 32 ।

4- माहात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥ सर्वार्थदीप निबन्ध, 42 ।

5- सम्बन्धिसम्बन्धिनिरपेक्षितान्तरायं अपरिमित गुणगण ज्ञानपूर्वकः ।
स्वसर्वस्वसम्बन्धीय समस्त वस्तुभ्योऽनेक गुणाधिकोऽन्तराय-
सहेतुकाभ्युदितवृद्धो निरन्तर प्रेम प्रवाहः ।
। जीवन्मुक्ति सुधा ।

6- कल्याण- भक्ति रहस्य । हिन्दू संस्कृति अंक 24/11 पृ० 437 ।

7- चिन्तामणि-शुक्ल भाग, पृ० 32 । ले० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल । ।

यही अनुराग जो छोटों के प्रति स्नेह, समान के प्रति प्रेम तथा बड़ों के प्रति श्रद्धा के रूप में दिखाई देता है, ईश्वर के अभिमुख होने पर श्रद्धा से परिवर्तित होकर भक्ति का पद ग्रहण कर लेता है[1]। भक्ति भगवान के प्रति भक्त के हृदय की अनन्य श्रद्धा है, जो स्नेह अथवा प्रेम को सर्वोत्कृष्ट रूप में निवेदित कर भगवान के चरणों में सर्वतोभावेन पूर्ण रूप से आत्म समर्पण के लिए प्रेरित करती है। भक्ति की अनन्यता सृष्टि के प्रत्येक जीव की सेवा में प्रकट होती है[2]। भक्ति का लक्ष्य व्यक्ति के स्वभाव की शुद्धता, सेवा भावना तथा निरन्तरित प्रेम-प्रवाह में प्रकट होता है। भक्त को अपने प्रियतम,आराध्य प्रभु के दर्शन सृष्टि के कण-कण में होते हैं, इसीलिए सभी उसके लिए श्रद्धास्पद एवं सेव्य हैं।

भक्ति भावना अनादि अथवा सनातन है। इसका जन्म मानव के जन्म के साथ ही हुआ है तथा विकास मानव-संस्कृति के विकास के साथ हुआ है भले ही इसे धार्मिक तथा सांप्रदायिक रूप अनुवाद में मिला हो। यद्यपि वेदों में भक्ति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु भक्ति के बीज उपनिषद में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। डॉ० शिवकुमार दयाल अवस्थी के अनुसार वेद में " भाव" के अतिरिक्त " श्रद्धा और अनुरागमूलक सेवा" के अर्थ में भी " भक्ति" शब्द का प्रयोग हुआ है[3]। उन्होंने इस विषय में वेदों से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं[4]। डॉ० अवस्थी के अनुसार वेदकाल में उपासनापरक अनेक मंत्रों में

- -

1- स्नेहप्रेमश्रद्धाभेदेन लोकिकोऽनुरागस्त्रिविधः। तत्र पुत्रकन्याकिन्नरादिषु निम्नगामी अनुरागः स्नेह उच्यते। मित्र सखादिषु समानगामी अनुरागः प्रेम निगद्यते। मातृ-पितृगुरुजनादिषु च मान्यगामी अनुरागः श्रद्धाभाजना व्यवहियते। ईश्वरादिषु पूज्यतमेषु श्रद्धेव भक्तिशब्दवाच्यतां यती।

पुराणपातीलिकम्,पुष्पोद्यानः, पृ० 75 ।

2- तो अनन्य जाके रूप मति न टरै हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

रामचरितमानस, किष्किंधाकाण्ड ।

3- गोस्वामी तुलसीदास-दर्शन और भक्ति, 2, पृ० 123 ।।
। ले०- डॉ० शिवकुमारदयाल अवस्थी ।

4-(क) सखी भक्तिर्यातः स्याम । ऋग्वेद 6, 79, 3 ।
(ख) अयमग्नेसखी व्यन्तौ । ऋग्वेद 1,127, 5 ।
सायण भाष्य- मर्त्यौ सेवमानौ अमर्त्यौ सेवमानौ च ।
अथाभि सुम्नं देवयन्तौ यातिष्ठ । ऋग्वेद 10,45,9 ।
। गोस्वामी तुलसीदास-दर्शन और भक्ति, पृ० 123 । ।

ऋषियों की भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं[1]। उपनिषदों में यह भक्ति-भावना वेदों की अपेक्षा अधिक मुखरित है। वस्तुतः उपनिषदों में आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप एवं सम्बन्ध के विषय में भी पृथक रूप से विचार किया गया है। परिणामतः भक्ति और उपासना के स्वर भी पल्लवित हुए हैं। श्वेताश्वतर, छान्दोग्य तथा श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में भक्ति तथा उपासना की भावना के बीजों का अंकुरण देखा जा सकता है[2]। भगवद्गीता में यह भावना अपने पुष्ट रूप में दिखायी देती है। यहाँ तो कर्म तथा ज्ञान योग के साथ ही भक्ति योग का भी महत्व एवं स्वरूप प्रतिपादित कर दिया गया है। गीता के बारहवें अध्याय में श्री कृष्ण ने अर्जुन को भक्ति योग समझाते हुए बार-बार कहा है, " मद्भक्तः स मे प्रियः," अर्थात् जो मेरा भक्त है वह मुझको प्रिय है[3]। उनका स्पष्ट निर्देश है कि, " जो ध्यान योग में युक्त हुआ, निरन्तर लाभ-हानि में सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए मुझ में दृढ़निश्चयवाला है, वह मेरे में अर्पित किए हुए मन, बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है[4]।" यही बात नवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक में भी कही गयी है[5]। वेदान्त दर्शन भक्ति को ईश्वर प्राप्ति के अनेक साधनों के रूप में स्वीकार करता है। उसके अनुसार भक्त के ऊपर प्रभु का विशेष अनुग्रह होता है[6]। जो साधक भक्ति सम्बन्धी आचार धर्म का पालन करता

1- गोस्वामी तुलसीदास-दर्शन और भक्ति, पृ० 124,125 ।

2- (क) तद्धैतन्मिथुनमुद्गीथे । केन उप० 4/6 ।
(ख) सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति सर्वे तपांसि च यद्वदन्ति । छान्दोग्य 3,14, 1 ।
(ग) तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ । श्वेताश्वतर 2,7 ।

(घ) यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।।

श्वेताश्वतर 6, 23 ।

3- श्रीमद्भगवद्गीता अ० 12, श्लोक 2,8,14,16,17,19,20 ।

4- सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। गीता 12, 14 ।

5- समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।। गीता 9,21 ।

6- विशेषानुग्रहश्च । वे० द० 3,4,38 ।

है, वह पापों से अनभिज्ञ रहता है[1]। शास्त्र-ज्ञान के अभाव में भी केवल उपासना-अनुष्ठान से परमार्थ की प्राप्ति सम्भव है। अतः जीव के लिए भक्ति ही ग्राह्य है[2]। भक्ति-काव्यों पर वेदान्त का यह प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

श्रीमद् भागवत पुराण में भक्ति-तत्त्व का सविस्तार विवेचन किया गया है। भगवान व्यास के अनुसार भगवद् लीला की मंगलमयी कथाओं के श्रवण, गान तथा मनन से परम प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है तथा वह प्रियतम प्रभु के ध्यान में विभोर हो जाता है। भक्त का धर्म है कि भगवान की कथा सुनने में श्रद्धा रखे तथा प्रभु का निरन्तर ध्यान कर जो कुछ मिले, उसे प्रभु को समर्पित कर दे और दास्यभाव से उन्हें आत्म-निवेदन करे[3]। यह दास्यभाव की भक्ति राम-काव्य में विशेषतः दृष्टिगत होती है।

महाभारत में भी भक्ति की धारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। महाभारत के अनुसार वासुदेव चतुर्व्यूहात्मक है। सम्पूर्ण जीव संकर्षण के नाम से जाने जाते हैं। संकर्षण वासुदेव के ही एक रूप हैं। संकर्षण से प्रद्युम्न तथा प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का जन्म हुआ जो क्रमशः मन तथा अहंकार के प्रतीक हैं। वासुदेव से ही वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम तथा कृष्ण आदि अवतार होते हैं। महाभारत के रामोपाख्यान में भी कवि की राम के प्रति भक्ति भावना देखी जा सकती है।

रामायण में भी भक्ति-भावना का उदय देखा जा सकता है। उस काल के आख्यानों में राम के उज्ज्वल चरित्र को देखकर ही कवि के हृदय में राम के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई होगी जो "रामायण" महाकाव्य के रूप में लोक-रंजन तथा लोक-शिक्षा करती रही है। राम के गुणगान काल के समय कवि के हृदय के श्रद्धामय अनुराग की कल्पना की जा सकती है। भरत की राम-भक्ति भ्रातृ-भरतता के रूप में प्रकट हुई है। "ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च धर्मज्ञो दिलीपस्तुपोपमः।" इत्यादि कहकर कवि ने राम के प्रति भरत के भक्ति भाव को ही व्यक्त किया है। अयोध्याकाण्ड के 88 वें सर्ग के 26 से 30 तक श्लोक द्रष्टव्य हैं जिनमें रामभक्त भरत जटावल्कलधारी होकर राम के स्थान पर स्वयं वन में रहने की कामना करते हैं। उनकी यह भक्ति पुनीत में भरताज-

---

1- सर्वपापेभ्यः स एवैनमिमुञ्चति। पै० टी० 3,4,34।
2- अनभिज्ञो वा एवमेतत्। पै० टी० 3,4,35।
3- मरणं मनसि श्रद्धा सदनुध्यानमुत्तमम्।
सर्वात्मनिवेदनं दास्यमेतन्निवेदनम्॥ भागवत 11,11, 35।

आत्मा में प्रत्यक्ष रूप में देखे जा सकती है। कवि ने सतीक्षा के प्रभाव से स्वीकृत किया सम्पन्न कर भरत की सेवा में राजकल प्रस्तुत किया जिसमें सिंहासनादि सभी केवल विद्यमान थे। भरत उस सिंहासन पर नहीं बैठे, अपितु सिंहासन पर श्रीराम की कल्पना कर भरत ने उनके प्रभाव किया तथा उस सिंहासन की पूजा कर, साथ में बैठ के बैठे के आसन पर जा बैठे। यह भरत की राम के प्रति निष्ठा एवं प्रभु-भक्ति का पावन उदाहरण है[1]। अध्यात्म रामायण में भी भक्ति पर बल है तथा आनन्द रामायण प्रेमा-भक्ति को विशेष महत्व देती है।

भक्ति के भेद

भक्ति के दो भेद माने गए हैं- साधन भक्ति अथवा गौणी भक्ति तथा साध्या भक्ति अथवा प्रेमा भक्ति। प्रेमा-भक्ति की प्राप्ति साधन-भक्ति से होती है। साधन भक्ति ही नवधा भक्ति है। शाण्डिल्य ने साधन भक्ति। गौणी भक्ति के तीन प्रकार माने हैं - आर्त-भक्ति, जिज्ञासु भक्ति, अर्थार्थिका भक्ति। नारद के मत से गौणी भक्ति के भेद हैं- तामसी भक्ति, राजसी भक्ति और सात्त्विकी भक्ति[3]। श्री मधुसूदन सरस्वती के अनुसार एक तीसरा भेद भी है जिसे "मिश्रित भक्ति" कहते हैं और जो काम तथा लोभादि से उत्पन्न होती है[4]।

श्रीरूप गोस्वामी के मत से भक्ति तीन प्रकार की है- साधन भक्ति, भाव-भक्ति तथा प्रेमा भक्ति।

साधन भक्ति:- इष्टदेव के प्रति उपाय साध्य भक्ति को साधन भक्ति कहते हैं[5]। इसके भी वैधी तथा रागानुगा दो उपभेद होते हैं। यहाँ भक्ति की और आकर्षक

---

[1]- आर्तो पूजायाम रामपादानि पूजन च।
धारयन्नन्नादाय न्यधोऽधु सकिमाने [illegible] वाल्मी० 2,91,39।
[2] शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, 72।
[3] नारद भक्ति सूत्र, 56।
[4] भक्ति-रसायन 2,2।
[5] ह० भ० र० 1,2,1।
[6] सुतिसाध्या भवेत् साधनभावा सा साधनाभिधा।। ह०भ०र० 1/2/1

से प्रवृत्ति होती है, प्रेमाभक्ति से नहीं, वहाँ केवल भक्ति समझी जानी चाहिए[1]। प्रेमाभक्ति से उत्पन्न भक्ति को रागानुगा भक्ति कहते हैं। व्रजवासियों की कृष्ण के प्रति रागानुगा भक्ति ही थी[2]।

भाव भक्ति:- " नाना रसियों से चित्त को लीला कराने वाली शुद्ध सत्त्वमय और प्रेमाभिन्न अनुराग को भाव भक्ति कहते हैं। साधक के हृदय में इस भाव भक्ति का उदय, साधन भक्ति का अनुष्ठान करने से या भगवान अथवा उनके भक्तों की कृपा होने पर होता है[3]।"

प्रेमा भक्ति:- " रति और रागानुगा भाव भक्ति का अनुष्ठान करने पर या भगवान की कृपा होने पर साधक के हृदय में प्रेमाभक्ति का उदय होता है। अन्तःकरण को सम्यक् रीति से लीला कराने वाले, भगवान के प्रति अतिशय ममत्व की स्थापना करने वाले और आत्मा में पूर्वोक्त भाव को दृढ़ करने वाले भाव को प्रेमाभक्ति कहते हैं[4]।"

पूर्व की चर्चा का फल है कि नवधा भक्ति को नवधा साधन भक्ति में ही जाती है। नवधा भक्ति की चर्चा भागवत पुराण में की गई है। भागवत के अनुसार भगवान का कृष्ण-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन नवधा भक्ति है[5]। कृष्णदेवजी पुराण में नवधा भक्ति के अन्तर्गत स्मरण, वन्दन, ध्यान, अर्चन, कीर्तन, श्रवण, भावना, सेवा तथा सभी निवेदन इन नौ साधनों का वर्णन किया गया है। अध्यात्मरामायण में प्रतिपादित नवधा भक्ति भागवत की उपर्युक्त नवधा भक्ति से भिन्न है। अध्यात्मरामायण के अनुसार सत्संग, भगवान के चरित्र एवं कर्मों की कथा कीर्तन, उनके गुणों की चर्चा, भगवद्भक्तों की व्याख्या, गुरु-सेवा, भगवान् की पूजा में प्रेम, उनके मंत्र के सांगोपांगता, भगवद् भक्तों की भगवान से भी अधिक मानकर उनका आदर सत्कार आदि करना एवं समस्त प्राणियों में भगवान् की भावना करना तथा सब विचार करना नवधा साधन हैं। इन साधनों से प्रेम-लक्षणा भक्ति का आविर्भाव होता है। पराभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति से

1- " गोस्वामी तुलसीदास"-जीवन और भक्ति पृ0 139।
2- " " " " 139।
3- " " " " 139।
4- " " " " 139-40।
5- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भागवत।

ही होती है। नवधा भक्ति के किसी एक साधन के विधिवत रूप से अनुष्ठान करने से ही पराभक्ति की प्राप्ति सम्भव है। तुलसी के रामचरितमानस में भी दो स्थलों पर नवधा भक्ति की व्याख्या की गई है- अरण्य प्रसंग में तथा लक्ष्मण को राम द्वारा दिए गए उपदेश में। "मानस" के अनुसार श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन ही नवधा भक्ति हैं। इस विषय की विस्तृत विवेचना डा० शिवकुमार दयाल अग्रवाल ने अपनी पुस्तक "गोस्वामी तुलसीदास-दर्शन और भक्ति" के द्वितीय परिच्छेद के पृष्ठ 147 से पृष्ठ 159 तक की है। इसी को उपरिकथित नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति संतों का संग, द्वितीय रामकथा में प्रेम, तीसरी गुरु के पाद-पद्मों की सेवा, चौथी प्रभु के गुणों का गान, पाँचवीं छल विहीन के साथ मैत्री-भाव, छठीं इन्द्रिय-निग्रह पूर्वक सज्जनों के धर्म आचरण, सातवीं समस्त विश्व को भगवानमय देखना, आठवीं जो कुछ प्राप्त हो उसी में संतुष्ट रहना एवं पर दोष दर्शन न करना तथा नवीं सरलतादि से विशुद्ध, सरल एवं निष्कपट भाव से भगवान के ही आश्रित रहना।[2] नवधा भक्ति के एक भी साधन से प्रेमा भक्ति की प्राप्ति हो जाती है तथा वह व्यक्ति भगवान को परम प्रिय हो जाता है।

अब स्पष्ट यह हुआ है कि संस्कृत साहित्य में भक्ति की विशद मीमांसा की गई है तथा अनेक ग्रंथ इस विषय में लिखे गए हैं। संस्कृत रामकाव्य में भी भक्ति की और पर्याप्त झुकाव है। अध्यात्म रामायण में तो नवधा भक्ति की प्रतिष्ठापना की

1- "गोस्वामी तुलसीदास"-दर्शन और भक्ति पृ० 146।

2- प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥ 35॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा।
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, 35-36।

गई है। संस्कृत साहित्य से हिन्दी साहित्य प्रभावित हुआ है तथा उसमें विशाल काव्य-रचना भक्ति-भावना से अनुप्रेरित है। हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक समृद्ध युग भक्ति-काल ही माना जाता है। भक्ति साहित्य का तुलसी रीतिकाल में भी हुआ है और वह आज तक निरन्तर हो रहा है। हिन्दी साहित्य में रामकाव्य की रचना विशाल परिमाण में हुई है, जिसके मूल में भक्ति का स्वर स्पष्ट हुआ जा सकता है। रामकथा सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों में तो भक्ति के स्वरूप, उसकी दार्शनिक मीमांसा आदि पर भी विचार किया गया है। सम्पूर्ण राम काव्य में भरत भक्ति के सुन्दरतम आदर्श के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। "मानस" में भरत की भक्ति की स्तुति इस प्रकार है- " सुनत सो भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू।" तथा " राम प्रेम भूरत मनु आही।।" इस भक्ति -भावना का प्रभाव तुलसीदासोत्तर राम-काव्य में भी देखा जाता है। आधुनिक काल के भी अनेक कवियों ने भक्ति-भावना से प्रेरित होकर राम विषयक काव्य की रचना की है। उनके काव्य में भी भरत की राम-भक्ति अपना विशेष स्थान रखती है।

हिन्दी रामकाव्यों में भरत की भक्ति भावना

पिछले अध्यायों में प्रतिपादित किया गया है कि हिन्दी रामकाव्य की रचना का प्रारम्भ स्वामी रामानन्द की काव्य रचनाओं से हुआ है। यद्यपि दशावतार चरित के प्रसंग में महाकवि चन्दबरदायी ने भी रामकथा की रचना कविता में की है परन्तु वह प्रासंगिक है, स्वतंत्र नहीं। चन्दबरदायी का यह रामकथा काव्य वीर रस की प्रधानता लिए हुए है। यद्यपि दशावतार के प्रति कवि का भक्तिभाव मुखर है परन्तु भरत की भक्ति के प्रस्तुतीकरण के प्रति कवि उदासीन है। वस्तुतः चन्दबरदायी के काव्य में भरत की भक्ति के चरित्र का कोई प्रसंग है ही नहीं। स्वामी रामानन्द ने रामकथा विषयक किसी महाकाव्य की रचना नहीं की थी परिणामतः उनके काव्य में भी भरत-भक्ति की व्याख्या सम्भव नहीं थी। हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम कविवर विष्णुदास ने "रामायण-कथा" के रूप में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस "रामायण-कथा" में कवि ने अयोध्या काण्ड के कतिपय स्थलों को अति संक्षिप्त कर दिया है। जिसके कारण भरत के चरित्र का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। यहाँ भरत का राम के प्रति प्रेम

दर्शाया गया है। भरत की यह रामभक्ति वस्तुतः प्रभु-भक्ति है जिसमें भक्ति

के साधनों अथवा साध्यता का प्रश्न नहीं है, अपितु भाई के प्रति उत्कट-भावना का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

भरत के भक्त स्वरूप के दर्शन तुलसीदास जी विरचित कृत "भरत-विलाप" में होते हैं। इस ग्रन्थ के भरत श्रीराम भक्ति स्वाभाविक रूप से ही प्राप्त है। वे राम के अनन्य भक्त हैं। उनकी भक्ति दास्य भाव की है जो अत्यन्त उत्कृष्ट है। भरत का प्रेम भक्ति स्वतः सिद्ध है। प्रेम की पराकाष्ठा के कारण वे राम के वियोग को सहन करने में असमर्थ हैं। राम को वनवास देने वाली कैकेयी से भरत रुष्ट हैं तथा वन से आकर राम को अयोध्या लौटा लाने के मुनि वशिष्ठ के परामर्श को वे अविलम्ब स्वीकार कर लेते हैं। वे निरन्तर राम का स्मरण करते हैं। राम के चरणों में लौ लगा कर उनके सान्निध्य में रहना ही भरत को जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य प्रतीत होता है[1]; भरत की भक्ति दास्य भाव की है। वे सेवक हैं और राम स्वामी हैं[2]। वे निरन्तर राम की आज्ञा का पालन करते हैं। उनकी आज्ञापालन हेतु ही भरत पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौट आए। नन्दी ग्राम में निरन्तर राम नाम का जाप, पादुकाओं का अर्चन, वन्दन, ध्यान आदि भक्ति के साधनों का अनुष्ठान भरत राम के मिलन हेतु करते हैं। भक्ति से उनको आश्वास ही प्राप्त है।

सूरदास के भरत भी राम के अनन्य भक्त हैं। उनकी भक्ति भी दास्य भाव की है। वे स्वयं को सेवक तथा राम को त्रिभुवन-पति मानते हैं[3]।

1- तौ रघुपति सब सेवा फलु पाई, होति करम मन बच्छ लौ लाई ।।
भरत विलाप

2- आइस मह सम सेवक सोचारा, आइ सेवा पावहिं निस्तारा ।।
तथा
रामचन्द्र आयसु पाइ, प्रभु सेवक जस सिर नाई ।
सेवक धर्म कठिन जग जाना, आइ भरत उपजा अनुमाना ।। भरत विलाप ।

3- आए भरत दीन ह्वै दीने, कटा निर्मल, केश माह
सब सेवक ये त्रिभुवन पति, का स्वामि सिंह पति आए ।।
सूर-रामचरितावली, 36 ।

राम का पाद-सेवन ही उनका परम धर्म है[1]। उनके चरण-सरोज के दर्शन के बिना भरत के लिए राज्य-सुख व्यर्थ है। राम की पादुकाओं को शिरोधार्य करने के कारण ही भरत "भरत" कहलाते हैं[2]। राम की कृपा ही भरत का सम्बल है। राम का विरोध उनके लिये असह्य है। इस प्रकार स्मरण, पाद-सेवन तथा दास्य आदि नवधा भक्ति के साधनों का भरत अनुकरण किए हुए हैं। राम की कृपा स्वरूप प्रेमा भक्ति अथवा परामक्ति उनको स्वतः ही प्राप्त है।

भरत का भक्त-स्वरूप सबसे अधिक रामचरितमानस में उभरा है। "मानस" अपने युग का प्रतिनिधि काव्य है। दास्य भक्ति के क्षेत्र में यह दास भक्तों के लिए प्रेरक-स्तम्भ है, मार्गदर्शक है। भरत पर राम का अनुग्रह सर्वविदित है। केवल भरत ही राम को स्मरण नहीं करते राम भी भरत को निरन्तर स्मरण करते रहते हैं[3]। वे राम के छोटे भाई ही नहीं उनके परमप्रिय भी हैं[4]। राम के परम अनुग्रह स्वरूप उनकी प्रेमाभक्ति अथवा परामक्ति भरत को प्राप्त है। उन्हीं भक्त के सभी गुण विद्यमान हैं। परम भक्त होते हुए भी वे निरन्तर भक्ति की याचना करते रहते हैं। राम के चरणों में अनुराग ही उनका परम साध्य अभीप्सित है। वे जन्म जन्म के लिए राम के चरणों में प्रीति का वरदान मांगते हैं। राम-प्रेम की तुलना में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जो परम पुरुषार्थ कहे जाते हैं, भरत की दृष्टि में हेय हैं[5]। उनके लिए साधन और सिद्धि दोनों ही राम के चरण कमलों का

1- प्रथम भरत कीन्ह यह नीती। सादर सकल मारग रीती।
तीनि काल तीनि टेक प्रभु-पाद-पूजन, करि जल तीरथ पैठे।
निज कर-कमल परसि प्रेम-रस आनंद आँसु दृग ऐठे।
बहु सीतल तीनि तपन तनिक दै, पुलकि सरीर सभए।
परसत पानि चरन पावन, दुख दव-लगन सकल हरे।
"सूर" सहित आमोद मातु-जन सेवत सीस धरे।।

सूर-रामचरितावली, 196।

2- "सूरदास" प्रभु पदवि मम सिर, धरि कह भरत कहाऊँ।।

सूर-रामचरितावली, 195।

3- यह बड़ि बात भरत कइ नीकी। सुमिरत जिनहि रामु मन जाकी।।

4- भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता।।

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 217।

5- अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।। 204।।

रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 204।

स्नेह है।

"मानस" के भरत राम-प्रेम की साकार मूर्ति होते हुए भी साधन भक्ति के सम्बन्ध को किसी भी स्थान पर तथा किसी भी दशा में नहीं त्यागते हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन आदि नवधा भक्ति के सभी साधनों को भरत की राम-भक्ति में देखा जा सकता है।

श्रवण- * सकल रामगति पंथ कहानी। पूँछत सबहिं कहत मृदु बानी ॥

× × × ×

निज दुख सहित रामदुख गाथा। सुनत बारिहिं सुमिरत रघुनाथा ॥

कीर्तन- गुण कीर्तन-

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। सुधा सनेह सदन रघुराऊ ॥

अखिल अकथ कोन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक कथि बामा ॥

× × × ×

राम जनमि का कीन्ह उजागर। जग सीतल सुख सब गुन सागर ॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाउ सबहिं सुखदाता ॥

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं ॥

सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा ॥

सुनत भरत सिय रघुबीरू। कोउ नाहु जग लोचन नीरू ॥

× × × × × × × × × × × × ×

दो०- सेवक सेवि सुजानु पटु सुह सुसील सुजान। राम राम रघुपति जपत प्रगट भेम भगवान ॥

स्मरण:-

जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमगत पेमु मनहुँ चहु पासा ॥

× × × ×

सेवक सुहृद सचिव सुत भाया। सुमिरत सकल सीय रघुनाथा ॥

जहँ जहँ राम बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहि सोभ पुरनामा ॥

× × × ×

सुनि मिथ्यासु अवधि राउ सी। त्यागि सुरति सुरधीनि पिसासी ॥

पाद-सेवन:-

सबहिं निहारि राम पद अंका। भानहुँ पारस पायसु रंका ॥

एक सिर धरि सिय नखनन्हिं लाखहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥

*　　*　　*　　*

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ।।

अर्थः-

चित्र कूटा प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति ।
मागि माथि आयसु भरत राखताय बहु भाँति ।।

वन्दनः-

कुस सांथरी निहारि सुहाई । कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ।।

*　　*　　*　　*

गई भरत पुनि प्रभु पद पैठ । मगन भिन्हाँहिं सुर सुनि सैन अ ।।
परे धरनि नहिं उठा उठाए । कर करि कृपा सिंधु उर लाए ।।

दास्यः-

सिर धर नाइँ उठिन आ मोरा । सब हैं सेवक की कठोरा ।।
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी । सब सेवक मन महहिं मगानी ।।

*　　*　　*　　*

अब कल्याण कीन्हि तोहीं । जानिस प्रभु चित छोभ न छोहीं ।।
जो सेवक साहिबहि सँकोची । निज हित चहइ तासु मति पोची ।।

*　　*　　*　　*

भरत राम गुन ग्राम सनेहू । पुलकि प्रसंसा राउ बिदेहू ।।
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन । नेमु अमी पावन पावन ।।

सख्यः- तुलसी दास्य भक्ति के साधक थे । अतः उनके भरत सुखतः राम के दास अथवा सेवक हैं । तुलसी का मत है कि " सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि " । इस सिद्धान्त के अनुसार भरत सेवक और राम सेव्य हैं । परन्तु साथ साथ खेलने, पढ़ने भोजन करने तथा शयन आदि के कारण भरत सेवक होते हुए भी राम के सखा हैं ।

आत्म निवेदनः- भरत ने स्वयं को राम के प्रति अर्पित कर दिया है । वे पूर्णतः राम की शरण में हैं -

मेरे सरन रामहिं की पनहीं । राम सुपाति छोहु सब बनहीं ।।

उपर्युक्त साधनों के साथ अभ्यास एवं साधना से तथा प्रभु के परम अनुग्रह से भरत को राम की परा, अनन्य अथवा प्रेमाभक्ति प्राप्त है ।

राम चरित मानस की अष्टविधा नवधा भक्ति के साधन की " मानस " के भरत

में देखे जा सकते हैं। ये साधन इस प्रकार हैं-

(११) सत्संग- भरत को हनुमानादि सतों का संग सुलभ है।

(१२) कथाश्रवण में रति-

" सकल राम सिय पंथ कहानी। पूंछत सबहिं मधुर मृदु बानी ॥"

× × × ×

" नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥

तब हनुमन्त नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥

× × × ×

भरत सहित दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई ॥

पूछति मेटि राम गुन गाथा। कह हनुमान सुमति अवगाहा ॥

सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय सुनावहिं ॥

(१३) गुरु-पद-पंकज-सेवा- भरत ने गुरु की अनीतिया तथा सद्गुणों से प्राप्त कर लिया है। चित्रकूट सभा में राम का यह भाषण इस बात को स्पष्ट करता है-

गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी ॥

× × × ×

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़ भागी ॥

राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥

(१४) निष्कपट भाव से प्रभु गुण गान:- भरत निरन्तर ही प्रभु के गुणों का श्रवण तथा गान करते रहते हैं। अगर गुण-कीर्तन के अन्तर्गत कुछ उदाहरण दिए गए हैं।

(१५) मैं जाप तथा प्रभु में लय पिपासा:- भरत निरन्तर " राम महामंत्र का जप करते रहते हैं-

जपहिं राम कहि केहिं उपाया। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा ॥

× × × ×

सुमिरत राम हिय सिय रघुबीरु। जीह नाम जप लोचन नीरु ॥

× × × ×

देखि दसा सुरसरि सरद सुखद सुख गात।

राम राम रघुपति जपत सुमन नैन जलजात ॥

§61 दुःख, शोक, वैराग्य तथा तीर्थ की जय आदर्श:- ये समस्त गुण रामचरितमानस में सर्वत्र भरत में दृष्टव्य है-

अवन बसन बासन प्रथम भेषा । उदर कठिन बधि की लेखा ।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ।।
× × × ×
राम दास तैसेइ निसि अपाता । नाथ भरत हिय बिसा अकाता ।।
सुख बिलासु अवधि राजती । स्वामि सुरति सुरधेनु बिलाती ।।

§74 समस्तगुण भाव से विषय की राजसत्ता देकर तथा तीर्थों को प्रभु से भी अधिक सम्मान देना- भरत की दृष्टि में रामोपासक ही तीर्थ हैं । वशिष्ठ, भरद्वाज आदि मुनियों का भरत ने प्रभु से भी बढ़ कर सम्मान किया । राम का मिल सुख उनको प्रिय है । उनके सम्मान में वे स्वन्दन त्याग कर प्रेमपूर्वक उनके मिलने को । हनुमान को उन्होंने परम प्रेम पूर्वक हृदय से लगाया । भरत के लिए समस्त विश्व उनके प्रभु का स्वरूप है । इसीलिए अयोध्या के प्रत्येक प्राणी का पोषण वे व्यक्तिगत रूप से करते हैं-

* मुदित बोलि भरत कर जोरे । करि प्रनाम बय बिनय निहोरे ।
अब गोसाइँ मोहि देब रजाई । आपनु देब न करब ढिठाई ।।
परिजन, पुरजन प्रजा बोलाए । समाधानु करि सुजस बटाए ।।

§80 क्षमा, त्याग, तितिक्षा तथा परदोष न देखना:- कालीन एवं कलयुगी भरत परायेदोषों को नहीं देखते हैं, इसी कारण समस्त दुःख, शोक एवं विपत्ति की मूल कारण कैकेयी को भी उन्होंने क्षमा कर दिया । निषादराज तथा लक्ष्मण की कटूक्तियों की ओर उनका ध्यान तक नहीं गया । प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने स्वयं पिताश्री प्रभु का वियोग तक सहन कर लिया । गोस्वामी में उनकी समाधानी क्षमता प्रशंसनीय है ।

§96 सरलता एवं निष्कपटता तथा प्रभु की आज्ञा- इस विषय में उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोहा द्रष्टव्य है-

राम कपट परहित निरत पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत हैं जनि उपमा कुपाल ।।
भरत का राम के प्रति विश्वास निम्नलिखित चौपाइयों में स्पष्ट है -

मैं बालक सिय नाथ दुलारा । अपराधिहु पर कोह न कारा ।।
मो पर कृपा सनेह बिसेषी । खेला हुनिस न कबहुँ देखी ।।
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ।।
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।।

चौदह वर्ष के दीर्घकालीन वियोग में भरत का अवलंब राम की चरण पादुकाएँ हैं:-

चरनपीठ करुना निधान के । जनु जुग जामिल प्रजा प्रान के ।।

x x x x

भरत सुदिसा अवलंब लहे हैं । अस कुल जस सिय राम रहे हैं ।।

भरत को प्रभु राम का चरम अनुग्रह प्राप्त है । भरत राम का स्मरण करते हैं और राम भरत का । भरत की पराभक्ति स्वतः सिद्ध है परन्तु भक्ति के साधनों का अति कठिन तपस्या के द्वारा वे साधित करते हैं कि उनके मत में साधन और सिद्धि दोनों ही श्री राम के चरणों का प्रेम अथवा भक्ति है । वे संसार में भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करने आए हैं । उनकी भक्ति की महत्ता को मानस का निम्नलिखित अंश स्वयं ही स्पष्ट कर देता है -

परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु सुद मंगल करनू ।।
हरन कठिन कलि कलुष कुजोगू । महामोह निसि दलन दिवोगू ।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू । साप साप सताप समाजू ।।
जन रंजन भंजन भव भारू । राम सनेह सुधाकर सारू ।।
सिय राम प्रेम - - - - - - राम सन्मुख भरत को ।।

रामचरितमानस, 2, 326 ।

गीतावली में कवि ने भरत की गणना राम के चार मुख्य भक्तों में की है । ये चार मुख्य भक्त शंकर, हनुमान, लक्ष्मण और भरत हैं । विनय पत्रिका में भी भरत की भक्ति की सराहना की गई है ।

तुलसीदासोत्तर राम काव्य में भी भरत राम-भक्त के रूप में प्रतिष्ठापित किये गये हैं । केशव ने रामचन्द्रिका में भरत के भक्तस्वरूप पर अधिक प्रकाश नहीं

- -

।।। बानी है संभु हनुमान लखन भरत राम-भगति ।
कला कुल , करम धरम, कुल गोती सगति ।।

गीतावली 2, 92 ।

आया है । बारहट नरहरि दास ने भी " अवतार-चरित" में परम्परागत रूप में ही भरत का चित्रण किया है ।इस ग्रंथ के भरत राम के भक्त हैं । कवि लाल दास ने अपने " अवध विलास" में भरत की बातें नहीं कही हैं[1] । "रामायणेश" । महमूदनदास कृत पद्मपुराण के आधार पर लिखा गया है । पद्मपुराण के भरत भक्त हैं तथा सत्वगुण सम्पन्न हैं । रामायणेश के भरत भी भक्त, धार्मिक तथा अति त्यागी के हैं । मोहनदासकृत " रामायणेश" में भरत का त्यागमय अति संक्षिप्त है । चंददास कविकृत "राम-विनोद" में भरत का भक्त-स्वरूप कवि ने काव्य के प्रारम्भ से ही दर्शाया है । वे प्रारम्भ से ही प्रभु-पाद-सेवनादि भक्ति के साधनों में संलग्न हैं[2] । राम के वनगमन का समाचार सुनकर वे श्रव, दास, वैराग्यादि भक्ति के साधनों को अपना कर योग करते हैं[3] । वन में राम के चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन के पश्चात् भरत "ध्यान" साधना को अपना कर प्रभु के प्रति पूर्णतयेन आत्म निवेदन करते हैं तथा अखण्ड भक्ति का रसपान करते हैं । इस प्रकार इस काव्य में भरत साधन भक्ति से साध्या भक्ति तक पहुँच जाते हैं[4] । यहाँ भी भरत की भक्ति दास्य भाव की ही है[5] ।

---

(1) रावण मरन भरत की बातें । कहि न उदास होत मन पातें । - अवध विलास ।

(2) लंघन भारथ पावन सो पद चापत प्रेम हिये अधिकारी ।।
चंद अनन्त अगोचर ये नर देह लखे कला विस्तारी ।।
रामविनोद चंददास रामायण, बालकाण्ड, 3,00 ।

(3) विवेक नेम हिरु ध्यान तप योग कामा । रचौं नेमु नाहीं हिदै गोह माया ।
कहा सीस धारी तबौं प्रेम नारी । करौं चंद आहार चिहार टारी ।।
रामविनोद चंददास रामायण, अयोध्याकाण्ड, 746 ।

(4) रघ ध्यान समाध लगी सुन में, तन में छवि मूरत जैव लहै ।
मन तौंव लयेउ प्रभु पावन में हुन के रस भावन ब्रह्म गहै ।।
सोच सकोच विमोच सबै निहु आरम अरौ तबौं टहै ।
चंद सुआरस भक्ति अखंडित सो उर पाय अघाय रहै ।।
रामविनोद चंददास रामायण, अयोध्याकाण्ड, 10,288 12,030 ।

(5) मैं सेवक रघुवीर, मोहि राम सौं कहा ।
भीगे पाप सरीर, निहु जननी के देहु प्रभु ।।
रामविनोद चंददास रामायण, अयोध्याकाण्ड, 10,755 ।

रीतिकाल के और में पद्माकरकृत "रामरसायन" काव्य में भरत के भक्त स्वरूप को महत्त्व दिया गया है। भरत का रामानुराग प्रशंसनीय है। यहाँ भी उनकी भक्ति सेवक-सेव्य भाव की है। वैराग्य एवं आत्मनिवेदन यहाँ भी भक्ति के साधन हैं[1]। "मानस" के समान ही यहाँ भी राम के पाद सेवन में भरत तत्पर हैं[2]। महाराज विश्वनाथकृत "आनन्द रघुनन्दन" नाटक में भरत की भक्ति परम्परागत है। राम उनके स्वामी हैं और वे राम के सेवक हैं। उनको अपने प्रभु राम में कुछ विश्वास है। वे पूर्णरूपेण राम के आश्रित हैं[3]। उनकी यह साधन भक्ति ही साध्या अथवा पराभक्ति का उदय करती है तथा अन्य भक्तों के लिए भी वे प्रेरणा का स्रोत बन जाते हैं[4]। उनका राम-प्रेम सर्वत्र लिए अनुकरणीय है। भगवान-दासकृत "राम रहस्य" में भक्ति की विवेचना की गई है। नवधा, रागानुगा, वैधी तथा प्रेमा भक्ति का उल्लेख इस ग्रंथ में किया गया है, परन्तु भरत का स्वरूप निरूपण नहीं किया गया है। भरत की भक्ति के विषय में भी कुछ नहीं कहा गया है।

रीतिकालोत्तर एवं छायावाद पूर्व के युग में रामकाव्य की रचना दो प्रकार से हुई थी- एक तो पुराण साहित्य से प्रभावित परम्परागत रचना तथा दूसरी आधुनिक साहित्यिक दृष्टिकोण एवं शैलियों से प्रभावित रामकाव्य रचना। पुराण-प्रभावित काव्य में भरत का स्वरूप-चित्रण परम्परागत है। इसमें भी मर्यादावादी साहित्य में भरत की दास्य भक्ति की व्याख्या कम-सम उपलब्ध है परन्तु मधुरोपासक कवियों ने दास-विलास एवं रासलीला आदि में आलाओं का वर्णन नहीं किया है। पुराण प्रभावित मर्यादावादी काव्य में बाबा रघुनाथ दास रामरसिक का "विश्राम सागर" तथा मधुरोपासना के क्षेत्र में महाराज रघुराज सिंह का "रामरसायन" प्रमुख हैं।

---

(1) धन्य भरत जग जनु बड़ भागू। लखउ प्रगट प्रभुपद अनुरागू।
बहुत धन्य जग जीवन पाई। जाहि सराहि रघुपति सेवकाई॥
× × × ×
अति बड़ सुकृत सिवाई। तुम्ह तजिबु अवध रघाई॥
रामरसायन, अयोध्याकाण्ड, 85, 162।

(2) राम रसायन, अयोध्याकाण्ड, 99, 191।

(3) डडडड जनकारी-जी तौं अब न कछु कहि जाई।
जो यह कहौं करिय प्रभु सेवा, सेवक रीति नसाई॥
जो फिरि कहा न आय सेव जो, प्राण कहत अकुलाई।
विश्वनाथ अवधेस दास हित, आपुहिं राम कराई॥
आनन्द रघुनन्दन, 2, पृष्ठ 51।

(4) लखि विमान डडडड जनकारी, प्रेम उमगि अति आयो।
तन्मय काम बस, पनस सरिस तन, तब जग जिवन भगायो॥
आनन्द रघुनन्दन, 7, पृष्ठ 136।

इस युग में आधुनिक विचारधारा की काव्य रचनाओं में पं० रामचरित उपाध्याय की "रामचरितचन्द्रिका" प्रसिद्ध है ।

चित्रकूटगढ़ के भरत " मानस" के भरत के समान ही राम भक्त हैं । उनका राम प्रेम पाठक के आदर्श को धारण किए हैं । यथा उनका कवि भरत-भाव की प्रशंसा करता रहा है ।[1] नाम, जप, स्मरण, श्रवण, कीर्तन आदि नवधा भक्ति के साधन इस ग्रन्थ में भी भरत ने अपनाये हैं । उनके हृदय में परा भक्ति का उदय है । महाराज रघुराज सिंह ने अपने राम स्वयंवर में प्रमुख रूप से बालकाण्ड की ही कथा का वर्णन किया है । अयोध्याकाण्ड की कथा को अति संक्षिप्त कर देने का कारण कवि का "भावुकभाव" है । इस संक्षिप्तता के कारण भरत के चरित्र का विकास भी नहीं हो पाया है । फिर भी प्रारम्भ से ही भरत के रामानुराग के दर्शन विभिन्न अवसरों पर होते रहते हैं ।[2] कक्ष-परिवार-प्रसंग में भरत का राम प्रेम दर्शनीय है । यह प्रेम इतना अधिक है कि देवताओं को भय है कि यदि भरत वनवास से आ गए तो राम को वन नहीं जाने देंगे, तब देवकार्य नहीं हो सकेगा ।[3] भरत के आचरण में नवधा भक्ति के अनेक साधन कवि ने दर्शाये हैं । जब तक राजभवन में रहे तब तक भरत उन्हीं साधनों को अपनाकर तपस्यारत रहे । नाम, जप, श्रवण, स्मरण, पाद पूजन, यम दम नियम का पालन आदि भक्ति के साधनों को धारण कर वे चौदह वर्ष तक तपस्या करते रहे ।[4] हनुमान ने उन्हें

- -

(1) भरत भाव भवि सकत न केवा । अपर कवीसहि अति अगम विशेषा ।
चित्रकूटगढ़, अयोध्याकाण्ड, पृ० 496 ।

(2) राम भरत के भक्त सनेह सत कवि न सकत कहि पार ।
प्रीति रीति चारों भाइन की मैं किमि करौं उचार ।।
रामस्वयंवर, 6, पृ० 160 ।

(3) राम स्वयंवर, 23, पृ० 745 ।

(4) जब हैं गवने राम वन, तब हैं छुटी बनाय ।
बन्धो भरत अति नेम हैं, मनहुँ धर्म बहु आय ।।
राम राम सुत सदा निरन्तर । पिता दोस जन्हुँ परि अंतर ।।
रहत सदा कन मूल अहारी । तापस वेष धर्म पथ चारी ।।
× × × ×
प्रभु पादुका पुनि हुत दीपा । आसन परनि सासनु दीपा ।।
प्रेम नेम कीन्हें मन माहीं । दैव अवधि रहिहैं तनु नाहीं ।।
रामस्वयंवर, 23, पृ० 936 ।

राम्प्रेम की मूर्ति था[1]। अयोध्या की जनता ने भरत को राम का श्रेष्ठतम भक्त स्वीकार किया[2]।

छायावादी युग में कविवर रामचरित उपाध्याय की रामचरित चिन्तामणि के भरत में राम-प्रेम की वह विह्वलता दृष्टिगोचर नहीं होती है जो अधिकांशतः भक्ति काव्यों में है। राम के वन विवास की अवधि में भरत शम, दम एवं नाम-स्मरण आदि साधनों को अपनाए रहे। पं० केशव प्रसाद मिश्र के " कोशल-किशोर" में भरत का स्वभावतः राम-प्रेम प्रशंसनीय है जिसे हम प्रभु भक्ति की संज्ञा न देकर भ्रातृ-भक्ति ही कहेंगे।

छायावादी युग में ही कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने अपने सुप्रसिद्ध काव्य " साकेत" की रचना की। " साकेत" के भरत स्वभावतः राम के भक्त हैं। उन्हें यह शरीर भी वांछनीय नहीं है जो उन्हें अपने प्रभु राम से भिन्न कर रहा हो[3]। साकेत के भरत की भक्ति भी सेवक-सेव्य भाव की है। प्रभु की पादुकाएँ उनके लिए प्रभु के समान ही पूज्य हैं[4]। राम वनवास की अवधि में वे साधन-भक्ति का आश्रय लेकर तपस्यारत हैं। उनका प्रेम का आदर्श चातक के स्वाति-प्रेम से भी बढ़ कर है[5] जो उनके इन शब्दों से स्पष्ट है- " रोक सकेगा कौन भरत को अपने प्रभु को पाने से।"

इसी युग की एक अन्य रचना " भरत-भक्ति" में भक्ति की आदर्शमय चर्चा की गई है तथा भरत को राम का आदर्श भक्त बताया गया है। पं० शिवरत्न शुक्ल द्वारा विरचित इस ग्रन्थ की भूमिका में " कवि ने भरत की भक्ति का विवेचन किया है। उनके अनुसार रामचन्द्र जी के साथ भरत का सहज स्नेह था। उनके बीच सूक्ष्म रूप से कनिष्ठ एवं ज्येष्ठ का भाव था। वे दोनों परस्पर सखा-समान थे। इसी लिए

---

(1) रामचरितमानस, 25, पृ० 945 ।

(2) जय कोसलपति प्रीतिरत, भरत सरिस कोउ नाहिं।
राम प्रेम को नियम करि, दीन्ह्यो नेह निबाहि॥
राम स्वयंवर, 25, पृ० 958 ।

(3) " तो इस काया पर नहीं मुझे कुछ माया।
तनु जाय यही यह इसी उदय के आगे,
मिल जायँ तुम्हीं में प्राण आज अनुरागे॥"
। साकेत, 8, पृ० 257 ।

(4) साकेत, 8, पृ० 263 ।

(5) " आज मात चातक जीता है, अपने व्रत का ध्यान किए।
आशा कर निज घनश्याम की हमने चरणों किए॥
साकेत, 11, पृ० 390 ।

भरत की भक्ति सख्य भाव की थी। भरत का सर्वस्व राम प्रेम के लिए समर्पित था, राज्य भी[1]।

इस ग्रंथ में भी भरत को स्वाभाविक रूप से ही प्रेमाभक्ति या साध्या भक्ति प्राप्त है, यद्यपि वे साधन भक्ति को भी अपनाये हुए हैं। भरत और राम एक प्राण हैं। राम प्राण बन कर उनके शरीर में निवास करते हैं[2]। राम सूर्य हैं तो भरत उनके प्रकाश हैं; राम चंद्र हैं तो भरत चाँदनी; राम जल हैं तो भरत मीन हैं[3]। भरत की दृष्टि में राम के सायुज्य की तुलना करोड़ों इन्द्र पद भी नहीं कर सकते हैं। राम की सेवा सेवा है तथा राज्य कूपा नीम[4]। राम उनके लिए सुख के भी सुख हैं। भरत-भक्ति के भरत नवधा भक्ति के साधनों को अपनाए हुए हैं। यम, दम, नियम तो उनके स्वभाव के अंग बन गए हैं। वे श्रेष्ठ तपस्वी हैं तथा ध्यानावस्था होकर निरन्तर राम का सामिप्य प्राप्त किए रहते हैं। अन्त राज्य लक्ष्मी के मध्य भी वे विरक्त हैं। महायोगी भरत वृत्तियों का निरोध कर आत्म-बोध प्राप्त कर चुके हैं। राम के ध्यान में लीन वे ब्रह्म के साथ एक रस होकर जगत के स्वामी होते हुए भी उससे विरक्त हैं। वे अनुराग के अश्रु से सुशोभित हैं। नाम स्मरण भी वे निरन्तर करते रहते हैं। परम प्रशांत भरत कभी किसी का दोष नहीं देखते। वे न तो कैकेयी की ही भर्त्सना करते हैं और न कुब्जा मंथरा पर ही रोष करते हैं। इस ग्रन्थ के अनुसार भरत में नवधा भक्ति के साधनों का आचरण इस प्रकार है -

श्रवण- करत सुमन गान प्रभु-यश, राम प्रीत सुखाय।
सुमन कीरति नाथ की गिरि, भरत कह सुखाय॥
भरत-भक्ति, 18,53।

कीर्तन- जपत सदा हरि-नाम, त्यागि जग की सब आसा। 14/35
तथा-
" रसना रट हरि-नाम, ध्यान-वाणी समाधि-धन"। 14/41

---

[1] भरत-भक्ति, भूमिका, पृ0 48-53।

[2] राम प्राण बनि उर शरीर मम, जीवत राखा मोही।
। भरत-भक्ति, प्रथम खंड, पद 30।

[3] भरत-भक्ति, 2,14।

[4] भरत-भक्ति 2,18।

स्थाय अवधा ध्यानः-

धृतिमन करत निरोध, बोध निज आतम होये ।
बाह्य दृष्टि कौं छाँडि, राम-पद अन्तर जोये ।।
सदा नाम आधार, सुरति कैं मन करि लीन्हौं ।
x x x x
रसना रट हरिनाम, ध्यान वाणी समाधि भव ।
तन मन प्रभु के साथ, यही की विधि पंथ जन ।।
।4/30 तथा 14/41

पाद-सेवनः-

लीन्ह पादुका धारि, भरत निज शिर सहचिन्ह चित ।
लह्यो बड़ो अवलम्ब, नाथ दीन्हौं जनु बहु चित ।।
तथा- 11/112
नंदिग्राम तपिजात, धारि पादुका सुदिन चित ।
करत ध्यान नित राम, त्यागि लरका सुत-जन चित ।।
14/27
तथा-
निसि दिन भक्-अति-भरत, राम-पद-पंकज सुत लह ।
छन छन नव अनुराग, मधुर मधु पिगत भरत रह ।।
14/54

अर्थ- पादुकाओं का अर्थ सुस्पष्ट है ।

वन्दन - राम की पादुकाओं की वन्दना तो भरत सदैव ही करते रहे । पदारविन्दों की वन्दना भी सदैव करते रहे ।

दास्यः- निज सेवक स्वीकार, लीन्ह प्रभु, राखि नाहि भव भय ।
आठ पाका करत, स्वामि की बसि दूरिहु जन ।।

सख्य- कवि ने इस काव्य की भूमिका में कहा है कि भरत की भक्ति सख्य भाव की थी ।

आत्म निवेदनः-

निसि दिन मन-अति-भरत, राम-पद-पंकज सुत लह ।
।4/54

औंहि जथा बरषहिं, कपटी निज प्रभु सरन मन ।
एक तीर को बेधि, महा बीरज सुरनहु जय ।।

।४/55

इसके अतिरिक्त "मानस" में राम द्वारा हनुमान की उपेक्षित कथा भक्ति के सम्बन्ध, राम कथा में प्रेम, गुरु के पादु-पादुकाओं की सेवा, निष्कपट भाव से प्रभु के गुणों का गान, नाम जप का फल प्रभु में दृढ़ विश्वास, दम, शील एवं विरक्ति, सन्तों विषय में प्रभु का सीख, परदोष देखे न जनना तथा सरल, निष्कपट भाव से प्रभु के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण आदि भी छः ग्रंथ के भरत में द्रष्टव्य हैं। तथा ये चतुर्दश सर्ग के 27 वें छंद से लेकर 55 वें छंद तक भरत के ध्यान, योग, भक्ति तथा उनकी भक्ति के प्रभाव की कथा की है। यह सम्पूर्ण प्रसंग ही भरत की भक्ति के दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण है।

अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामकथा में भरत की राम-भक्ति के विषय में दो ग्रंथ प्रमुख हैं- एक तो तुलसी कृत और दूसरा अन्य रामायण। तुलसी कृत के भरत को प्रभु राम की कृपा से प्रेमा-भक्ति का साध्या भक्ति स्वतः प्राप्त है परन्तु साधन-भक्ति के साधनों का अभ्यास वे स्वाभाविक रूप से करते रहते हैं। प्रभु के गुणों का गायन उन्हें परम प्रिय है। नाम की रट निरन्तर लगी है। स्मरण अथवा ध्यान की तो यह स्थिति है कि समूचा चित्त ही श्री रामचन्द्र को अर्पित है। वन के पथ पर श्रीराम के चरणों की धूलि को उन्होंने माथे पर लगाया तथा अयोध्या में चौदह वर्षों तक राम की पादुकाओं का अर्चन एवं वन्दन करते रहे। उनका सम्पूर्ण जीवन निष्ठापूर्वक राम की सेवा है। राम का प्रेम, उनकी भक्ति भरत को स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। वे साधना की उस उच्चावस्था तक पहुँच गए हैं जहाँ स्वामी के

- -

।।।। सदा रहति हरि-ध्यान, ज्ञान निज नय जय यह ।
उदय प्रेम नय भरी, नेह-रथ मन आरूढ़ यह ।।
गुन-अनुराग विवेक, कर्म-रथ गरुत्त मानि यनि ।
सत्य-सारथि धरि सुरति, विरति-भरि भरत भई जय ।। ।४/३६
यह सेवन जो विधि, रथ जय किय यह विजया ।
तब हैं राम सनाथ, साधु सीमा निज विजया ।। ।४/३१

।२।। माथे पर मेरी धूल चढ़ी, तुमरी कृपा फूल चढ़ी ।
है यह उपकार कभी उतरे, " श्रीराम" तुमार कभी उतरे ।

।३।। सुमन में एकनिष्ठा, रघु प्रा था ।
समूचा चित्त ही श्रीरामपद था ।। 10/45

साथ उनका तादात्म्य हो गया है- "अरुण जिनकी उन्हीं का हो गया मन, उन्हीं के पंथ का था पंथ जीवन" । वे त्रिगुणातीत अवस्था को प्राप्त हो गए हैं क्योंकि काम, क्रोध, लोभ को वे जीत चुके हैं अर्थात् रज, तम और सत् से ऊपर उठ चुके हैं[1]। साकेत में भक्ति की अवस्था देखिए-

> जो नहीं चित्त की वृत्ति किसी ओर लगी थी,
> जो गए वहीं वह भरत समाधि लगी थी ।
>
> 10/65

तथा चित्रकूट में राम की पर्ण कुटी की ओर जाते हुए भरत की प्रेमा-भक्ति के रस का अनुभव कीजिए-

> प्रति पद पर दण्ड-प्रणाम, पूत रज माथे ;
> प्रति-मुख परम कृतार्थ अहो ! से गाथे ।
> प्रति आँखों में वह चित्र तीर्थता आती ,
> प्रति ध्वनि में थी राम-राम ध्वनि छाती ।।
> जो थी लीन की बाह, अरण्य की आशा,
> जो थी तटीयता हेतु अतल अभिलाषा ।
> सब कुछ ध्यान में लगी, हुआ यों रण ,
> हो गया रामायण ही मधुर जन रैना ।।
>
> 11/14 तथा 15

" अरुण-रामायण" के भरत प्रेम-मुग्ध हैं । वे राम के परमप्रिय हैं, उनके सुख हैं । जो भरत की वाञ्छा है उसके ही राम सत्य प्राप्त होता है । भरत प्रेम की गरिमा की अभिव्यक्ति है । इस प्रकार वे प्रेमा-भक्ति के साकार स्वरूप हैं जिनके सामने भरताग्रज भी श्रद्धा से नमित हो गए हैं[2]। उनके अनुसार भरत से बढ़कर कोई अन्य

---

[1] न रज का काम, तम का क्रोध आया ,
न सत् के लोभ का अनुरोध आया ।
त्रिगुण को पार करते जा रहे थे,
त्रिलोकी पार बढ़ते जा रहे थे ।। साकेत संत 10/30 ।

[2] हे भरत ! तुम्हीं हो रामसूत्र जिसमें प्रकाश
सम्पन्न है हो जाता है सब पास
रस व्यापक नहीं अभिव्यक्ति प्रेम की गरिमा की
हो आत्मिक प्रकार हृदय की गरिमा के
जो तुम्हें जानकर किसी उसी राम सत्य
साकार हुए । भरा प्रणाम स्वीकार करो
है यहाँ कहीं रिक्तता हृदय में जो भरो ।।
अरुण रामायण, 2/273

प्रेम पुरुष नहीं है[1]। राम स्वयं उन्हें "प्रेम-दीप" कहते हैं। इस काव्य के भरत की आत्मा का तार राम से जुड़ा हुआ है। एक का मन दूसरे के मन में आलोड़ित है। उनका मन "सुधि-निष्ठ-प्रेम का स्वामी है जिसके कारण चित्त चिन्तन तन्मय है। ननिहाल से अयोध्या आने पर राम-प्रेम की इस उन्मादावस्था में भरत निमग्न से प्रतीत हुए थे। उस समय गुरु वशिष्ठ ने उनके प्रेम की उस स्थिति को पहचाना था। भरत को प्रभु की परम कृपा, उनका प्रेम तथा अनुग्रह स्वयं प्राप्त है। चित्रकूट में राम के निकट पहुँचते ही भरत की प्रेम समाधि लग गई। उधर राम भी प्रेम-विह्वल होकर भरत से मिलने के लिए दौड़ पड़े। प्रेम की पराकाष्ठा झाँकी देखिए-

सुधि लीन रहे कुछ क्षण तक प्रेम विभोर भरत
सर्वस्व समर्पण से मानस में दिव्य शान्ति

× × × ×

उठ उठे राम होकर अधीर, गिर पड़ा तीर
गिर पड़े वस्त्र-सरवस, छलका व्यापित शरीर

× × × ×

सट गए प्राण से प्राण, हृदय से हृदय जुड़ा
बाहों में बँधे रहे दोनों-प्रिय राम-भरत।
दोनों की प्रेम-समाधि देख, निर्वाक सभी

× × × ×

देखा न किसी मुनि ने अब तक ऐसा मिलाप
दोनों ने प्रेम सिन्धु को सब विधि लिया नाप।

2/295

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वाल्मीकि के भरत भ्रातृ-प्रेम का उत्तम उदाहरण हैं। राम के अवतारी होने की कल्पना के साथ ही परवर्ती संस्कृत काव्य में यह भ्रातृ-प्रेम प्रभु-भक्ति के रूप में परिणत होता गया। रामायण की विभिन्न शाखाओं

- -

(1) तब कहता हूँ हे भरत। आप में हुआ धन्य।
तुमसे उत्तम सुधि प्रेम-पुरुष है नहीं अन्य।। 2/274

(2) बोले वशिष्ठ विख्यात सखा कौशल्या के
आलोड़ित उनका मन उनके उन्मत्त मन में
सुधि-निष्ठ प्रेम के कारण ही प्रिय प्रतिबिम्ब चित्त
उन्मत्त में देखा-चित्त आनन्द मग्न।

2/254

के विकास के साथ यह भाव भक्ति के विविध रूपों से जुड़ गया । हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य से प्रभावित है । उसमें प्रारम्भ से ही राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है और उनसे सम्बन्धित काव्य भक्ति-भावना से लिखा गया है । भक्ति-काव्य में भरत के चरित्र का विकास राम के अनन्य-भक्त के रूप में हुआ है जो अधिकांशतः मर्यादावादी काव्यों में द्रष्टव्य है । इसके अन्तर्गत भरत को राम-कृपा से प्रेमा-भक्ति या साध्या-भक्ति स्वतः प्राप्त है । साधन भक्ति के साधनों का अभ्यास वे स्वाभाविक रूप से करते रहते हैं । राम के विरह में चौदह वर्षों तक जप, नियम, ध्यान, धारणा, समाधि, त्याग एवं वैराग्य का सतत अभ्यास करते हुए भरत ने प्रभु के पाद-पद्मों में पूर्ण आत्म समर्पण भक्ति युग के सभी काव्यों में किया है । रीति काल के राम-काव्यों में भरत का स्वरूप अंकित है। भक्ति के विकास का यही क्रम समेत दिखायी देता है । द्विवेदी युग के राम काव्यों में भी यही क्रम है ।

आधुनिक काल में छायावादी युग में रचित राम काव्यों में भक्ति के इस प्रवाह में एक मौलिक परिवर्तन हुआ है । अब कवियों की दृष्टि आध्यात्मिकता की अपेक्षा देश-भक्ति तथा मानवतावाद पर टिकी है । परिणामतः भरत का चरित्र भी इससे प्रभावित हुआ है तथा उनकी भक्ति की आधार शिला भी मानवीय युग ही है । परन्तु साधन भक्ति को इस युग के प्रमुख काव्यों में भी पर्याप्त रूप से स्वीकार किया गया है । 'साकेत' इसका उदाहरण है । इस युग के "भरत-भक्ति " काव्य में तो भक्ति के सिद्धान्तों का तथा भरत की भक्ति का विशद रूप से वर्णन किया गया है ।

आधुनिक युग । छायावादोत्तर। में तो भक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप को सीधे स्वीकार किया गया है । यहाँ " साधन" की अपेक्षा "प्रेम" को अधिक महत्व दिया गया है । "प्रेम" की तीव्रता के कारण " प्रिय" का स्वरूप अन्तर्मनों के सम्मुख प्रकट हो जाता है । प्रेमी भक्त प्रिय के ध्यान में तल्लीन होकर उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है जिसमें उसके मन-प्राण प्रिय से मिल जाते हैं तथा उसकी शारीरिक स्थिति "विदेह" जैसी हो जाती है, अर्थात् उसे सुख दुःख,हर्ष-शोकादि द्वन्द्व पीड़ित नहीं करते हैं । वह अपने तन की सुध-बुध भूलकर प्रियतम प्रभु के साथ तादात्म्य हो जाता है । प्रेमाधिक्य के कारण प्रभु का ध्यान करते ही समाधि सी लग जाती है । " साकेत-सौध" के कवि ने भरत की इस प्रेममयी दशा की ओर संकेत किया है और अन्य रामायण में इस "सुधि-विस्मृति-विज्ञान की स्पष्ट चर्चा की गई है । इस प्रकार आधुनिक कवियों ने साधन-भक्ति पर बल न देकर भरत को सीधे ही साध्या-भक्ति तक पहुँचा दिया है ।

- - - - - - -

भरत के व्यक्तित्व के आधार स्तम्भ:

(शील, विनय, त्याग, निर्मल चरित्र)

भरत की भक्ति भावना तथा उनके राम-प्रेम की विशद चर्चा ऊपर की जा चुकी है। भरत का राम-प्रेम भी स्वार्थमय नहीं है परमार्थमय है। भरत सब के हित के लिए अपना हित त्याग सकते हैं। समष्टि के लिए व्यष्टि के त्याग सिद्धान्त का वे भली भाँति निर्वहन करते रहे हैं। राम के लिए उन्होंने राज्य त्याग दिया और जब चित्रकूट में उनकी अनेक अनुनय-विनय पर राम ने उसे स्वीकार नहीं किया तब उन्होंने धरना देने का निश्चय किया। परन्तु राम द्वारा वन में देव कार्य किए जाने का ज्ञान होते ही उन्होंने राम के सान्निध्य का अपना परम सुख त्याग कर देवों तथा मानवों के हित के लिए अयोध्या को लौट जाने का निश्चय कर लिया। पर-दुख दुखी दयालु भरत सब के हितैषी हैं। उनका यह मानवतावादी दृष्टिकोण उनको मानवों में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करता है। उनकी भ्रातृ-भक्ति सेवक-धर्म से संश्लिष्ट है। यही कारण है कि उनमें विशेष नम्रता एवं विनयशीलता है। चौदह वर्षों तक अयोध्या का शासन करते समय उनका त्यागी शासक रूप भी सामने आया है। उनके तपस्वी रूप का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक विभिन्न रामकाव्यों में भरत के चरित्र के आधार-स्तम्भ रहे हैं-राम भक्ति एवं भ्रातृ-प्रेम, सेवक-धर्म, त्याग, विनय, शील, राजनीतिक आदर्श तथा प्रवृत्ति एवं निवृत्ति परक विचार। कुछ ग्रंथों में उनके गार्हस्थ जीवन पर भी प्रकाश डाला गया है। इनमें से राम-भक्ति तथा भ्रातृ-प्रेम के विषय में ऊपर पर्याप्त चर्चा की जा चुकी है, शेष गुणों की विवेचना नीचे की जा रही है:

सेवक धर्म:-

भक्त कवियों में से अधिकांश ने माना है कि सेवक-सेव्य भाव की भक्ति श्रेष्ठ है। तुलसी का मत है:-

सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम-पद-पंकज अस सिद्धान्त बिचारि॥

सेवक-सेव्य-भाव से ही भवसागर से मुक्ति संभव है। इसका मनोवैज्ञानिक आधार यह है कि सेवक के लिए स्वामी की आज्ञा, उसकी हित कामना ही सर्वोपरि

है। इस सेवा में उसे अपने अहंकार को पूर्ण रूपेण नष्ट में करना होता है। अहंकार के शमित हो जाने पर ही मन-वचन-कर्म से स्वामी की सेवातन्मय है। दास भक्त को अपने "स्व" को आराध्य में लय करना होता है। सख्य आदि भावनाओं से की जाने वाली भक्ति में इस "स्व" का पूर्ण विलय प्रभु में नहीं हो पाता है। कहीं न कहीं "स्व" रह ही जाता है। सेवक स्वामी के सम्मुख अपने व्यक्तिगत अधिकार को नहीं जता सकता। सेवक का सेव्य के प्रति प्रत्येक कर्म समर्पित है। वह अपनी स्वतंत्र सत्ता को भुला देता है। स्वामी की प्रसन्नता में ही उसकी प्रसन्नता है, स्वामी की रुचि में उसकी रुचि है।

भरत राम के इसी प्रकार के सेवक हैं। लगभग सभी राम-काव्य-गायकों ने उनकी भक्ति को सेवक-सेव्य भाव की भक्ति कहा है। वाल्मीकि-रामायण में वे आज्ञाकारी, श्रद्धालु एवं प्रेमी भ्राता हैं परन्तु परवर्ती संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी राम-काव्यों में उनका सेवक-भाव अधिक प्रबल होकर उभरा है। "मानस" के भरत की प्रशंसा यह कह कर की गई है कि "सेवक-सेव्य सुभाव सुहावन। नेम प्रेम अति पावन पावन"। सेवक के जिन गुणों की चर्चा नीति शास्त्र ने की है वे सब अपने उत्कृष्टतम रूप में भरत में विद्यमान हैं। प्रभु की आज्ञा उनके लिए सर्वोपरि है। सेवा-धर्म से सम्बन्धित उनके ये सिद्धान्त सच्चे सेवक के सदैव मार्गदर्शक रहेंगे।

(1) करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई।
(2) सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सबसे सेवक धर्म कठोरा॥
(3) मोरें सरन रामहिं की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही।
(4) जो सेवकु साहिबहिं सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥
(5) सेव्य सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा॥

चौदह वर्षों तक नन्दि ग्राम में निवास भरत के सेवक धर्म की कसौटी है। राम को वनवास काल में उन्होंने भी तपस्वी के सांगोपांग धर्म का निर्वहन किया। स्वामी वनवास के कष्ट उठायें तो सेवक राजसुख कैसे भोग सकता है। भरत ने ऊर्ध्वगामी साधना को अपना कर अपने सेवक धर्म के आदर्श को प्रस्तुत किया है।

नीति का सिद्धान्त है कि सेवक और सेव्य में अनुरूपता और अनुकूलता होनी

पारिवार । भरत और राम के प्रेम में यह स्थिति स्पष्ट सिद्ध है । "मानस" के राम अन्तर्यामी हैं और भरत भी "निज नाथ" के स्वभाव को जानते हैं । रीतिकाल तथा उसके पश्चात् के कवियों ने राम और भरत में सेवक-सेव्य भाव को तो स्वीकार किया है परन्तु भक्ति-भावना का जैसा विकास नहीं हो पाया है जैसा मानस में है । आधुनिक युग के राम काव्यों में सेवक-सेव्य-भाव पर आग्रह का नहीं दिया गया है परन्तु राम और भरत की अनुरक्तता एवं अनुकूलता स्वीकार की गई है । यहाँ भरत की स्थिति इससे भी आगे बढ़कर है । भरत का मन, बुद्धि और अहं तक राम से तादात्म्य है:-

"मन बुद्धि अहं तक एक हुए हैं मिल कर
थी एक नीलिमा केवल जहाँ कुछ अन्तर ।।"

सेवक का प्रत्येक कार्य स्वामी के लिए समर्पित होता है । उसका अपना कोई ध्येय नहीं । भरत ने भी अपने सम्पूर्ण कृतित्व का कोई ध्येय नहीं लिया । वे तो राम की कृपा से माध्यम मात्र हैं ध्येय तब राम को ही है ।

"मोरें तुम प्रभुहिं जो फलहीं । राम कृपाँ नाहिं कछु सकुचहीं ।।"

त्याग:-
====

भरत का स्वभाव अनुराग और विराग दोनों से ही समन्वित है । राम के प्रति अनेक उनकी असीम अनुरक्ति है और राज्य-वैभव एवं सांसारिक सुख भोग के प्रति असीम विरक्ति है । राम भरत के प्रेमास्पद हैं । उनके प्रति भरत का अनुराग इतना प्रगाढ़ है कि वे उनके लिए सम्पूर्ण सुख-भोग का परित्याग कर सकते हैं । वस्तुतः मन के आकर्षण का केन्द्र प्रवृत्ति है जो भरत के लिए राम हैं और मन के विकर्षण का केन्द्र विरक्ति है जो भरत के मन में सांसारिक सुखोपभोग के प्रति है । राम के प्रति इसी आकर्षण एवं प्रेम ने भरत को भक्त शिरोमणि बना दिया है तथा विरक्ति उनके मन का स्वाभाविक गुण बन गया । यह विरक्ति उनके महान् त्याग में प्रस्फुटित हुई है । भरत ने केवल राज्य का ही त्याग नहीं किया अपितु घोडश वर्षों तक जीवन के समस्त भौतिक सुखों का त्याग किया है । उनके साथ ही इन सब सुखों का त्याग उनकी अर्धांगिनी प्रिया ने भी किया है । भरत का यह त्याग इस सब से भी ऊपर है और वह है राम की आज्ञा पालन हेतु अपने परम प्रियतम राम के सान्निध्य-सुख का भी परित्याग । त्याग का संसार में यह अनोखा एवं अद्वितीय उदाहरण है । इस प्रकार का तो कोई विरल उदाहरण देखा भी जा सकता है जहाँ प्रेमी ने प्रिय के सान्निध्य के लिए वैभवादि का

त्याग किया है परन्तु ऐसा कोई भी उदाहरण न होगा जहाँ तब कुछ त्यागने के पश्चात् प्रिय की आज्ञा के पालनार्थ प्रिय के सान्निध्य सुख का भी त्याग किया गया हो। यह दिव्य त्याग केवल भरत ने किया है।

राम ने माता-पिता की आज्ञा के पालनार्थ तथा भरत के स्नेह को ध्यान में रखकर राज्य का सहर्ष त्याग कर वनवास को स्वीकार कर लिया। भरत ने कुल, न्याय एवं सुजनता के लिए न केवल राज्य एवं सांसारिक सुख त्यागा अपितु अपना अभीप्सित भी त्याग दिया। राम ने विमुख रानी व्यथित भरत के लिए त्याज्य हैं। राम के प्रिय उनके प्रिय हैं तथा राम के विरोधी उनके दुश्मन नहीं। वे उनके लिए त्याज्य हैं। स्वयं अपनी माता कैकेयी का भी उन्होंने तुलसी के अनुसार त्याग कर दिया था-"जे पिता प्रह्लाद विभीषन बंधु भरत महतारी"।

रामायण से लेकर लेखक के सभी कवियों ने तथा हिन्दी राम काव्य के सभी रचयिताओं ने भरत का त्यागी स्वरूप कमल रूप का ही वर्णित किया है। आधुनिक कवियों ने कैकेयी के चरित्र का उदात्तीकरण किया है, अतः उन्होंने भरत द्वारा मातृ-त्याग की बात नहीं कही है।

शील एवं विनय:-

भरत के चरित्र का एक प्रमुख गुण उनकी विनय शीलता है। वे नम्र एवं विनयी हैं। आदि काव्य से लेकर आधुनिक राम काव्य तक उनकी यह विनयशीलता अक्षुण्ण है। भरत की इसी विनयशीलता एवं राम भक्ति के सम्मुख उत्तरीय निषादराज नम्रित हो गया था। उनकी विनय और राम भक्ति ने भरद्वाज ऋषि के मन में और के स्थान पर सदा की जगह दिया। अयोध्या के नागरिक माता कौसल्या, गुरु वशिष्ठ, सम्पूर्ण राज-परिवार आदि सभी भरत की नम्रता एवं विनयशीलता पर मुग्ध हैं। वाल्मीकि रामायण में राम ने उनसे स्पष्ट ही कहा था कि तुम में जो विनयशील बुद्धि है वह सम्पूर्ण लोक का शासन करने में समर्थ है जैसे 'अयोध्या राज्य की तो बात ही क्या है।'[1] हनुमान भी भरत के प्रथम दर्शन के समय ही उनकी विनय शीलता एवं राम भक्ति से अत्यधिक प्रभावित हुए थे।

उनकी यह विनयशीलता उनकी भक्ति से जुड़ी हुई है। वे भक्त हैं और सच्चे भक्त के स्वभाव में नम्र, विनय एवं सारल्य स्वाभाविक रूप से ही आ जाते हैं। नम्रता तथा विनय जो प्रेम की व्यापकता का परिणाम है जो भक्त को अपने प्रेमी

---

[1] आज्ञाः सदार्थिनी बुद्धिः त्वया वैनयिकी च या।
अवस्थाने च भावे च दृष्टिर्न व्यभिचारिणी॥ 11.16.13 वाल्मीकि 2.112.16।

स्वभाव के कारण स्वाधीनता है। स्वाधीनता सत्ता की सच्ची भक्ति का सफल आधार गया है। भरत की यह विनम्रशीलता भी राम के प्रिय जनों के प्रति है। राम के विरोधियों के प्रति वे बराबर क्रुद्ध हुए हैं। "मानस" में कैकेयी अतीव के अतिरिक्त शेष कोई अवगुण नहीं आया है परन्तु कैकेयी की राम वन्दिता में वे राम के प्रति अनुचित क्रोध करने वाले परशुराम को भी के लिए लालायित हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्धतम अन्य रामकाव्यों में से किसी किसी में कुछ बात का उल्लेख किया गया है। कुछ आधुनिक रामकाव्य भरत, माण्डवी अथवा कैकेयी को ही मुख्य पात्र बना कर लिखे गए हैं। इनमें भरत के स्वरूप की अधिक व्यापक एवं विस्तृत कल्पना की गई है। इनमें से कुछ में मन्थरा से भरत के कुछ का वर्णन भी किया गया है। इनमें भी भरत में उत्साह तथा कुछ लोगों को प्रदर्शित किया गया परन्तु वे अपनी स्वाभाविक विनम्रशीलता का परित्याग नहीं करते।

भरत के स्वभाव की कोमलता, उनकी सरलता तथा निष्कपट सज्जनता का वर्णन सभी कवियों ने किया है। सम्भवतः कोमल भरत किसी का दुःख नहीं देख सकते हैं। शिकार के समय आखेट हरिण की करुण दृष्टि उन्हें मूर्छा से घिरा कर देती है। तमसातीर में गिरा हुआ आखेट क्रुद्ध उनके मन में क्या उत्पन्न कर देता है। सज्जनता एवं निःस्वार्थता को वे कभी नहीं भूले हैं। "भगवान राम" काव्य में राम स्वयं भरत की प्रशंसा करते हैं:-

"सौजन्यशील प्रतिमा सुति मानमाली
प्रेमा अतीव करुणा सरितेश से है।"

राजनीतिक आदर्श:-

कुल मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
सुखिया सुत सो वाहिये जन पाल बहु रंक।
बारह पीरह सम अरु सुखी सहित निसंक॥

"मानस" 2/315।

राजनीति का यह सार उपदेश राम ने भरत को दिया था। यही कारण और राजनीति के सदोष के रूप में भरत ने ग्रहण किया तथा चौदह वर्षों तक राम के राज्य का संचालन किया। सुहृद के राजाओं का विचार था कि किसी राज्य में

॥॥ कुल रीति जानहहु की, कुल की आँखों में लगाई।
कुलटा भरत हुए हैं, कलमुहाँ की कमी॥ ता०स०-तौ०,2,15।

प्रिय प्रजा दुखी रहती है वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी है। अतः भरत ने प्रजा के सुख की सब प्रकार से व्यवस्था की।

भरत की राजधानी अयोध्या में प्रवेश करना अभीष्ट न था अतः उन्होंने नगर के बाहर नन्दिग्राम में रहकर राज्य संचालन किया। उन्होंने राजा की अनुपस्थिति में चौदह वर्षों तक पादुकाओं को सिंहासनस्थ कर अति सफल राज्य संचालन किया। वाल्मीकि के अनुसार उनके शासन काल में अयोध्या का राजकोष एवं समृद्धि दस गुनी वृद्धि को प्राप्त हुई थी। मात्रा में इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं किया गया है। पुराणोत्तर रामकथाओं में से कुछ में इस समृद्धि-वृद्धि का उल्लेख किया गया है। आधुनिक युग के कवियों की दृष्टि इस ओर विशेष रूपसे गई है।

आधुनिक युग के कवि गांधीवाद से प्रभावित रहे हैं। परिणामतः उन्होंने भरत के नन्दिग्रामवास को ग्राम विकास से जोड़ा है। श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र इस दिशा में प्रमुख हैं। उन्होंने श्री भरत के द्वारा किए गए सुशासन के एक नवीन प्रयोग के रूप में लिया है। जो भी हो भरत ने नंदिग्राम वास से ग्रामों का महत्व अवश्य बढ़ाया। ग्राम ही किसी राज्य की प्रथम इकाई है। उनके विकास से ही सम्पूर्ण की व्यवस्था का सुधार, सम्पूर्ण देश का विकास तथा समृद्धि सम्भव है। "साकेत तो" में ग्राम विकास को विशेष महत्व दिया गया है। श्री मिश्र जी ने अपने "राम-राज्य" में ही विकसित और अविकसित ग्रामों की तुलना कर के इस ओर विशेष संकेत किया है। राम ने उस समय अत्याचारी राजाओं का संहार कर उत्तर से दक्षिण तक की समस्त जातियों को एक-सूत्र में बाँधा था और भरत ने ग्रामों का विकास कर देश की आर्थिक व्यवस्था को सुधार कर देश की समृद्धि में दस गुनी वृद्धि की थी। दोनों का महत्व अपने-अपने स्थान पर है।

विश्व का भरण-पोषण करने वाले भरत राम राज्य के मुख्य प्रबन्धक थे। आय-व्यय, राजस्व एवं राजकोष सब भरत के ही हाथ में था। भरत द्वारा संचालित शासन परम्पराओं को ही राम ने अपने शासन काल में स्वीकार किया। महाकाव्यकवियों ने तो समस्त राज्य व्यवस्था भरत के हाथों सौंप कर राम को सुख विलास के लिए अवकाश प्रदान किया ही है।

प्रासंगिकता:-

रामायण में क्या पात्र राम हैं और भरत एक महत्वपूर्ण पात्र हैं। इस दृष्टिको

---

(1) रामचरितमानस 2.71।

है राम के गृहस्थ जीवन का तो वर्णन किया गया है परन्तु भरत का उतना ही परिचय-वर्णन किया गया है जितना राम की कथा-विकास में आवश्यक है। परिणामतः उनके गृहस्थ जीवन का वर्णन संस्कृत काव्यों में नहीं किया गया है। केवल आनन्द रामायण में अब राम का भरा पूरा सुखी परिवार दिखाया गया है तथा पुत्रों के जन्म एवं विवाहादि का वर्णन किया गया है तीसरी भरत का भी यथास्थान उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण पर आधारित होने के कारण हिन्दी रामकाव्य में लगभग पूरी तरह भरत के गृहस्थ जीवन का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है।

आधुनिक युग में चित्रण में परिवर्तन हुआ है तथा रामकथा के अनेक पात्रों को महत्त्व प्रदान किया गया है। कुछ उपेक्षित पात्रों पर ग्रन्थ रचनाएँ की गई हैं जैसे उर्मिला, माण्डवी आदि पर। कैकेयी को निर्दोष सिद्ध करने हेतु कैकेयी पर भी रचनाएँ की गईं। कुछ कवियों ने भरत के आदर्शमय चरित्र से प्रभावित होकर भरत को ही अपने काव्य का विषय बनाया। इस प्रकार के उर्मिला, साकेत, भरत-मिलन, साकेत-संत, माण्डवी, कैकेयी आदि अनेक काव्यों की रचना इस निबन्ध में परिशिष्ट में की जा चुकी है। इन ग्रन्थों में भरत के गृहस्थ जीवन की सुन्दर कल्पना की गई है। प्रमुख कवियों ने इस गृहस्थ जीवन को अति सुखद, प्रेममय, सुख-सुविधा एवं हास-विलास सम्पन्न दिखाया है। परंतु राम-वन-गमन की घटना ने इस सुख को एकदम समाप्त कर दिया। भरत के दुःख एवं ग्लानि में माण्डवी सहभागी है। वह पति के सुख से सुखी और दुःख से दुखी है। जब भरत ने राम के विरोध में वीरव्रत का व्रत धारण कर लिया तो माण्डवी ने सहधर्मचारिणी के रूप में तपस्विनी बनना स्वीकार किया। उसने भी भरत के समान ही आदर्शमय त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया। "साकेत-संत" में भरत का दाम्पत्य अपने सुन्दरतम रूप में प्रकट हुआ है। श्री हरि औध सिन्हा की "माण्डवी" में तो और भी मौलिक कल्पनाएँ की गई हैं। यहाँ भरत का एक पत्नी व्रत दिव्य एवं अति सुन्दर प्रतीकात्मक रूप से तनिक भी कुण्ठित नहीं है। इस ग्रन्थ में भी माण्डवी पति के सुख-दुःख की भागी है। श्री सिंह ने यहाँ लंका के शासन का सम्पूर्ण भार भरत को सौंपा है यहाँ अन्तःपुर का प्रबन्ध, उर्मिला तथा माताओं आदि के सुख-दुःख की देख-रेख, सेवा सबकी सुख-सुविधाओं की व्यवस्था माण्डवी को ही सौंपी है। समस्त आधुनिक काव्यों में भरत और माण्डवी का गृहस्थ जीवन, प्रेम, विश्वास, त्याग एवं समर्पण से पूर्ण है। ऐसा सम्पन्न दाम्पत्य यहाँ त्याग की कठिन कसौटी से यहाँ वह अनन्य प्रेममय सौहार्द्र-सुमधुर एवं गौरवमय भी है।

विनम्रता :-

प्रत्येक राम काव्य में भरत परम विनयी हैं। उनकी विनम्रता के मूल में तीन कारण हैं। उनके अयोध्या लौटने के समय होते हैं जब वे अत्यंत दीन एवं दुःख से युक्त वातावरण में राम के समीप आने का निश्चय करते हैं। राज्य-त्याग उनके राम-प्रेम तथा विनम्रता दोनों का द्योतक है। वन में राम के समझाने पर अयोध्या लौटने का उनका निश्चय भी विनम्रपूर्ण है। यहाँ पहुँचकर गुरुजनों को सिंहासनाधिष्ठित करना उनके विनय एवं सुदृढ़ता का द्योतक है।

राम के राज्यसुख का त्याग करने पर उनकी उनके पिता बनने की सम्भावित भरत की दशा तथा विनम्रता का ही परिणाम थी अन्यथा अयोध्यापति भरत-तैयार तैयार था। इसी प्रकार सीता परित्याग के समय भी परम विनयी भरत ने राम को इस कृत्य से विमुख करने का प्रयत्न किया था। निर्दोष की दोष लगाना न्यायी भरत को असह्य था। राम काव्यों में जहाँ भी अनुचित कल्पनाओं का उल्लेख हुआ है भरत के परम विनयी स्वरूप के दर्शन किए जा सकते हैं। इस विषय के सोदाहरण कथा प्रत्येक खंड के भरत-स्वरूप विवेचन के साथ पूर्व में दी जा चुकी है।

निर्दोष चरित्र :- भरत का चरित्र प्रत्येक कवि ने पूर्णतः निर्दोष चित्रित किया है। राम के चरित्र में ताटका-वध, बालि-वध, शम्बूक-वध तथा सीता-निर्वासन आदि दोष देखे जा सकते हैं परन्तु भरत का चरित्र सर्वथा निर्दोष है। उनके चरित्र में मात्र एक दोष दिखायी देता है और वह है मातृ-भर्त्सना। परन्तु माता का अपराध तो उस भर्त्सना की तुलना में भी कहीं अधिक था। रामायण में यह भर्त्सना कठोरतम है। परवर्ती कवियों ने यह दोष दिखाई दिया। अतः उत्तरोत्तर भर्त्सना की उग्रता कम होती गयी है। "साकेत" में कैकेयी की भर्त्सना अत्यंत न्यून है तथा उनके परवर्ती काव्यों में और भी कम। इसके अतिरिक्त भरत के चरित्र में अन्य कोई दोष-दोष दृष्टव्य नहीं है। उनका निर्मल चरित्र सभी दृष्टिकोणों से पूर्णतः विशुद्ध है। उसमें केवल सत्यमुख है, तमस का तो निशान भी नहीं है।

भरत के परम-पावन चरित्र की पावनता का संकेत प्रत्येक युग के राम काव्य में किया गया है। वे त्याग, दया, प्रेम तथा भक्ति के परमोत्कर्ष हैं। प्रेम की साकार मूर्ति हैं तथा वह का वे विशुद्धतम स्वरूप हैं। उनका यश: पुंज निष्कलंक है। उनकी कीर्ति अतीव है। सत्य में भरत की यह प्रशंसा सर्वथा सार्थक है -

> यश विमुक्त विमल सरल जस तोरा।
> रघुवर कीरति सुरुचि कठोरा॥

अडिग तटा अकंप कभूँ ना ।

छीन न का कम दिन दिन हुआ ।।

साथ ही यह कथन भी उनके अडिगीय स्वभाव एवं निर्मल चरित्र को ही प्रकट करता है । राम ने विलाप में भरत से कहा-

" उठ, भाई, तुम तजा न तुझे , राम कहा है,

तेरा पकड़ा बाहु, भूमि पर आज पड़ा है ।

साकेत/12/492 (पू०)

और अन्य रामायण के भरताग्रज की यह भरत प्रशंसा उनके निर्मल चरित्र की चौरास है-

मन कर्म की में तुम्हारा ना तोड़े कुन्दी' ।

हे राजजी । अनुभव मानस पर तोड़े कुन्दी' ।।

भरत की परिभाषा तो राम ने ही है-

" तुम ही तुम जिसमें वहीं भरत मेरा भाई ।

उसकी सम्पत्ति मेरे प्राणों पर छाई ।।

- - - - - - - - - - -

छठा अध्याय

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में भक्ति-भावना की उपादेयता

(क) आधुनिक युग की आत्मा-सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास:- हमारे दार्शनिकों, कवियों एवं नीतिवेत्ताओं ने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को ही जीवन का परम पुरुषार्थ माना है। धर्म अर्थात् कर्तव्य को ले कर उपेक्षाओं को पूरा करने की तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त की। जीवन की सफलता के लिए सभी पक्षों का विशेष आधारभूत है। धर्म की व्याख्या विशद है। यह मानव के अपने तथा समाज के प्रति कर्तव्यों से सम्बन्धित है। सदाचरण के समान सिद्धान्त उसमें निहित हैं। हमारी संस्कृति में धर्मयुक्त की उपेक्षा की गई थी। आज हमारे समाज के अधिकांश जन जीवन के इस मूल सिद्धान्त को भूलते जा रहे हैं। सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का निरन्तर ह्रास हो रहा है।

यह संस्कृतियों का संक्रमण-काल है। पाश्चात्य संस्कृतियाँ भौतिकतावादी हैं। उनमें भौतिक समृद्धि का कारणपूर्ण आकर्षण है। अनुकरण करने का उस ओर खिंच जाना स्वाभाविक है। हमारी संस्कृति आध्यात्मिक आधार पर टिकी है। प्रबुद्ध पाश्चात्य विचारकों ने भी उसके महत्व को समझा है और वे उस ओर आकृष्ट हुए हैं। हमारी समस्या यह है कि हमारे दार्शनिक-कवि एवं नीति-कारण कुछ गहन तथा चिन्तन हैं कि उन तक साधारण व्यक्ति का प्रवेश नहीं हो पाता है, इसलिए नैतिक मूल्यों में अवमूल्यन हो रहा है। इस सांस्कृतिक संक्रमण काल में समय रूप में नैतिक सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है। उनकी सरल व्याख्या एवं आकर्षक उदाहरण की उपादेयता को पुनर्स्थापित करना अनिवार्य होता जा रहा है।

चार्वाक आदि भौतिकतावादी दार्शनिक हमारे देश में भी हुए हैं परन्तु अध्यात्मवादी लोगों की तुलना में वे लोकप्रियता प्राप्त न कर सके। इस युग के भी मार्क्स आदि भौतिकतावादी विचार को निरीश्वर ही मानते रहे हैं। वह-देवादि सीमित से भिन्न आत्मा, जीवन तथा पुनर्जन्म आदि में उनका विश्वास नहीं है, परिणामतः कर्मफल को एवं उसके विपाक को भी वे नहीं मानते। उनका प्रभाव भारत के विद्वानों एवं युवकों के मन को प्रभावित कर रहा है। उसके प्रभाव से आज भारत की भी अधिकांश युवा-पीढ़ी चार्वाक, पतिन्त, अग्नि, मुक्तपाद, कणाद आदि महर्षियों की भारतीय व्याख्याओं को अंधविश्वास, अनर्थ, रूढ़िगत एवं लोकमूढ़ मानती है। इसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि हम अपने नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को तो अवमानना कर रहे हैं और युवकों के अधिक

अथवा अनुचित मूल्यों को किस भी प्रकार सभी स्वीकार कर रहे हैं जिससे एक सामाजिक अव्यवस्था सी उत्पन्न होती जा रही है। जब तक मानव-मन में कोई निश्चित सांस्कृतिक मूल्य स्पष्ट रूपों अंकित न हुए हों, जब तक उसको उनके प्रति कुछ विश्वास न हो तब तक वह उन पर आचरण नहीं कर सकता है। आज की आवश्यकता है कि नयी पीढ़ी के मन में स्वस्थ सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना की जाय तथा उनको जो अच्छे संस्कार प्राप्त हुए हैं उनको दृढ़ किया जाय।

नैतिक मूल्यों के ह्रास तथा सांस्कृतिक मूल्यों एवं परम्पराओं की अवमानना का भीषण परिणाम हमें चारों ओर आज के उपद्रवों, अनाचारियों की बहुतायत, भ्रष्टाचार एवं अन्यान्य समाज विरोधी क्रिया-कलापों के रूप में दिखाई दे रहा है। देश की सीमाओं पर तथा सीमा प्रान्तों में हो रहे विप्लव भी स्वार्थ, द्वेष-द्रोह एवं नैतिक-पतन का प्रभाव हैं।" कभी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की वास्तविकता की पुकार अपने स्वार्थ के सामने किन्हीं सुनाई न पड़े उनकी दयनीय मानसिक स्थिति के विषय में सोचना ही पड़ेगा। कठोरता एवं क्रूरता को दूर करने के लिए दया, करुणा एवं मानवता के आदर्श प्रस्तुत करने होंगे। द्वेष, हिंसा तथा कठोरता के दुष्परिणाम बताना आवश्यक है। और स्वार्थ, लोभ तथा कुटिलता के निवारणार्थ त्याग, निर्लोभता तथा सरल आचरण के आदर्श प्रस्तुत करने होंगे। वस्तुतः प्रेम, त्याग, करुणा, दया आदि सात्विक भावनाओं के उदय से ही स्वार्थ आदि निकृष्ट भावनाओं का दमन हो सकता है। जब तक मानव का मानव के प्रति भ्रातृत्व प्रेम-भाव जाग्रत न होगा तब तक वह दूसरे के सुख को अपना सुख और दूसरे के दुःख को अपना दुःख नहीं समझ पायेगा। प्रेम, सरलता, करुणा, दया तथा कर्तव्य-परायणता के आदर्श हमें राम-कथा से अति सरल और स्वाभाविक रूप में मिल सकते हैं। श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी का कथन है कि, " भारत आज जिस प्रकार विकृतकारी तत्वों से ग्रस्त हुआ है, उससे मुक्ति पाने का एकमात्र उपाय है- श्री राम की कार्य-पद्धति का अनुसरण- उस कार्यपद्धति का अनुसरण, जिसने भारत को अखण्ड प्रभुसत्ता के अधीन कर दिया, जिसके कारण मानव के आधार से विमुख होने के विचार समाप्त हो गये, एक मत्य, एक विचार में सभी संलग्न हो गये, स्वार्थ लोलुपता पर मानव की आत्मता ने विजय पायी, सभी दूसरे के दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख समझने लगे, दूसरों की हानि को अपनी हानि मानने लगे और सभी प्रभुसत्ता में लीन हो गए।"

---

(१) कल्याण, जीवनादर्श, पृ० ५२ ।

रामराज्य के आधार-स्तम्भ भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के आदर्शों की आज के भारत को बड़ी आवश्यकता है ।

(ख) वर्तमान युग में भरत चरित्र और भरत के मानवीय गुणों की उपयोगिता:-

राम-कथा का प्रत्येक पात्र आदर्श है । वह एक ऐसा अखण्ड आदर्श है जो सब युगों में सबके लिए अखंडित रूप से आदर्श प्रस्तुत करता है । उसका लौकिक पक्ष इतना विस्तार पा गया है कि वह अलौकिक सा प्रतीत होता है, परन्तु उसका महत्व उसकी अलौकिकता में नहीं अपितु उसके इस लोक, इस धरती से जुड़े होने के कारण है । भारत की धरती का कवि ही ऐसा दीर्घद्रष्टा हो सका है कि उसने ऐसे अनुपम चरित्रों का निर्माण किया है जो सभी युगों में अद्वितीय हैं तथा सभी युगों में अनुकरणीय हैं । राम-कथा-पात्रों में भी भरत का चरित्र उज्ज्वलतम है ।

भरत के भव्य-चरित्र में सभी मानव-मूल्यों एवं उसकी सद्प्रवृत्तियों का परम-विकास दृष्टिगत होता है । जैसा ऊपर कहा जा चुका है भारतीय मनीषियों ने जीवन का उद्देश्य चार परम पुरुषार्थों की प्राप्ति बताया है । वह पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष । इनमें से धर्म व्यवहार को, अर्थ धन को, काम उपभोग को तथा मोक्ष अध्यात्म को निर्दिष्ट करते हुए जीवन-पथ को आलोकित एवं प्रशस्त करते हैं । भारतीय संस्कृति इनके परस्पर संतुलन पर बल देती रही है । इसीलिए धर्म को प्रमुखता दी गई है क्योंकि वह नैतिक उपलब्धियों के माध्यम से आध्यात्मिकता उपलब्धि का साधन है । धर्म में धारण करने की शक्ति है अर्थात् उसमें व्यवहार को समाज के कल्याणार्थ नियंत्रित करने की शक्ति है- अनुशासित करने की शक्ति है । धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन का तात्पर्य है लोभवश अनुचित साधनों से धनार्जन की ओर बढ़ते हुए व्यक्ति को रोकना तथा ईमानदारी से ही धनोपार्जन करने की ओर प्रेरित करना अर्थात् शास्त्र सम्मत न्यायपूर्ण साधनों से किया गया धनार्जन श्रेष्ठ है तथा इस लोक और परलोक में कल्याणकारी है ।

धर्म और काम का संतुलन निर्बाध भोग कामनाओं को नियंत्रित रखता है । भोग-कामनाओं पर धर्म का नियन्त्रण नितान्त आवश्यक है । इसके अभाव में व्यक्ति समस्त उत्तरदायित्वों को भूलकर, समस्त नैतिक सीमाओं को लांघ कर अपनी कामना-पूर्ति में संलग्न हो सकता है । यदि धर्म का अंकुश न हो तो व्यक्ति अपनी अधिक कामना-पूर्ति के लिए कुछ भी कर सकता है, किसी भी सीमा तक उसका पतन हो सकता है । काम-पूर्ति सब कालों में तथा देशों में व्यक्ति निरन्तर करता रहा है । अन्तर केवल यह है कि पहिले में वह कामना-पूर्ति परिवार की ओर किए किया,

निर्दुष्ट एवं निर्बाध रूप से तो सत्ता है परन्तु हमारे यहाँ इस पर धर्म का अंकुश है । हमारा दाम्पत्य भी धर्म के बन्धन में बँधा है जहाँ वासना की उच्छृंखलता नहीं है अपितु पावन दायित्वों की गम्भीरता है । समाज एवं व्यक्ति के सुखद दायित्वों से बँधा होने के कारण ही कुटुम्ब आश्रम श्रेष्ठ समझा गया है । धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति से मोक्ष प्राप्ति स्वतः हो जाती है ।

राम-कथा में भरत धर्म-अर्थ-काम के सन्तुलन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । उन्हें अधर्म से प्राप्त अर्थ ग्राह्य नहीं है । कैकेयी ने उनके लिए राज्य प्राप्त किया परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसकी प्राप्ति अधर्म से हुई है । " रामचरित चिंतामणि " में वे बार-बार कहते हैं कि "परन्तु उन्हें किसी भी प्रकार ग्राह्य नहीं है[1] । कुल-परम्परा के अनुसार राज्य ज्येष्ठ भ्राता राम का है । राम का राज्य छीनकर कैकेयी ने उनको दिया है । कैकेयी के इस पाप-कृत्य की पीड़ा भरत के मन में बहुत गहरी है । " रामायण " तथा " मानस " में कैकेयी की कटु भर्त्सना इसी का परिणाम है । वस्तुतः यह माता की निन्दा नहीं अपितु उस दुष्प्रवृत्ति की निन्दा है जो अर्थ के लोभ में परस्व हरण करा सकती है तथा व्यक्ति का अधःपतन कर पुत्र का निर्वासन और पति की मृत्यु तक करा सकती है । भरत के मन की यह गहरी पीड़ा राम के सामने व्यक्त हुई है -

" हे आर्य । रहा क्या भरत अभी-प्रिय अब भी,
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी,
पाया तुमने तट-तरु अरण्य- बसेरा,
रह गया अभी-प्रिय शेष तदपि क्या मेरा,

साकेत, 8, 246 ।

कैकेयी को यदि राज्य चाहिए था तो वह भी भरत जैसे पुत्रवधू के लिए कहीं भी प्राप्त करना सम्भव था[2] । परन्तु वह राज्य प्राप्ति कौशलपूर्वक होनी चाहिए

- -

(1) फिर तर्कियों ने तिलक भरत का करना चाहा,
राम-स्वत्व पर नहीं भरत ने हरना चाहा ।

(रामचरित चिंतामणि, 9,5)

(2) तू कहीं भी राज्य ही दे अभी,
तो न था तेरा तनय अभागी ।
और भू पर था न कोई भाग ,
छन-भागी हैं कहीं भी काग ।

साकेत, 8,197 ।

भी अपनी से नहीं ।

धर्म से प्रेरित कार्य मंगलमय परिणाम से युक्त होता है । भरत का सम्पूर्ण जीवन धर्म से प्रेरित रहा । स्मरणीय है कि वाल्मीकि ने भरत को धर्मों में श्रेष्ठ माना है । " मानस" के भरत तो "स्व" रहित सेवी हैं । उनका सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याण तथा लोक-मंगल के लिए समर्पित है । " परहित सरिस धर्म नहीं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ।" के सिद्धांत पर आचरण करने वाले भरत त्यागमय जीवन के आदर्श हैं । धर्म तथा न्याय के लिए उन्होंने राज्य त्याग दिया, देश तथा मानव समाज के कल्याण के लिए अपने परम प्रिय राम के सान्निध्यसुख को त्यागा तथा अयोध्या के लोगों के कल्याणार्थ रामराज्य की स्थापना के लिए समस्त सुखोपभोग त्यागे । किसी के अंक को धोने के लिए उन्होंने चौदह वर्षों तक राम के समान तपस्वी जीवन व्यतीत किया । आज के युग को भरत की इस त्यागमूर्ति एवं धैर्यमय आचरण के आदर्श के आलोक की आवश्यकता है ।

भरत ने तपस्वी का जीवन जीते हुए भी अपने उत्तरदायित्वों का पालन पूर्ण-रूपेण किया है । राम-राज्य की चौदह वर्षों तक अति प्रशंसनीय शासन व्यवस्था उन्होंने की । प्रमाद एवं शैथिल्य कहीं नहीं- सर्वत्र जागरूकता एवं प्रगति भरत द्वारा संचालित रामराज्य की विशेषता है । वाल्मीकि के अनुसार उनके शासन काल में राज्य के भण्डारों तथा कोष में दोगुनी वृद्धि हुई थी । इस प्रकार भरत का त्याग उस सन्यासी का त्याग नहीं है जो गृहस्थी की विकट समस्याओं से डर कर संसार से हार कर जीवन-संग्राम से पलायन कर किसी एकांत कन्दरा में एकान्त साधना में लीन रहता है ; उसकी यह साधना केवल अपने लिए होने के कारण स्वार्थमयी कायरता है । भरत का त्याग " सर्व-कल्याणाय " है, उनकी तपस्या " सर्वजनसुखाय" है । भरत त्याग एवं साधना का ऐसा व्यापक आदर्श प्रस्तुत करते हैं जो जन-जीवन के विकास की दृष्टि से प्रत्येक युग में उपयोगी है ।

संयुक्त परिवार की दृष्टि से भी भरत का आदर्श अनुकरणीय है । कृषि प्रधान होने के कारण हमारे देश में संयुक्त -परिवार की व्यवस्था रही है । कृषि की में सम्पूर्ण परिवार एक साथ श्रम करके सम्मिलित रूप से आर्थिक विकास कर सकता है । परन्तु सम्मिलित परिवार का मूल स्नेह प्रेम के सुदृढ़ बन्धन में भी है । माता-पिता का स्नेह-सिक्त मन केवल अपने बच्चों का ही नहीं अपितु उनके बच्चों को भी प्यार करता है । वह उनकी सुख-सम्पन्नता तथा कल्याण की कामना करता है ।उनका मन स्नेह के कारण अपने पौत्रों आदि के सान्निध्य की भी वांछा रखता है । संयुक्त परिवार में यह कोमल स्नेहिल भावनाएँ प्रचुर मात्रा में परिवार के कल्याणार्थ कार्य करती रहती हैं । परिणामतः परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे की रुचियों आदि का ध्यान रखना पड़ता है ।

कुछ आदर्शों को मानना पड़ता है जैसे बड़ों के प्रति आदर, विनय, उनकी आज्ञाओं का पालन, छोटों के प्रति स्नेह, उनकी भावनाओं का सम्मान आदि। सम्मिलित परिवार में परिवार का बड़ा व्यक्ति मुखिया ही सर्वेसर्वा होता है। उसके प्रति सबकी आस्था रहती है। पिता के पश्चात् यह स्थान बड़े पुत्र को मिलता है। यदि छोटे भाइयों के मन में यह अधिकार भावना उत्पन्न हो जाती है तो वही पारस्परिक तनाव एवं परिवार के विघटन का कारण बन जाती है।

उपर्युक्त विघटन की स्थिति दशरथ-परिवार में भी कैकेयी के धरोहर रूप दोनों वरों की याचना से उत्पन्न होती है। यहाँ परिवार में चारों पुत्र और पुत्र वधुएँ हैं, दशरथ हैं और उनकी रानियाँ। मंथरा ने कैकेयी के मन में ईर्ष्या-डाह को जगा दिया। वरों के रूप में राम का वनवास अन्याय की सीमा सा प्रतीत हुआ। उत्तेजित लक्ष्मण पिता को बन्दी बना कर राम को राज्य देने को उद्यत हैं। वे इस अन्याय के प्रतीकार में भरत के पक्ष के सभी व्यक्तियों से लोहा लेने को तैयार हैं[1]। वाल्मीकीय रामायण के समान ही साकेत में वे इस अवसर पर भड़क उठते हैं -

> क्यों इस दनुजता के दास हैं जो-
> छली से दे रहे वनवास है जो
> पिता हैं वे हमारे या कहूँ क्या?
> बड़े हैं आर्य! फिर भी हम रहूँ क्या?

राम ने अपने सुदृढ़ के स्नेह और गाम्भीर्य का परिचय देते हुए मूढ़-क्रोध को रोकना चाहा- लक्ष्मण को शान्त किया। सीता, लक्ष्मण, कौसल्या- सब को समझाया[2]। उन्होंने घर में सौहार्द्र का वातावरण बनाए रखने के लिए शान्त भाव से वनवास स्वीकार कर लिया। परिवार का विघटन रोकने के लिए पितृ आज्ञा को (जो परोक्ष में विमाता की आज्ञा थी-) सहर्ष स्वीकार करके आज्ञापालन का अनुपमेय आदर्श प्रस्तुत किया, परन्तु फिर भी विघटनकारी वातावरण बना ही रहा। लक्ष्मण तथा कौसल्या के मन में अन्यायजन्य क्षोभ बना ही रहा।

अयोध्या के नागरिकों तथा राजपरिवार में भी अन्याय के प्रति विद्रोह भावना बनी रही। एक शंका एवं अविश्वास का वातावरण बना ही रहा। इस सम्बन्ध

---

(1) वाल्मीकीय रामायण, 2।

(2) वाल्मीकीय रामायण, 2।

अविश्वास, शंका तथा द्वेष के वातावरण को शुद्ध किया भरत ने । उनके अयोध्या में प्रवेश करते ही संकट और शोक के बादल छटने लगे[1] । उनके विशुद्ध प्रेम एवं त्याग -परिपूर्ण व्यक्तित्व की प्रभा ने एक ऐसा दिव्य-प्रकाश फैलाया जिसके आलोक में कैकेयी को अपने कुकृत्य का बोध हुआ और कौसल्या के मन से भी शंका का धूम निकल गया तथा सरल वात्सल्य का स्फुरण हुआ । भरत के राम-प्रेम ने एवं उनके राज्य-त्याग ने सब की आँखें खोल दीं । राम के प्रति जो अन्याय हो गया था, भरत के त्याग ने उसका प्रतिकार किया । वे राम को मनाने एवं उनका राज्य उनको लौटाने हेतु वन को चले, प्रजा तथा परिवार उनके साथ जा रहा । अब विद्रोह कहाँ, शंका कहाँ, अविश्वास कहाँ! भरत के हृदय से निःसृत भ्रातृ-प्रेम की सरिता में सब के मन का कालुष्य बह गया । एक प्रेमपूर्ण वातावरण की सृष्टि हुई तथा टूटता हुआ सम्बन्ध फिर जुड़ गया । परिवार के विघटन को प्रेम तथा त्याग से किस प्रकार रोका जा सकता है, कटुता के स्थान पर मधुरता का प्रसार किस प्रकार किया जा सकता है, भरत-चरित आज भी इस बात की शिक्षा दे रहा है ।

भरत का चरित्र सामाजिक विघटन को रोकने के लिए भी अनुपम आदर्श है । सामाजिक विघटन का मूल कारण है व्यक्तिगत स्वार्थ । यह स्वार्थ राजनैतिक आर्थिक अथवा भौतिक लिप्सा के कारण समाज के हित को ध्यान में न रखकर अपने व्यक्तिगत हितों को सर्वोपरि मानता है, परिणामतः टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । व्यक्तिगत स्वार्थों के परस्पर टकराने से समाज विनाश के कगार पर खड़ा हो जाता है । महाभारत में इसके अनेक उदाहरण हैं । रामायण में बालि के विनाश का कारण राज्य, धन तथा भौतिक लिप्साओं से उत्पन्न स्वार्थ ही है जिसने भाई को भाई के स्नेह एवं उद्देश्य को समझने नहीं दिया जिसका परिणाम हुआ बालि का विनाश । लंका के राज्य, राजा तथा समाज के विनाश का कारण रावण के स्वार्थ एवं अहंकार की अन्यायपूर्ण अत्याचारी अभिव्यक्ति थी जो शक्तियों की सत्ताओं तथा पर-स्त्रियों के हरण के रूप में प्रकट हुई थी । उसने केवल एक सीता का हरण नहीं किया था अपितु अनेक सुन्दरी कन्याओं का हरण किया था[2] । जिसने अन्याय एवं अत्याचार करने से उसे रोकना चाहा उसको उसने प्रताड़ित किया । इस क्रम में प्रहस्त, माल्यवान, विभीषण तथा शुक के नाम उल्लेखनीय हैं । मारीच तथा

---

[1] रावणस्य वै निःसारं पदं, रक्षं जन्म भरतस्य
सत्यं हि तेन कुलीनेन, आर्या प्राणा धृता मम
सत्यं हि आर्या आर्ये पतिते, दृष्टो राम निवर्तते । कैकेयी, 12, 175
[10] केशवनाथ मिश्र ।

[2] रामचरित मानस, 1, 182 [3]
[3] रामचरितमानस, 6, 8-10 ।

[4] रामचरितमानस, 3, 40 । [5] रामचरितमानस 5, 38-41 ।
[6] रामचरितमानस, 5, 56-57 ।

कालनेमि को विरोध करने पर भी रावण की आज्ञाओं का पालन करना पड़ा तथा स्पष्ट रूप से दिखाई देती हुई मृत्यु का वरण करना पड़ा । परमप्रिय पत्नी तथा भाई के सत्परामर्श की अवमानना करने वाला स्वार्थ ही विनाश का कारण बन सकता था । रावण का स्वार्थजन्य अत्याचार वालि के स्वार्थजन्य अत्याचार से कहीं अधिक घोर एवं विस्तृत था । वालि का स्वार्थ केवल सुग्रीव से टकराया, परिणाम केवल वालि का विनाश हुआ ; रावण का स्वार्थ मानवता की मूल भावना से टकराया, परिणाम-रावण तथा समस्त राक्षस समाज एवं लंका साम्राज्य का विनाश हुआ । अयोध्या में भी इस प्रकार की स्थिति कैकेयी ने उत्पन्न कर दी थी परन्तु क्रमशः राम के त्याग, सारल्य एवं स्नेह ने और फिर भरत के अनुपमेय त्याग एवं भ्रातृ-प्रेम ने इस विष बीज के अंकुर को पनपने नहीं दिया । भरत के पीयूषमयी स्वभाव ने प्रेम की वर्षा की, द्वेष का विष स्वतः ही बह गया । भरत के भ्रातृ-प्रेम की इसी त्यागमयी गरिमा के समक्ष कपिराज सुग्रीव तथा राक्षसराज विभीषण की आँखें लज्जा-नमित हो जाती थीं । भरत का आदर्श आज भी उतना ही उज्ज्वल है जितना उस समय था ।

भ्रातृत्व के आदर्श भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न तीनों ही हैं किंतु लक्ष्मण और भरत के भ्रातृत्व-आदर्श में एक अन्तर है । भरत अपने गम्भीर और शान्त स्वभाव के कारण राम के मन में प्रवेश कर उनकी रुचि के अनुसार कार्य करना चाहते हैं । लक्ष्मण की स्वाभिमानिता स्वामि के हितों की रक्षा के लिए सदा प्रहरी है । जहाँ स्वामि-हित में बाधा आती है लक्ष्मण उत्तेजित हो जाते हैं । राम के विरोध में कोई भी हो, भले ही माता, पिता अथवा दूसरा भाई ही क्यों न हो वे उसका सामना करने को तैयार हैं । राम की शान्ति और सहिष्णुता की नीति से वे सहमत नहीं हैं फिर भी आज्ञा-पालन को सर्वोच्च कर्तव्य समझते हुये वे राम की आज्ञाओं का पालन सदा रूप से करते हैं । राम के हित में बाधा आने पर उनमें एक उत्तेजना अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है- धनुषभंग में जनक के निराशापूर्ण भाषण के समय, परशुराम के क्रोधावेश के समय, राम के वनगमन के समय तथा चित्रकूट में लक्ष्मण सहित भरत के आने के समय। इस उग्र एवं उत्तेजित स्वभाव के कारण वे कभी कभी अत्यन्त दुःखदायी कार्य भी कर बैठते हैं जैसे चित्रकूट में सैन्य भरत के आने के समाचार को सुनकर

।।। यह सुन देव सैन्य विभीषण अधिक चकित
भ्रातृत्व-प्रेम के सम्मुख उनके नयन नमित
किष्किंधापति सुग्रीव और भी चकित हुए
सम्मुख ज्योति को देख सभी हुए नमित हुए ।

अध्य रामायण, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ 609 ।

दुर्भाग्यवश में अपना बड़ा वह आकार । परन्तु भरत में राम की ही भाँति गाम्भीर्य है । शील सिन्धु भरत किसी भी समय उत्तेजित नहीं होते । भयंकर एवं विकट परिस्थितियों का सामना वे नितान्त शान्त भाव से करते हैं । उनकी विनोदशीलता कहीं भी लुप्त नहीं हुई है । उनके सभी निर्णय उनके गम्भीर चिन्तन एवं सात्विक स्वभाव के द्योतक हैं जिनके परिणाम चिरकालदायी सिद्ध हुए । राम-वन-गमन तथा दशरथ-मरण से उत्पन्न अयोध्या के संकटपूर्ण विकट वातावरण को उनके शान्त, गम्भीर एवं प्रेमपूर्ण स्वभाव ने ही कुण्ठित किया । उनके शीलाचरण ने यह सिद्ध कर दिया कि विकट से विकट परिस्थितियों को भी व्यक्ति अपने विवेक तथा सात्विक आचरण से अपने अनुकूल बना सकता है तथा अपना ही नहीं अपितु सम्पूर्ण लोक का कल्याण कर सकता है ।

भरत के जीवन में एक परम श्लाघ्य समरसता है जो उनके मन-वचन-कर्म के सामञ्जस्यपूर्ण आचरण से उत्पन्न हुई है । जो सिद्धान्त उन्हें मान्य थे उनके लिए वे उन्होंने आचरित करके दिखा दिया । महात्मा गाँधी ने कथनी और करनी की भिन्नता को सत्याचरण समझ कर अपने आचरण में उतारा वह भरत के आचरण में तीव्र विद्यमान है । उनकी सुदृढ़ भावनाओं ने उन्हें कठिन तपस्या की ओर प्रेरित किया । छल परम्परानुसार राज्य भी ज्येष्ठ राम का है अतः भरत ने उसे स्वीकार नहीं किया । पतिव्रता, कौसल्या एवं सुमित्रा की कोई भी दलील उनको अपने सत्य निश्चय से डिगा नहीं सकी । राम के राज्य को राम को लौटाने हेतु वनों भरत चित्रकूट गए । निर्दोष राम का निर्वासन अन्यायपूर्ण था, जिसका प्रतिकार राम के अयोध्या को प्रत्यावर्तन से ही सम्भव था । अतः भरत उनको मनाने चित्रकूट गए । राम नौ पाँच दुःख कैसे में अटकें और भरत रथ तथा वस्त्र पर- यह भरत को कभी स्वीकार्य नहीं हो सकता था । इसलिए भरत के भी नौ पाँच पैदल ही चित्रकूट को चले । राम ने अयोध्या का प्रत्यावर्तन स्वीकार नहीं किया तो भरत ने उनकी पादुकाओं को सिंहासनस्थ किया । राम के राज्य को भरत ने धरोहर के रूप में ही रखा । शासन के कठिनतम दायित्व का निर्वहन तो किया परन्तु उसे केवल आनुषंगिक नहीं किया । राम ने वन में रहकर तपस्या की और भरत ने घर में रहकर कंद-मूल-फल आदि का आहार कर चौदह वर्षों के राम वियोग को सहा । रामवन में रहे तो भरत भी चौदह वर्षों तक नगर के बाहर नन्दिग्राम में तपस्यारत रहे । तब प्रकार से भरत ने अपनी भावनाओं, विचारों तथा कृत्यों में सामञ्जस्य रखा, जिसका परिणाम उस समय एक विशुद्ध सात्विक वातावरण की स्थापना में प्रकट हुआ, जिसने न केवल राम-परिवार तथा अयोध्या का कल्याण हुआ अपितु आज तक शान्ति स्थापना के एक ऐसे उदाहरण का निर्माण हुआ जो पुरातन होते

हुए भी नवीन है और चिर-अनुकरणीय है । विचार एवं कार्य का यह सामञ्जस्य आज भी विकृता को दूर करने की क्षमता रखता है तथा एक सत्य प्रेमपूर्ण वातावरण के सृजन में सहायक होसकता है ।

आज के भ्रान्त एवं विकल युग को उन सात्विक मान्यताओं की स्थापना की आवश्यकता है जो मानवता के घावों पर मरहम का कार्य करें । ये मान्यताएँ भरत के सात्विक स्वरूप में निहित हैं । भरत का चरित सात्विक गुणों का चरम विकास है । इसीलिए भरत भारतीय जीवन के आदर्श बन गए हैं । सत्य, न्याय एवं करुणा के सनातनीय सिद्धान्तों की स्थापना के लिए जिस विवेक, त्याग एवं प्रेम की आवश्यकता है वह भरत के चरित्र में अपने उत्कृष्टतम रूप में विद्यमान है । भरत की भ्रातृ-भक्ति उनका त्याग एवं निस्पृहता अन्याय एवं पापों को दूर कर मानव के श्री-यश को सदैव आलोकित करते रहेंगे । उनका जीवनदर्शन सामयिक-समस्या में व्याकुल दिखाते हुए विश्व को प्रकाशपुञ्ज-रूप भारतीयता का मध्यादर्श प्रस्तुत करता है -

शान्ति रूप क्रान्ति का कसौटी बना विश्व जब
सामयिक समस्या में विकल दिखाता है
रूप भावना में भारतीयता का भव्य रूप
भरकर भारत भरतानुज गाता है ।।

साकेत -तीन ।

।।। आदर्श-भक्ति निज अग्रज की तुम्हारी
उत्तरी की अवधि निःस्पृहता अतीवा
उद्दीप्त श्री-यश मानव का करेगी,
अन्याय और अघ आमयहीन होंगे ।।

भगवान राम, सरोवन विहार, 14.1297 ।

उपसंहार

भरत चरित रामकथा का मीमांसा है। रामकथा का विकास युग-युगान्तर की कवि-चेतना का परिणाम है। कुछ कथा के चिरपुरातन होने के कारण ही विद्वान उसका बीज वेदों में देखने का प्रयास करते हैं, जहाँ उन्हें कथा के सूत्र क्रमबद्धता के साथ नहीं मिलते हैं अपितु सीता, जनक आदि रामकथा के कुछ पात्रों के स्वरूप के बीज-बिन्दु अवश्य मिल जाते हैं। वेदों से पुराणों तक आते-आते रामकथा का स्वरूप निश्चित हो गया था यद्यपि अपनी-अपनी रुचि एवं युग की आवश्यकताओं के अनुरूप कवि उसमें परिवर्तन और परिवर्धन करते ही रहे हैं। इसी बीच रामायण की रचना हुई जिसमें लोकोत्तर रामकथा का विकास एवं पात्रों का आदर्श चित्रण किया गया। भारतीय परम्परा रामायण को अति प्राचीन मानती है परन्तु पाश्चात्य विद्वानों तथा कादर कामिल बुल्के ने इसे ईसा से मात्र 300 वर्ष पूर्व का ही माना है। यह निश्चित है कि रामकथा सभी युगों में अति लोकप्रिय रही है जिसके कारण बौद्ध तथा जैन मतावलम्बियों ने अपने धार्मिक साहित्य में इसे स्थान दिया और अपने मतानुसार इसमें अनेक मौलिक परिवर्तन कर दिए। इन परिवर्तनों से रामकथा के मूल उद्देश्य, उसके पात्रों के आदर्श एवं उदात्तता पर प्रभाव पड़ा तथा कहीं-कहीं आदि कवि के आदर्शों से भिन्न चरित्र-चित्रण भी किए गए। बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक तथा बौद्ध जातकों में रामकथा उपलब्ध है॥ दशरथ जातक की तात्कालिक प्रसिद्धि स्वतः सिद्ध है। बौद्धों की देशदेशी शाखाओं ने भी रामकथा को अपनाया। जैन साहित्य में यह शताब्दियों तक लोकप्रिय रही। परिणामतः जैन साहित्य में अति विस्तृत रामकथा-साहित्य उपलब्ध है। जो राम ब्राह्मण धर्म में विष्णु के अवतार हैं, वे ही बौद्ध धर्म में बोधि-सत्व है तथा जैन धर्म में आठवें बलदेव के रूप में स्वीकार किए गए हैं। यह बात रामकथा की लोकप्रियता और व्यापकता को सिद्ध करती है।

धीरे-धीरे रामकथा की व्यापकता बढ़ती रही। संस्कृत के धार्मिक साहित्य ललित साहित्य एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य तथा भारत के विभिन्न देशों के साहित्य में भी रामकथा पर विविध रचनाएँ की गईं। संस्कृत धार्मिक साहित्य में पुराण तथा विभिन्न रामायणें, ललित साहित्य में कालिदास, भास, भवभूति, जयदेव

तथा अभिनन्दन आदि द्वारा रचित रामकथा विषयक काव्य, प्राकृत तथा अपभ्रंश का राम-साहित्य, आधुनिक भारतीय भाषाओं में तमिल में कंब रामायण, तेलुगु में रंगनाथ रामायण, उत्तररामायण एवं भास्कर रामायण, मलयालम में रामचरितम् तथा कण्णश रामायण, उड़िया में माधव कंदली रामायण, बंगाली में कृत्तिवास रामायण, कन्नड़ में तोरवे रामायण तथा मराठी में भावार्थ रामायण, आदि तथा अन्य ग्रन्थों की रचना कालान्तर में होती रही । हिन्दी साहित्य में तो रामकाव्य की व्यापक परम्परा है ही ।

रामकाव्य की रचना अधिकांश कवियों ने भक्ति-भावना से की है । राम के चरित्र की सद्गुण सम्पन्नता एवं देवोपमता ने वाल्मीकि को रामायण की रचना के लिए प्रेरित किया था । राम के दिव्य गुण जन साधारण को अलौकिक प्रतीत हुए । अतः उन्हें अलौकिक, दिव्य एवं भगवान का अवतार मान लिया गया । राम के विग्रहों की पूजा-अर्चा तथा उनके गुणों का गान उनको अवतार मानने के कारण ही प्रारम्भ हुआ । रामकाव्य की लोक-प्रियता एवं वृद्धि में अवतारवाद का विशेष स्थान है । सम्पूर्ण पुराण साहित्य अवतारवाद से प्रभावित है । वाल्मीकि रामायण राम के दिव्य गुणों से युक्त स्वरूप को उद्घाटित करता है परन्तु अन्य रामायणों तथा समस्त पुराण साहित्य उनको विष्णु अथवा परब्रह्म के अवतार के रूप में ग्रहण करता है । परिणामतः अवतारवाद उसके विभिन्न रूपों, परम्पराओं आदि का विवेचन इस निबन्ध के प्रारम्भ में किया गया है । हिन्दी-राम-साहित्य में प्रारम्भ से ही राम को विष्णु अथवा ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है । पृथ्वीराजरासो तथा अन्य अनेक काव्य ग्रंथ दशावतार के अन्तर्गत रामावतार का वर्णन करते आए हैं । उन्होंने [illegible] मानव के रूप में अवतरित इस अवतार को ब्रह्म का पूर्णावतार तथा व्यूह अवतार माना है । "रसो वै सः" के सिद्धान्त को मानने वाले रसिक सम्प्रदाय ने उन्हें "रस रूप" में स्वीकार किया है । रसिक भक्त उन्हें "लीलारूप" तथा "युगल रूप" में भी देखते हैं । मर्यादावादी भक्तों के लिए वे पूर्ण सनातन ब्रह्म हैं । पुरुषोत्तम रूप में मानवीय मर्यादाओं को लीला को उच्चतम आदर्श के रूप में

1- चिरुरूप रघुबंसमनि करहु बचन चित्त लाइ ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ।। 14 ।।
पद पाताल सीस अज धामा । अपर लोक अँग-अँग बिश्रामा ।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाला ।।
× × × × ×
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।। - रामचरितमानस

प्रस्तुत करने हेतु प्रभु अपने सम्पूर्ण अंशों सहित व्यूह रूप में अपने परिकरों सहित रामावतार में प्रकट हुए । रामावतार की यह श्रेष्ठता राम परिकरों के परिचय सहित इस निबन्ध के प्रारम्भिक भाग में प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है ।

श्री राम के लीला परिकरों में भरत सर्वाधिक महिमा मंडित हैं । सम्पूर्ण राम साहित्य में उनका चरित्र पूर्ण रूपेण निर्दोष एवं अनन्य है । आदि कवि ने सर्वोत्कृष्ट भ्राता के रूप में, हिन्दी के रामभक्त कवियों ने भक्त-शिरोमणि के रूप में तथा वैष्णव कवियों ने प्रेम की मूर्ति के रूप में उनका चित्रण किया है । राम काव्य में भरत के चरित्र का विकास इस प्रकार किया गया है कि भरत के चरित्र की महानता राम के चरित्र की महानता को उजागर करती रहे । उनके क्रिया-कलाप, भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा सम्भाषण पाठक के मन में उनके प्रति तो श्रद्धा उत्पन्न करते ही हैं, राम के प्रति भी श्रद्धा के स्रोत को प्रवाहित करते हैं । उनके चरित्र की सात्त्विकता ने राम के चरित्र की सात्त्विकता को प्रकाशित किया है । रामकाव्य में भरत और राम का चरित्र बहुत अंशों में अन्योन्याश्रित रूप में चित्रित हुआ है । राम का भरत के प्रति वात्सल्य तथा भरत की राम के प्रति श्रद्धा अनुपम है । राम के स्नेह से भरत में अगाध प्रेम एवं विशाल जागा है तथा भरत की श्रद्धा से राम की महिमा बढ़ी है ।

1- राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ।।
रामचरित मानस, 2, 219

2- हे भरत ! इस समय तुम्हीं प्रेम आलोक रूप,
विखराता आभा किरण तुम्हारा ही विशेष
प्रभु वहीं जहाँ पर प्रेम दिखाई पड़ता है ।
× × ×
तब कहता हूँ हे भरत आज मैं हुआ धन्य
तुम से उत्तम हुचि प्रेम-पुरुष है यहीं अन्य ।
अलख रामायण, अयोध्याकाण्ड ।

रामकथा का आदि ग्रंथ वाल्मीकि-रामायण है। रामायण में रामानुज के रूप में भरत का चित्रण किया गया है। ये विष्णु के अंशावतार हैं[1]। कुछ विद्वान् रामायण के अवतारवादी अंशों को प्रक्षिप्त मानते हैं[2]। वाल्मीकि ने भरत को शील, भ्रातृवत्सल, विनयशील, जितेन्द्रिय, सहृदय एवं उत्तमोत्तम व्यक्तित्व प्रदान किया है[3]। अध्यात्म में भरत राम से भी कलावतार माने गए हैं[4]। वाल्मीकि ने भरत का चित्रण गुणयुक्त एवं दोष रहित अनुज के रूप में किया है। उनका सबसे बड़ा गुण उनकी स्वभावगत सज्जनता है। भरत का यही भ्रातृ-वत्सल निर्दोष रूप महाभारत में प्रस्फुटित हुआ है। अध्यात्म रामायण के भरत भोले भक्त हैं जिनके रूप में कवि के हृदय की भक्ति-भावना मूर्तिमयी हो गई है[5]। आनन्द रामायण के भरत ब्रह्मा के अवतार अथवा विष्णु के अंशावतार हैं। इस ग्रन्थ में राम की पूजा-अर्चा के साथ भरत के भी पूजन का विधान है तथा "रामाष्टक" के साथ "भरताष्टक" भी पुण्य की प्राप्ति के लिए अनिवार्य बताया गया है[6]।

पुराण साहित्य पर अवतारवाद का प्रभाव स्पष्ट है, अतः भागवत, स्कन्द तथा पद्मादि पुराणों में राम एवं उनके भ्राताओं को विष्णु अथवा ब्रह्मा का अवतार माना गया है। परिवर्तन की दृष्टि से इन पुराणों में भरत के वे ही गुण अंकित किए गए हैं जो वाल्मीकि रामायण में हैं। वाल्मीकि के भरत की भ्रातृ-

---

(1) वाल्मीकि रामायण 1.18.13 ।

(2) रामकथा उत्पत्ति और विकास, अध्याय 8 ।

(3) कार्यं कश्चन तां सुप्ते भ्राता ते भरतः स्थितः ।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा तानुशोचो जितेन्द्रियः ॥
वाल्मीकि रामायण 2.4.26 ।

(4) "रामादपि हि तं मन्ये शक्तो कलावतारयु ॥"
वाल्मीकि रामायण, 2.12.62 ।

(5) अध्यात्म रामायण, अयोध्याकाण्ड, 9 सम्पूर्ण ।

(6) आनन्द रामायण, मनोहरकाण्ड, 13, 14 एवं 15 सम्पूर्ण ।

भक्ति यहाँ परब्रह्म स्वरूप राम की भक्ति में परिणत हुई है । पुराणों तथा अध्यात्म रामायण में भक्तिवाद पर अधिक बल है । उनके भरत में तत्त्वतः सम्पन्न भक्त के लक्षण गुण दिखाई देते हैं । पद्म-पुराण के भरत का तो निर्माण ही मानो ब्रह्मा ने ऐसा तत्त्व गुण से ही किया है[1] । कोई विकार या दोष उनका स्पर्श नहीं कर पाया है । हिन्दी राम काव्य में भरत के स्वरूपांकन पर वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण तथा पद्म पुराण के भरत का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है ।

संस्कृत ललित साहित्य के भी अधिकांश कवियों ने रामकथा विषयक रचनाएँ कर के अपनी लेखनी को कृतकृत्य किया है । राज्याभिषेक, प्रतिमा नाटक, रघुवंश, महावीर चरित, उत्तररामचरित, जानकीहरण, प्रसन्न राघव नाटक तथा महानाटक आदि रामकथा पर आधारित संस्कृत ललित साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं । रामकथा विषयक शोक-काव्य, विलाप काव्य, चित्र-काव्य तथा शृंगारिक खण्डकाव्यों की रचना संस्कृत-ललितसाहित्य के अन्तर्गत 15वीं शताब्दी के बाद तक होती रही । ललित-साहित्य में राम तथा भरत का चरित्रांकन मुख्यतः वाल्मीकि रामायण के आधार पर किया गया है परन्तु प्रत्येक ग्रंथ का अपना मौलिक दृष्टिकोण भी है । हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में रामकाव्य की रचना पर इन ग्रंथों का प्रभाव पड़ा है । इन भाषाओं में भी रामायण-रचना अनिवार्यतः की गई है + और रामविषयक काव्य, नाटक आदि की रचना भी की गई है । रामायण, पुराण तथा संस्कृत के रामकथा सम्बन्धी ललित काव्य ने हिन्दी के रामकाव्य गायकों को विशेष रूप से प्रभावित किया है तथा उन्हें रामकाव्य रचनाओं का आधार प्रदान किया है । अतः इस निबन्ध का द्वितीय अध्याय संस्कृत रामकाव्य एवं उसमें भरत के स्वरूप को समर्पित किया गया है ।

हिन्दी रामकाव्य परम्परा का प्रारम्भ चंदबरदायी से माना जा सकता है । उनके पृथ्वीराज रासो में दशावतार के अन्तर्गत रामावतार एवं रामकथा का वर्णन हुआ है परन्तु उसमें भरत चरित नहीं है । साम्प्रदायिक क्षेत्र में स्वामी रामानन्द

1- नमस्कारार भरतं सर्वा मूर्तिर्हि तस्य ।
विधात्रातस्तादृशं तत्त्वेनैव विनिर्मितम् ।।
पद्म पुराण, पाताल खण्ड, 2.13 ।

को हिन्दी रामकाव्य का प्रथम रचयिता माना जा सकता है। उनका अधिकांश काव्य मुक्तक है तथा उसमें भरत के चरित्रांकन का अवसर नहीं है। स्वामी जी का महत्वपूर्ण कार्य रामभक्ति का प्रचार एवं प्रसार तथा रामकाव्य सृजन की प्रेरणा देना है। कालान्तर में उनकी शिष्य परम्परा में ही गोस्वामी तुलसीदास हुए जिनकी प्रतिभा "रामचरित मानस" के रूप में फलित हुई। परन्तु तुलसी से पूर्व भी हिन्दी में रामकाव्य रचना हुई है। कवि विष्णुदास तथा ईश्वरदास ने तुलसी से पूर्व रामकथा पर काव्य लिखा है। विष्णुदास की "रामायण-कथा" हिन्दी में प्रबन्धात्मक शैली में रचा गया प्रथम राम काव्य है। कथावस्तु वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। भरत का चरित्र भी तदनुरूप है। ईश्वरदास के रामकथा से सम्बन्धित तीन काव्य उपलब्ध हुए हैं-राम-जन्म, भरत-मिलाप तथा अंगद पैज। सम्भव है ये एक ही विशाल प्रबन्ध के खण्ड हों। भरत-मिलाप में कवि ने भरत का चित्रण भक्त भाई के रूप में किया है। यह भक्ति सेवक-सेव्य भाव की है। सम्पूर्ण काव्य में भरत के हृदय की करुण वेदना व्यक्त की गई है। कृष्ण-भक्त सूरदास ने भी अपने सूरसागर तथा सूरसारावली में संक्षिप्त रूप में सम्पूर्ण रामचरित का चित्रण किया है। सूर की रामकथा "भागवत" पुराण पर आधारित है। मुक्तक पदों में रचित यह प्रबन्धात्मक कथा सरलता एवं सौन्दर्य में अनुपम है। सूर के अनुसार पूर्ण ब्रह्म ने चतुर्व्यूह रूप में रामावतार धारण किया। भरत चतुर्व्यूह में सम्मिलित हैं। उनका चित्रण कवि ने वाल्मीकि एवं व्यास के भागवत के अनुरूप किया है। परंतु कोमलता एवं सरलता उनकी विशेषता है। कवि के अनुसार भरत का अवतार विश्व को सेवक के धर्म की शिक्षा देने के लिए हुआ है। इस प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में तुलसी पूर्व रामकाव्य रचयिताओं तथा उनकी कृतियों में भरत के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

जिस समय ईश्वरदास तथा सूरदास आदिपुरुषोत्तम का यशोगान कर रहे थे उसी समय स्वामी अग्रदास "अग्र-अली" के नाम से राम की मधुरोपासना से सम्बन्धित पद लिख रहे थे। रामभक्ति में यह रसिक धारा अग्रदेवाचार्य से प्रारम्भ हुई थी तथा रसरूप-साधक के नाम से प्रचलित थी। अग्रदास ने इसे संवर्धित किया। रामध्यान मंजरी, रामध्योगसार तथा रामकथा से सम्बन्धित पदों में स्वामी अग्रदास ने शृंगार रस से पूर्ण राम विषयक काव्य लिखा है। रसिक सम्प्रदाय के रास-विलास तथा

केलि आदि में अनुजों का वर्णन बहुत कम किया गया है । भरत की मर्यादापूर्ण भक्ति का उल्लेख भी बहुत कम है । इसी कारण से इस प्रबंध में "रसिक सम्प्रदाय" की काव्य-रचना को अति संक्षिप्त रूप में तृतीय अध्याय के अन्त में अंकित किया गया है ।

हिन्दी रामकाव्य के आकाश के सूर्य तुलसी हैं । उनका " रामचरितमानस" रामकथा का प्रतिनिधि काव्य है । मर्यादावादी कवियों ने अधिकांशतः "मानस" के आधार पर ही अपनी रचनाएँ की हैं । उनका "मानस" नानापुराण निगमागम सम्मत है तथा उन्होंने उसमें सम्पूर्ण वेद-पुराणों का निचोड़ कह दिया है । वह काव्य के क्षेत्र में अद्वितीय है तथा राम-भक्ति की साधना के क्षेत्र में सिद्ध ग्रन्थ है । राम-भक्तों के लिए " मानस" की प्रत्येक चौपाई मंत्र है । तुलसी के "मानस" की वाणी राजा, रंक, धनि, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित सभी के हृदय तक प्रवेश करती है । उसकी लोक-व्यापकता स्वतः सिद्ध है । तुलसी का "मानस" उत्तर भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है । जिसकी पैठ वेदादि धर्म ग्रन्थों तक नहीं है + " मानस" उनके लिए भी प्रकाश स्तम्भ है । व्यावहारिक जीवन के आदर्श-आचरण का मार्ग-दर्शन "मानस" में सुलभ है । हिन्दी राम साहित्य में तुलसी के "मानस" तथा अन्य ग्रंथों का अद्वितीय महत्व एवं प्रभाव होने के कारण सम्पूर्ण छठवें अध्याय तुलसी-साहित्य को समर्पित किया गया है ।

विश्व का भरण पोषण करने वाले तुलसी के भरत राम-चरण-पंकज के तुल्य महान हैं । तुलसी के भरत की विशेषता ब्रह्म राम की अनन्य भक्ति है जो " भरत-भगति" के रूप में प्रकट हुई है । प्रेम के मूर्तिमान् स्वरूप भरत भक्तों के आदर्श हैं । उनका सेवक-सेव्य-भाव सुन्दर है तथा प्रेम के नियम का पालनपूर्वक पालन है । भरत के सद्भाव कामना करने से राम का प्रेम अवश्य प्राप्त होता है । उनके लिए राम के चरणारविन्द में अनुराग अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष जीवन के इन चारों फलों से बढ़ कर है । राम का प्रेम ही उनके लिए साधन है यही सिद्धि भी है । प्रेम के नियम के पालन में दृढ़ एवं निपुण पालक उनकी भक्ति का आदर्श है । राम के वनगमन क्रमाचार से वे अति व्याकुल होकर कैकेयी की भर्त्सना करते हैं परन्तु सम्पूर्ण विपत्ति-मूला मंथरा को दयापात्र अनुज से छुड़ाकर क्षमा कर देते हैं । दयालु भरत परहित निरत हैं । वे कुलाधिप राम की आज्ञाओं का पालन करने हेतु चित्रकूट में परमप्रिय राम के सान्निध्य सुख को भी त्याग कर लोक-कल्याणार्थ अयोध्या को प्रत्यावर्तित हुए । राम वन में रहकर कंद मूलादि खाकर जीवन निर्वाह

निर्वाह कर रहे हैं अतः भरत भी नगर के बाहर कुटिया बनाकर, वल्कल धारण कर फलाहार करते हुए मर्यादा का पालन करते रहे। वस्तुतः भरत प्रेम के निकष का निर्वाह किया है जिसके कारण धर्म-नियमों का पालन कर उन्होंने मुनियों के सम्मुख भी जितेन्द्रियता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके त्याग ने मानव लोक के दुःख, ताप, दम्भ तथा दूषणों का परिहार कर आदर्श प्रस्तुत किया है। एक ओर भाग्य-भक्ति की शिक्षा दी है तो दूसरी ओर सेवक-सेव्य धर्म का आचरण कर सेवक के स्वामी के प्रति व्यवहार का आदर्श स्थापित किया है। तुलसी के अन्य ग्रंथों गीतावली, बरवै रामायण तथा विनय-पत्रिका में भी भरत का स्वरूप "मानस" के समान ही चित्रित किया गया है। चतुर्थ अध्याय के अन्त में वाल्मीकि तथा तुलसी के भरत के तुलनात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

पंचम अध्याय रीतिकाल में रचित राम-काव्य में भरत को समर्पित है। रीतिकालीन रामकाव्य अनेक कारणों से विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण है। इस युग के रामभक्त कवियों ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया था। इस दिशा में तुलसी का प्रभाव द्रष्टव्य है। अन्य मतावलम्बियों ने भी राम के आदर्श से प्रभावित होकर राम विषयक रचनाएँ की है। इनमें सिक्खों के दशम गुरु गोविन्द सिंह का नाम अग्रगण्य है। इस युग के अनेक कवियों ने प्रबन्ध रचना का सफल प्रयास किया। "रामचन्द्रिका" आदि उच्च कोटि के प्रबन्ध काव्य इसके उदाहरण हैं। पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर किया गया है। पारिवारिक सम्बन्ध भावना की उच्चता को महत्ता दी गई है; माता-पिता, भाई-भाई, पति-पत्नी आदि के अतिरिक्त साले-सलहजों तथा सास-ननदों आदि के मधुर सम्बन्धों की भी उपेक्षा नहीं की गई है। भाषा तथा शैली की विविधता परिष्कृत साहित्यिक रूप में प्रस्तुत की गई। इस युग के कवियों द्वारा तुलसी-साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन, प्रचार एवं प्रसार किया गया। संस्कृत रामकाव्य के भी अनुवाद तथा छायानुवाद प्रस्तुत किए गए। इस युग की राम-काव्य विषयक रचनाएँ बहुसंख्यक हैं परन्तु प्रस्तुत निबन्ध में विस्तार के भय से कुछ कवियों की रचनाओं के आधार पर ही भरत के स्वरूपांकन की विवेचना की गई है। ये कवि हैं- केशव, लालदास, बारहट नरहरिदास, चंददास, मोहनदास, मधुसूदन, महाराज विश्वनाथ सिंह, पद्माकर तथा ग्वालदास। केशव के अतिरिक्त ये सभी कवि रीतिकाल में भी रीतिमुक्त काव्य की रचना करते रहे। इनमें कला पक्ष की अपेक्षा भाव-पक्ष की प्रधानता रही।

रीतिकालीन मर्यादावादी राम काव्य में दास्य भक्ति की प्रमुखता रही। "राम हैं अधिक राम कर दासा" वाली भावना से पूर्व कवियों ने राम के अतिरिक्त उनके परम भक्तों-सीता, लक्ष्मण, भरत तथा हनुमान आदि चरित्र-चित्रण भी श्रद्धा

सम्बन्धित को सुविस्तृत रूप से किया है । मधुरोपासकों ने मधुराभक्ति के कारण युगल स्वरूप के अन्तःपुर, रासलीला तथा उत्सवादि का वर्णन किया है जिसमें शृंगारी भावना की प्रधानता है । रसिक कवियों का काव्य सुन्दर है परन्तु उन्होंने भरत का स्वरूपांकन अति स्वल्प किया है । वस्तुतः लोक प्रचलित भ्रातृ-मर्यादा का पालन भरतादि आठों अनुजों के विषय में किया गया है । अनुजों ने रास-लीला तथा नृत्यादि में भाग नहीं लिया है ।

इस युग में विषयवस्तु की प्रधानता की दृष्टि से भी दो प्रकार की रचनाएँ हुईं- एक तो राम के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं को समग्र रूप से प्रदर्शित करने वाली विभिन्न काव्य एवं रामायण और दूसरे जीवन के एक अंश अथवा अंश पर आधारित काव्य यथा रामाश्वमेध, अवध विलास तथा राम रहस्य आदि । इनमें से प्रथम प्रकार के काव्य ग्रंथों में भरत का चरित्र-चित्रण समग्र रूप से हो पाया है शेष प्रकार के काव्यों में भरत का चरित्र भी एकांगी ही रहा है । रामचन्द्रिका के भरत में तुलसी के भरत के समान भक्ति-विह्वलता न होते हुए भी भ्रातृ-प्रेम है । उनकी विशिष्टता उनकी धीमय विवेकशीलता तथा निर्भय स्पष्टवादिता है जो पिनाक भंजन से क्रुद्ध परशुराम के प्रति तथा राम को वनवास देने वाली कैकेयी के प्रति द्रष्टव्य है । यही निर्भय स्पष्टवादिता राम के सीता निर्वासन के निर्णय के अवसर पर तथा लवकुश से युद्ध के समय भी दिखाई देती है । बारहट नरहरिदास के " अवतारचरित" के भरत राम के परमभक्त हैं । उनका चित्रण भक्ति पर आधारित है । अवध विलास के कवि । लालदास। ने बालकाण्ड की कथा का ही विस्तार किया है । उनके काव्य में चारों किशोर भ्राताओं का पारस्परिक प्रेम दर्शनीय है । इस ग्रंथ की कैकेयी राम की राज्योन्मूलन की योजना में सहायता देने हेतु उन्हें वन भेजती है । " रावण मरन भरत की बातें । कहि न उदास होत मन पाते ।" द्वारा कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि उसने भरत के चरित्र का उल्लेख अपने काव्य में नहीं किया है । गोकुलदासकृत रामाश्वमेध में भी भरत चरित्र स्वल्प एवं एकांगी है । इस काव्य में सीता-निर्वासन के समय भरत की विवेकपूर्ण मंत्रणा द्रष्टव्य है । मधुसूदनकृत रामाश्वमेध में राम के पूर्वजीवन के समय प्रतीचारत तपस्वी भरत का स्वरूपांकन सुन्दर है । ग्रंथ का आधार पद्मपुराण का पाताल खण्ड है अतः भरत का चरित्र भी उसी के अनुरूप है । चन्ददास ने अपने " रामविनोद" में भरत के भक्त स्वरूप को विशिष्ट स्थान दिया है । साधन-भक्ति के दर्शन उनमें बाल्यकाल से ही होने लगते हैं तथा इस साधना की चरम परिणति वन में राम के सशरीर स्वरूप के दर्शन के समय पूर्ण आत्मसमर्पण के रूप में होती है । पद्माकर के " रामरसायन" के भरत वाल्मीकि के भरत

से अभिन्न प्रतीत होते हैं । महाराज विश्वनाथ सिंह के "आनन्द रघुनन्दन" के भरत विष्णु के विश्व पोषक अंश के अवतार हैं । उनकी भक्ति मानस के भरत के समान है और हठ वाल्मीकि के भरत के समान । बलदेव के अवधविलास के भरत विष्णु के चूडावतार के एक अंश हैं । मधुरोपासक कवि ने अयोध्याकाण्ड की घटनाओं के वर्णन में तटस्थता का अवलम्बन लिया है । फिर भी भरत का चरित्र-चित्रण सुन्दर बन पड़ा है, जिस पर " मानस" की छाया दर्शनीय है । राम की रास-लीला में भरतादि भ्राताओं ने भाग नहीं लिया है । इस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने भरत को विष्णु अथवा ब्रह्म का अंशावतार माना है । उनकी रामभक्ति " मानस" पर आधारित है । रीतिकाल के अधिकांश काव्यों में भरत के त्यागचरित्र तथा विवेकशीलता पर बल दिया गया है । मधुरोपासक कवियों ने भ्राताओं की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए उन्हें रासादि विलास क्रीड़ाओं में सम्मिलित नहीं किया है ।

रीतियुग के साथ ही रीतिकाव्य सृजन समाप्तप्राय हो गया परन्तु रीतिमुक्त भक्ति -काव्य का सृजन अबाधित रूप से चलता रहा । भारतेन्दु युग अथवा द्विवेदी युग के पूर्वार्द्ध प्रकार की अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं । इन रचनाओं की विशेषता भक्ति का परम्परागत सरल प्रवाह ही है । रामकाव्य सृजन के क्षेत्र में इस युग के कवि भी पुराण साहित्य से प्रभावित रहे हैं । बाबा रघुनाथदास " रामसनेही" के काव्य में यह पुराण-प्रभाव द्रष्टव्य है । उक्त कवि की प्रसिद्ध रचना " विश्रामसागर" में भरत का चित्रण मानस के समान आदर्श भक्त के रूप में किया गया है । महाराज विश्वनाथ सिंह के सुपुत्र महाराज रघुराज सिंह ने " रामस्वयंवर" नामक काव्य की रचना वर्णनात्मक शैली में इसी युग में की थी । " रामस्वयंवर" " मानस" के बालकाण्ड पर आधारित है । कवि मधुरोपासक है, वह नाथ के दुःख की गाथा गान में असमर्थ है । परिणामतः अयोध्याकाण्ड की कथा उसने अतिशीघ्र में कही है और भरत का स्वरूपांकन भी अधिक विस्तार से नहीं हो पाया है । विश्व की कामनाओं को पूर्ण करने वाले का नाम भरत रखा गया ।यहाँ भी भरत की विशेषता उनका राम-प्रेम है। महाराज रघुराज सिंह ने " शिकार-शतक" भी लिखा है । "कवित्त रामायण" । पं० रामगुलाम द्विवेदी। में मुक्तक शैली में रामकथा प्रस्तुत की गई है । अति लघु मुक्तक काव्य के रूप में राजा रीवाँ सिंह के " राम विलाप" का उल्लेख किया जा सकता है ।

इस युग के अन्त में खड़ी बोली की काव्य रचना प्रारम्भ हुई । पं० रामचरित

।।। मैं अपनी नाथ सुकाया गायन में सब भाँती ।
विरह विपत्ति व्यथा वर्णन में रचना रहि रहि जाती ।।
रामस्वयंवर, ।.पृ० 5 ।

उपाध्याय की " रामचरित -चन्द्रिका" इसी समय रची गई जो अति लोकप्रिय सिद्ध हुई तथा इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए । इस रचना से रामकाव्य सृजन के क्षेत्र में नवयुग का आरम्भ हुआ क्योंकि पारम्परिक पुराणवादिता तथा धर्मोन्मुखता से हट कर नवयुग की चेतना चरित्र के महत्व की ओर उन्मुख हुई । भक्ति का स्वर भावनाओं में मुखर तो रहा परन्तु सभी ने भी अपना स्वर ऊँचा किया । चारित्रिक विशेषताओं की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि खोजी जाने लगी तथा कार्य कारण के सम्बन्ध पर अधिक बल दिया जाने लगा । पराधीन भारत के कवियों को परतंत्रता की पीड़ा हुई तथा देश-प्रेम का स्वर मुखरित हुआ । इस सबका प्रभाव "रामचरित-चन्द्रिका" में द्रष्टव्य है । " रामचरितचन्द्रिका" ने रामकाव्य को नई दिशा दी । भाषा तथा शैली में भी नवीनता प्रकट हुई । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्देशित दिशा में यह काव्य एक सोपान है । इस काव्य में कथाक्रम प्रस्तुत न कर कवि ने केवल चरित्रांकन ही किया है । भरत की निरीहता तथा तपोपूत सम्पन्नता कवि ने व्यक्त की है । इस निबन्ध का छठा अध्याय इसी संक्रमणशील युग को समर्पित किया गया है जिसमें आधुनिक रामकाव्य का जन्म हुआ है ।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तथा द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ के मध्य का समय विश्व इतिहास में नव-चेतना का समय था । भारत में यह युग गाँधी जी के नेतृत्व में राजनीतिक एवं सामाजिक पुनरुत्थान की दिशा में प्रगतिशील हुआ । नारी जागरण को महत्व दिया गया । हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी प्रगति दिखाई पड़ी । इस युग के हिन्दी काव्य में सांस्कृतिक चेतना, मानवतावादी मूल्य, राष्ट्रीयता की भावना, लोकतांत्रिक विचारधारा, सामाजिक समता, बुद्धिवाद नारी के प्रति उदात्त दृष्टिकोण, उपभोक्तावाद, आदर्शवाद, विषयवैविध्य तथा रहस्यवाद आदि समेत स्वतः अभिव्यक्ति पा सके । यह काव्य अनेक अन्य विशेषताओं के साथ छायावाद के नाम से अभिहित हुआ । उपनिषदों के ब्रह्मवाद, अतीन्द्रियता तथा आध्यात्मिक अभेदता का प्रभाव रहस्यवादी काव्य के सृजन के रूप में अभिव्यक्त हुआ । गाँधीवाद का प्रभाव तथा राष्ट्रीयता की भावना इस युग के जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, " निराला" तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि के काव्यों में देखी जा सकती है । सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति, उदात्त कल्पना, सांकेतिक अभिव्यक्ति ने काव्य के क्षेत्र में एक नवीन शैली को जन्म दिया । इस युग का काव्य मानवता के उद्धार के लिये आकुल है । प्रमुख रूपसे छायावादी काव्य की रचना के कारण साहित्य जगत में यह युग छायावादी युग कहलाया ।

हिन्दी रामकाव्य के क्षेत्र में यह युग काव्य विधाओं की विविधता का युग है। चरितात्मक प्रबन्ध, महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रबन्ध मुक्तक, काव्यनाटक तथा गीत-मुगीत आदि अनेक प्रकार के काव्यों का सृजन इस काल में हुआ।रामचरित चिन्तामणि, साकेत, उर्मिला। पं० बालकृष्ण शर्मा"नवीन" कृत, कोशलकिशोर तथा रामचन्द्रोदय आदि काव्यों की रचना इसीयुग में हुई। सती सुलोचना, मेघनाद-वध, मेवा के दो वीर तथा विनयूट आदि खण्डकाव्य भी इस युग में लिखे गए। विश्वनाथ सिंह "सिरस" का ब्रजभाषा में रचित " भरत-भक्ति" के भरत के " रामभक्त" के रूप में चरित्रांकन के दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण है। प्रबन्ध मुक्तक शैली के उदाहरण भी अनेक हैं। संस्कृत तथा अन्य भाषाओं में विरचित अनेक रामकथा काव्यों का हिन्दी कविता के रूप में अनुवाद भी इस युग में किया गया। माइकेल मधुसूदन दत्त कृत " मेघनाद वध" का गुप्त जी द्वारा किया गया काव्यानुवाद "मेघनादवध" इसी श्रेणी का काव्य है। छायावाद युगीन रामकाव्य यद्यपि भक्ति प्रेरित है परन्तु इसमें नवयुग की नवचिन्तन धारा का स्फुरण द्रष्टव्य है। रामकथा के चिरपुरातन पात्रों को नवयुग के परिवेश में देखा गया है। कवि स्वातंत्र्य युग की विशेषता है तथा युगानुरूप आदर्श स्थापन की दिशा में कवि सक्रम है। रामकाव्य एवं भरत के चरित्रांकन की दृष्टि से कविवर मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित साकेत इस युग का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य ग्रंथ है जिसमें नवीन पात्रों की क्षोभ, चरित्र-चित्रण पर बल, भावपूर्ण संवाद, मौलिक कल्पना, प्रकृति-चित्रण तथा सुन्दर शब्द योजना आदि ऐसी छायावादी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्होंने इस भक्ति परक काव्य को अपनी रम्यछाया से अति सुन्दर बना दिया है।

" साकेत" भरतचरित की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। कवि ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कैकेयी तथा भरत के चरित्र का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। गुप्त जी के भरत पर घटनाक्रम से उत्पन्न मानसिक प्रतिक्रियाओं का प्रभाव प्रशंसनीय रूप में प्रदर्शित किया गया है। " मानस" के समान गुप्त जी के राम ब्रह्म का अवतार हैं और भरत भी अंशावतार हैं। भरत सौ स्वभाव के हैं तथा उनका शीलाचरण उत्कृष्ट है। उनके शील एवं त्यागवृत्ति पर सबको विश्वास है। उनका राम-प्रेम अनुपमेय है तथा वे राम के भावुक भक्त हैं। भक्तभरत का सत्य-सत्य उनके बहुत किसी ने नहीं समझा पूजा है। साकेत में यह समस्त चरित्रांकन भावुकतापूर्ण सम्भाषणों के माध्यम से बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। जहाँ "साकेत"में भरत के चरित्र का नवयुग के परिप्रेक्ष्य में विकास किया गया है वहीं " भरत-भक्ति" काव्य में उनके परम्परागत लोक्य भक्त

स्वरूप के दर्शन कराए गए हैं। " भरत-भक्ति" के भरत में परम्परागत त्याग, तपस्या तथा भक्ति का उद्रेक प्रशंसनीय है। इस युग के शेष काव्यों में भरत का चरित्र गौण रूप से अंकित है। इस निबन्ध के सप्तम अध्याय में छायावादी युग के रामकाव्यों में अंकित भरत के स्वरूप की विवेचना की गई है। रामचरित चिन्तामणि, लोक-विवेक, साकेत, भरत-भक्ति तथा रामचन्द्रोदय काव्य-ग्रंथों में अंकित भरत के चरित्र को इस अध्याय में सुष्ठु रूप से प्रस्तुत किया गया है।

इस निबन्ध के अष्टम अध्याय में छायावादोत्तर आधुनिक हिन्दी रामकाव्य में भरत के स्वरूप की विवेचना की गई है। इस युग के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय भावना का अभूतपूर्व उदय हुआ तथा काव्य चेतना को गाँधीवाद ने प्रभावित किया। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जो आर्थिक सामाजिक तथा शैक्षिक प्रगति हुई उससे कवि-चेतना भी सम्पृक्त हुई। हिन्दी काव्य जगत् में एक ओर छायावाद का अधिक सूक्ष्म एवं परिष्कृत रूप पंत तथा महादेवी के काव्यों में प्रकट हुआ तो दूसरी ओर प्रगतिवादी तथा प्रयोगवादी काव्य का सृजन हुआ। इन दोनों से भिन्न व्यक्ति के सुख-दुःख, अभाव तथा द्वंद्व की सहज अभिव्यक्ति करने वाली एक अन्य काव्य प्रवृत्ति का " नई कविता" के नाम से विकास हुआ। इन विविध प्रकार के काव्यों के युग में भी रामकाव्य की रचना अपने परम्परानुगत तथा परम्परामुक्त रूप में निरन्तर होती रही। छायावादी युग में भी छायावादी रामकाव्य की रचना नहीं हुई थी अपितु छायावाद के कुछ तत्वों का प्रभाव उस युग के रामकाव्य पर पड़ा था। इसी प्रकार सन् 1936 के पश्चात् प्रारम्भ होने वाले साहित्यिक युग के रामकाव्य पर उपर्युक्त वादों का प्रभाव कम ही पड़ा है। राम काव्य में छायावाद के अधिक निकट निराला की " राम की शक्तिपूजा" तथा केदारनाथ मिश्र " प्रभात" की " कैकेयी" है। परन्तु इन दोनों काव्यों में ओज एवं महाप्राणता विशिष्ट है। हरिऔध के वैदेही वनवास में रामकथा के उत्तर अंश की वस्तुयोजना नवयुग की सम्पूर्ण विचारधारा के अनुरूप प्रस्तुत की गई है तथा राष्ट्र के कल्याणार्थ व्यक्ति के उत्सर्ग का संदेश दिया गया है। 'राष्ट्रीय आत्मा' के "जागती जीवन" में भी यही संदेश है।

भरत विषयक प्रमुख काव्य पं० कालेश्वर प्रसाद मिश्र का " तापस सौंध" है। इस पर राष्ट्रीयतावाद, गाँधीवाद तथा श्री विनोबा के सर्वोदय का प्रभाव दृष्टव्य है। इनका एक अन्य काव्य " रामराज्य" भी गाँधीवाद तथा सर्वोदय के सिद्धान्तों से प्रभावित है। डा० हरिकृष्ण झा का " रामराज्य" भी गाँधी जी के स्वप्नों का रामराज्य प्रतीत होता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से रामावतार " अज्ञ" का "विदेह"

महाकाव्य सुन्दर है । इस युग में भरत, कैकेयी तथा माण्डवी पर अनेक काव्य लिखे गए जिनमें हरिशंकर सिन्हा की "माण्डवी" में मौलिक कल्पना का विस्तार हुआ है । रघुवीर शरण मित्र की भूमिका पर प्रगतिवाद का प्रभाव द्रष्टव्य है । रामकाव्य के क्षेत्र में नरेश मेहता की "तैरा की एक रात" नई कविता का सुन्दर उदाहरण है । नई कविता से आगे बढ़कर हिन्दी राम काव्य पुनः भक्ति की ओर मुड़ा है । पाँडेय अयोध्या की " कैकेयी" तथा मनमोहन लाल श्रीवास्तव का " भगवान राम" आधुनिक युग की भक्तिपरक रचनाएँ हैं । डॉ० रामकुमारवर्मा का "उत्तरायण" वस्तु-योजना में नवीन है । कवि के हृदय की रामभक्ति इस सरस एवं सुन्दर काव्य के माध्यम से मुखरित हुई है । मानस चतुः शती के अवसरपर प्रकाशित अरुण रामायण वर्तमान युग का राम विषयक अति सुन्दर महाकाव्य है । कवि की रामभक्ति के साथ सहज दार्शनिक पृष्ठभूमि , रामकथा का परम्परागत निर्वाह, यथास्थान आदर्श एवं कल्पना का सामञ्जस्य, सरस काव्य प्रवाह, माधुर्य एवं ओज आदि इस काव्य की विशेषताएँ हैं । इन महाकाव्यों के अतिरिक्त रामकथा विषयक अनेक खण्डकाव्य भी इस युग में रचे गए यथा- सुग्रीव, अंगदकुमार, पंचवटी, अशोक-वन, वनस्थली आदि ।

आधुनिक युग की ओर वर्णित पुस्तकों में भरत के चरित्र को भी नए दृष्टिकोण से देखा गया है । अवतारवादी काल्पनिकता का स्थान तर्क तथा मनोविज्ञान ने लिया । किसी भी कार्य का कारण भी बताया गया । साकेत-संत, अरुण-रामायण तथा इस युग के अनेक काव्य-ग्रंथों में भरत में अवतार तत्व को स्वीकार करते हुए भी चरित्र विकास को प्रभावित करने वाली घटनाओं तथा उनकी क्रिया प्रतिक्रिया आदि का ध्यान रखा गया है । भरत की भक्ति भावना इन काव्यों में भी मुखरित है तथा प्रेम की सरिता अपने सात्विक रूपों में प्रवाहित हुई है । साकेत-संत के भरत राम के विरह में विष्णुतीत हो गए हैं । वे तम, रज तथा सत्व को पार करते हुए राम से मिलने जा रहे हैं । उनका राम प्रेम तथा भक्ति साधना प्रशंसनीय है । भरत का स्वरूप युग के आदर्शों एवं मान्यताओं से भी प्रभावित हुआ है । साकेत-संत तथा रामराज्य के भरत पर गांधीवाद तथा सर्वोदय का प्रभाव द्रष्टव्य है । रामराज्य के भरत की साधना

- -

।।। न रज काकाम, तम का क्रोध आया,
न सत्व के लोभ का अनुरोध आया ।
त्रिगुण को पार करते जा रहे थे ,
त्रिवेणी पार करते जा रहे थे ।

साकेत संत, 10,30 ।

केवल भक्त की भगवान को प्राप्त करने हेतु तपस्या तक सीमित साधना नहीं है अपितु यह आराध्य की आकांक्षा पूर्ति हेतु सर्वस्व त्याग एवं कर्मठता से पूर्ण साधना है। इस साधना का स्वरूप गाँव-गाँव तक जाकर शासन व्यवस्था को सुधारने वाले कर्मठ शासक में दिखाई पड़ता है। जिस भी के भरत को क्या भोजन करते तथा लँगोटी मात्र धारण किए ग्राम सुधार एवं विकास में संलग्न देखकर पाठक को गाँधी जी की याद अनायास ही आ जाती है। राजसी वैभवादि को त्याग कर भरत दीनहीनों के समान ही क्षुधा-तृषा जाकर पृथ्वी पर ही सोते हैं। प्रजा के कल्याण के लिए निरन्तर जागरूक शासक हैं[1]।

आज के युग के अनुरूप अध्यात्म रामायण के राम तथा भरत लोकतंत्र के परिचय उन्नायक हैं। वे आध्यात्मिक विकास के भी प्रतीक हैं। राम भरत के आराध्य हैं तथा भरत साधनालीन साधक हैं। यहाँ राम निर्गुणातीत पुनीत सच्चिदानन्द स्वरूप हैं और भरत राम का हृदय हैं। अध्यात्म रामायण के भरत प्रेम की महिमा की अभिव्यक्ति हैं। जो भरत को जानता है उसको ही रामतत्व सुलभ हो पाता है क्योंकि भरत प्रेम-मूर्त्त हैं। भरत प्रासूत्य साधना का निश्चय परिणाम हैं। उनकी रामध्यान तन्मयता इतनी प्रबल है कि राम का मन उनके मन में प्रतिबिम्बित होता है तथा सुधि-सिद्धि विलीन सम्भव हो पाता है। राम ब्रह्म हैं तो भरत जीव और सुन्दर हैं। अध्यात्म रामायण के भरत का स्वरूप आध्यात्मिकता तथा कर्मण्यता की दृष्टि से अनुपम है।

बाबूलाल अनुराग की "केकेयी" "कल्याणी कैकेयी" तथा हरिकिंकर सिन्हा की "माण्डवी" ने भरत के गृहस्थ जीवन के पक्ष को भी प्रस्तुत किया है। यह मधुर प्रेम, त्याग एवं तपस्या की सुन्दर झाँकी है। भरत के अनुरूप उनकी पत्नी माण्डवी भी

1- ऐसी थी साधना, भरत के शासन युग में
गाँव-गाँव तक गए न नगरों तक ही सिमटे।
क्या भोजन, वसन लँगोटी, भूमि शयन था,
दीन प्रजा का सुख ही उनका जीवन था।

रामराज्य 40 ।
(डॉ० डा० कालेश्वर प्रसाद सिंह)

प्रेम, त्याग एवं तपस्या की मूर्ति हैं। "साकेत सौध" के कवि ने भी उनके अति सौम्य स्वरूप को चित्रित किया है। "माण्डवी" के भरत एक पत्नी व्रत धारी हैं तथा अनुज पत्नी श्रुतकीर्ति के प्रेम प्रस्ताव को अस्वीकार कर देते हैं। आधुनिक काव्य में भरत को नव-नव दृष्टिकोणों से देखा गया है।

हिन्दी रामकाव्य में भरत को भक्त शिरोमणि के रूप में अंकित किया गया है क्योंकि भक्ति काल में हिन्दी साहित्य का स्वर भक्ति का रहा है। इसीलिए इस निबन्ध के नवम अध्याय में हिन्दी राम काव्य में भक्ति के स्वरूप तथा भरत की भक्ति पर विचार किया गया है।

साधन भक्ति अथवा गौणी भक्ति को साधना रूप में स्वीकार करने से साध्या भक्ति अथवा प्रेमा-भक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। भागवत पुराण तथा नारद भक्ति सूत्र में नवधा भक्ति का वर्णन किया गया है। वस्तुतः नवधा भक्ति साधन भक्ति ही है। साधन भक्ति से प्रभु प्रसन्न होते हैं तथा उनके परम अनुग्रह के रूप में प्रेमा भक्ति का उदय साधक के हृदय में होने लगता है। कभी-कभी भगवान की अहैतुकी कृपा से बिना साधन भक्ति का अवलम्बन लिए अनायास ही प्रेमाभक्ति का उदय भक्त के मन में हो जाता है। भरत को भी प्रभु की अहैतुकी कृपा से प्रेमा भक्ति स्वतः सिद्ध है। जन्म से ही राम के प्रति अलौकिक अनुराग उनकी स्वतः सिद्ध प्रेमा-भक्ति का ही लक्षण है। रामकथा विषयक उन सभी काव्यकृतियों में, जिनमें भरत के स्वरूपांकन का आधार रहा है, भरत में इस प्रेमा-भक्ति के दर्शन प्रारम्भ से ही होते हैं। रामवनवास के कारण भक्त भरत की विरह वेदना व्यक्त होती है। विरह की पीड़ा के साथ मन में ग्लानि है कि आराध्य कूट राम उनके ही कारण निर्वासित हो कर वन के कष्टों को भोग रहे हैं। यह ग्लानि उनके मन को और भी अधिक उद्वेलित कर देती है। अब राम को मनाने के साधनों की आवश्यकता प्रतीत होती है। राम को प्रसन्न करने का साधन तो साधन-भक्ति ही है। भरत अनायास ही साधन भक्ति के साधनों को अपना लेते हैं- ये साधन हैं:सत्संग, रामकथा में रति, गुरु के पाद-पद्मों की सेवा, निरभिमानता, राम के गुणों का गान, राम मंत्र का जाप तथा राम के प्रति अडिग विश्वास, वेद-नियमों का पालन एवं सांसारिक सुखोपभोग से विरक्ति तथा संतों का पालन, समस्त संसार को सिया राम मय देखना, परदोषदर्शन न करना, सरलता, समता एवं सज्जनता। चित्रकूट जाते हुए भरत मैत्र्यादि साधन-सम्पन्नता प्रति पग पर दर्शनीय है।

चित्रकूट में राम के साथ पूर्ण आत्मसमर्पण उनकी भक्ति का चरमोत्कर्ष है। राज्य त्याग तो उस आत्मसमर्पण का एक लघु अंश मात्र ही है। प्रभु राम की आज्ञा का पालन कर ही चौदह वर्षों तक अयोध्या या में रहकर विरही जीवन जीना उनकी भक्ति की कठिन परीक्षा थी। परंतु कठिने सत्यारत रहकर साधन भक्ति पर आचरण करते हुए तथा हृदय में उत्कट प्रेमा भक्ति के अवलम्बन से उन्होंने इन चौदह वर्षों की अवधि भी पार कर ली। तुलसी ने भरत की भक्ति की अनन्यता का वर्णन अपने "मानस" के अयोध्याकाण्ड के उत्तरार्द्ध में प्रस्तुत किया है। थोड़े से शब्दों में तुलसी के "भरत-शिरोमणि-भरत" की महिमा का वर्णन आश्चर्य है। हिन्दी के सम्पूर्ण रामकाव्य में भरत की भक्ति समान रूप, रूप में चित्रित है। तुलसी के पूर्व कबीरदास तथा सूरदास के भरत में भी यही भक्ति है। तुलसी के पश्चात् केशव, लालदास, बारहट नरहरिदास, मधुसूदन आदि कवियों के भरत में भी उसी भक्ति की छाया दिखाई देती है। आधुनिक युग के श्री मैथिलीशरण गुप्त, पं. कवीश्वर प्रसाद मिश्र तथा "अज्ञेय" जी के काव्य में भरत की भक्ति का स्वरूप परम उज्ज्वल रूप में चित्रित हुआ है। अज्ञेय रामायण के भरत की भक्ति-साधना इतनी चित्रित है कि उन्हें ध्यानावस्था में राम का मिलन सम्भव हो जाता है। उनके सुधि-सिद्ध ध्यान में प्रतिबिम्ब मिलन होता है। राम का मन भरत के मन में प्रतिबिम्बित है और भरत का मन राम के मन में। तुलसी के भक्त भरत युग-युग के काव्य में युगानुरूप भक्ति के आदर्श का आलोक बिखेरते रहे हैं।

भरत के उपर्युक्त स्वरूप की तलाश जो पूर्व में भी आवश्यकता थी और आज भी है। वाल्मीकि के भरत मानव थे परन्तु रामकथा के "नर रूप हरि" की कथा में परिणत हो जाने पर भरत भी अवतार हो गए। कालक्रम के अनुसार सामाजिक स्थिति, जीवन पद्धति, चिन्तन के ढंग तथा विचारों में परिवर्तन के साथ भरत के स्वरूप के प्रस्तुतीकरण में परिवर्तन होते रहे हैं परन्तु उनके चरित्र के मूलाधार सदा से सम्बद्ध होने के कारण सभी युगों में अपरिवर्तित रहे। भारतीय संस्कृति जो रूप धारण करती गई, जिन मूल्यों को स्वीकार करती गई उन्हीं के अनुरूप परिवर्तन परिवर्तन में भी हुए हैं। भरत चरित्र भी विभिन्न काव्यों में संहृत अथवा विस्तृत हुआ है। मूल्य निर्धारण एवं मान्यताओं की स्वीकृति अथवा उनका विधि निषेध परिवर्तन का आधार बना है। राम और भरत सदा पद के प्रतीक हैं अतः उनको मानवीय आचरण के आदर्श के रूप में सदैव स्वीकार किया गया है। रामकथा काव्यादर्श लोकाराधन है जिसमें समष्टि के लिए व्यक्ति के उत्सर्ग का आदर्श स्थापित किया गया है। राम के

जीवन में लोकरंजन का यह आदर्श प्रतिमान पर प्रकट हुआ है; कैकेयी की स्वीकृति, राज्य से मुक्त, सीता की अग्नि परीक्षा आदि इसी लोकाराधन के स्वरूप हैं। भरत ने भी लोक कल्याणार्थ अपने जीवन का प्रत्येक क्षण समर्पित किया है। राज्य त्याग एवं चौदह वर्षों तक कठिन साधना का जीवन जहाँ एक ओर रामाराधन है वहाँ दूसरी ओर वह लोकाराधन भी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चरित्र एक जटिल संरचना है। व्यक्ति की अपनी क्षमताओं अर्थात् माता-पिता से प्राप्त शारीरिक क्षमताएँ, बौद्धिक गठन तथा मौलिक मनोराग के अतिरिक्त सांस्कृतिक परम्पराएँ, वातावरण, जीवन मूल्य तथा कार्यों आदि भी चरित्र अथवा व्यक्तित्व के निर्माण को प्रभावित करते हैं। मनोरागों की तुलनात्मक प्रकृति के आधार पर व्यक्तित्व का स्वरूप उजागर होता है। भरत का व्यक्तित्व भी विभिन्न गुणों में विभिन्न कवियों द्वारा जाने अथवा अनजाने उपर्युक्त दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में ही विकसित हुआ है। आधुनिक काव्य में चरित्र के इन मनोवैज्ञानिक आधारों को विशेष महत्त्व दिया गया है। साकेत, साकेत संत तथा रामराज्य के भरत के चरित्र विकास में मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि विशेष रूप से अवलोकनीय है। साकेत, साकेत संत, रामराज्य तथा अन्य रामायण के भरत में अहम् के स्थान पर पराहम् प्रबल है जिसके कारण काव्य में उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ है। ख्याति एवं वर्ण में राम के समान दिखाई देने वाले भरत चरित्र के आंतरिक गुणों में भी राम की समानता रखते हैं और कहीं पर तो वे उनसे भी आगे बढ़ गए हैं। उनकी सिद्धान्त प्रियता, आदर्श प्रियता तथा उसके लिए उत्सर्ग की भावना उनको प्रबल पराहम् वाला देवत्व सम्पन्न आदर्श व्यक्तित्व का स्वामी सिद्ध करती है। ऐसे व्यक्ति अन्याय को सहन नहीं करते हैं अपितु उसका कुछ विरोध करते हैं।

पारिवारिक मूल्यों की स्वीकृति भरत के व्यक्तित्व में है। रघुकुल में बड़ा भाई ही राज्य का अधिकारी होता है अतः भरत ने न्याय दृष्टि से राज्य स्वीकार नहीं किया, अपितु उसे राम को लौटा दिया। पिता की अनुपस्थिति में बड़ा भाई ही पिता के स्थान पर मान्य है भरत के लिए जो पहिले भैया रहे बाप से अब हैं। स्नेह, सौहार्द, गुरुजनों के प्रति आदर एवं भ्रातृभाव, समष्टि के लिए व्यष्टि का उत्सर्ग, सत्य-पालन तथा प्रचारक रघुकुल की कुलपरम्परा एवं कुलधर्म बन गया था। भरत ने इन मूल्यों को अपने आचरण में महत्त्व दिया तथा इस दिशा में एक पवित्र आदर्श स्थापित कर लोक का मार्गदर्शन किया है। चौदह वर्षों तक राज्य-शासन के गुरुतर भार को वहन करते हुए भरत

ने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के दुःख- सुख को अपना समझा तथा उसके सहभागी रहे। साधना में उर्मिला के भोजन न करने पर वे स्वयं भी उपवास करते हैं। दाम्पत्य जीवन में भी उन्होंने एक ऐसे आदर्श की स्थापना की है जिसके अन्तर्गत उनकी पत्नी माण्डवी उनकी सहचरी में भी सहायिका बनकर सहधर्मचारिणी के उज्ज्वल आदर्श को प्रस्तुत कर सकी है। साधना तथा साधना तो दोनों में ही उनका दाम्पत्य सौम्य की आभा से दीप्त, कर्तव्य की दृढ़ता से दृढ़ तथा लोक की मंगलकामना से मंगलमय एवं पावन है।

उनके जीवन के अनुशासन एवं जितेन्द्रियता ने प्रजा के सम्मुख अनुशासन का अनुपमेय आदर्श प्रस्तुत किया। चौदह वर्षों तक राजा विहीन राज्य में अनुशासन एवं सुव्यवस्था बनी रहने का मूल कारण राजपरिवार के त्याग एवं अनुशासन का उदाहरण था। अधिकार से कर्तव्य कहीं बढ़कर है इस बात को भरत के आचरण ने प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध कर दिया। भरत का समय शासन ही बाद में आदर्श रामराज्य में परिणत हुआ था जो आज भी सुशासन का सुन्दरतम आदर्श समझा जाता है। स्वतंत्र भारत में इसी रामराज्य की स्थापना का सुखद स्वप्न गांधी जी ने देखा था।

प्रेम तथा भक्ति, कर्तव्य एवं धर्म, सिद्धान्त एवं नीति, त्याग और समर्पण, परिवार तथा राज्य, व्यक्ति एवं समष्टि प्रत्येक क्षेत्र में भरत के चरित्र ने अनुपम आदर्श प्रस्तुत कर प्रत्येक युग को उसकी आवश्यकता के अनुसार आलोक प्रदान किया है जिसने प्रतिक्षण में मानव सदाचरण एवं सद्भावना के मार्ग पर ला खड़ा है। भरत का चरित्र भारतीयता का भव्य स्वरूप है, रामकथा सागर से प्राप्त उज्ज्वलतम रत्न है, भारती की वीणा का सुन्दरतम गान है। सौहार्द भरत जैसे " उर-मणीप" की अनेक प्रवृत्तियों के बाद प्राप्त कर पाता है। भरत प्रेम-प्रदीप के प्रकाश हैं, अडिग लोक पावनी रामकथा के तारतम्य हैं। वे भक्ति के पावन पियूष हैं जो एकनिष्ठ भाव से भक्तों को राम के सम्मुख ले जाते हैं।

> सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
> मुनिमन अगम यम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को।
> दुख दाह दारिद दम्भ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
> कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

परिशिष्ट-"ङ"

हिन्दी के अपठित ग्रंथ

क्रम सं०	ग्रंथ का नाम	लेखक	प्रकाशन
1-	अद्भुत रामायण	नानाथि	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
2-	अलख रामायण	गोकुलदास रामाचार "अलख"	विश्व बन्धु प्रकाशन, समस्तीपुर, बिहार
3-	अवध विलास	नागदास	हस्तलिखित प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
4-	अवध विलास	कवीदास	तेग कवीदास स्मारक तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य सेवा, 1128 सेक्टर डी, बीरी नवीमुंबई
5-	आँख खन	गोकुलचन्द्र शर्मा	हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद
6-	आनन्द रघुनन्दन	महाराज विश्वनाथ सिंह	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रीवाँ, मार्तण्ड प्रेस, रीवाँ
7-	उत्तररामायण	डा० रामकुमार वर्मा	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
8-	उर्मिला	पं० मामकुल शर्मा "मधीन"	आनन्द कुमार एण्ड सन्स, अजमेरी गेट, दिल्ली
9-	कल्याणी कैकेयी	डा० राधेश्याम द्विवेदी	कैलाश प्रकाशन, भोपाल
10-	कवितावली	गो० तुलसीदास	गीताप्रेस, गोरखपुर
11-	कवित्त रामायण	पं० रामकुमार त्रिवेदी	थियोसिफिकल प्रेस, प्रयाग
12-	केकय ग्रंथावली	डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ०प्र०, इलाहाबाद
13-	कैकेयी	पं० केदारनाथ मिश्र "प्रभात"	अवन्ता प्रेस लिमि०, पटना
14-	कैकेयी	पंडित अम्बाल "चन्द्र"	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
15-	कोशल किशोर	डा० गजेन्द्र प्रसाद मिश्र	हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद
16-	गीतावली	गो० तुलसीदास	गीताप्रेस, गोरखपुर
17-	जानकी जीवन	पं० राजाराम शुक्ल "राष्ट्रीय आत्मा"	सरस्वती सदन, आनन्दबाग, कानपुर
18-	तुलसी	पं० श्याम नारायण पाण्डेय	इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
19-	तुलसी ग्रंथावली भाग 1 तथा 2	पं० रामचन्द्र शुक्ल कामता प्रसाद गुरु ब्रजरत्नदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
20-	दोहावली	गो० तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर
21-	प्रतिमा	श्री मैथिलीशरण गुप्त	विश्वनाथ साहित्य सदन, झाँसी
22-	बरवै रामायण	गो० तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर

23-	अवधी रामायण	गोस्वामी तुलसीदास सं० डा० रामकुमार वर्मा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
24-	भगवान राम (पूर्वचरित) बाललीला	श्रीमन मोहन लाल	हेमन्त प्रकाशन, इलाहाबाद
25-	भगवान राम (मध्यचरित) तपोवन विहार	श्री मन मोहन लाल	हेमन्त प्रकाशन, इलाहाबाद
26-	भगवानराम (उत्तरचरित)श्री मन मोहन लाल विजयार्थ		हेमन्त प्रकाशन, इलाहाबाद
27-	भरत-भक्ति	पं० शिवरत्न शुक्ल	सरल साहित्य माला, काशी
28-	भरत विलाप	ईश्वरदास	हस्तलिखित नागरी प्रचारिणी सभा संग्रह में
29-	भुशिला	श्री रघुवीर शरण मित्र	भारती प्रकाशन, मेरठ
30-	माण्डवी	श्री हरिकेश तिन्हा	63, 122, छोटी पियरी, वाराणसी
31-	रामचरितमानस	गो० तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर
32-	रामचन्द्रिका (केशव कौमुदी भाग-2)	आचार्य केशवदास	रामनारायण लाल शुक्लेश्वर पण्डित पब्लिशर्स, इलाहाबाद
33-	रामचरितचन्द्रिका	पं० रामचरित उपाध्याय	प्रेमलता कार्यालय, बलिया
34-	रामचरित चिन्तामणि	पं० रामचरित उपाध्याय	ज्ञान मण्डल यन्त्रालय, काशी
35-	राम महाकाव्य	श्री रामचन्द्र जायसवाल	शान्ति प्रिया प्रकाशन, फैजाबाद, चौक, पटना-8
36-	राम रसायन	पद्माकर	
37-	राम रहस्य	भगवान दास	हस्तलिखित प्रति हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
38-	राम राज्य (महाकाव्य)	डा० कन्हैया प्रसाद मिश्र	हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ
39-	रामराज्य	पद्म श्री डा० हरिकेश शर्मा	शंकर सदन, लोहामण्डी, आगरा
40-	राम विलास	रमेश सिंह	उन्नति सिंह, कालाकांकर, प्रतापगढ़
41-	रामविनोद रामायण	चंददास सं० डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित	पन्नालाल साहित्य शोध संस्थान प्रकाशन, लिखित साहित्य, बांदा
42-	रामाश्वमेध	बाबा दुखदास	मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
43-	रामाश्वमेध	मधुसूदन	हस्तलिखित प्रति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

44- रामायणेय	मोहनदास	हस्तलिखित प्रति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
45- रामचरितमानस	महाराज रघुराज सिंह देव	श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, कल्याण रोड, बम्बई
46- लक्ष्मण-शक्ति	श्री राधाराम श्रीवास्तव	इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग
47- वनवासी	श्री गोकुलचन्द्र शर्मा	हिन्दी प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद
48- विनय पत्रिका	गो० तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर
49- विदेह	पोद्दार रामावतार "अरुण"	किरण कुंज प्रकाशन, समस्तीपुर, बिहार
50- विक्रम सागर	बाबा रघुनाथदास "रामसनेही"	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
51- विष्णुदास कविकृत हैरामायन कथा"	श्री लोकनाथ द्विवेदी "शिलाकारी"	साहित्य भवन, इलाहाबाद
52- वैदेही वनवास	पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय	हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस
53- श्री रामचन्द्रोदय काव्य	पं० रामनाथ ज्योतिषी	हिन्दी मन्दिर प्रयाग
54- साकेत	श्री मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य सदन, चिरगांव, झाँसी
55- साकेत संत	डा० बलदेव प्रसाद मिश्र	विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली
56- सूर रामचरितावली	सूरदास	गीताप्रेस, गोरखपुर
57- सूरसागर	सूरदास सं० नन्द दुलारे वाजपेयी	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
58- सूरसारावली	सूरदास सं० प्रभुदयाल मीतल	अग्रवाल प्रेस, मथुरा
59- संत की एक रात	श्री नरेश मेहता	पुस्तकायन, 59, स्वामी विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद।

- - - - - - - - - - - -

परिशिष्ट-"ङ"

सहायक ग्रन्थ

क्रम सं०	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशन
1-	अग्नि पुराण	मूल श्लोक सहित	आनन्दाश्रम प्रेस, पूना
2-	अथर्ववेद । सायण भाष्य	मूल श्लोक सहित	लखनऊ की पंचाग्य, मुरादाबाद
3-	अध्यात्म रामायण	सं० मुनि लाल	गीता प्रेस, गोरखपुर
4-	अध्यात्म रामायण का रामचरितमानस पर प्रभाव	निर्मल रविदत्त	
5-	अष्टाध्यायी	पाणिनि	अमर प्रेस, बनारस
6-	आनन्द रामायण	टीकाकार-पं० रामेश पाण्डेय	बम्बई
7-	आधुनिक हिन्दी काव्य में भक्ति तत्व	डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी	अमर प्रकाशन, इलाहाबाद
8-	आचार्य केशव और उनकी रामचन्द्रिका	प्रो० मूल चाँद अग्रवाल	रीगल बुक डिपो, दिल्ली
9-	आनन्द रामायण		श्री मूल राम केशव सुकेत, हापरस
10-	उत्तररामचरितम्	महाकवि भवभूति	चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी-1
11-	उपनिषद्	शांकरभाष्य	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
12-	उपनिषद् सिन्धुदास और उनकी रामायणी कथा	डा० बाबू तिवारी	
13-	कालिदास ग्रन्थावली	अनु० सीताराम चतुर्वेदी	भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 2019 वि०
14-	केनोपनिषद्		गीता प्रेस, गोरखपुर 1968
15-	केशव का आचार्यत्व	डा० विश्वनाथ सिंह	राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली
16-	कौषीतकी ब्राह्मण	मैक्स लेन वारनी	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
17-	गर्ग संहिता	गर्ग महामुनि	पंडित पुस्तकालय, काशी
18-	गीता गोविंद	अनु० रामेश वारनी जयदेव	वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई
19-	गीता शांकर भाष्य		गीता प्रेस, गोरखपुर
20-	गीतावली का काव्यौत्कर्ष	परमानन्द गुप्त	नवयुग प्रेस आगरा, महानगर, लखनऊ
21-	गोस्वामी तुलसीदास	सं० श्री ब्रजभूषण शर्मा	
22-	गोस्वामी तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
23-	गोस्वामी तुलसीदास	डा० रामसुन्दर दास	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उ०प्र०, इलाहाबाद
		डा० पीताम्बर दत्त बर्थ्वाल	

24- गोस्वामी तुलसीदास दर्शन और भक्ति	डा० विश्वम्भरदयाल अवस्थी	अर्थ प्रकाशन, इलाहाबाद
25- गोस्वामी तुलसीदास और रामकथा	श्री सत्येन्द्र चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य सदन परिषद, बीच, जौनपुर
26- बाल बहुर राम रमाया बन के	पं० राम किंकर उपाध्याय	तुलसी साहित्य परिषद, 42/1, लेंडे रोड, कलकत्ता-7
27- छान्दोग्य उपनिषद	डॉ० चारिका सिंह	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
28- बाल्मीकि रामायण	कवि कुमारदास कृत व्याख्याकार महानन्दन मिश्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
29- सत्यार्थ	लोकाचार्य	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
30- तुलसीदास	डा० माता प्रसाद गुप्त	प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद, प्रयाग
31- तुलसीदास और उनका काव्य	डा० रामनरेश त्रिपाठी	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
32- तुलसीदास आज के सन्दर्भ में	डा० चौधरी	अभिव्यक्ति प्रकाशन, 847, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
33- तुलसीपूर्व रामसाहित्य	डा० अवधेश सिंह	रचना प्रकाशन, इलाहाबाद
34- तुलसी मानस रत्नाकर	डा० भाग्यवती सिंह	सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा
35- तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामसाहित्य	डा० रामकृष्ण पाण्डेय	अभिनव भारती, इलाहाबाद
36- तुलसी मानस श्रेणी	डा० रामस्वरूप आर्य एवं गिरिराज शरण अग्रवाल	मानस चतुश्शती आयोजन समिति, सम्भल, मुरादाबाद
37- वैदिक संहिता	डॉ० नारायण शर्मा	वैदिक साहित्य मण्डल, पूना
38- दशरथ नैल श्रीराम	कृष्णदत्त राजोपाध्यायी	सत्य साहित्य सेवा प्रकाशन, नई दिल्ली
39- दशकुमार चरितम्	क्षेमेन्द्र	निर्णय सागर प्रेस
40- धर्मपुत्र विज्ञान	रामाय पंडित	राजकमल केंद्रीय साहित्य परिषद, कलकत्ता
41- निराला और उनका काव्य	श्री गंगा प्रसाद पाण्डेय	लिपि प्रकाशन, 5-5/20 कृष्णनगर दिल्ली
42- पद्म पुराण	व्यास	आनन्दाश्रम मुद्रणालय पुणे 1894 का संस्करण
43- पृथ्वी राज रासो	चन्दबरदायी डॉ० मोहनलाल विष्णु लाल पाण्ड्या	नागरी प्रचारिणी सभा काशी

44- प्रतिमा नाटक — व्यास — रामलाल आर्य कुमार, 16 अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

45- प्रसन्न राघव — श्री जानकीनाथ पाण्डुरंग — निर्णय सागर मुद्रणालय, बम्बई

46- पालि साहित्य का इतिहास — श्री भरत सिंह उपाध्याय — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

47- पुराण-विमर्श — डा० बलदेव उपाध्याय — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1965

48- ब्रह्म पुराण — व्यास — आनन्दाश्रम मुद्रणालय, बम्बई

49- भरत-चरित — पं० रामशिंदर उपाध्याय — तुलसी साहित्य परिषद, रीड रोड, कलकत्ता

50- भारतीय वाङ्मय में सीता का स्थान — डा० मुन्दरलाल अग्रवाल — प्रतिभा प्रकाशन, लीडर्स, इलाहाबाद

51- भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विकास — श्री वासुदेवशरण अग्रवाल — मडिनी प्रेस, आगरा 1952

52- मध्यकालीन साहित्य में अलंकारवाद — डा० कपिलदेव पाण्डेय — चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

53- मत्स्य पुराण (व्याख्या) — अनु० रामप्रताप त्रिपाठी — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

54- महाभारत भाग-III — व्यास — गीता प्रेस गोरखपुर

55- महाभारत कर्ण पर्व — व्यास — स्वाध्याय मण्डल, औंध, सातारा

56- महाभारत द्रोणपर्व — व्यास — स्वाध्याय मण्डल, औंध, सातारा

57- महाभारत शान्तिपर्व — व्यास — स्वाध्याय मण्डल, औंध, सातारा

58- महाकवि तुलसीदास — श्री बद्री विशाल विद्यार्थी — नवयुग पुस्तक भण्डार, लखनऊ

59- मानस रहस्य — श्री जयराम दास "दीन" — गीता प्रेस गोरखपुर

60- मानस में रामकथा — डा० बलदेव प्रसाद मिश्र — बंगीय हिन्दी परिषद, 15 बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-12

61- मानस का कथा शिल्प — श्री शीतल सिंह — आनन्द पुस्तक भवन, वाराणसी

62- मानस की रामकथा — श्री परशुराम चतुर्वेदी — प्रयाग

63- मानस चिंतन — पं० बालकृष्ण शर्मा — हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

64- मानस मीमांसा — पं० रामशिंदर उपाध्याय — भारतीय विद्या भवन बम्बई

65- मानस परिशीलन — पं० रामशिंदर उपाध्याय — थिरमा अकादमी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर, कलकत्ता

66- मिताक्षरा — अनु० दुर्गा प्रसाद — नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

67- महावीरचरितम् — महाकवि भवभूति — चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 2012 वि०

68- मैनाकी तीर्थ — पं० दामोदर भट्ट — स्वाध्याय मण्डल, औंध, कलकत्ता

69- मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ — डा० बाबूराम अग्रवाल — कलकत्ता

70- रघुवंश	पं० श्रीराम शर्मा	गायत्री तपोभूमि, मथुरा
71- रघुवंश महाकाव्य (नवीन सर्ग)	कालिदास	साहित्य भण्डार, मेरठ
72- रघुवंश और कालिदास	व्याख्याकार- एम० एकरिन्दीकर शैलजा करिन्दीकर	कुक लेखी पब्लिशिंग कम्पनी, बम्बई-4
73- रघुवंश भाषा	लाला सीताराम (उपनाम-श्री अवधवासी)	तारा पुस्तकालय, बनारस (सन् 1902 का संस्करण)
74- रामायण	महर्षि वाल्मीकि (अनु)	गीता प्रेस, गोरखपुर
75- रामकथा-उत्पत्ति और विकास	डाक्टर कामिल बुल्के	हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग
76- रामकाव्य और तुलसी	श्री प्रेम शंकर	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
77- रामानन्द सम्प्रदाय तथा साहित्य पर उसका प्रभाव	श्री मुंशी नारायण श्रीवास्तव	"प्रयाग" हिन्दी परिषद्, 1957 ई०
78- रामचरितमानस का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डा० जगदीश प्रसाद शर्मा	किताब महल प्राइवेट लि० मीरी रोड, इलाहाबाद
79- रामचरितमानस की पाश्चात्य समीक्षा	श्री हुकमीर सिंह	सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-7
80- रामकथा के पात्र	डा० भगवत शरण उपाध्याय	प्रेम, रामबाग, कानपुर-12
81- रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना	डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र	बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना
82- रामायण के पात्र भाग-1-2	श्री नाना भाई भट्ट	सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली
83-रामायण की विभूतियाँ	श्री सत्यनारायण व्यास	किताब महल, इलाहाबाद
84- राम की शक्ति पूजा और निराला	प्रो० देवेन्द्र शर्मा "इन्द्र"	विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
85- रामायण का राष्ट्रवादी स्वरूप (एवं राष्ट्रवादी तुलसी)	डा० रामपति चतुर्वेदी	इण्डियन हाउस प्रताप रोड, जालन्धर
86- रामायण-कथा	डा० भगवान सहाय भारद्वाज "प्रदीप"	संस्कृति संस्थान, बरेली
87- राधेश्याम रामायण	पं० राधेश्याम कथावाचक	राधेश्याम पुस्तकालय बरेली
88- रामराज्य तथा मार्क्सवाद	बाराबती प्रसाद त्रिपाठी	श्री गीता समिति गोरखपुर
89- रामायण मीमांसा	स्वामी करपात्री जी महाराज	श्री वि० शिक्षा मण्डल, दुर्गा कुण्ड, वाराणसी

90- रामकाव्य परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन	डा० गार्गी	
91- रामायण कालीन भारतीय संस्कृति	श्री अमित कुमार नागुराम व्यास	सरस्वती साहित्य मंडल, नई दिल्ली 1958
92- रामायण कालीन समाज	" "	सरस्वती साहित्य मंडल दिल्ली, 1958
93- वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन	डा० विद्या मिश्र	हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय
94- वायु पुराण	अनु० रामप्रताप त्रिपाठी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
95- वाल्मीकि और तुलसी (साहित्यिक मूल्यांकन)	डा० रामकुमार अग्रवाल	प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ
96- विष्णु पुराण	व्यास	गीता प्रेस, गोरखपुर
97- वैदिक साहित्य और संस्कृति	पं० कपिल उपाध्याय	
98- वैदिक संस्कृति और दर्शन	डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी	सरस्वती प्रकाशन मंदिर 69, नया बटरामा, इलाहाबाद
99- स्कन्द पुराण	पं० श्रीराम शर्मा आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली
100- साहित्य सम्राट तुलसीदास	पं० गंगाधर मिश्र	सरस्वती मंदिर, जानकीकुंड, वाराणसी
101- सुखसागर		नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
102- संस्कृत वाङ्मय	डा० कपिल उपाध्याय	पु० शारदा मंदिर काशी
103- संस्कृति और साहित्य	श्री रामविलास शर्मा	किताब महल प्रयाग 1944 ई०
104- शतपथ ब्राह्मण		राजस्थान वैदिक तत्व शोध संस्थान, जयपुर
105- श्रीमद् भगवद्गीता		गीता प्रेस गोरखपुर
106- श्रीमद् भागवत पुराण	व्यास	गीता प्रेस, गोरखपुर
107- शारीरिक भाष्य	शंकराचार्य	
108- हिन्दुत्व	श्री रामदास गौड़	ज्ञान मण्डल यंत्रालय, काशी
109- हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव	डा० सरनाम सिंह	
110- हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
111- हनुमन्नाटकम्	श्री दामोदर मिश्र द्वारा	बलदेवपुर सुखमाल पन्थी तैलंगिक

112-	हिन्दी साहित्य में निर्गुण सम्प्रदाय	डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल	अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ
113-	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-1	सं० डा० राजबली पाण्डेय	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
114-	" "भाग-2	सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा	" " "
115-	" "भाग-5	सं० पं० कमलापति त्रिपाठी	" " "
116-	" "भाग-6	सं० डा० नगेन्द्र	" " "
117-	" "भाग-7	सं० डा० भगीरथ मिश्र	" " "
118-	" "भाग-8	सं० विनय मोहन शर्मा	" " "
119-	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग-10	सं० डा० नगेन्द्र	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
120-	हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 14	सं० डा० हरवंश लाल शर्मा	" " "
121-	हिन्दी साहित्य का [illegible]	[illegible] प्रसाद मिश्र	
122-	हिन्दू संस्कार	डा० राजबली पाण्डेय	
123-	हिन्दी के [illegible] काव्यों का मूल्यांकन	डा० [illegible]	सूर्यप्रकाश दिल्ली (1969)
124-	हिन्दी साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास	डा० [illegible] वर्मा	रामनारायण लाल प्रयाग
125-	प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद	डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी प्र०ए० कार्यालय बम्बई (1952)
126-	[illegible] हिन्दी विश्वकोश	डा० धीरेन्द्र वर्मा	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
127-	मानक हिन्दी कोश	सं० रामचन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
128-	नालन्दा विशाल शब्द सागर	सं० श्री नवल जी	न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, नई सड़क, देहली।